...ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रि...
...ल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

ISSN : 0373 - 1200

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशि...
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रि...

जनवरी 1998

यह अंक : 5 रु०

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915
वर्ष 83 अंक 10
जनवरी 1998
मूल्य : आजीवन : 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०,
एक प्रति : 5 रु०

♦

प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

♦

सम्पादक
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

♦

सहायक संपादक
डॉ० दिनेश मणि

♦

मुद्रक
अरुण राय
कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

♦

सम्पर्क
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद 211002

विज्ञान विस्तार

विज्ञान वक्तव्य	...	1
स्वाधीन भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	...	3
जीव-जंतुओं से सीख रहे हैं वैज्ञानिक रहस्य जीवन के	...	6
तारों की राख से बनती नीहारिकाएँ	...	8
धातुओं का सफर : भूगर्भ से मानव-सेवा तक	...	10
उच्चताप पर काम आने वाले पदार्थ	...	13
मृदारहित विधि द्वारा सब्ज़ी-उत्पादन	...	14
मलेरिया एवं रोगवाहक मच्छर	...	17
लुई ब्रेल और ब्रेल लिपि	...	22
पृथ्वी की रोचक बातें (पुस्तक समीक्षा)	...	23

♦ ♦

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

आप सभी को नया वर्ष शुभ हो, मंगलमय हो। पिछले लगभग दो महीने से इलाहाबाद ठण्ड की चपेट में आ गया है। बादल छाये रहते हैं, ठण्डी हवा चलती रहती है और सूरज के दर्शन कभी कभार ही हो पाते हैं। फिर भी पिछले दिनों शैक्षणिक सरगर्मियाँ भी जोर-शोर से चल रही थीं। शिक्षा का यह विशिष्ट केन्द्र अपने नाम को सार्थक कर रहा था। सभी शैक्षणिक गतिविधियों की चर्चा तो यहाँ सम्भव नहीं है, फिर भी कुछेक का उल्लेख किया जा रहा है।

संगोष्ठियाँ

(1) 27, 28 एवं 29 नवम्बर को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में "जैविक विविधता संरक्षण एवं पादप विकास" विषय पर तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। इस संगोष्ठी में विश्वविद्यालय एवं सम्बद्ध महाविद्यालयों के अध्यापकों के अतिरिक्त देश के विभिन्न राज्यों से आये वैज्ञानिकों ने भाग लिया। विलुप्त हो रही वनस्पतियों एवं जीवों पर वैज्ञानिकों ने चिन्ता व्यक्त की और इस संगोष्ठी में जो बात उभर कर सामने आयी और जिस पर अविलम्ब ध्यान देने की आवश्यकता है, उसे निष्कर्ष रूप में दिया जा रहा है–

1. पादप एवं जन्तु प्रजातियों के आवासों का संरक्षण,
2. विलप्त होने के कगार पर पहुँच रही प्रजातियों की संख्या में वृद्धि,
3. पादपों, जन्तुओं और उनके आवासों के विषय में आम आदमियों के लिये जानकारी,
4. नये कानून बनाना और उनका कड़ाई से पालन।

(2) 11 एवं 12 दिसम्बर 1997 को 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' में "हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष" विषय पर विज्ञान परिषद् इलाहाबाद, और विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में दो गोष्ठियाँ सम्पन्न हुई।

11 दिसम्बर को विज्ञान प्रसार व राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद् के निदेशक डॉ० नरेन्द्र सहगल, विज्ञान प्रसार के वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी डॉ० सुबोध मोहन्ती, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के प्रकाशन निदेशालय के निदेशक डॉ० रमेश दत्त शर्मा, विज्ञान परिषद्, के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र, "विज्ञान" के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, "विज्ञान" के सहायक सम्पादक डॉ० दिनेश मणि, एवं शोध सहायक डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय, ने गोष्ठी में भाग लिया।

इस संगोष्ठी की अध्यक्षता प्रो० डी० डी० पन्त ने की। यह संगोष्ठी विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली द्वारा प्रवर्धित "प्रायोजना"- 'हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष, की प्रगति समीक्षा के सिलसिले में सम्पादक-मण्डल के सदस्यों के लिये आयोजित की गयी थी। इस संगोष्ठी में 'सरस्वती', 'विशाल भारत', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'वीणा', 'हिन्दुस्तानी', 'सम्मेलन पत्रिका', 'गंगा', 'सुधा', 'माधुरी', 'हरिश्चन्द्र पत्रिका', 'हिन्दी प्रदीप', 'कवि वचन सुधा', तथा 'विज्ञान' के पुराने अंकों में सन् 1950 तक प्रकाशित विज्ञान विषयक लेखों की भाषा, शैली, विषयवस्तु तथा वैज्ञानिकता पर दृष्टिपात किया गया और आज के सन्दर्भ में इन विज्ञान लेखों की प्रासंगिकता पर विचार किया गया। सर्वसम्मति से यह तय हुआ कि पुराने चुने हुए श्रेष्ठ लेखों के प्रकाशन की व्यवस्था की जाय।

दूसरे दिन 12.12.97 को संगोष्ठी का विषय था "विज्ञान पारिभाषिक शब्दावली पर एक सार्थक चर्चा"। इस संगोष्ठी में सम्पादक-मण्डल के उपरोक्त सदस्यों के अतिरिक्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० बी० डी० गुप्त, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. डी. डी. नौटियाल, कुलभास्कर आश्रम डिग्री कॉलेज के पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. प्रभाकर द्विवेदी, डॉ. एम. एम. राय, डॉ. सुनील कुमार पाण्डेय एवं राँची से 'नवभारत टाइम्स' के श्री विजय भास्कर ने अपने विचार व्यक्त किये। इस संगोष्ठी में लोकप्रिय विज्ञान शब्दावली बनाने पर बल दिया गया। व्यापक विचार-विमर्श के बाद सर्वसम्मति से दस हज़ार शब्दों के संग्रह का संकल्प लिया गया। प्रथम चरण में एक हज़ार शब्द चुने जाने पर

बल दिया गया। डॉ. नरेन्द्र सहगल एवं सम्पादक-मण्डल के अन्य सदस्यों द्वारा इस शब्दावली को मूलभूत विज्ञान, कृषि विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान तथा जीव विज्ञान जैसे चार खण्डों में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। संगोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. डी. डी. पन्त ने की और धन्यवाद ज्ञापन प्रो० चन्द्रिका प्रसाद ने किया।

(3) 18, 19 एवं 20 दिसम्बर 1997 को शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान में इंडियन सोसाइटी ऑफ एग्रीकल्चरल केमिस्ट्स के निदेशक डॉ. एस. के. डे. की अध्यक्षता में "भूमि उर्वरता और पर्यावरण" विषय पर एक तीन दिवसीय संगोष्ठी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। गोष्ठी में बड़ी संख्या में कृषि वैज्ञानिक उपस्थित थे। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के उपमहानिदेशक डॉ० जी. वी. सिंह ने कृषि वैज्ञानिकों का आवाहन करते हुए कहा कि वे लगातार बढ़ती जनसंख्या के लिए उत्पादन बढ़ायें, किन्तु यह भी ध्यान रहे कि इससे पर्यावरण और मृदा को क्षति न पहुँचे। डॉ डे. ने अपने अध्यक्षपदीय व्याख्यान में वैज्ञानिकों को भूमि उर्वरता और पर्यावरण पर नये अनुसंधान करने की सलाह दी। इस अवसर पर अनेक वैज्ञानिकों को पुरस्कृत भी किया गया।

व्याख्यान

(1) 20 अक्टूबर 1997 को 'उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान' के प्रेमचन्द सभागार में डॉ. रत्नकुमारी स्मृति व्याख्यानमाला के अन्तर्गत् छठाँ व्याख्यान सम्पन्न हुआ। व्याख्यान उ. प्र. हिन्दी संस्थान की उप-निदेशिका, लोक साहित्य की मर्मज्ञा श्रीमती डॉ. विद्याबिन्दु सिंह द्वारा " लोक साहित्य में महाभारत" विषय पर दिया गया। उक्त अवसर पर मुख्य अतिथि थे हिन्दी संस्थान के अध्यक्ष डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी व अध्यक्ष थीं विदुषी श्रीमती (डॉ.) सरला शुक्ला । परिषद् के प्रतिनिधि डॉ. सुनील कुमार पाण्डेय द्वारा व्याख्यानदात्री का परिचय दिया गया और धन्यवाद ज्ञापन परिषद् के संयुक्त मंत्री व विज्ञान पत्रिका के सहायक सम्पादक डॉ. दिनेश मणि द्वारा दिया गया। सभा का संचालन श्री माधुरी श्रीवास्तव द्वारा किया गया। मंचासीन अन्य लोग थे उच्च शिक्षा के विशेष सचिव डॉ. विनोद चन्द्र पाण्डेय व उ. प्र. हिन्दी संस्थान के निदेशक श्री मधुकर जी।

(2) 19 नवम्बर 1997 को डॉ. सालिगराम भार्गव स्मृति व्याख्यानमाला के अन्तर्गत् सुप्रसिद्ध भौतिकविज्ञानी एवं गोरखपुर तथा इन्दौर विश्वविद्यालयों के भूतपूर्व कुलपति डॉ. देवेन्द्र शर्मा द्वारा "दिवि सूर्य सहस्रस्य " विषय पर विद्वतापूर्ण रोचक व्याख्यान सम्पन्न हुआ। इसकी अध्यक्षता सुप्रसिद्ध पुरावनस्पतिविद् डॉ. दिव्य दर्शन पन्त द्वारा की गयी। व्याख्यान के मुख्य अतिथि थे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. बी. डी. गुप्त। इस अवसर पर बड़ी संख्या में विद्वतजन उपस्थित थे।

(3) 5 दिसम्बर 1997 को स्व. प्रो. नीलरत्न धर की पुण्य तिथि पर शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान में डॉ. नीलरत्न धर स्मृति व्याख्यान के अन्तर्गत् जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष एवं डीन डॉ. एम. एम. राय ने "प्रेजेन्ट एग्रीकल्चर स्ट्रेटेजी" विषय पर एक रोचक, ज्ञानवर्धक, विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिया। डॉ. राय ने अपने व्याख्यान में बढ़ती जनसंख्या के लिये भोजन उपलब्ध कराने हेतु कृषि में नयी तकनीकों के शामिल करने पर जोर दिया।

मुख्य अतिथि प्रो. बी. डी. गुप्त (कुलपति), विज्ञान संकाय के डीन, प्रो. हनुमान प्रसाद तिवारी, स्मृति व्याख्यान के आयोजक प्रो. शिवगोपाल मिश्र, संस्थान के निदेशक, डॉ. एम. एम. वर्मा, संचालक डॉ. प्रभाकर द्विवेदी और संस्थान के अध्यापकों, शोध छात्रों एवं विद्यार्थियों ने स्व. प्रो. धर को श्रद्धांजलि अर्पित की। इस अवसर पर विद्वत् समूह द्वारा स्व. प्रो. धर के व्यक्तित्व के प्रेरक प्रसंगों का स्मरण किया गया और प्रो. धर के वैज्ञानिक शोधों पर प्रकाश डाला गया।

बधाइयाँ

(1) भारतीय मिसाइल अभियान के पुरोधा, अग्नि पुरुष डॉ. अविल फकीर जलालुद्दीन अब्दुल कलाम को राष्ट्रपति ने "भारत रत्न" की उपाधि से विभूषित करने की घोषणा की है। डॉ. कलाम का जन्म 15 अक्टूबर 1931 को तमिलनाडु के रामेश्वरम् में हुआ था। 'सादा जीवन उच्च विचार' की प्रतिमूर्ति, साहित्य और संगीत प्रेमी, वीणा-वादक, मिसाइल वैज्ञानिक, रक्षा मन्त्री के सलाहकार डॉ. कलाम अनेक सम्मानों एवं पुरस्कारों से पहले ही अलंकृत हो चुके थे। युवाओं को उनका संदेश है- "स्वप्न, स्वप्न और स्वप्न देखना चाहिए, स्वप्नों को विचारों में बदलकर कर्म करना चाहिए।"

(2) 35 वर्षीय भारतीय मूल की अंतरिक्ष विज्ञानी श्रीमती डॉ. कल्पना चावला ने वह कर दिखीया जो अब तक किसी भारतीय महिला ने नहीं किया था। 19 नवम्बर 1997 को अमेरिकी अंतरिक्षयान 'कोलम्बिया' में 15-16 दिनों की यात्रा के बाद सकुशल लौट आयी हैं। डॉ. कल्पना इस अंतरिक्षयान मिशन की विशेषज्ञ थीं। किन्तु डॉ. कल्पना की इस सफलता के पीछे उनकी कड़ी मेहनत, लगन और साहस है।

[शेष पृष्ठ 5 पर]

स्वाधीन भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

प्रस्तुति : डॉ० कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षण केन्द्र, टाटा मूलभूत संशोधन संस्थान
वि० ना० पुरव मार्ग, मानखुर्द, मुम्बई-400088

भारत को स्वतंत्र हुए पचास वर्ष हो चुके हैं तथा वर्तमान् वर्ष स्वाधीनता की स्वर्ण जयन्ती का वर्ष है। किसी राष्ट्र के जीवन में पचास वर्षों की अवधि बहुत बड़ी नहीं होती, विशेषकर भारत के लिए, जिसका हज़ारों वर्षों का एक लंबा इतिहास रहा है। हमारे देश में ज्ञान-विज्ञान की सुदृढ़ एवं समृद्ध परम्परा रही है। कई सौ वर्ष पूर्व हम विज्ञान, गणित, खगोल विज्ञान में विश्व में अग्रणी थे। इस देश का यह दुर्भाग्य ही रहा है कि अपने जीवन काल में ज़्यादातर यह गुलाम रहा तथा विदेशी आक्रान्ताओं से जूझता रहा। अठारहवीं शताब्दी में जब पश्चिम के देश कोयले पर आधारित भाप के इंजन से शुरू कर, एक नई वैज्ञानिक क्रांति की ओर अग्रसर थे, उस समय यह देश परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा बेवश लाचार था क्योंकि इसके नीति-नियामकों को मात्र शोषण से मतलब था। स्वाभाविक है हम प्रगति के प्रवाह से दूर रह गये तथा पिछड़ गये। आज जब हम स्वाधीनता की स्वर्ण-जयन्ती मना रहे हैं, यह एक उचित अवसर होगा कि पिछले पचास वर्षों की अपनी उपलब्धियों का मूल्यांकन करें।

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० नेहरू वैज्ञानिक सोच-समझ रखने वाले दूरदर्शी व्यक्ति थे। स्वाधीनता के पूर्व ही जब डॉ० होमी भाभा विदेश से लौटकर पं० नेहरू से अपनी वैज्ञानिक योजनाओं के साथ मिले तो नेहरू जी ने उनसे सहमति व्यक्त की तथा यह माना कि देश की स्वतंत्रता के बाद उसे विज्ञान एवं तकनीकी के बूते ही आगे बढ़ाया जा सकता है। भाभा एक उच्चस्तरीय शोध संस्थान खोलना चाहते थे जिससे भारत को उच्च तकनीकी के क्षेत्र में औरों का मोहताज़ न होना पड़े। नेहरू की सलाह पर डॉ० भाभा ने तत्कालीन उद्योगपति टाटा से मिलकर उन्हें अपनी योजना से अवगत कराया। टाटा ने सहर्ष आर्थिक मदद देना स्वीकार कर लिया। सन् 1944 में टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान की स्थापना हुई। यहाँ गणित एवं नाभिकीय भौतिकी पर अनुसंधान शुरू हुआ। यहीं से प्रशिक्षित वैज्ञानिकों ने बाद में परमाणु अनुसंधान के क्षेत्र में भारत को विश्व मानचित्र पर ला खड़ा किया। एक ग़रीब एवं नव स्वाधीन देश के लिए यह बड़ी उपलब्धि थी। वर्ष 1942 में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पिरषद् की स्थापना एक महत्वपूर्ण क़दम था। आज इससे जुड़ी लगभग 40 प्रयोगशालायें विज्ञान की विविध विधाओं में शोधरत हैं तथा राष्ट्र की आत्मनिर्भरता को मज़बूत करने में संलग्न हैं। भारत में वैज्ञानिक शोध में कार्यरत यह सबसे बड़ी संस्था है। इसके अतिरिक्त इंडियन एकेडमी ऑव साइंसेज तथा इंडियन इंस्टीट्यूट ऑव साइंस, बंगलौर ने देश के वैज्ञानिक विकास में प्रशंसनीय भूमिका का निर्वाह किया है। इसके अलावा, भारतीय कृषि अनुसंदान परिषद्, बायोटेक्नॉलोजी विभाग तथा विज्ञान एवं तकनीकी विभाग, नई दिल्ली ने वैज्ञानिक विकास के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान किया। सरकारी संस्थाओं के अलावा अनेक अर्धसरकारी, तथा स्वायत्तशासी संस्थाएँ विज्ञान के प्रति समर्पित भाव से लगी हैं। आज पूरे

विश्व में वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षमता से युक्त मानव संपदा में हम तीसरे स्थान पर हैं। विश्व के दस प्रमुख औद्योगिक देशों में हम एक हैं तथा रसायनों के उद्योग-धंधों में हम पाँचवीं बड़ी शक्ति हैं। विगत पचास वर्षों में हमने कई सोपान तय कियेहैं, किन्तु यहाँ चर्चा के दौरान हम कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियों को संक्षेप में रखेंगे।

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में हमने आशातीत प्रगति की है। देश में प्राथमिक स्तर से लेकर बड़े-बड़े अस्पतालों का फैलाव हुआ है। भारतीय डॉक्टर विश्व-स्तर के माने जाते हैं। संक्रामक रोगों, महामारियों से लड़ने में हमने काफी काम किया है। खसरा, चेचक, हैजा जैसी घातक बीमारियों को हमने काफी हद तक नियंत्रण में कर लिया है। सबके लिए स्वास्थ्य सुविधा जुटाने के प्रयास जारी हैं। बच्चों को छः प्रमुख जानलेवा रोगों से मुक्त रखने हेतु राष्ट्रीय स्तर पर टीकाकरण कार्यक्रम सफलता पूर्वक चलाये गए। इन टीकों का निर्माण पूर्णतः स्वदेशी है। इतने बड़े स्तर पर करोड़ों लोगों के टीकाकरण का प्रयास विश्व में प्रथम बार किसी देश ने किया। सबको आरोग्य प्रदान करने का यह प्रयास कितना उत्कृष्ट है इसका अनुमान मात्र एक तथ्य से लगाया जा सकता है कि जब देश स्वतंत्र हुआ उस समय एक भारतीय की जीवन प्रत्याशा 31 वर्ष थी जो विगत पचास वर्षों में बढ़कर दुगुना यानि 62 वर्ष हो चुकी है। केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ ने परिवार नियोजन हेतु महिलाओं के लिए पहली तथा विश्व में एक मात्र स्टिरॉयड रहित गर्भ निरोधक गोली का विकास किया है जिसे दैनिक नहीं बल्कि सप्ताह में एक बार ही लेना पड़ता है। यह 'सहेली' नाम से उपलब्ध है तथा इसका कोई 'साइडइफेक्ट' नहीं है। हाल ही में इसी संस्थान में 'मेमॉरी प्लस' नामक बुद्धि वर्धक कैप्सूल का विकास किया है जो ब्राह्मी (*Hydrocotyl asiatica*) नामक पौधे से बना है। ब्राह्मी का हमारे 'आयुर्वेद' में व्यापक उल्लेख है। इसी संस्थान ने गुगुल, कोमीफोरा मुकुल (*Comifora Mukul*) नामक पौधे से 'गुगुलिप' नामक ओषधि का निर्माण किया है, जो शरीर में वसा को कम करती है। विश्व के कई देशों ने इन दवाओं में काफी रुचि दिखाई है। हैदराबाद स्थित इंडियन इंस्टीय्यूट ऑव केमिकल टेक्लॉलाजी ने 'एड्स' रोग के लिए 'एजाइडोथाइमिडीन' नामक ओषधि का स्वदेशी तकनीक से निर्माण किया है जो पश्चिमी देशों से दस गुना सस्ता है। केरल स्थित श्री चित्रा तिरूनल इन्सटीयूट ऑव मेडिकल साइंसेज ने हृदयरोगियों के लिए कृत्रिम हृदय वाल्व बनाया है जो विश्व-स्तर के मानदंडों के बावजूद काफी सस्ता है। जहाँ अंतर्राष्ट्रीय कीमत प्रति वाल्व एक लाख रुपये पड़ती है, वहीं भारतीय वाल्व बारह हज़ार रुपयों में उपलब्ध है। पिछले दो दशकों में हमने लगभग 90 दवायें अपनी तकनीक से विकसित की हैं।

कृषि के क्षेत्र में 'हरित क्रांति' का सपना साकार हो गया है। खाद्यान्नों के मामले में हम आत्मनिर्भर हो गये हैं। स्वतंत्रता के समय जहाँ सकल वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन 5 करोड़ टन था, 1997 में चार गुने से अधिक यानि बीस करोड़ पचीस लाख टन होने की सम्भावना है। देश की इतनी बड़ी जनसंख्या का पोषण संभव करने में कृषि वैज्ञानिकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। उन्नतशील बीज, कीटनाशक, खाद एवं अन्य साधन कृषकों को उपलब्ध कराने में वैज्ञानिक विधियों की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

ऊर्जा किसी राष्ट्र की प्रगति का पैमाना होता है। आज देश में 80 हज़ार मेगावाट विद्युत् उत्पादन होता है हालाँकि ज़रूरत के मुताबिक वह पर्याप्त नहीं है। पेट्रोलियम के मामले में हम दूसरों पर निर्भर हैं फिर भी अपने प्रयासों से 3 करोड़ टन से ऊपर ही पेट्रोलियम का उत्पादन स्वयं करते हैं। परमाणु ऊर्जा एक उच्च तकनीकी पर आधारित क्षेत्र है जिसमें हम अनेक प्रतिबंधों, दबावों के बावजूद अग्रसर रहे तथा सफल रहे। आज देश की संपूर्ण विद्युत् का 5 प्रतिशत परमाणु बिजलीघरों से बनती है। विकसित देश परमाणु तकनीकी में अपना एकाधिकार बनाये रखना चाहते थे, किन्तु हमने अपने लगन एवं परिश्रम से इसे सम्भव कर दिखाया। इसमें डॉ० भाभा एवं डॉ० विक्रम साराभाई का अप्रतिम योगदान रहा। 18 अप्रैल 1974 को जब हमने जैसलमेर के रेगिस्तान में भूमिगत परमाणु परीक्षण कर अपनी क्षमता प्रदर्शित की तो कितने देशों ने भारत को सलाह दी कि भारत को अपनी ग़रीबी दूर करने के लिये प्रयास करना चाहिए न कि परमाणु तकनीक पर। ये वही देश थे जो शुरू से चाहते रहे कि भारत कभी सक्षम तथा आत्मनिर्भर न हो सके।

अंतरिक्ष विज्ञान में हमने अभूतपूर्व प्रगति की है। आज हम संचार, दूर संवेदन उपग्रहों का निर्माण कर उसे प्रक्षेपित कर सफलता पूर्वक संचालित कर रहे हैं। इस प्रकार हम विश्व के 5-6 प्रमुख देशों में हैं। एस० एल० वी०, ए० एस० एल० वी० तथा पी० एस० एल० वी० श्रृंखला के राकेट-निर्माण के बाद हम जी० एस० एल० वी० यानि क्रायोजेनिक राकेट बनाने के सन्निकट हैं। इसे बना लेने पर हम पृथ्वी से छत्तीस हज़ार किलोमीटर ऊपर भूसमकालिक कक्षा में अपना उपग्रह स्वयं भेज सकेंगे। इस राकेट का प्रयोग दस हज़ार किलोमीटर दूर तक प्रहार करने वाले प्रक्षेपास्त्र बनाने में होता है।

रक्षा के क्षेत्र में मुख्य युद्धक विमान, टैंक, तोप, गन, हैलीकॉप्टर, पाइलटरहित यान, स्वदेशी राडार इत्यादि बना चुके हैं। मिसाइलों में 'अग्नि', 'पृथ्वी', 'त्रिशूल', 'आकाश' एवं 'नाग' का पूर्णतः स्वदेशी विकास हमारी वैज्ञानिक एवं तकनीकि क्षमता का द्योतक है। हम शांति पूर्ण सह-अस्तित्व के हिमायती हैं, किन्तु इसे कोई हमारी कमज़ोरी समझ कर अनुचित लाभ न उठा सके इसकी भी हमारे रक्षा वैज्ञानिकों ने पूर्ण व्यवस्था कर रखी है। तमाम कठिनाइयों तथा उतार-चढ़ाव के बावजूद आज भारत एक बड़ी शक्ति के रूप में ऊभर रहा है। यह वैज्ञानिक प्रगति का ही प्रतिफल है।

■■■

[पृष्ठ 2 का शेषांश]

डॉ. कल्पना का कहना है। ''मुझे घबराहट ने कभी नहीं घेरा, प्रशिक्षण के दौरान भी नहीं।''

(3) 7 मई 1912 को ग्राम जोल्हूपुर, ज़िला जालौन, उत्तर प्रदेश में जन्में वयोवृद्ध विज्ञान लेखक श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी को आगरा की ''केन्द्रीय हिन्दी संस्थान'' ने उनके विशिष्ट विज्ञान लेखन के लिये 'डॉ. आत्माराम विज्ञान पुरस्कार' देकर सम्मानित किया है। श्री चतुर्वेदी ने ब्रह्माण्ड विज्ञान ग्रन्थमाला के अन्तर्गत् सात खण्डों की रचना करके बुढ़ापे में भी कमाल कर दिखाया है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि मनुष्य में कठोर परिश्रम और लगन हो तो उम्र आड़े नहीं आती। सातों खण्ड निम्नवत् हैं।

- खण्ड 1. ग्रहों-नक्षत्रों का भारतीय व पाश्चात्य ज्ञान
- खण्ड 2. ग्रहों-नक्षत्रों का अंतरिक्षीय अध्ययन
- खण्ड 3. ब्रह्माण्ड यात्रा : पहला पड़ाव चन्द्रमा
- खण्ड 4. अन्तरिक्ष में शटल व स्टेशन की स्थापना
- खण्ड 5. अन्तरिक्षीय ज्ञान का पृथ्वी पर उपयोग
- खण्ड 6. ब्रह्माण्ड ज्ञान-कोष
- खण्ड 7. अन्तरिक्षीय युग के प्रथम पैंतीस वर्ष

प्रथम चार खण्ड 1995 में और बाद के तीन खण्ड 1996 में अलंकार प्रकाशन, 3611, सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 से प्रकाशित हुये और यूनेस्को द्वारा प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किए गए।

(4) प्रोफेसर (डॉ.) श्यामलाल काकानी, प्राचार्य, सेठ मुरलीधर स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा को उनकी अतिचालकता के क्षेत्र में उच्च कोटि के शोध, विज्ञान को लोकप्रिय बनाने एवं कई पुस्तकें लिखने के कारण ''वर्ड हू इज़ हू'' के 14 वें संस्करण के लिये चुना गया है। इसके पूर्व आपको ''विज्ञान परिषद् प्रयाग'' सहित अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत किया जा चुका है।

एक सूचना - ''स्वामी सत्यप्रकाश स्मृति व्याख्यानमाला'' के अंतर्गत् आगामी व्याख्यान 18 जनवरी 1998 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रो. बी. डी. गुप्त जी द्वारा दिया जायेगा।

अन्त में भारी हृदय से पिछले दिनों हुई विज्ञान परिवार से जुड़ी कुछ दिवंगत आत्माओं के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपनी बात समाप्त करता हूँ। प्रो. पी. सी. गुप्त की धर्मपत्नी और डॉ. शिवगोपाल मिश्र जी के साले प्रो. बी. एन. तिवारी अब हमारे बीच नहीं रहे।

आपका

1.1.98. **प्रेमचन्द श्रीवास्तव**

जीव-जंतुओं से सीख रहे हैं वैज्ञानिक रहस्य जीवन के

डॉ० जगदीप सक्सेना

बी--2, वेल्कम अपार्टमेंट, सैक्टर 9, रोहिणी, दिल्ली—85

प्रकृति ने जिस खूबी से जीव जंतुओं की रचना की है और उनमें जिन विशेषताओं का समावेश किया हैं उनमें से अनेक ऐसी हैं जिनका अध्ययन करके वैज्ञानिक अपने तकनीकी ज्ञान को आगे बढ़ा रहे हैं। प्रस्तुत है रोचक जानकारी।

वैज्ञानिकों ने अनेक जीव जंतुओं को अपना गुरु मान लिया है। जानते हैं क्यों ? अपनी तकनीकी खूबियों के मामले में वे वैज्ञानिकों की तकनीकी उपलब्धियों से बहुत आगे हैं।

चूहे के पैने दांत लोहे की चादरें तक कुतर सकते हैं। मकड़ी के जाले के धागे इस्पात से अधिक मज़बूत और नायलोन से ज़्यादा लचीले होते हैं। कुछ नन्हें कीड़ों की देह पर चढ़ा आवरण इतना कठोर होता है कि हमारे भारी भरकम पाँवों से दबने पर भी उनका बाल बांका नहीं होता वगैरह। आज दुनिया के तमाम देशों के वैज्ञानिक ऐसी अनोखी खूबियों वाले गुरु जीव-जन्तुओं को प्रयोगशालाओं में बड़े प्यार से पाल-पोस कर इनकी अद्‌भुत् कारीगरी के रहस्य जानने की कोशिश कर रहे हैं, ताकि वे भी ऐसे ही अनोखे पदार्थ बना सकें।

वैज्ञानिक मानते हैं कि जीव-जन्तुओं की कारीगरी के सामने हमारी पदार्थ निर्माण तकनीकें कुछ भी नहीं हैं। इसकी वजह शायद यह है कि प्रकृति के पास पदार्थ निर्माण का कोई चार अरब साल लंबा तर्जुबा है। वैज्ञानिकों का अभी तक का अनुभव बताता है कि हम करोड़ों रुपये खर्च करके जो नया पदार्थ बनाते हैं, उससे कहीं ज़्यादा खूबियों वाला पदार्थ जीव-जन्तु सदियों पहले से बना रहे होते हैं।

उदाहरण के तौर पर वह अनोखा धागा लीजिए जिससे मकड़ी अपना जाला बुनती है। वैज्ञानिकों ने कई सालों की कड़ी मेहनत और करोड़ों रुपये खर्च करके एक बेहद सख़्त पदार्थ तैयार किया केवलार। बंदूक की गोली की मार को बेअसर करने वाली बुलेटप्रूफ जैकेट इसी से बनाई जाती है। पर जांच-पड़ताल करने पर पता चला कि मकड़ी का धागा केवलार से ज़्यादा सख्त है। सिर्फ इतना ही नहीं, यह इस्पात से ज़्यादा मज़बूत और नायलोन से ज़्यादा लचीला भी है। वैज्ञानिक कहतेहैं कि फिर हम क्यों न प्रकृति के तजुर्बे का फायद उठाएं?

इसीलिए आजकल दुनिया की कई प्रयोगशालाओं में कुछ खास मकड़ियों को पाल कर उनकी कारीगरी का रहस्य जानने की कोशिश की जा रही है। इस काम के लि गोल्डन आर्ब नाम की मकड़ियाँ चुनी गई हैं। ये आकार में हमारी मुठ्ठी जितनी होती है, इसलिए इनसे कम समय में ज्यादा धागा मिलता है।

वाशिंगटन यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक क्रिस्टोफर विने इस बात पर हैरान हैं कि मकड़ी मात्र पानी में घुली प्रोटीन से ही इतना सख़्त, मज़बूत और लचीला धागा कैसे बना लेती है जबकि केवलार बनाने के लिए गंधक के अम्ल को बहुत ऊँचे दाब पर रखना पड़ता है। खोजबीन से एक आश्चर्यजनक बात यह भी पता लगी कि मकड़ी की काया के भीतर पानी में घुली प्रोटीन ठीक वैसे ही द्रव क्रिस्टल बनाती

है, जिनसे इलेक्ट्रॉनिक कैलकुलेटर में अंक उभरते हैं।

जब मकड़ी के धागे की यह खूबी सामने आई तो यह अटकल लगाई जाने लगी कि शायद भविष्य में मकड़ियाँ ही बुलेटप्रूफ जैकेट बुनेंगी। पर ऐसा मुमकिन नहीं है। कारण कि मकड़ियों की धागा बनाने की क्षमता बहुत सीमित है। अगर इस धागे से सिर्फ एक रुमाल भी बनाना हो तो कोई 500 से 1000 मकड़ियों को दिन-रात काम करना होगा। इसके अलावा मकड़ी के धागे में एक खामी भी है, इससे बना कपड़ा पानी में डालने पर लगभग आधा सिकुड़ जाएगा। वैसे भी वैज्ञानिकों का जीव-जन्तुओं को कारीगर बनाने का इरादा नहीं है। वैज्ञानिक तो बस मकड़ी के रहस्यों को जानकर उसका दोहन करने की फिराक में हैं। वे प्रकृति द्वारा विकसित अद्भुत् तकनीक की हू बहू नकल करना चाहते हैं।

मकड़ी के अलावा और भी बहुत से जीवों द्वारा बनाए जाने वाले अनोखे पदार्थ पर वैज्ञानिकों की नकलची निगाहें पड़ चुकी हैं। वैज्ञानिकों ने देखा है कि घोंघा वर्ग के कुछ प्राणियों का खोल मानव निर्मित सिरैमिक पदार्थों से कहीं ज़्यादा मज़बूत और चिकना होता है। सबसे खास बात यह है कि वे अपना खोल समुद्री पानी से सिर्फ कैलशियम कार्बोनेट को सोखकर बड़ी सहजता से बना लेते हैं। वैज्ञानिक सोच रहे हैं कि अगर घोंघे की तकनीक अपनाई जाए और अलुमीनियम ऑक्साइड या सिलिकन कार्बाइड जैसी सामग्री इस्तेमाल की जाए तो क्या कमाल का सख़्त पदार्थ बनेगा। प्रिसंटन यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक घोंघों की तकनीक के राज़ जानने में जुटे हैं।

दूसरी ओर कुछ वैज्ञानिक गैंडे के सींग के पीछे पड़ गये हैं। खोजबीन करने पर पता लगा है कि यह सींग ऐसे पदार्थ से बना है, जिसे धातु विज्ञानी 'कंपोजिट मैटीरियल' यानि संमिश्र पदार्थ कहते हैं। विमानों के पंख ऐसे ही पदार्थ से बनाए जाते हैं। गैंडे के सींग की सबसे बड़ी खूबी यह है कि लड़ाई-झगड़े में टूट जाने पर यह फिर से उग आता है। अगर गैंडे की नकल करके हम भी ऐसा पदार्थ बना लें तो सोचिए कितना बड़ा अजूबा हो जाएगा। किसी दुर्घटना में विमान का पंख टूट जाने पर उसमें दूसरा पंख नहीं लगवाना होगा। कुछ समय में पंख अपने आप उग आएगा। ऐसे अजूबे पदार्थ की कारोबारी महत्ता के बारे में आप खुद अंदाज़ा लगा सकते हैं।

इन पदार्थों के सैनिक महत्व को देखते हुए अमेरिका के सैनिक अनुसंधान केन्द्र में भी ऐसी खोजें होने लगी हैं। यहाँ के वैज्ञानिकों ने कोकरोच यानि तिलचट्टे की नाजुक देह पर चढ़े आवरण को बेहद कठोर और लचीला बताया है। यह आवरण दरअसल रेसिलिन नामक प्रोटीन है। कठोरता और लचीलेपन के अलावा इसकी एक बड़ी खूबी यह है कि कार्बनिक विलायकों के संपर्क में आने पर भी यह फूलती नहीं इसलिए इससे गैसोलीन और अन्य ईधनों का काम काज करने वाले सैनिकों के दस्ताने बनाए जा सकते हैं।

इसी तरह यह भी पता लगा है कि चूहे के दाँतों का पैनापन और मज़बूती इसे बनाने वाले पदार्थ में नहीं बल्कि दाँत की ऊपरी पर्त की संरचना में छिपा है। वैज्ञानिक इस अनोखी संरचना की नकल करने में जुट गए हैं।

जीव-जन्तुओं की नकल से बनने वाले अनोखे पदार्थों की व्यावसायिक संभावना को देखते हुए कैलिफोर्निया में प्रोटीन पॉलीमार टैक्नोलॉजी नाम से एक कंपनी बनाई गई है। यहाँ के वैज्ञानिकों ने रेशम बनाने वाले कीड़े के प्रोटीन और खून में मौजूद प्रोटीन को मिला कर एक ऐसा नायाब पदार्थ बनाया है जिस पर कोशिकाएँ उग सकती हैं। इस खूबी के कारण अगर दिल के कृत्रिम वाल्व, शरीर के कृत्रिम जोड़ों आदि पर इस पदार्थ का लेप कर दिया जाए तो ये शरीर में बड़ी आसानी से खप जाएँगे। इस पदार्थ से कृत्रिम रक्त वहिकाएँ, लिगामेंट आदि भी बनाए जाने की बात सोची जा रही है।

जीव-जन्तुओं की नकल ने पदार्थ विज्ञान की एक नई शाखा को जन्म दिया है। इसे बायोमिमिक्री यानि जैव नकल का नाम दिया गया है। पर इस नकल को भी कोई आसान काम न समझे। प्रकृति के रहस्य जानने के लिए वैज्ञानिकों को एड़ी चोटी का ज़ोर लगाना पड़ रहा है। वैसे भी पुरानी कहावत है नकल में भी अकल की जरूरत पड़ती है।

(अभियान)

तारों की राख से बनती नीहारिकाएँ

प्रो० सूर्य नारायण ठाकुर

भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005

खगोलिकी एवं खगोल भौतिकी द्वारा लगभग विगत एक हज़ार वर्षों के दौरान उपलब्ध आँकड़ों से तारों के उद्भव एवं विकास के विषय में हम कुछ निश्चित मत बना सके हैं जो निम्नलिखित आँकड़ों पर आधारित है:-

(1) पृथ्वी से तारों की दूरी

(2) तारे की चमक

(3) तारे का तापमान

(4) तारे का रंग

(5) तारे में पदार्थ की मात्रा, और

(6) तारे की गति।

आँकड़ों की विवेचना करने पर यह पता लगता है कि जो सबसे अधिक तप्त तारे हैं वो सबसे अधिक चमकीले हैं, सबसे अधिक भारी हैं, किंतु सबसे कम उम्र वाले हैं। इनका रंग प्रायः नीला होता है तथा इनकी सतह का तापमान 25000^{0}C से भी अधिक होता है। जो ठंडे तारे हैं उनका रंग प्रायः लाल होता है उनका भार सूर्य से कम होता है तथा उनकी सतह का तापमान लगभग 3500 ^{0}C होता है। कुछ ऐसे तारे भी आकाश में पाए जाते हैं जो लाल रंग के होते हुए भी बड़ा आकार होने के कारण काफ़ी चमकीले दीखते हैं। ऐसे तारों को 'रक्त- दानव' (ऐड जैंट) कहते हैं। ये बुजुर्ग तारे हैं और इनमें विस्फोट होने की संभावना बनी रहती है। इसके विपरीत कुछ ऐसे तारे पाए जाते हैं जिनकी सतह का तापमान तथा भार भी अत्यधिक होता है परन्तु वे बहुत कम चमकीले होते हैं। इन्हें 'श्वेत-वामन" तारा का जाता है।

उपर्युक्त प्रेक्षणों के आधार पर तारों के बारे में यह पता लगता है कि जो तारे सूर्य से 100 गुना या उससे अधिक भारी हैं उनका जीवनकाल 20 लाख से करोड़ वर्षों तक का होता है इसके विपरीत हमारे सूर्य जैसे तारे का जीवनकाल 5 अरब से 10 अरब वर्षों का होता है। आयु अधिक होने पर प्रत्येक तारा लाल दानव के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा उसके विस्फोट से श्वेत वामन तारा नीहारिका का प्रादुर्भाव होता है। श्वेत वामन अवस्था तारे की अंतिम अवस्था होती है। इन बूढ़े तारों का जीवनकाल 10 अरब वर्षों से अधिक ही होता है।

तारों की उत्पत्ति के विषय में आधुनिक धारणा यह है कि भारी मात्रा में गैस एवं धूल के एकत्र होने से गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में वह सिमट कर छोटा होने लगता है और इस प्रक्रिया में उसका तापमान बढ़ने लगता है। जब यह गैस-धूल का गोला सिकुड़ कर हमारे सूर्य के आकार का हो जाता है तो उसके केन्द्र का तापमान 2 करोड़ से 5 करोड़ डिग्री से० हो जाता है। गैस के इस गोले में 96% तक हाइड्रोजन एवं हीलियम गैसें होती हैं तथा इसके केन्द्रीय भाग का दाब पृथ्वी के वायुमंडलीय दाब का लगभग 1अरब गुना अधिक होता है। ताप एवं दाब की ऐसी परिस्थितियों में हाइड्रोजन परमाणुओं के नाभिकीय संलयन की अनुकूलता बढ़ जाती है। अतः केन्द्रीय भाग में चार-चार हाइड्रोजन परमाणु मिल कर एक-एक हीलियम परमाणु बनाने लगते हैं, यदि तारे में पदार्थ की मात्रा सूर्य की मात्रा से 100 गुनी अधिक हो तो उपर्युक्त नाभिक अभिक्रिया उसके धूल गैस के बदलों की

---

* हिन्दी दिवस के अवसर पर विज्ञान परिषद्, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शाखा के तत्वाधान में आयोजित व्याख्यान का सारांश

उत्पत्ति के लगभग दस हज़ार वर्ष बाद संभव होता है। यदि तारे में पदार्थ की मात्रा सूर्य के बराबर होतो यह समय लगभग दस लाख वर्ष होता है।

उपर्युक्त नाभिकीय अभिक्रिया से तारे के केन्द्र के चारों ओर हीलियम का गोला बन जाता है जिसका आकार समय के साथ बढ़ता जाता है तथा तारे का बाहरी आवरण मुख्यतः हाइड्रोजन का ही रहता है। तारे की चमक का स्रोत उपर्युक्त क्रिया में उत्पन्न होने वाली ऊर्जा ही होती है। इसका सिद्धान्त वही है, जिसके आधार पर हाइड्रोजन बम में विस्फोट होता है।

तारे के भीतर से निकली ऊर्जा विकिरण द्वारा आकाश में प्रवाहित होती है। तारे की स्थिरता के लिये यह आवश्यक है कि तारे के केन्द्र की ओर गुरुत्वाकर्षण और बाहर की ओर ऊर्जा-विकिरण का दाब एक दूसरे को संतुलित किए रहें। हमारे सूर्य में यही स्थिति होती है, अतः इसके आकार में कोई परिवर्तन नहीं होता है। किन्हीं तारों में गुरुत्वाकर्षण और विकिरण दाब घटते-बढ़ते रहते हैं, ऐसी दशा में तारे की चमक में आवर्ती परिवर्तन होता है। ऐसे तारों को 'सेफायड' के नाम से जाना जाता है। जब विकिरण - दाब अधिक हो जाता है तो इन तारों का आकार बढ़ जाता है तथा चमक भी बढ़ जाती है। आकार बढ़ने से इनका तापमान घट जाता है और विकिरण दाब भी कम हो जाता है, इसके फलस्वरूप गुरुत्वाकर्ष के प्रभाव से तारा सिकुड़ने लगता है। उसका तापमान पुनः बढने लगता है। इस प्रक्रिया में पुनः ऊर्जा-विकिरण का दाब गुरुत्वाकर्षण से अधिक हो जाता है। अतःतारा आकार में पुनः फैलने लगता है। चमक में इस प्रकार के आवर्ती परिवर्तन का आवर्त-काल एक दिन से लेकर 50 दिन तक हो सकता है। प्रेक्षणों द्वारा यह पाया गया है। कि सेफायड तारे की चमक के परिवर्तन का आवर्त-काल उसकी वास्तविक चमक का समानुपाती होता है। इससे उनकी तथा अन्य तारों की पृथ्वी से दूरी ज्ञात की जाती है।

जब तारे के केन्द्र का तापमान दस करोड़ डिग्री से० हो जाता है तो तीन हीलियम परमाणु संलयित होकर एक कार्बन परमाणु में बदलने लगते हैं। ऐसी परिस्थितियों में यह भी संभव हो सकता है कि चार हीलियम परमाणु संलयित (फ्यूज) होकर एक ऑक्सीजन परमाणु में बदल जायँ। इस प्रकार के तारों में प्याज ती तरह परतें हो जाती हैं। इनमें सबसे भीतरी पर्त में ऑक्सीजन, उससे बाहरी पर्त कार्बन और उससे बाहर वाली पर्त में हीलियम तथा सबसे बाहरी पर्त में हाइड्रोजन होती है। तारे द्वारा नाभिकीय संलयन की अभिक्रिया से वाह्य आकाश में ऊर्जा बराबर उत्सर्जित होती रहती है।

नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया द्वारा कम भार वाले परमाणुओं का फ्यूज होकर अधिक भार वाले परमाणु बनाने का क्रम तब तक चलता रहता है जब तक उसके केन्द्र का तापमान 2 अरब से 5 अरब ^0C तक नहीं पहुँच जाता। ऐसी परिस्थितियों में नाभिकीय संश्लेषिण द्वारा लोहे के परमाणु बन जाते हैं। तारे के केन्द्र में लोहे के परमाणु नाभिकीय संलयन की क्रिया को औंर आगे नहीं बढ़ा सकते हैं। यदि तारे के केन्द्र में तापमान और अधिक बढ़ता है तो लोहे के परमाणु हीलियम परमाणु में बदल जाते हैं। परन्तु इस क्रिया के लिये अत्यल्प समय में अत्यधिक ऊर्जा - निवेश की आवश्यकता होती है। ऐसा तभी संभव है जब गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में तारा सिकुड़ कर अचानक छोटा हो जाय। यह घटना इतने कम समय में होती है कि तारे में भयानक विस्फोट हो जाता है और उसके बाहरी आवरण का पदार्थ विखर जाता है। इस स्थिति को ''सुपर-नोवा'' कहते हैं। सन् 1054 में चीन के लोगों ने इस प्रकार के आकाशीय विस्फोट को देखा था, तथा उसकी आकाशीय स्थिति का विस्तृत विवरण भी लिखा था।

वर्तमान समय में आकाश के उस स्थान में एक बड़ी नीहारिका दिखाई पड़ती है जिसके गैसीय पदार्थ बादल के रूप में फैलते हुए पाए गए हैं। इस नीहारिका का नाम ''क्रैब नेबुला'' (कर्क-नीहारिका) है, तथा उसके केन्द्र के पास एक अत्यंत मद्धिम तारा स्थित है। इस बादल के फैलाव की गति से यह अनुमान लगाया गया है कि यह नीहारिका किसी तारे के विस्फोट द्वारा लगभग 900 वर्ष पूर्व बनी होगी। कर्क नीहारिका के केन्द्र से रेडियो- संकेत मापे गए हैं, जिनकी आवृत्ति 30 हर्ज़ है। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि केवल न्यूट्रॉनों से बना कोई आकाशीय पिण्ड,

जो कुछ हज़ार किलोमीटर व्यास का है, कर्क नीहारिका के केन्द्र में स्थित है।

भारतीय खगोलशास्त्री सुब्रह्मण्यम् चन्द्रशेखर के अनुसार यदि विस्फोट से बने तारे में पदार्थ की मात्रा सूर्य से 1.4 गुनी या उससे कम हो तो वह श्वेत -वामन तारे का रूप ले लेता है। इस प्रकार के तारे में परमाणुओं के इलेक्ट्रॉन दबाव के चलते सिकुड़ कर नाभिक के समीप हो जाते हैं तथा परमामुओं का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इस प्रकार के बने पदार्थ का घनत्व प्लैटिनम के घनत्व का तीन हज़ार गुना होता है। इन तारों में ऊर्जा का उत्सर्जन गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में, सिकुड़ने से होता है और ऐसे तारों की आयु 5 से 10 अरब वर्षों के बीच होती है। ये अत्यंत बूढ़े तारे हैं।

यदि विस्फोट के बाद तारे की मात्रा सूर्य से दो या तीन गुनी हो तो गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में, उसके इलेक्ट्रॉन नाभिकों में स्थित प्रोटॉनों में संलयित होकर न्यूट्रॉन बना लेते हैं। इस प्रकार का तारा 'न्यूट्रॉन तारा' कहा जाता है। इसका गुरुत्वाकर्षण अत्धिक होता है। विस्फोट के बाद तारे में पदार्थ की मात्रा सूर्य की मात्रा से तीन गुनी से अधिक हो तो एक ऐसा आकाशीय पिण्ड बनता है जिसके गुरुत्वार्षण क्षेत्र से प्रकाश भी बाहर नहीं निकल पाता है। इसे 'कृष्ण-विवर' (Black Hole) कहते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि तारा के केन्द्र में 'नाभिकीय भट्टियाँ' हैं जिनमें हाइड्रोजन से भारी तत्वों का निर्माण होता है तथा तारे के बूढ़े होने पर विस्फोट द्वारा यह पदार्थ नीहारिका के रूप में आकाश में बिखर जाता है। कालान्तर में इस प्रकार की नीहारिकाओं के संघनन से नए तारों का सृजन होता है। पृथ्वी पर पाए जाने वाले तत्वों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हमारा सौर-मण्डल ऐसे पदार्थ से बना है जो एक या अधिक बार तारों के गर्भ से गुजर चुका है। ■■■

धातुओं का सफरः भूगर्भ से मानव-सेवा तक

आलोक अवस्थी

पदार्थ संसाधन प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र, मुम्बई-400085

हम सभी धातुओं से भली-भाँति परिचित हैं। सुई से लेकर हवाई-जहाज़ तक दिन-प्रतिदिन के उपयोग की अनेक वस्तुएँ धातुओं से ही बनी होती हैं।

धातुएँ प्रकृति में अपने स्वाभाविक ठोस व चमकदार रूप में नही मिलती हैं। अधिकांश धातुएँ जिस अवस्था में प्रकृति में मिलती हैं, उसमें व सामान्य मिट्टी या पत्थर में सिर्फ देखकर ही अन्तर कर पाना आमतौर पर कठिन होता है। करोड़ों वर्ष पहले पृथ्वी इतनी गर्म हुआ करती थी कि तब यहाँ ठोस का अस्तित्व ही नहीं था। अत्यधिक ताप के कारण धातुओं सहित सभी पदार्थ द्रव या गैस अवस्था में ही होते थे। हम सभी जानते हैं कि अनेक पदार्थ गर्म करने पर जलने लगते हैं, यानी हवा की ऑक्सीजन उनसे संयुक्त होकर राख आदि बना लेती है। उपर्युक्त समय में भी अत्यधिक ताप के कारण धातुएँ ऑक्सीजन, गन्धक आदि से संयुक्त हो गयीं। आज पृथ्वी के ठण्डे हो जाने का बाद भी धातुएँ उसी संयुक्तावस्था में प्राप्त होती हैं और मिट्टी या पत्थर जैसी लगती हैं। ऑक्सीजन, गन्धक आदि तत्वों से संयुक्त इन धातुओं को अयस्क (ore) कहते हैं। ताप कम होने पर इनके साथ कई अनुपयोगी पदार्थ भी जम गये।

धातुओं को शुद्ध अवस्था में प्राप्त करने के लिये सर्वप्रथम इन अनुपयोगी पदार्थों को अलग किया जाता है। इसके लिये अयस्क-युक्त पत्थरों को तोड़कर छोटा किया जाता है। यदि अयस्क का आकार बहुत छोटा है तो इन पत्थरों का चूर्ण (पाउडर) बनाना पड़ सकता है। पत्थर तोड़ने व उनका चूर्ण बनाने के लिये प्रायः कई बड़ी-बड़ी मशीनों का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतया अनुपयोगी पदार्थ अयस्क से हल्के होते हैं। कभी-कभी अयस्क चुम्बकीय होता है। अयस्क व अनुपयोगी पदार्थ के अलग गुणों के कारण उन्हें अलग-अलग कर लिया जाता है। इन्हें पृथक् करने की एक विधि में उपर्युक्त चूर्ण को पानी में डालकर उसमें झाग उत्पन्न किया जाता है। अयस्क झाग के साथ ऊपर आ जाता है, पर अनुपयोगी पदार्थ नीचे रह जाते हैं।

उन्हें एक निश्चित ताप तक गर्म करने पर ऑक्सीजन की काफी मात्रा व कार्बन प्रायः गैसके रूप में उड़ जाते हैं। इसके विपरीत गन्धक-युक्त कुछ अयस्कों को इसलिये गर्म करना पड़ता है जिससे हवा की ऑक्सीजन उनसे संयुक्त होकर पानी में घुलने वाला कोई यौगिक बना सके, या ऑक्सीजन गन्धक का स्थान ले सके। आगे की प्रक्रिया इससे आसान हो जाती है।

उपर्युक्त उपचार से प्राप्त पदार्थ की अभिक्रिया कुछ ऐसे पदार्थों से करायी जाती है, जो इसमें संयुक्त तत्वों के साथ धातु की अपेक्षा अधिक मज़बूती से जुड़ जाते हैं और धातु को इनसे मुक्त कर देते हैं। इस प्रक्रिया को निष्कर्षण कहते हैं । एक उदाहरण से यह बात अच्छी तरह से समझी जा सकती है। लोहे के अयस्क में ऑक्सीजन लोहे से संयुक्त रहती है। कार्बन लोहे की अपेक्षा ऑक्सीजन से अधिक मज़बूती से जुड़ता है। अतः इस अयस्क से लोहा प्राप्त करने के लिये अयस्क को कोक (एक विशेष प्रकार का कोयला, जो लगभग पूरी तरह से कार्बन ही होता है) के साथ गर्म किया जाता है। कार्बन अयस्क ऑक्सीजन के साथ संयुक्त होकर एक गैस बनाता है जो उड़ जाती है और शुद्ध लोहा एकत्र हो जाता है। यह सारी प्रक्रिया सामान्यतय वात्या -भट्ठी (ब्लास्ट-फरनेस) नामक संयन्त्र में की जाती है। वात्या -भट्ठी लगभग 40-50 मीटर ऊँची होती है। कोक भट्ठी में मौजूद हवा में अंशतः जलकर बहुत उष्मा उत्पन्न करता है। निषकर्षित लोहा इस उष्मा से पिघल जाता है, जिससे उसे बहाकर वात्या-भट्ठी के बाहर एकत्र कर लिया जाता है।

निष्कर्षण-प्रक्रिया से प्राप्त धातु बहुत शुद्ध नहीं होती है। उपयोग में लाने के पूर्व इसका शोधन आवश्यक होता है। उदाहरण के लिये वात्या-भट्ठी से प्राप्त लोहे में अप्रयुक्त कार्बन की काफी मात्रा होती है। इसे हटाने के लिए पिघले लोहे में ऑक्सीजन प्रवाहित की जाती है। पहले वात्या-भट्ठी से प्राप्त लोहे को जमा दिया जाता था और शोधन के समय इसे वापस पिघलाया जाता था। पर ईधन व ऊर्जा के सीमित व महँगे हो जाने कारण वात्या-भट्ठी से प्राप्त लोहे को अब जमने नहीं दिया जाता है। चूँकि ऑक्सीजन लोहे की अपेक्षा कर्बन के साथ अधिक मज़बूती से जुड़ती है, अतः लोहे में बचे हुए कार्बन के साथ उसकी अभिक्रिया पहले होती है। इस अभिक्रिया के परिणामस्वरूप कार्बन गैस-रूप में उड़ जाता है। कार्बन के हट जाने के तुरन्त बाद ऑक्सीजन का प्रवाह रोक दिया जाता है जिससे शुद्ध हुआ लोहा जल न सके। कोयले की भाँति इस कार्बन के जलने पर भी बहुत उष्मा निकलती है। इस उष्मा का उपयोग लोहे के भंगार (स्क्रैप) आदि को पिघलाने में किया जाता है।

इसके अतिरिक्त भी धातुओं के शोधन की अनेक विधियाँ प्रयोग में लायी जा रही हैं। एक विधि में धातु में घुली हुई गैसों को निकालने के लिए पिघली धातु को निर्वात (ऐसा वातावरण जिसमें कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि हवा भी नहीं होता है) में रखा जाता है। एक अन्य विधि में विद्युत् के प्रयोग से धातुओं का शोधन किया जाता है।

अनेक इंजीनियरी कार्यों के लिये बहुत-ही मज़बूत पदार्थों की आवश्यकता होती है। उच्च तापमान पर धातुओं की सतह जलकर खराब हो सकती है। आपने देखा होगा कि गर्म करने पर मोम मुलायम पड़ा जाता है। इसी प्रकार अनेक औद्योगिक कार्यों के लिये इतने ऊँचे ताप की आवश्यकता होती है कि धातुएँ तक मुलायम पड़ जायँ। हम सभी ने धातुओं में जंग लगते हुए देखा है,कुछ वातावरणों में जंग लगने की प्रक्रिया अधिक होती है। इन कारणों से शुद्ध धातुओं का उपयोग बहुत कम किया जाता है। मज़बूती लाने

के लिए उच्च ताप सहन करने की क्षमता बढ़ाने के लिये, जंग लगने से बचाने के लिए व अन्य अनेक उपयोगों के योग्य बनाने के लिए धातुओं में सामान्यतया कुछ अन्य तत्व मिलाने पड़ते हैं। इन तत्वों से युक्त धातु को मिश्रधातु कहते हैं। अनुसन्धानों द्वारा वैज्ञानिक यह पता लगाते हैं कि किसी विशेष उपयोग के लिये आवश्यक मिश्रधातु में विभिन्न तत्वों की मात्रा कितनी होनी चाहिए। सामान्य तौर पर ये अतिरिक्त तत्व पिघली हुई। धातु में ही मिलाये जाते हैं जिससे ये पूरी तरह से घुलमिल जायँ। कभी-कभी धातुओं को एक निश्चित ताप तक (बिना पिघलाये) गर्म करके विशेष प्रकार से ठण्डा करने पर उनमें मज़बूती आ जाती है।

धातुओं को इच्छित रूप देने के लिये उन्हें पिघलाकर साँचों में ढाला जाता है। ये साँचें विशेष प्रकार की मिट्टी से बने होते हैं। मिश्रधातुओं को पिघलाने में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है, अन्यथा कुछ तत्व हवा की ऑक्सीजन से अभिक्रिया करके मिश्रधातु से अलग हो सकते हैं। इससे मिश्रधातु के जमने के बाद उनकी मात्रा बहुत कम हो सकती है और इच्छित उपयोग सम्भव नहीं हो पाता है।

धातुओं को इच्छित रूप बिना पिघलाये भी दिया जा सकता है। गर्म करने पर धातुएँ इतनी मुलायम हो जाती हैं कि उन पर दबाव डालकर उन्हें अनेक इच्छित आकार दिये जा सकते हैं। दबाव डालने की एक महत्वपूर्ण विधि रोलिंग है। रोलिगं में दो बड़े-बड़े बेलनों के बीच से मुलायम धातु को गुजारकर आकार दिया जाता है। रेल की पटरियाँ इसी तकनीक से बनायी जाती हैं, जिसके लिये पटरी के आकार के कटाव-युक्त बेलनों का प्रयोग किया जाता है।

धातु की दो वस्तुओं को जोड़ने की एक तकनीक है- वेल्डिंग। इसमें इनके किनारों को बिजली या गैस की लपट में पिघलाया जाता है जिससे दोनों की पिघली हुई धातुएँ एक दूसरे में मिल जाएँ। कभी-कभी दोनों वस्तुओं के बीच की दरार भरने के लिए अलग से भी कोई अन्य धातु मिलाने की आवश्यकता पड़ती है। पिघली धातु के जलने से बचाने के लिये उसे 'स्लैग' से ढका जाता है, जो कि वेल्डिंग में प्रयुक्त 'फ्लक्स' से बन जाताहै। वेल्डिंग में कुछ स्थानों में ताप इतना अधिक होता है कि वहाँ धातु द्रव रूप में होती है। पर अन्य भागों में ताप इतना अधिक नहीं होता। इस कारण से वेल्डिंग की हुई बड़ी वस्तु में पदार्थ के गुणों में स्थान-स्थान पर काफी अन्तर होता है। इस अन्तर को मिटाने के लिये वेल्डिंग के पहले और बाद वस्तु को विशेष प्रकार से गर्म करना पड़ सकता है।

पदार्थों को संक्षारण (जंग लगने) से बचाने के लिये अनेक विधियाँ उपलब्ध हैं। जंग लगने से पदार्थ की मज़बूती कम हो जाती है। भूमि के अन्दर जाती हुई पैट्रोलियम आदि की पाइपलाइन को बचाने में इसका विशेष महत्व है। समुद्री पानी में धातुओं में बहुत शीघ्र जंग लगती है। समुद्री जहाज़ों को संक्षारण से बचाने के लिये बिजली का प्रयोग किया जाता है।

मानव-सभ्यता के साथ-साथ धांतुओं व अन्य इन्जीनियरी पदार्थों ने भी एक लम्बा सफर तय किया है। इलेक्ट्रॉनिकी उद्योग में काम आने वाले सूक्ष्मतर सिलिकॉन चिप्स, अन्तरिक्ष उड़ानों व रॉकेटों में प्रयुक्त उच्चतापसह मिश्रधातुओं सहित कुछ ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं, जहाँ विशिष्ट मिश्रधातुएँ ही उपयोग में लायी जा सकती हैं। तकनीकी विकास के लिये विशिष्ट मिश्रपदार्थ विकसित करने की चुनौती वर्तमान युग के इतिहास की रोमांचक कहानी है।

■■■

उच्चताप पर काम आने वाले पदार्थ

डॉ० राजू वी० रामानुजन
पदार्थ विज्ञान प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, मुम्बई—400085

हम सभी उच्च-तापमान से परिचित हैं। सूर्य गर्म वस्तुओं का अच्छा उदाहरण है। खाना पकाने की प्रक्रिया में भी कच्चे पदार्थ को खाने योग्य बनाने में उच्चताप का प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार से खाना बनाने के लिये प्लास्टिक के थैलों या कागज़ का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, उसी तरह उच्चताप पर अभियांत्रिक (इंजीनियरी) कार्यों के लिए भी उपयुक्त पदार्थ का चयन जरूरी हो जाता है। उच्चतापसह पदार्थों की आवश्यकता भट्ठियों के हीटरों, जेटयानों के इंजनों, रॉकेटों, रसायन-उद्योगों में रासायनिक-अभिक्रिया के लिये प्रयुक्त बर्तनों आदि में होती है। इन अभियांत्रिक उपयोगों के लिए प्रयुक्त पदार्थों में 2000 सेण्टीग्रेड जैसे उच्चताप पर लम्बे समय तक अधिक भार वहन करने की क्षमता भी होनी चाहिए। इन कड़ी परिस्थितियों में काम करने के लिए किस प्रकार के पदार्थ चुने जा सकते हैं ? सामान्यतया धातुओं, सिरामिक (उच्च गलनांक वाले अकार्बनिक यौगिक) या धातु -सिरामिक मिश्रण में से ही उपयुक्त पदार्थ का चुनाव करना होता है। सस्ते होने के साथ-साथ उम्मीदवार पदार्थों का गलनांक (वह तापमान, जिस पर ठोस पदार्थ द्रव में बदल जाता है) अधिक होना चाहिए, उपयोग के ताप पर उनमें पर्याप्त मज़बूती होनी चाहिए। इस ताप पर उनके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए, उनमें जंग नहीं लगनी चाहिए तथा प्रहारों व चोटों से उनमें क्षति नहीं होनी चाहिए। चोटों व प्रहारों के प्रति यह सहिष्णुता (सहन करने की क्षमता) उचित पदार्थ के चयन के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है।

प्रहार-सहिष्णुता का क्या मतलब है? आपने देखा होगा कि फर्श पर गिर जाने पर चीनी मिट्टी का प्याला टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, जबकि स्टील का गिलास नहीं टूटता है। यह साबित करता है कि अधिकांश सिरामिक पदार्थ धातुओं जितना प्रहार सहन नहीं कर सकते हैं। प्रहार को झेल लेने की जगह वे बिस्कुट की तरह टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इसी कारण उच्चताप पर भार वहन करने के लिये अधिकतर सिरामिक पादर्थों पर भरोसा नहीं किया जा सकता, यद्यपि उनके अन्य गुणधर्म अच्छे होते हैं। ऐसा क्यों होता है?

कोई भी पदार्थ पूरी तरह से दोषरहित नहीं होता। सामान्यतौर पर पदार्थों में बहुत ही छोटी दरारें होती हैं (जिन्हें सामान्य सूक्ष्मदर्शियों तक से नहीं देखा जा सकता है)। जब पदार्थ पर किसी प्रकार का खिंचाव पड़ता है तो ये दरारें आकार में बढ़ने लगती हैं। यदि दरार बिना किसी रुकावट के बढ़ती गयी तो अन्ततः वह पदार्थ को दो टुकड़ों में तोड़ देगी। इस प्रकार इन सूक्ष्म दरारों की उपस्थिति ही पदार्थों के टूटने का प्रमुख कारण है।

हम ऐसे पदार्थ कैसे बना सकते हैं जिनमें दरारों का आकार बढ़े ही नहीं? स्वाभाविक तौर से पदार्थों के निर्माण व उपयोग के समय हम निश्चित अन्तराल पर परीक्षण करके देख सकते हैं कि दरारों की संख्या बहुत अधिक तो नहीं है। दूसरे, हम ऐसे उपाय कर सकते हैं जिससे दरार के सिरे नुकीले

(sharp) न रहकर कुण्ठित (ब्लण्ट, Blunt) हो जाएँ। ख़तरनाक दारार वास्तव में सुई की तरह होती है जिससे त्वचा आसानी से बिंध जाती है। यदि सुई की नोंक ब्लण्ट हो तो उससे त्वचा नहीं बिंध सकती है। इसी प्रकार नुकीली दरार तेज़ी से बढ़ती है और पदार्थों के लिये घातक होती है। ऐसी दरारों के मार्ग में हम कुछ बाधाएँ जैसे किसी अन्य पदार्थ के रेशे या कण डाल सकते हैं। कोई अन्य पदार्थ डाले बिना भी दरारों के आसपास के हिस्से को विरूपित (deform) करके उन्हें ब्लण्ट किया जा सकता है। ऐसा अनेक धातुओं में सम्भव है, पर अधिकांश सिरामिक पदार्थों में नहीं। सिरामिक पदार्थों में भी यह सम्भव करने के लिये वैज्ञानिक आजकल अनेक प्रयास कर रहे हैं।

उपर्युक्त धारणाओं के आधार पर वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार के स्टील, निकल व टाइटेनियम-युक्त मिश्रधातुओं का सफलतापूर्वक विकास किया है जो विभिन्न तरीकों से हमारी सेवा कर रही हैं। आने वाले समय में और भी अधिक ऊँचे तापमान पर काम में लाये जा सकने वाले पदार्थों की आवश्यकता होगी। इसमें नये प्रकार के पदार्थ (उदाहरण के लिये 'कम्पोजिट' जो कि धातुओं व सिरामिकों के मिश्रण होते हैं) महत्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे।

■■■

मृदारहित विधि द्वारा सब्ज़ी-उत्पादन

त्रिभुवन पन्त, आर० पी० जोशी एवं डॉ० नरेन्द्र कुमार

भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय अनुसंधान एवं विकास संगठन
रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला, पिथौरागढ़ -262501

यों तो मृदारहित खेती की सम्भावनाओं की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान सन् 1679 में ही आकर्षित हो गया था, परन्तु केवल इतना ही पता लगाया जा सका कि बिना मिट्टी के भी पौधे उग सकते हैं, यदि उन्हें पोषक तत्व उपलब्ध हो जायें। इस ओर पुनः वैज्ञानिकों का ध्यान 1850 से विस्तृत जानकारी प्राप्त करने हेतु गया, किन्तु वह भी उन विशेष कारणों से अनभिग्य रहे। सन् 1900 से 1930 के दौरान पौधों पर अनुसंधान कर रहे वैज्ञानिकों को यह पता लगा कि पौधों में बढ़वार तभी हो सकती है जबकि पौधों की आवश्यक तत्व की उपलब्धता हो सके। पौधों तो जड़ों द्वारा इन तत्वों को अकार्बनिक आयन के रूप में लिया जाता है। मिटटी से पौधों को इन अकार्बनिक आयन की उपलब्धता मिट्टी में उपलब्ध खनिज पदार्थों से होती है।

अतः ऐसी विधि द्वारा पौधों का उत्पादन करना, जिसमें पौधों की जड़ें पोषक तत्व मिले हुए बहते पानी में रहें व परिसंचरण द्वारा पानी का पुनः इस्तेमाल किया जा सके, मृदा रहित खेती अथवा हाइड्रोपोनिक्स कहलाती है।

पौधों को उगाने के लिये आवश्यक तत्व

पौधों को उगाने के लिये जिन पोषक तत्वों की आवश्यकता होती हैं, उनमें से किसी भी तत्व की कमी से पौधों की बढ़वार रुक जाती है। ये तत्व हैं-

कार्बन, नाइट्रोजन (ना०), हाइड्रोजन, फॉस्फोरस (फा०), आयरन, ऑक्सीजन, पोटाश (पो०), बोरोन (बो०), कैल्शियम (कै०), जिंक (जिं०), मैगनिशियम (मै०), मैगंनीज़ (मैंग०), सल्फर (स०), कॉपर (कॉ०), क्लोरीन (क्लो०), मैलिविड्निम (मैलि०)।

अतः हाइड्रोपोनिक विधि द्वारा खेती करने के लिये उन सभी लवणों का चयन किया जाता है, जिनसे ये पोषक तत्व

पौधों को वांछित मात्रा में उपलब्ध हो सकें।

चूँकि इस विधि से खेती करने की विशेष रूप से ऐसे स्थान में, जहाँ भूमि अनुपजाऊ है, वहाँ की भूमि कंकरीली पथरीली है, शहरों में जहाँ मकानों में स्थान के नाम पर मात्र बरामदा या छत उलब्ध है, अपार सम्भावनाएँ हैं। इस विधि से क्षेत्र में अधिक पैदावार ली जा सकती है।

मृदारहित खेती की इकाई हेतु सामग्री

मृदारहित खेती की इकाई के स्थापना हेतु निम्न सामग्री की आवश्यकता होती है।

- प्लास्टिक की ट्रे जो 2 फिट् लम्बी 1 फिट चौड़ी व 3 इंच ग़हरी हो, जिसमें कि पौधे उगाने हैं।
- एक 100 ली० क्षमता का प्लास्टिक का टैंक पोषक तत्व युक्त पानी इकटठा करनें हेतु ।
- एक टुल्लू पम्प जो कि पोषक तत्व युक्त मिश्रण का परिसंचरण एक प्लास्टिक पाइप (1/2)" के द्वारा कर सके ताकि मिश्रण पौधों की ट्रे के एक सिरे से अन्दर जाय व दूसरे सिरे से टैंक में पुनः जा सके।

परीक्षणों द्वारा मृदारहित खेती हेतु उपयुक्त पोषक तत्व मिश्रण

प्रायः यह देखा गया है कि विभिन्न समय में वैज्ञानिकों ने अलग-अलग पोषक तत्वों के मिश्रणों को मृदा रहित खेती करने के लिये उपयुक्त ठहराया है, लेकिन इसकी संरचना स्थान विशेष के लिये मौसम के अनुकूल बदलती रहती है। रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला द्वारा पहाड़ी क्षेत्रों में उपलब्ध पानी के अनुसार पोषक तत्व मिश्रण का पता लगाया गया है। वैसे पोषक तत्व मिश्रण का निर्धारण करने से पूर्व पानी की जाँच किसी प्रयोगशाला में कर लेनी चाहिए तथा यह भी ज्ञान होना चाहिये कि जो पानी मृदारहित खेती में इस्तेमाल किया जा रहा है उसमें कहीं सीबर लाइन का पानी आदि तो मिश्रित नहीं हो रहा है। ऐसी अवस्था में पुनः वांछित पोषक तत्व पौधों को प्राप्त होने में कठिनाई होती है। अतः इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए ही पानी उपयोग में लाना चाहिए। एक समय में बनाया गया मिश्रण 3-4 सप्ताह तक पर्याप्त होता है व टैंक में कम हुए पानी के स्तर को पूरा करते रहना चाहिए।

तालिका 1: मृदारहित खेती (हाइड्रोपोनिक्स) हेतु वांछित लवण व उनकी सांद्रता

लवण	सांद्रता	उपलब्ध तत्व
कैल्शियम नाइट्रेट	100-120 ग्रा०/100 ली ०	कै० ना०
पोटेशियम डाइहाइड्रोजन फॉस्फेट	15 ग्राम /100 ली०	पो० फा०
पोटेशियम नाइट्रेट	60 ग्रा० /100 ली०	पो० ना०
मैगनीशियम सल्फेट	50 ग्रा० /100 ली०	मै० सल्फर
मैगनीज क्लोराइड	.04 पी० पी० एम०	मैंगनीज, क्लो०
बोरिक एसिड	.55 पी० पी० एम	बो०
ज़िंक सल्फेट	0.15 पी० पी० एम०	ज़िं० स०
कॉपर सल्फेट	0.02 पी० पी० एम	कौ० स०
एमोनियम मौलिविडेट	0.02 पी० पी० एम	मौ० ना०
फेरिक सिट्रेट	10 पी० पी० एम	आइरन

विशेष सावधानी

- सूक्ष्म तत्वों का सांद्र घोल अलग बना कर रखें।
- कैल्सियम नाइट्रेट, पोटेशियम डाइहाइड्रोजन फॉस्फेट, पोटेशियम नाइट्रेट व मैगनीसियम सल्फेट को अलग-अलग घोल कर डालें।
- घोल का पी एच 5.5 से 6.5 तक बनाए रखें। इसके लिये एन/20 का नाइट्रिक अम्ल या फॉस्फोरिक अम्ल डालें।
- फेरिक साइट्रेट का घोल अलग से बना कर रखें।

रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला में किये गये परीक्षणों में निम्न उपलब्धता हुई। यदि बेमौसमी टमाटर मृदारहित विधि से व तापक्रमय नियंत्रित ग्रीन हाउस में पहाड़ों में उगाया जाय तब भी पैदावार मिल सकती है व पहाड़ों में जब बाहर का तापमान फ़सलोत्पादन के लिये उपयुक्त न हो तब इस विधि से ताज़ी सब्ज़ी प्राप्त हो सकती है।

तालिका 2. टमाटर (मारग्लोब) की मृदारहित विधि व मिट्टी में तुलनात्मक अध्ययन तापक्रम नियंत्रित ग्रीन हाउस में .

	मृदारहित विधि में	मिट्टी में
लगाने का समय	सितम्बर प्रथम सप्ताह	सितम्बर प्रथम सप्ताह
प्रथम फूल आने का समय	30 दिन बाद	26 दिन बाद
प्रथम फल लगने का समय	36 दिन बाद	32 दिन बाद
प्रथम बार टमाटर तोड़ने का समय	जनवरी प्रथम सप्ताह	दिसम्बर दूसरे सप्ताह
पूर्ण फ़सल लेने का समय	फरवरी चौथे सप्ताह में	जनवरी प्रथम सप्ताह
प्रति पौधा फलों की संख्या	55 से 60 तक	17-20 तक
प्रति पौध उपज (किग्रा)	3.6 से 4.0	1.1 से 1.3
उपज प्रति हैक्टेयर	1466 से 1500	470-475

अतः इस विधि द्वारा दो से चार गुनी तक उपज किसान प्राप्त कर सकते हैं एवं ऐसी जगह जहाँ मिट्टी में खेती करना सम्भव न हो इस विधि द्वारा उस जगह का इस्तेमाल कर फ़सल-उत्पादन किया जा सकता है। रासायनिक परीक्षणों द्वारा पता चला कि फलों की गुणवत्ता विधिवत ही थी एवं मिटटी में उगाये फ़सल से उच्च कोटि की थी। परीक्षणों द्वारा यह भी स्थिति स्पष्ट हुई है कि मृदारहित विधि द्वारा उगाये गये टमाटरों को ज़्यादा समय तक रखा जा सकता है। पूसा रूबी प्रजाति टमाटर जब मृदारहित विधि द्वारा उगाया गया तो पेड़ में पीले से लाल होने में 4 दिन लेता है व 24 से 30 दिन तक पेड़ पर ही बिना खराब हुए लगा रहता है। इन दिनों 28 से 30 डि० से० तक तापक्रम उपलब्ध था अतः जब पके व ताज़े फलों की ज़रूरत हो,पेड़ पर से ही तोड़े जा सकते हैं।

एक तुलनात्मक अध्ययन जिसमें टमाटर (अविनाश) मिटटी में व मृदा रहित विधि द्वारा उगाये गये तोड़कर नैटलोन हाउस व कमरे में रखे गये तो मिटटी में उगाये टमाटर 41 व 39 दिन में खराब हुए जबकि मृदारहित विधि द्वारा उगाये गये टमाटर 51 व 53 दिन तक क्रमशः ठीक रहे।

मृदारहित विधि द्वारा टमार की फ़सल-उत्पादन का खर्चा, ट्रे12 न०
2 फिट x $1\frac{1}{2}$ फिट x 4 इंच व 100 ली० घोल परिसंचरण क्षमता

(अ) खर्चा

1. कैल्शियम नाइट्रेट, पोटेशियम डाइहाड्रोजन फॉस्फेट, पोटेशियम नाइट्रेट, मैगनीसियम सल्फेट व सूक्ष्म तत्व का घोल	रु० 60.00
2. बिजली का खर्चा	रु० 150.00
3. देखभाल का खर्चा	रु० 200.00
कुल	रु० 510.00

(ब) आमदनी

1. उत्पादन	120 क्रिग्रा० टमाटर
2. बाज़ार भाव 8/- रु० प्रति कि०	120 × 8 = रु० 960
3. लाभ	960 - 510 = रु० 450.00

■■■

मलेरिया एवं रोगवाहक मच्छर

डॉ० रजनीकान्त

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

मलेरिया आज भी जन-स्वास्थ्य की एक गंभीर समस्या बनी हुई है। यह एक अत्यन्त प्राचीन रोग है जिसका वर्णन 'अथर्ववेद' तथा 'आयुर्वेद' की पुस्तकों, 'चरक संहिता' एवं 'सुश्रत संहिता' में भी किया गया है। मलेरिया दो शब्दों -मैल (अशुद्ध) और एरिया (वायु) से मिलकर बना है। प्राचीन काल में ऐसा विश्वास था कि यह रोग दल दल प्रदेश की विषैली वायु से फैलता है। सन् 1880 में फ्रांसीसी सेना के सर्जन चार्ल्स लुई एलफेन्सो लेवरान ने अल्जीरिया के पास अन्ततः यह सिद्ध किया कि मलेरिया एक प्रोटोजुअन परजीवी **प्लाज्मोडियम** से फैलता है। परन्तु इस रोग के संचरण के रहस्य का पता आज से करीब 100 वर्ष पूर्व सन् 1897 में भारतीय सेना के सर्जन-मेजर सर रोनाल्ड रॉस ने भारत के सिकन्दराबाद शहर में लगाया, जब उन्होंने इस रोग के मच्छरों द्वारा संचरण की पुष्टि की। यह मात्र (महज़) संयोग ही था कि मलेरिया एवं उसके संचरण की खोज करने वाले दोनों ही वैज्ञानिक सेना में डॉक्टर थे। सर रोनाल्ड रॉस को उनके इस उल्लेखनीय एवं ऐतिहासिक कार्य के लिये सन् 1902 में 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

उष्णकठिबन्धीय देशों में मलेरिया एक व्यापक रोग है। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के अनुसार पूरे विश्व के 100 देशों में करीब 300-500 मिलियन (30-50 करोड़) व्यक्ति हर वर्ष मलेरिया से ग्रस्त होते हैं एवं 2700 मिलयन (270 करोड़) लोग मलेरिया के संभावित खतरे वाले क्षेत्रों में निवास करते

हैं। भारत सदा से ही इस रोग से ग्रस्त रहा है। इसकी तीव्रता का अंदाज़ा सिंटन के इन शब्दों से ही लगाया जा सकता है। "भारत के अनेक भागों में निवास करने की समस्या वास्तव में मलेरिया की ही समस्या है। जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है जिसे यह रोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित न करता हो। यह भारत के आर्थिक दुर्भाग्य के सबसे महत्वपूर्ण कारणों में से एक है, जिससे दरिद्रता, खाद्य सामग्री की कमी, शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता उत्पन्न होती है। यह भारत के आर्थिक विकास और समृद्धि के पथ में बहुत बड़ी बाधा है।"

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक प्रतिवर्ष साढ़े सात करोड़ व्यक्ति मलेरिया से पीड़ित होते थे और करीब आठ लाख लोगों की मृत्यु हो जाती थी, जबकि महामारी के दिनों में यह आँकड़े दुगने या उससे भी अधिक हो जाया करते थे। सन् 1953 में राष्ट्रीय मलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम की स्थापना एवं डीडीटी कीटनाशी के सफलतापूर्वक प्रयोग द्वारा मलेरिया नियंत्रण में उल्लेकनीय सफलता मिली तथा सन् 1965 के आस-पास भारत में मलेरिया लगभग समाप्त-सा हो चला। किन्तु बाद के वर्षों में रोगवाहक मच्छरों में डी डी टी के प्रति प्रतिरोध एवं अन्य तकनीकी तथा व्यावहारात्मक कारणों से वर्ष 1976 में मलेरिया ने फिर से विकराल रूप धारण किया तथा करीब 65 लाख लोग इस रोग से पीड़ित हुए जिसे वर्ष 1971 में 'माडीफाइड प्लान ऑव ऑपरेशन्स' (संचालन की संशोधित योजना) द्वारा काबू में लाया जा सका। वर्तमान में भारत में प्रतिवर्ष 20 लाख से अधिक लोग मलेरिया का शिकार होते हैं तथा कितने ही व्यक्ति इसके कारण जान से भी हाथ धो बैठते हैं। पिछले कुछ वर्षों में जनसंख्या में अतिशय वृद्धि, शहरीकरण, तेजी से बढ़ते औद्योगिकीकरण तथा वातावरणीय परिवर्तनों के कारण रोगवाहक मच्छरों की जैविकी तथा मलेरिया की स्थित काफी प्रभावित हुई है।

मलेरिया कुछ विशेष प्रकार के **एनॉफिलीज़ मच्छर** (मादा) द्वारा ही फैल सकता है। विश्व में मच्छरों की 2500-3000 से भी अधिक जातियाँ हैं। परन्तु भारत में लगभग 300 जातियाँ ही पाई जाती हैं। इनमें से 58 जातियाँ एनॉफिलीज़ वंश की हैं तथा केवल 6 जातियाँ ही प्रमुख रूप से मलेरिया की रोगवाहक हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि मच्छरों के अंडे, डिम्भक एवं प्यूपा पानी में रहते हैं जबकि व्यस्क स्थलीय हैं। नर मच्छर फूलों का रस था ऐसे ही अन्य द्रव के भोजन पर जीवित रहते हैं जबकि मादा वंश चलाने के लिए रक्तपान करती है। भारत में पाए जाने वाले मुख्य रोगवाहक एवं उनका वितरण विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भिन्न है। भारत में मलेरिया के मुख्य रोगवाहक एवं उनकी जैविकी निम्नलिखित है।

1. एनॉफिलीज़ क्यूलिसिफेसीज़

एनॉफिलीज़ क्यूलिसिफेसीज़ मलेरिया संचार की एक प्रभावी जाति है। मलेरिया की प्रकाश में आई कुल घटनाओं में से करीब 60 से 70 प्रतिशत मलेरिया इसी मच्छर के द्वारा फैलता है। यह भारत के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले मलेरिया के लिये जिम्मेदार है। सन् 1902 में गाईल्स नामक वैज्ञानिक ने क्यूलैक्स वंश के मच्छरों के समान विश्राम करने के कारण इसका नाम **क्यूलिसिफेसीज़** रखा। यह अण्डमान और निकोबार द्वीप को छोड़कर भारत के लगभग हर राज्य में पाया जाता है, परन्तु मुख्यतः मैदानी क्षेत्रों में मलेरिया का संचार करता है।

एनॉफिलीज़ क्यूलिसिफेसीज़ स्लच्छ जल में प्रजनन करता है। यह मुख्यतः वर्षा के जल वाले तालाब, सिंचाई की नहरें, मन्द बहने वाली नदियों, कुओं, खुदाई के गड्ढे, सीमेन्ट की टंकियों तथा ताज़ा बोए धान के खेतों में प्रजनन करता है। अधिकतर सिंचाई परियोजनाओं में एकत्रित पानी के स्रोतों में भी यह मच्छर प्रचुर रूप से पनपता है।

इसके द्वारा मलेरिया संरक्षण समय मानसून के साथ-साथ होता है फिर भी जहाँ वातावरण अनुकूल होता है वहाँ इस रोगवाहक की पूरे वर्ष अच्छी आबादी रहती है। यह मच्छर मनुष्यों तथा पशुओं दोनों का रक्तपान करता है परन्तु मवेशियों को काटने की प्रकृति ज्यादा होती है। यह मुख्यतः पशुशालाओं तथा दिन के समय घरों में विश्राम करता है। कई मौकों पर इनके अण्डों को पेड़ के खोलों एवं अन्य बाहरी आश्रय स्थलों से भी पकड़ा गया है, जो इनकी घर के बाहर विश्राम (आउट डोर रेस्टिंग) करने की आदत को

दर्शाता है । पशुओं की अनुपस्थिति में इसकी मनुष्य को काटने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है । वैसे ये मच्छर पूरी रात काटते हैं परन्तु इनके काटने का उच्च दंशन काल (पीक बाइटिंग पीरियड) रात्रि सात बजे से सुबह चार बजे तक होता है, जो मौसम एवं स्थान के साथ परिवर्तित भी हो सकता है । यह मच्छर 1-3 किमी० तक उड़ सकता है । हाल के अध्ययनों में देखा गया है कि **एनॉसिलीज़ क्यूलिसफेलीज़** की चार सहोदर जातियाँ (सिबलिंग स्पीशीज़) ए, बी, सी एवं डी हैं ।

एनॉसिलीज़ क्यूलिसिफेलीज़ भारत के राज्यों में डी डी टी एवं एच सी एच तथा गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्यों में मैलाथियान जैसे कीटनाशकों का प्रतिरोध करता है ।

2. एनॉसिलीज़ स्टीफेन्साई

यह मच्छर भारत में शहरी मलेरिया का एक मुख्य रोगवाहक है । विस्टन नामक वैज्ञानिक ने सन् 1901 में डॉ० जे० डब्ल्यू स्टीफन के नाम पर इसका नाम **एनॉफिलीज़ स्टफेन्साई** रखा । हम इस मच्छर को घरेलू मच्छर भी कहते हैं, क्योंकि यह मानव निर्मित स्रोतों (मैन मेड स्ट्रक्चर्स) जैसे घरों के अन्दर पानी से भरे बर्तनों, टंकियों, कूलरों, छत की टंकियों, कुओं, कुंड, सजावटी टंकियों, कृत्रिम आधानों, निर्माण स्थलों पर एकत्र जल-संग्रह आदि में प्रजनन करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह तालों, नदियों के तटों, रिसने वाले और दलदली क्षेत्रों तथा कुछ जगह पर यथा धान के खेतों में भी प्रजनन करता है ।

यह मच्छर मुख्यतः शहरों में घरों के अन्दर दीवार पर, लटके हुए कपड़ों, वस्तुओं आदि तथा गाँव में पशुशालाओं एवं घरों-दोनों जगहों पर विश्राम करता है । शहरों में यह मुख्यतः रात्रि के समय मनुष्यों को तथा गाँव में मनुष्यों तथा पशुओं दोनों को काटता है । लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी पशुओं को काटने की प्रवृत्ति ज़्यादा होती है। इसके काटने का शिखर समय रात्रि 10 से 12 बजे तक होता है, जो वातावरण एवं स्थान के अनुसार बदलता रहता है । यह भारत के उत्तर-पूर्व के क्षेत्रों को छोड़कर लगभग सभी जगह मलेरिया फैलाता है ।

इस मच्छर की जो जाति शहर में मिलती है उसे **एनॉफिलीज़ स्टीफेन्साई स्टीफेन्साई** (टाइप फार्म) तथा जो गाँव में मिलती है उसे **एनॉफिलीज़ स्टीफेन्साई माइसोरेंसिस** कहते हैं । अभी हाल में एक नई जाति **एनॉफिलीज़ स्टीफेन्साई इण्टरमीडिएट** का भी पता चला है, जिनको इन मच्छरों के अंडों पर रिज़ेस की संख्या गिनग़र पहचाना जा सकता है । इस मच्छर की उड़ने की क्षमता 0.8 से 2.5 किमी० तक है।

देश के अनेक भागों से यह जानकारी मिली है कि यह डी डी टी और एच सी एच तथा कुछ हिस्सों में मैलाथियान कीटनाशी का प्रतिरोध करता है । शायद **एनॉफिलीज़ स्टीफेन्साई** ही वह मच्छर था जिसमें सर रोनाल्ड रॉस ने (टेपल विंग मॉस्कीटो) सन् 1897 में मच्छर द्वारा मलेरिया संचार की ऐतिहासिक खोज की ।

3. एनॉफिलीज़ फ्लूविएटिलिस

एनॉफिलीज फ्लूविएटिलिस को पहाड़ी मच्छर कहा जाता है क्योंकि यह मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है। जेम्स नामक वैज्ञानिक ने सन् 1902 में इसका नाम **फ्लूविएटिलिस** रखा था, क्योंकि इस मच्छर के डिम्भ एक साफ पानी के चश्मे के घास वाले किनारे से पकड़े गए थे ।

यह मच्छर सिंचाई वाली नहरों, मन्द बहने वाली नदियों के घास वाले किनारों, छिछले कुओं, ऊँचे तटवाले धान के खेतों, धीरे बहते चश्मों, पथरीली नदियों तथा उनसे सम्बद्ध गड्ढों, सिंचाई के बाँधों से रिसते पानी, सिंचाई की नालियों आदि में प्रजनन करता है ।

यह अधिकांशतः घरों के अन्दर ही विश्राम करता है परन्तु पशुशालाओं के बाहर जंगलों में भी विश्राम करता पाया गया है । इसकी मनुष्य का रक्तपान करने की प्रवृत्ति अधिक होती है तथा पशुओं का रक्त कम पसन्द करता है । इसका उच्च दंशन काल (पीक बाइटिंग पीरियड) रात्रि 8 बजे से 12 तक है जो स्थान-स्थान पर तथा विभिन्न वातावरण में परिवर्तित होता रहता है । यह भारत के लगभग सभी राज्यों में पाया जाता है । इसकी उड़ने की क्षमता (फ्लाइट रेन्ज) एक किमी० तक है । इस मच्छर की तीन सहोदर जातियाँ

हैं, जिन्हें एस, टी एवं यू के नाम से जाना जाता है । देश के कुछ हिस्सों को छोड़कर अधिकांश भाग में यह जाति अभी भी डी डी टी तथा तथा अन्य कीटनाशियों के प्रति सुग्राही है। यह भारत के पहाड़ी एवं पठारी (हिल्स एवं फूटहिल्स) क्षेत्रों में मलेरिया संचार का एक प्रभावी रोगवाहक है ।

4. एनॉफिलीज़ मिनिमस

लैटिन भाषा में मिनिमस का अर्थ होता है बहुत छोटा इसलिए रोबाल्ड नामक वैज्ञानिक ने इस मच्छर के छोटे आकार के कारण इसका नाम **एनॉफिलीज़ मिनिमस** रखा । यह मुख्यतः बिहार, पश्चिम बंगाल के हिमालय के निचले क्षेत्रों और भारत के पूर्वी राज्यों--असम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैण्ड, मेघालय से त्रिपुरा तक पाया जाता है। भारत के उत्तर एवं उत्तर-पश्चिम राज्यों, विशेषतया गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, कश्मीर एवं दिल्ली में यह नहीं पाया जाता है ।

यह मच्छर मन्द गति से बहने वाली स्वच्छ नदियों में, जिनके किनारे पर घास लगी हो और थोड़ी छाया के साथ दलदली वनस्पतियाँ हों, पर्वतीय क्षेत्र के पहाड़ी नालों तथा चाय की खेती के लिए बनी सिंचाई की नालियों में प्रजनन करता है । कुछ क्षेत्रों में इस जाति के मच्छर धान के खेतों और बरसाती गड्ढों में भी अण्डे देते हैं । यह अण्डे देने के लिए छायादार जगह पसन्द करता है ।

यह मच्छर अधिकांशतः मनुष्य के रक्त को पसन्द करता है तथा ज़्यादातर घरों में विश्राम करता है । हाल में पता लगा है कि अब यह जंगलों की झाड़ियों में भी विश्राम करता है । इसका काटने का मुख्य समय घर के बाहर शाम 6 से 7 बजे तक, घरों के अन्दर रात्रि 12 से 2 बजे तक है, जो स्थान-स्थान पर भिन्न हो सकता है । इसकी उड़ने की क्षमता लगभग 2 किमी० है ।

यह मच्छर जहाँ पर भी पाया जाता है, मलेरिया का संचार करता है । यह अभी भी डी डी टी के प्रति सुग्राही है। हाल के अध्ययनों में देखा गया है कि थाइलैण्ड में **एनॉफिलीज़ मिनिमस** की 3 सहोदर जातियाँ हैं, जिन्हें ए, बी एवं सी के नाम से जाना जाता है । किन्तु भारत में केवल सहोदर जाति 'ए' ही पाई जाती हैं ।

5. एनॉफिलीज़ सण्डाइकस

मलेरिया के सुण्डा द्वीप के नाम पर ही रोडेनवाल्ट नामक वैज्ञानिक ने इस मच्छर का नाम **एनॉफिलीज़ सण्डाइकस** रखा था, क्योंकि यह मच्छर सर्वप्रथम इस द्वीप से ही पकड़ा गया था । यह मच्छर अधिकांशतः समुद्रीतट पर ही पाए जाते हैं, क्योंकि यह खारे पानी में प्रजनन करते हैं। भारत में यह मच्छर पहले उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और आन्ध्र प्रदेश के समुद्री तटों पर मिलते थे और मलेरिया का संचार करते थे परन्तु अब यह मच्छर मुख्यतः अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह में पाया जाता है और मलेरिया का संचार करता है ।

यह मच्छर समुद्र तट पर स्थित साफ़ पानी के गड्ढों, समुद्री जल की झीलों, समुद्री तट की दरारों (क्रीक्स) तथा घर की टंकियों में अपने अण्डे देता है । इस मच्छर का प्रजनन पानी के साथ **स्पाइरोगाइरा, एनाबीना, लिंगबिया** जैसे शैवाल एवं अन्य वनस्पतियों जैसे **हाइड्रिला, पोटेमोजिटॉन, सिरेटोफाइलम** के साथ ज़्यादा देखा गया है । यह पानी में 0.16 से 1.36 प्रतिशत तक नमक की मात्रा सहन कर सकता है ।

यह मच्छर मुख्यतः घरों एवं पशुशालाओं में विश्राम करता है । बाहर झाड़ियों, चट्टानों की दरारों आदि में भी विश्राम करते हुए इसे पाया गया है । यह घर के बाहर एवं अन्दर मनुष्यों तथा पशुओं को काटता है । यह मुख्यतः पूरी रात काटता है परन्तु इसका उच्च दंशनकाल रात्रि 9 बजे से 2 बजे तक है। यह उड़ने में अत्यधिक प्रभावी मच्छर है तथा इसकी उड़ने की क्षमता 0.6 से 9 किमी० तक है ।

वैज्ञानिकों का मानना है कि इस मच्छर की दो सहोदर जातियाँ हैं । एक जो खारे पानी में तथा दूसरी जो स्वच्छ जल में प्रजनन करती हैं । यह अभी भी डी डी टी के प्रति सुग्राही है ।

6. एनॉफिलीज़ डायरस

यह जंगलों में मलेरिया का एक प्रमुख एवं प्रभावशाली रोगवाहक है । लैटिन भाषा में डायरस का अर्थ होता है डराने वाली । इस मच्छर के लक्षणों के आधार पर पाइटन और हेरीसन ने इसका नाम डायरस रखा । यह भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में मलेरिया का संचार करता है ।

यह मच्छर जंगल के पोखरों, वन की सड़कों के साथ खुदाई वाले गड्ढों, जंगल के गड्ढों, जिनमें पेड़ों की पत्तियाँ गिरी हों, बिन-उपयोगी कुओं विशेषतया छायादार जल-स्थलों में प्रजनन करता है ।

यह मच्छर घरों के बाहर एवं अन्दर दोनों जगह मनुष्य और पशुओं को काटता है, परन्तु मनुष्य के रक्त को ज्यादा पसन्द करता है। यह प्रायः जंगलों में झाड़ियों, पेड़ों के खोलों में विश्राम करता है। इसकी उड़ने की क्षमता 1 से 1.5 किमी० तक है।

भारत में **एनॉफिलीज़ डायरस** जाति के मच्छर अरुणाचल प्रदेश, असम, कर्नाटक, केरल, मेघालय, मिजोरम, तमिलनाडु, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल के घने जंगलों में पाए जाते हैं। इस मच्छर की सात सहोदर जातियाँ हैं, जिन्हें ए, बी, सी, डी, ई, एल, जी एवं टाकासागोएन्सिस कहते हैं। भारत में केवल जाति डी एवं ई ही पाई जाती हैं। अन्य जातियाँ थाइलैण्ड में पाई जाती हैं। यह मच्छर अभी भी डी डी टी कीटनाशी के प्रति सुग्राही है।

इन 6 प्रमुख रोगवाहकों (प्राइमरी वेक्टर्स) के अतिरिक्त 3 अन्य मच्छर, जिन्हें द्वितीय रोगवाहक (सेकण्डरी वेक्टर) कहते हैं, भी मलेरिया का संचार करते हैं। ये हैं **एनॉफिलीज़ वरुणा, एनॉफिलीज़ एन्यूलेरिस तथा एनॉफिलीज़ फिलीपाइनेन्सिस**। यह प्रमुख रोगवाहकों की अनुपस्थिति या उनके साथ रोग संचरण में हिस्सा लेते हैं। अतः यह आवश्यक है कि जनसामान्य को रोगवाहक मच्छर, उनके उत्पत्ति स्थल, तथा विश्राम एवं रक्तपान करने के स्थान ज्ञात हों, तभी मच्छरों को पनपने से रोका जा सकता है।

अतएव मलेरिया संक्रमण से बचने के लिए यह आवश्यक है कि जनसामान्य को मलेरिया और मच्छरों के विषय में अधिक से अधिक जानकारी देकर उन्हें जागरूक बनाया जाये ताकि मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रमों में आम लोगों की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके।

■■■

परिषद् की वराणसी शाखा से

विज्ञान परिषद् की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शाखा द्वारा वर्ष 1997-98 के दौरान पाँच प्रमुख स्मारक व्याख्यान आयोजित करने का निर्णय लिया गया है-हिन्दी-दिवस व्याख्यान, आचार्य जगदीश चन्द्र बोस व्याख्यान, आचार्च चन्द्रशेखर वैंकट रामन व्याख्यान, महामना मालवीय व्याख्यान और विज्ञान-दिवस व्याख्यान। इस कार्यक्रम का पहला व्याख्यान हिन्दी दिवस के अवसर पर 15.9.97 को विज्ञान संकाय को भौमिकी विभाग में प्रो० सूर्यनारायण ठाकुर द्वारा 'तारों की राख़ से बनती नीहारिकाएँ' विषय पर प्रस्तुत किया गया, जिसमें विश्वविद्यालय के अनेक छात्रों, शोधकर्मियों और अध्यापकों ने भाग लिया। आयोजन की अध्यक्षता प्रो० देवेन्द्र कुमार राय ने की और कार्य-संचालन डॉ० श्रवण कुमार तिवारी ने किया। आरंभ में भौमिकी विभाग के अध्यक्ष प्रो० गैरोला ने व्याख्यात एवं श्रोताओं का स्वागत किया और अंत में शाखा परिषद् के उपाध्यक्ष प्रो० ब्रजरतन दास गुप्त ने औपचारिक रूप से धन्यवाद ज्ञापन किया। व्याख्यान अत्यंत रोचक, सुवोध और ज्ञानवर्द्धक रहा।

प्रेषक : डॉ० श्रवण कुमार तिवारी

लुई ब्रेल और ब्रेल लिपि

डॉ० विभा मिश्र

प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास विभाग
सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद—211002

यह सर्वविदित है कि विकलांगता एक अभिशाप है। विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं में दृष्टिहीनता भी एक है। प्रयः दृष्टि हीनों के सम्बन्ध में यह आम धारणा बनी हुई है कि वे या तो कुर्सी बिनने का कार्य करते हैं या संगीत सीखते हैं, किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में दृष्टिहीनों के लिये शिक्षा का क्षेत्र भी खुल गया है। इस क्षेत्र में दृष्टिहीनों का प्रवेश ब्रेल लिपि के ही माध्यम से सम्भव हो सका है।

ब्रेल लिपि क्या है?

यह आश्चर्य का विषय है कि प्रबुद्ध शिक्षित समाज तक ब्रेल लिपि से परिचित नहीं है। कोई अंधों की सफेद खुलने वाली छड़ी को ही ब्रेल समझता है तो कोई दूरदर्शन पर समाचार पढ़ती उद्घोषिका के मुख एवं हाथ के संकेत एवं हाव भाव को ही। वस्तुतः विश्व की विभन्न लिपियों की ही भाँति ब्रेल भी एक लिपि विशेष है। इसे क्लिबोर्ड पर लगे काग़ज़ पर गाइड (Guide) तथा स्टाइल्स (Styles) के माध्यम से उभाड़ कर लिखा जाता है। इस उभड़ी लिपि को अंगुली के स्पर्श से पढ़ा जाता है। इस विधि के आविष्कारक लुई ब्रेल (Louis Braille) थे। उन्हीं के नाम पर इस लिपि को ब्रेल लिपि या ब्रेल की संज्ञा दी गई।

लुई ब्रेल का जन्म पेरिस के एक छोटे से गाँव कुप्रे के एक निर्धन परिवर में 1809 में हुआ था। तीन वर्ष की अल्पायु में ही पिता की चमड़ा सिलने वाली सुई से खेलते समय आँख में लग जाने से लुई अपनी एक आँख को बैठे। कुछ दिन बाद उनकी दूसरी आँख की ज्योति भी जाती रही। उनकी आरम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालय में हुई। उनके पिता उन्हें मिट्‌टी पर उभड़े अक्षर बनाकर अक्षर ज्ञान कराते रहे। दस वर्ष की आयु में लुई पेरिस के एक संस्थान में प्रविष्ट हुए और शिक्षा समाप्ति के उपरान्त मृत्यु पर्यन्त (1852) वहीं शिक्षण कार्य करते रहे।

लुई द्वारा आविष्कृत ब्रेल लिपि एक फ्राँसीसी सेनाअधिकारी- चार्ल्स बार्बियर की संकल्पना पर आधारित थी। बार्बियर एक ऐसे साधन की खोज में थे जिसके द्वारा रात के अँधेरे में भी सेना का संदेश पढ़ा जा सके। उन्होंने एक ऐसी पद्धति विकसित की जिसमें गाइड के प्रत्येक कोष्ठ (Cell) में बारह-बारह बिन्दु (dots) थे। लुई के संस्थान में इस पद्धति का प्रदर्शन हुआ। लुई ने स्पर्श करके यह अनुभव किया कि कोष्ठ के ये बिन्दु अँगुली के ऊपरी पोर की पहुँच के बाहर हैं। बार्बियर की इस लिपि से लुई को प्रेरणा मिला और उनके मन में भी दृष्टिहीनों के लिये एक ऐसी ही लिपि तैयार करने का विचार उत्पन्न हुआ। उन्होंने बार्बियर की लिपि में संशोधन किये और एक कोष्ठ में तीन-तीन बिन्दुओं को पंक्तियों में व्यवस्थित कर सर्वथा नवीन रूप प्रदान किया।

यह लिपि 1832 ई० तक तैयार हो गई। उसके पश्चात् लुई की मृत्यु हो जाने पर फ्रांसीसी विद्यालयों में दृष्टिहीनों के लिये यह लिपि मान्य हुई। किन्तु आश्चर्य की

बात है कि पूरे सौ वर्ष बाद 1932 में ब्रेल लिपि को अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त हुई।

इस ब्रेल लिपि के आविष्कार से दृष्टिहीन लाभान्वित हुए और उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके।

ब्रेल लिपि की विशेषता

ब्रेल लिपि की विशेषता है कि यह दाहिने से बाएँ लिखी जाती है और काग़ज़ के पृष्ठभाग पर उभड़े बिन्दु अक्षरों के बाएं से दाहिने स्पर्श द्वारा पढ़ा जाता है। प्रत्येक अक्षर के लिये भिन्न-भिन्न बिन्दु-चिन्ह होते हैं। विश्व की कोई भी भाषा इस लिपि द्वारा लिखी और पढ़ी जा सकती है।

ब्रेल लिखने के उपकरणों में ब्रेल स्लेट एवं सटाइलर्स के अलावा ब्रेलर का भी प्रयोग किया जाता है। यह हस्तचालित लघु टाइपराइटर की तरह का यंत्र है।

ब्रेल लिपि से दृष्टिहीनों के लिये पुस्तकें तैयार की जाती हैं। इसके लिये ब्रेल प्रेसों की भी स्थापना अपने देश में की गई है।

लुई ब्रेल की स्मृति में प्रत्येक वर्ष 4 जनवरी को उनका जन्म दिन 'ब्रेल दिवस' के रूप में मानाय जाता है। उन्हीं के प्रयलों के फलस्वरूप लाखों दृष्टिहीन स्वावलम्बी बनने में समर्थ बन सके हैं। इसके लिए दृष्टिहीन सदैव लुई ब्रेल के आभारी रहेंगे। ■■■

समीक्षा

पृथ्वी की रोचक बातें

तुरशन पाल पाठक

वैज्ञानिक एवं सम्पादक : भारत की सम्पदा,
राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान (सी० एस आई आर), नई दिल्ली -12

पुस्तक : पृथ्वी की रोचक बातें

लेखक : डॉ० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० दिनेश मणि तथा डॉ० सुनील दत्त तिवारी

प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान,165 दखनीराय स्ट्रीट, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली
मुद्रक : राधा प्रेस, दिल्ली; प्रथम संस्करण 1996 ; मूल्य : नब्बे रुपये; पृष्ठ 123,
81-85827-57-27.5

सन् 1931 में जन्में विज्ञान जगत् के ख्याति प्राप्त लेखक एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के सेवानिवृत्त प्रोफेसर डॉ० शिवगोपाल मिश्र हिन्दी विज्ञान लेखन जगत् के नींव के पत्थर माने जाते हैं। संभवतः धरती से जुड़े अनेक प्रश्नों और जिज्ञासाओं के उत्तरों की जनमानस की प्यास बुझाने हेतु उन्होंने अपने शिष्यों के सहयोग से 'पृथ्वी की रोचक बातें' नामक इस पुस्तक के माध्यम से लोकप्रिय विज्ञान के क्षेत्र में एक और साहित्य सुमन रच डाला है। यह साहित्य इसलिये भी आज के संदर्भ में अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि मनुष्य 'जिस थाली में खाओ उसी में छेद करो' वाली कहावत के अनुसार जीवनदायनी इस धरती को ही अपनी हविस की पूर्ति हेतु हर तरह से इसे नष्ट-भ्रष्ट करने में लग गया

है और आगे की पीढ़ी के सभी रास्ते बंद किये दे रहा है। ऐसे में धरती के बारे में रोचक बातों की जानकारियाँ उसे सही रास्ते पर चलने की सोच पैदा कर सकती हैं।

आज जिस रूप में हम पृथ्वी को देखते हैं और वैज्ञानिक आदि जिसका अध्ययन करते रहते हैं उसकी प्रारम्भिक अथवा आदि अवस्था बहुत ही लोमहर्षक रही है। हमें पृथ्वी पर जल और थल दो अलग घटक नज़र आते हैं। लेकिन वे अलग कहाँ है? स्थल मंडल पर ही तो जल का विशाल साम्राज्य भरा पड़ा है, जो सागर, झीलों और हिमनद आदि किसी भी रूप में हो सकता है। हमें जो बड़े-बड़े पर्वत शिखर दिखाई देते हैं, वे भी तो धरती पर ही खड़े हैं। अतः हमारे खेत-खलिहान, गाँव-शहर, सड़के-नदियाँ आदि ही पृथ्वी नहीं हैं, बल्कि पृथ्वी के भीतर-बाहर और चारों ओर का समस्त वातावरण पृथ्वी का ही अंग है। समुद्र चाहे जितना भी गहरा क्यों न हो, वह भी ऊँचे से ऊँचे पर्वते की तरह पृथ्वी पर ही आधारित है। अतः जल, थल और वायुमण्डल आदि सभी पृथ्वी के अध्ययन के अभिन्न अंग हैं।

जैसे मनुष्य के ऊपरी रूप चाहे जैसे भी दीखें उनके शरीर के भीतर नाना प्रकार की हलचलें होती रहती हैं, ठीक वैसे ही पृथ्वी के भीतर भी सामान्य से लेकर तूफ़ानी हलचलें होती रहती हैं। पृथ्वी पर वनस्पति और जीवजगत् का जो साम्राज्य फैला हुआ है। मिट्टी में जीवनदायी गुण कैसे आये जो सभी का पेट पालने में समर्थ हैं। इतना ही नहीं, पृथ्वी की प्राकृतिक धरोहर से ही आज हमें अपने चारों ओर हर प्रकार की भौतिक चकाचौंध दिखाई दे रही है। ये सभी बातें रोचक होने के साथ प्रासंगिक भी हैं। इन्हीं उद्देश्यों के इर्द-गिर्द पुस्तक की विषय-सूची को मुख्य रूप से चार भागों में बाँटा गया है। स्थल मण्डल-पृथ्वी और विश्व, जलमंडल, वायुमंडल, और मनुष्य का जीवनाधार, मिट्टी। पुस्तक में एक भाग के रूप में परिशिष्ट भी है, जिसमें 'विष्णु पुराण' के आधार पर भूगोल का विचरण और आर० एल० कसर्न की अँग्रेजी पुस्तक 'द सी एराउन्ड अस' के आधार पर पृथ्वी के सुदूर अतीत का उल्लेख किया गया है।

स्थल मण्डल में पृथ्वी के बारे में 52 और विश्व के बारे में 20 जिज्ञासाओं का वर्णन है जिसमें पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति, मैदान, पठार, महाद्वीप, लम्बे होते दिन, पृथ्वी की अस्थिर सतह- प्लेटों का खिसकना, आंतरिक रचना, आयु, चुंबकीय क्षेत्र, आवरण, परिक्रमा, झुकाव, डगमगाहट, घूमना आदि प्रमुख हैं। विश्व की चर्चा में विश्व के महाद्वीप, पर्वत, नदियाँ, द्वीप समूह, ध्रुवीय-प्रदेश, कंदराओं, प्रवालद्वीप, टूटते तारों, ज्वालामुखी, भूकम्प, भूस्खलन आदि की रोचक बातों का उल्लेख किया गया है।

जलमण्डल की चर्चा में वर्षा, महासागर, झीलों, लहरों, नदी-तंत्र, झरनों, ज्वार-भाटा, महासागरीय धाराओं, समुद्री खाद्यों, जलमग्न पर्वत, सागर संपदा, समुद्री जीव-जंतु, हिमनद सूखा-बाढ़ आदि का रोचक वर्णन है।

वायुमण्डल में वायुमंडल की गैसों, पृथ्वी के रक्षा कवच, का उल्लेख है और मनुष्य का जीवन आधार मिट्टी की चर्चा में, अनोखी मिटटी, चट्टानों, आदर्श मृदा, बीमार मिट्टी, मिट्टी के सजीव संसार, गंध, सिंचाई,मरुस्थल, रेगिस्तान और टिब्बों, की रोचक जानकारी दी गई है। इस तरह 123 पृष्ठों की इस पुस्तक में पृथ्वी की एक नज़र में जानने योग्य लगभग मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख कर पाठकों के लिये रोचक सामग्री जुटाई गई है।

पृथ्वी के धरती, सागर और वायुमंडल यू तो अपार जानकारियों से भरे पड़े हैं, जिनकी चर्चा विशेषज्ञों के लिये विशेष ग्रंथों में उपलब्ध हैं लेकिन जनमानस को तो आम बातें ही चाहिए जिससे उनकी वैज्ञानिक अभिरुचि की नींव मज़बूत होती रहे। डॉ० शिवगोपाल जी ने देश को अनेक वैज्ञानिक लेखक दिये हैं वहीं आम अभिरुचि के विज्ञान के साहित्य की दिशा में यह पुस्तक रुचिकर है। डॉ० दिनेश मणि एवं डॉ० सुनील दत्त तिवारी की पुस्तक लेखन में सहायता का जिक्र कर लेखक डॉ० मिश्र ने शिष्यों को प्रोत्साहित करने की परम्परा को सम्बल दिया है।

प्रकाशक प्रतिभा प्रतिष्ठान और मुद्रक राधा प्रेस दोनों ने ही पुस्तक को सजीव और पाठकों को पढ़ने के लिये लुभाने के अच्छे प्रयास किये हैं। यह बात पुस्तक हाथ में आते ही मूक भाषा में प्रगट कर ही देती है। पुस्तक नन्हें-मुन्नों से लेकर सभी आयु के लोगों के लिये रुचिकर सिद्ध हो सकेगी। लेखक, प्रकाशक एवं मुद्रक और पाठक सभी को बधाई।

■■■

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा

आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हज़ार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 1 मार्च 1999 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

लेख निम्न पते पर भेजें :

सम्पादक,
विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
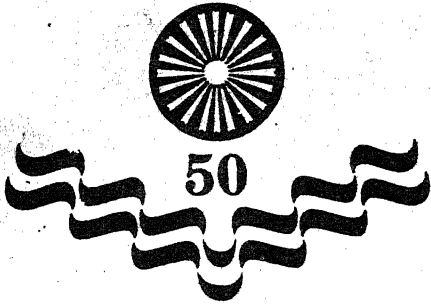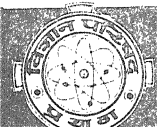
विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च -1913

विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915

वर्ष 83 अंक 11

फरवरी 1998

मूल्य : आजीवन : 500 रु० व्यक्तिगत
1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०
एक प्रति : 5 रु०

◆

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

◆

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

◆

सहायक संपादक

डॉ० दिनेश मणि

◆

मुद्रक

अरुण राय

कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

◆

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद - 211002

विज्ञान विस्तार

विज्ञान वक्तव्य	...	1
डॉ. नीलरत्न धर की पुण्यतिथि पर श्रद्धांजलि.		2
क्या ब्राह्मी भी पेटेन्ट होगा?	...	3
गन्ने का रस : मात्र पेय ही नहीं ओषधि भी		4
पौधों का विचित्र संसार	...	6
बहुभक्षी कीट टिड्डी और उसका नियन्त्रण	...	8
महासीर : विलुप्तप्राय मीन	...	11
न चीरा, न टांका, हो गई शल्यक्रिया (लेप्रोस्कोपिक सर्जरी का चमत्कार)	...	14
कहानी काग़ज़ की	...	16
गौतम बुद्ध का वैज्ञानिक जीवन-दर्शन	...	18
आओ माडल बनायें (पुस्तक समीक्षा)	...	21
परिषद् द्वारा सम्मानित व्यक्तियों की सूची	...	23
प्राप्ति स्वीकार (पुस्तकें)	...	24

◆ ◆

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

जनवरी 1998 अंक के माध्यम से "विज्ञान परिषद् प्रयाग' एवं कुछेक अन्य शैक्षणिक संस्थाओं की गतिविधियों की सूचना आप तक पहुँचीं। गतिविधियाँ अभी निर्बाध चल रही हैं।

(1) इलाहाबाद स्थित 'राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, भारत' द्वारा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के आडिटोरियम में 'प्रो० सालिगराम सिन्हा मेमोरियल लेक्चर' 10 जनवरी को सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। व्याख्यान का विषय था- ट्रांसजीनिक क्राप्स फॉर इण्डियन एग्रीकल्चर '। व्याख्यान प्रो० दीपक पेन्टल, निदेशक सी जी एम सी पी, डिपार्टमेंट ऑव जेनेटिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा दिया गया। डॉ० पेन्टल ने देश में उत्पादित खाने के तेल की मात्रा पर चिंता व्यक्त की और उत्पादन में वृद्धि संबंधी शोध की चर्चा की। विश्वविद्यालय के विद्वान शिक्षकों के अतिरिक्त इस अवसर पर प्रो० एम० जी० के० मेनन, डॉ० मंजु शर्मा, डॉ० शर्मा, प्रो० उमाशंकर श्रीवास्तव सहित राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के अनेक पदाधिकारी उपस्थित थे।

1951 में जन्में प्रो० दीपक पेन्टल को 'प्रो० सालिगराम सिन्हा मेमोरियल लेक्चर मेडल' देकर सम्मानित किया गया। प्रो० पेन्टल को बधाई।

(2) 13 जनवरी 1998 को 9 वां 'प्रो० एन० आर० धर मेमोरियल लेक्चर यू एस ए से पधारे डॉ० लालजी मिश्र जी द्वारा दिया गया। डॉ० मिश्र डिवीजन ऑव एण्टीवाइरल ड्रग प्रोडक्टस, रॉक विले, मैरीलैण्ड में वाइरालोजिस्ट हैं। उनके व्याख्यान का विषय 'एड्स : पैथोजेनेसिस, डिटेक्शन एण्ड प्रिवेंशन' था। डॉ० लाल जी मिश्र ने जटिल विषय को बड़े ही सुन्दर ढंग से रंगीन पारदर्शी चित्रों के माध्यम से समझाया। व्याख्यान के आयोजक, डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी ने मुख्य वक्ता, सभाध्यक्ष प्रो० उमाशंकर श्रीवास्तव, कुलपति डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी सहित उपस्थित विद्वतजनों के प्रति आभार प्रगट किया।

(3) 16 जनवरी 1998 को परिषद् के पूर्व प्रधानमंत्री एवं वर्तमान उपसंभापति डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी को इलाहाबाद विश्वविद्यालय, के कुलपति का पदभार ग्रहण करने के उपलक्ष में परिषद् की ओर से एक सम्मान समारोह में मानपत्र प्रदान किया गया। सभा की अध्यक्षता की डॉ० डी० डी० पंत ने। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय के अनेक विद्वान अध्यक्ष एवं प्रोफेसर उपस्थित थे। डॉ० हनुमानप्रसाद तिवारी जी ने हर प्रकार से परिषद् को आगे बढ़ाने के प्रयासों में सहायता करने का आश्वासन दिया।

(4) 18 जनवरी को 'स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती स्मृति व्याख्यान' सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। व्याख्यान इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो० बी० डी० गुप्त द्वारा दिया गया। प्रो० बी० डी० गुप्त विशेष रूप से लखनऊ से इसी व्याख्यान के निमित्त आये थे। व्याख्यान का विषय था- "प्रकृति में हस्तता"। विषय गूढ़ था किन्तु प्रो० गुप्त ने व्याख्यान को अत्यंत सरल एवं सरस बनाकर प्रस्तुत किया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के विद्वान अध्यापकों के अतिरिक्त आर्य समाज से संबंधित अनेक गण्यमान लोग एवं विदुषियाँ उपस्थित थीं।

(5) परिषद् की जोधपुर शाखा की उपसभापति श्रीमती डॉ० सुशीला राय जी ने जोधपुर शाखा में 36 आजीवन सभ्य बनाये हैं और 5508.00 रुपयों की राशि परिषद् को भेजी है। सुशीला राय एवं जोधपुर शाखा के अन्य पदाधिकारियों को बहुत-बहुत बधाई।

(6) जोधपुर शाखा की नवगठित कार्यकारिणी ने अपना पदभार सं भाल लिया है। सभापति-डॉ० रामगोपाल, उपसभापति-डॉ० सुशीला राय, प्रधानमंत्री-दुर्गा दत्त ओझा, एवं इंजीनियर श्री के० एम० एल० माथुर, संयुक्त मंत्री-श्री राकेश श्रीवस्तव, कोषाध्यक्ष-श्री नरेन्द्र बोहरा, परामर्शदाता श्री भैरूबक्श पुरोहित, श्री मनीष मिश्र, श्री प्रदीप कुमार भटनागर आदि निर्वाचित हुए हैं। सभी को बधाई।

इस प्रकार कुल मिलाकर पिछला महीना काफी अच्छा रहा। मौसम पहले से बढ़िया हो गया है। ठंडक (पाले) से अनेक फ़सलों और शोभाकर पेड़-पौधों को क्षति हुई है। किन्तु सूरज निकलने के साथ ही आशा की नई किरण फूटी है। यह शुभ लक्षण है। शेष फिर...

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

महान वैज्ञानिक नीलरत्न धर

प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल'

अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान
कुलभास्कर आश्रम डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद-211001

नीलरत्न धर महान वैज्ञानिक, प्रशासक, शोध धन।
त्याग तप के पुरोधा योजनाबद्ध सतत सृजन ।।
शोधकर्ता, श्रेष्ठ वक्ता, संपादक, लेखक सुजान।
देश और विदेश की विज्ञान संस्थाओं के प्राण।।
मृदा को उर्वर किया निज शोध से अनुपम विशिष्ट।
सरलम विधियाँ निकाली कृषि में अब तक थीं जो क्लिष्ट ।।
राष्ट्र की गरिमा बढ़ाई तुष्ट वैज्ञानिक विगत ।
शोध सार्थक कर विविध विज्ञान कृषि में तत्वगत ।।
त्याग, सेवा श्रेष्ठ साधक बन दिया जो दिव्य दान।
अमर स्मृति पट सा खड़ा साक्षात् शीला संस्थान।।
सूक्ष्म तन से दे रहे आशीष बन वे महाकाल।
सदा होगा पल्लवित पुष्पित सुतरुवर वट विशाल।।
हम सभी सद्भाव श्रम से सतत तरु सिंचन करें।
गुरुजनों की हम अनादि परम्परा बर्धन करें।।
तभी गुरु ऋण से उऋण होने का अवसर आयेगा।
छात्र शीलाधर का जब संस्था स्वयं बन जायेगा।

क्या ब्राह्मी भी पेटेन्ट होगा?

एन० के० बोहरा एवं श्रीमती रेखा दाधीच

प्लाट न०. 389, गली नं० 101, मिल्कोन कॉलोनी, पाल रोड, जोधपुर (राजस्थान)

प्रचीन काल से ही भारत में वृक्षों का महत्व रहा है। पौराणिक कथाओं एवं 'वेदों' में भी वृक्षों के सामाजिक, आर्थिक तथा चिकित्सकीय महत्व का उल्लेख मिलता है। 'भावप्रकाश', 'निघण्टु' आदि में नीम, हल्दी, गुग्गल, आँवला, ब्राह्मी आदि के ओषधीय महत्वों के वर्णन किये गये हैं।

ब्रह्मी, जिसे वानस्पतिक भाषा में **बेकोपा मोनेराई** कहते हैं, "स्क्रोफुलैरियेसी" कुल का सदस्य है। **बेकोपा** की 20 से अधिक प्रजातियाँ झाड़ियों के रूप में विश्व के गर्म प्रदेशों में मिलती हैं जिसमें से 3 प्रजातियाँ भारत में भी मिलती हैं। ब्राह्मी को संस्कृत मे नीरा-ब्राही, बंगाली में बांही-सेक, मराठी, तमिल व मलयालम में नीरब्राही, कन्नड़ में नीरूबासी कहते हैं।

सम्पूर्ण पादप के भागों का उपयोग स्थानीय ओषधियाँ बनाने में किया जाता है तथा इसे मुख्यतः तंत्रिकीय ओषधि के रूप में तथा मिर्गी, उन्माद (पागलपन) के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है। कोमन (1919) ने ब्राह्मी से एक औषधियुक्त घी तैयार किया था जिसे "ब्राह्मी घीरत" कहा गया तथा उसे हिस्टीरिया व मिर्गी के उपचार में उपयोगी पाया गया। एक अन्य वैज्ञानिक बोस ने इसकी सूखी पत्तियों के पाउडर को अस्थमा, तंत्रिकीय अवयान व अन्य रोगों में उपयोगी पाया है। इसका असर एक अन्य ओषधि "स्ट्राइकनीन" के समान होता है तथा इसे "कॉर्डियो टॉनिक" के रूप में भी उपयोग में लाया जा सकता है। नक्स वोमिका व स्ट्राइकनीन के अधिक उपयोग से तंत्रिकाओं में प्रतिक्रिया-शक्ति कम हो जाती है। परन्तु ब्राह्मी से इस प्रकार का कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होता है। वैज्ञानिकों ने ब्राह्मी से एक ऐल्केलॉइड "ब्राह्मीन" निकाला है, जिसका प्रभाव "स्ट्राइकनीन" के समान ही है तथा यह अपेक्षाकृत कम विषैला भी है।

अमेरिका में ब्राह्मी

'पीच बेरी क्लेरिटी', 'क्लियर योर माइन्ड', 'गॉटू काला फ्राम इंडिया', 'इनहैन्स क्लेरिटी एण्ड मेडिटेशन हेवनली विथ पीच एण्ड ब्लेकबेरी जूसेज'- इस प्रकार के लेबल अमेरिका में ब्राह्मी की बोतल के साथ लगे मिलते हैं।

अमेरिका की कैलिफोर्निया स्थित कम्पनी 'मिसेज विगलैस रॉकेट जूस कम्पनी', जो इस प्रकार के पेय पदार्थों को अमेरिका में उत्पादन करने वाली प्रथम कम्पनी है, के विज्ञापन में यह भी लिखा जाता है कि यह पेय 'भारतीय पेय' है, जो ब्रह्मी द्वारा तैयार किया गया है। यह भारतीय योगियों द्वारा उपयोग में ली जाती थी। अमेरिका में इसे प्रायः सभी लोग एक पेय के रूप में उपयोग करते हैं।

भारत में हाल ही में सी० डी० आर० आई०, लखनऊ ने 'मेमोरी प्लस' के नाम से एक उत्पादन आरम्भ किया है। कई और भरतीय कम्पनियाँ भी इस प्रकार के उत्पादों के निर्माण में आगे आ रही हैं। परन्तु भरत में इसको एक ओषधि के रूप में ही उपयोगी माना जा रहा है तथा भारतीय कम्पनियाँ इसे एक पेय के रूप में प्रचारित करने में सक्षम नहीं हो सकी हैं। 'डाबर रिसर्च फाऊन्डेशन' के अध्यक्ष आनन्द

नारायण व अन्य इसका कारण "भारत के बाज़ारों में ओषधियुक्त उत्पादों को मुफ्त रूप से पेय के रूप में न बेच सकने का भारतीय कानून" बताते हैं जबकि 'हिमालय ड्रग कम्पनी' के विजय कुमार इस प्रकार के उत्पादों को सरकारी स्वीकृति न मिलने का कारण बताते हैं। आयुर्वेदिक, यूनानी व सिद्ध दवाओं की तकनीकी कमेटी के अध्यक्ष वैद्य बालेन्दू प्रकाश के अनुसार इस प्रकार का कोई बंधन नहीं है तथा भारत में आयुर्वेदिक दवाओं के लिये एक अलग से लाइसेंसिग अथॉरिटी है जो कि उत्पादों की हितैषी है। इस प्रकार भारत में विभिन्न प्रकार के विवादों के चलते ब्रह्मी के उत्पाद बेन्ट्रो टेबलेट (झण्डू फार्मास्यूटिकल उत्पाद), मेन्टॉड (हिमालय ड्रग कम्पनी), मेमोरी प्लस (सी० डी० आर० आई०, लखनऊ) आदि दवाओं के रूप में ही उपलब्ध हैं तथा आम जनता तक पेय के रूप में प्रयुक्त नहीं हो पाये हैं।

जहाँ ब्राही एक पेय के रूप में अमेरिका में प्रयुक्त की जा रही है वहीं भारतीय उद्योगपतियों एवं सरकार के विवाद के बीच भरतीय बाज़ार में ब्राह्मी महज एक ओषधि बनकर रह गई है। यदि इस प्रकार का विवाद न निपटाया गया तो एक और भारतीय पौधा ब्राह्मी भी अमेरिका द्वारा पेटेन्ट करवा लिया जायेगा तथा नीम, हल्दी के बाद ब्रह्मी तीसरा ऐसा पौधा होगा, जो भारतीय होते हुए भी तथा भारतीयों द्वारा वर्षों से प्रयोग में लाये जाने के बावजूद अमेरिका द्वारा पेटेन्ट किया जायेगा।

अभी हॉल में सी० एस० आई० आर० के अथक प्रयासों से हल्दी का अमेरिकी पेटेन्ट रद्द हो गया है, परन्तु नीम का पेटेन्ट अभी भी अमेरिकियों के पास है। ब्राह्मी का अमेरिका के नागरिकों द्वारा किया जा रहा उपयोग तथा उसका प्रचार निश्चित रूप से भारतीयों के लिए खतरा है। अमेरिका की पैनी एवं कूटनीतिक दृष्टि ब्राह्मी पर है तथा भारतीयों को इसकी रक्षा हेतु अभी से प्रयास करने की आवश्यकता है। ब्राह्मी को दवा की तरह नही वरन् प्रत्येक दिन पेय के रूप में लेने से मस्तिष्क की पेशियों का विकास होगा व याद रखने की शक्ति बढ़ेगी।

गन्ने का रस : मात्र पेय ही नहीं ओषधि भी

धनंजय श्रीवास्तव

रामपुर कोटवा बाज़ार, कुशीनगर-274305 (उत्तर प्रदेश)

गन्ने का रस बिरला ही कोई ऐसा हो जिसे अच्छा न लगता हो । अपने मिठास के कारण यह सभी को प्रिय है । गन्ने के रस की इस लोकप्रियता की कहानी शहर और कस्बों के हर गली और चौराहों पर लगे गन्ने के रस बेचने वाले ठेले खुद ही कहते हैं ।

जिसे हम लोग गन्ना या ईख कहते हैं उसे वैज्ञानिक लोग सैकेरम ऑफिसिनैरम कहते हैं । सैकेरम ऑफिसिनैरम को भिन्न-भिन्न भाषाओं में अलग-अलग नामों से जाना जाता है । संस्कृत में इसे 'दीर्घच्छस', 'भूसिरस,' 'असिपम', तथा 'मधुतृण' कहते हैं, तो वहीं बंगला में "इक्षु" या "आक" कहते हैं । मलयालम में इसे "ऊँस" कहते हैं । इसे तेलगु में "चरेकु" जब कि तमिल में लोग इसे "कारम्बू" नाम से जानते हैं । फारसी बोलने वाले लोग इसे "नैशकर" कहकर सम्बोधित करते हैं और अंग्रेजी में "सुगरकेन", जो आप

जानते ही हैं।

आप सोच रहे होंगे कि गन्ने का रस इतना लोकप्रिय क्यों है ? क्या खास बात है गन्ने के रस में ? जहां 100 ग्राम भैंस का दूध पीने से 117 कैलोरी ऊर्जा मिलती हैं, वहीं 100 ग्राम गन्ने का रस पीने से 210 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है । इतना ही नहीं, गन्ने के रस में विटामिन ए, बी और सी के अतिरिक्त खनिज लवण भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है । गन्ने के रस के ओषधीय गुण के कारण 'आयुर्वेद' में इसे सेहत के लिए विशेष उपयोगी बताया गया है और यही सब गुण गन्ने की लोकप्रियता का कारण है ।

"पीलिया" रोग या "जांडिस" में डॉक्टर मरीज़ को गन्ना चूसने या गन्ने का रस पीने की सलाह देते हैं । जानते हैं क्यों ? गन्ने का रस पीलिया रोग की 'रामबाण' ओषधि है, क्योंकि यह यकृत की कार्यक्षमता को बढ़ाता है । गन्ने के रस में पाया जाने वाला लौह तत्व यानी आयरन शारीरिक कमज़ोरी तथा रक्ताल्पता में काफ़ी फायदेमन्द होता है ।

भूख बढ़ाने तथा पाचन-क्रिया ठीक रखने के लिए गन्ने का रस एक टॉनिक का कार्य करता है । आप की थकावट को भी गन्ने का रस तुरन्त दूर करता है ।

"पथरी" की बीमारी जो आजकल आम बीमारी बनती जा रही है में भी गन्ने का रस काफी कारगर पाया गया है । गन्ने का रस पीने से पेशाब अधिक मात्रा में होता है और इसी कारण गुर्दे की खराबी और मूत्रावरोध होने पर इसका सेवन लाभदायक होता है ।

शायद आप को न पता हो कि गन्ने का रस स्मरण शक्ति बढ़ाता । गन्ने के रस में फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में होता है और इसी कारण इसके प्रयोग से मस्तिष्क की कार्य-क्षमता तथा स्मरण-शक्ति में वृद्धि होती है ।

गन्ने के रस के प्रयोग से हृदय की कार्यक्षमता बढ़ती है, और यदि आपकी हिचकियां बन्द होने का नाम नहीं से रहीं तो वह भी इसके प्रयोग से बन्द हो सकती हैं ।

गन्ने के रस के इतने अच्छे गुण और सस्ता होने के बावजूद यदि आप इसका उपयोग नहीं करते हैं तो आप शायद अपवाद हैं और नहीं तो मधुमेह या दमा के रोगी, क्योंकि गन्ने का रस कफ़कारक है और इसी कारण दमा और अन्य श्वास सम्बन्धी रोगियों को इसका सेवन न करने की सलाह दी जाती है । मधुमेह के रोगियों को भी इसका सेवन नहीं करना चाहिए ।

गन्ने के रस का सेवन किस तरह किया जाए ? मशीन से निकलवाकर या मुंह से चूसकर ? अधिकतर लोग चूसने की ही राय देते हैं, क्योंकि इसके कई फ़ायदें हैं, दांतों से छिलकर और चूसकर खाने से उसमें लार की पर्याप्त मात्रा मिल जाती है, जिससे वह शीघ्र ही पच जाता है । मुंह से चूसकर खाने से दाँतों को भी लाभ पहुँचता है, क्योंकि चूसने से दाँतों के व्यायाम के साथ-साथ मसूढ़ों की मालिश भी हो जाती है । एक और लाभ होता है-- गन्ने को चूसकर खाने पर जो रस हमें प्राप्त होता है वह शुद्ध होता है, जब कि मशीन से गन्ने की जड़, छिलके और गाँठों का रस निकल जाता है, जिससे रस दूषित हो जाता है ।

लेकिन यह सब जान लेने के बाद भी आप की मर्जी ठेले के पास भीड़ में खड़े होकर मशीन से रस निकलवाकर पीने की है, तो ठीक है, आप की मर्जी । लेकिन ठेले के पास जाएं तो इतना अवश्य ध्यान रखें कि यदि ठेले पर रखे छिले हुए गन्नों पर मक्खियां भिनभिना रहीं हों तो बिना धुलवाए रस न निकलवाएं । रस निकलवाने के पहले यह भी देख लें कि गन्ने में कीड़े या कोई रोग तो नहीं लगा है । यदि ऐसा है तो उस भाग को तुरन्त कटवा कर फेंकवा दें ।

अब यह आप पर निर्भर है कि आप गन्ने के रस का सेवन किस तरह करते हैं । लेकिन इसका सेवन आप करें ज़रूर क्योंकि गर्मियों के लिए यह शीतल पेय गुणकारी होने के साथ ही साथ सस्ता और आसानी से उपलब्ध भी है ।

पौधों का विचित्र संसार

डॉ० अरुण आर्य

प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय,
म० स० राव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा, गुजरात —390002

1. काई की खेती

काई या अल्गी अथवा शैवाल बहुत ही सरल हरे रंग के पौधे हैं । विकास-क्रम में यह सबसे निम्न स्तर पर रखे गये हैं । अपनी उपयोगिता के आधार पर यह मछलियों या जलचरों के आहार के रूप में 'अगर-अगर' अथवा 'एल्जिन' नामक पदार्थों के औद्योगिक उत्पादन तथा जैव उर्वरक (Bio-fertilizer) के रूप में सर्वविदित हैं ।

काई जो कि लवणों एवं अन्य खाद्य पदार्थों का भंडार है, बढ़ती हुयी आबादी के लिये एक प्रमुख खाद्य के रूप में चीन, जापान, कोरिया आदि देशों में खेती हेतु चुनी जा रही है । **अल्वा** (*Ulva*), **डिक्टियोटा** (*Dictyota*) एवं फियोफाइसी कुल के अनेक शैवालों की समुद्र के पानी में खेती की जाती है । फिर शैवालों को निकाल कर उन्हें साफ पानी से धोकर चौकोर ठोस रूप में सुखा कर पैक कर दिया जाता है । इस प्रकार शैवालों को लम्बे समय तक रक्खा जा सकता है । फिर उन्हें उपयोग के समय सैन्डविचेज में लगाकर या पर्तों (Sheets) को पानी में उबाल कर सूप बनाने के काम में या रसेदार सब्ज़ी बनाने में उपयोग करते हैं । प्रोटीन, लवण एवं विटामिनों के सस्ते स्रोत के रूप में इनकी खपत भारत जैसे देश में होगी, ऐसी आशा है ।

इसके पूर्व भी **क्लोरेला** (*Chlorella*) जैसी काई को खाने के काम में उपयोगी पाया गया है । अंतरिक्ष तक में इसे ले जाकर उगाने के प्रयास किये जा रहे हैं ।

2. गुलदस्ता गुलाब का

ग्रीक कहावत के अनुसार पृथ्वी ने सर्वप्रथम गुलाबों को पैदा किया जो कि इस बात का सबूत था कि वह भी देवताओं के समान सुन्दर वस्तुओं को बना सकती है । गुलाब फूलों का राजा कहलाता है । कवियों ने इसकी प्रशस्ति में अनेक गीतों की रचना की है और इसे प्रेम का प्रतीक कहा है । मगर इसाइयों के लिये यह आशा और विश्वास का प्रतीक रहा है । गोथिक गिर्जाघरों में इसे खिड़कियों में बनाया जाता था । यूरोप एवं अन्य यूरोपियन देशों में इसे गुप्तता (Secrecy) का प्रतीक समझा जाता था । वहाँ नौकर अपने कान के पीछे गुलाब लगाते थे जो इस बात का प्रतीक था कि उन्होंने वहां जो कुछ सुना उसे दुबारा नहीं दोहरायेंगे । जर्मन घरों में भी यदि खाने की मेज़ में गुलाब का गुलदस्ता रखा है तो वहां पर खुलकर बातें की जा सकती हैं । गुलाब के फूल की विशेष संरचना ही इस छिपे हुये संदेश को प्रकट करती है । इसकी कली में कुछ सीक्रेट है, इसकी पंखुड़ियों से लोगों को यही भ्रम होता है ।

गुलाब की खेती 5000 वर्षों से की जा रही है । मिस्र में मकबरों में गुलाब दफ़न किया हुआ मिलता है । श्री जे० एच० मेकफारलैन्ड (1958) के अनुसार विश्व में 7,562 विभिन्न गुलाब की किस्में हैं, इसके अतिरिक्त आज हज़ारों हाइब्रिड गुलाब हैं जो कि आधे इन्च से लेकर सात इन्च से अधिक व्यास के हो सकते हैं । यह आइओवा, उत्तरी डकोटा एवं कोलम्बिया का राष्ट्रीय पुष्प है ।

इसके विविध उपयोग हैं । रोमन लोग इसकी शराब बनाते थे, इसकी पंखुड़ियों को सलाद के रूप में 1700 ई० में खाया जाता था । इसकी सुगन्ध आइसक्रीम में प्रयुक्त होती थी । भारतीय राजा-रानियां नहाने के पानी में इसको डालते थे । गुलाब का तेल ओषधि के रूप में और इसका इत्र बनाया जाता है । शरबतों की सुगन्ध में इसका उपयोग किया जाता है । गुलाब के फल (Rosehips) विटामिन सी का प्रचुर भंडार हैं । इन्हें चाय के साथ उपयोग किया जा सकता है ।

3. स्वाद के लिए 'ट्रफल्स'

ट्रफल्स (Truffles) या ट्यूबर को ज़मीन के अन्दर का खज़ाना कहा जाता है । इसका स्वाद इतना अच्छा होता है कि इसे बहुत महंगे दामों में बेचा जाता है । यह काले रंग का बेडौल कवक है जो कि एस्कोमाइसिटीज (Ascomycetes) समूह में आता है । यह दक्षिणी फ्रांस में बहुतायत से पाया जाता है । पेड़ों के चारों ओर ज़मीन में 3 इंच नीच होने के कारण इसको खोजना कठिन है । इसकी एक विशेष गंध होती है । इसे सुअर और कुत्ते सरलता से पहचान लेते हैं । सुअर को उस स्थान पर लाकर छोड़ देते हैं जहां ट्रफल्स होने की उम्मीद हो । सुअर या कुत्ते जहां रुक कर कुछ खोदते हैं वहां से यह कवक निकाल लिया जाता है । सिखाये हुये कुत्ते एवं सुअर भी ट्रफल्स बहुत पसन्द करते हैं अतः उन्हें इनसे दूर रखा जाता है । सुअर को इस प्रकार प्रशिक्षित करना कि वह ट्रफल्स को न खायें, एक कठिन कार्य है । इसमें 2 से 3 वर्ष का समय भी लगता है ।

ट्रफल्स नामक कवक की गिनती संसार के अत्यधिक कीमती प्राकृतिक खाद्यों में की जाती है ।

4. जी हाँ हमें भी नॉनवेज चाहिए

हमारे लिये वनस्पति अधिक उपयुक्त है अथवा मांस, यह सदैव से चर्चा का विषय रहा है । अधिकतर खाद्य विशेषज्ञों की राय ज़्यादा से ज़्यादा वनस्पति उपयोग करने के पक्ष में है । परन्तु क्या आप जानते हैं कुछ पौधे मांसाहारी होते हैं जो कीड़े-मकोड़ों को खाते हैं ?

किवदन्तियों के अनुसार जंगलों में ऐसे पेड़ व लतायें होती थीं जो मनुष्यों को पकड़ सकती थीं । आज सारे विश्व में इस प्रकार का कोई पेड़ नहीं, उपन्यासों की कोरी कल्पना भर है । परन्तु अमेरिका, अफ्रिका एवं भारत के आसाम एवं मेघालय प्रान्तों में अनेक कीटभक्षी पौधे पाये जाते हैं । गुजरात के बड़ोदरा शहर में स्थित हरनी तालाब में भी **यूट्रीकुलेरिया** (*Utricularia*) अथवा ब्लैडरबर्ट नामक पौधा पाया जाता है । सबसे प्रमुख कीटभक्षी पौधा है **नेपन्थीज** (*Napanthes*) अथवा पिचर प्लान्ट । अमेरिका में एक अन्य पौधा **सारसीनिया** (*Sarccinia*) भी अपनी पत्तियों को घड़े के रूप में परिवर्तित कर लेता है । भारत की खासी पहाड़ियों (मेघालय) में पायी जाने वाली प्रजाति **नेपन्थीज खासियाना** कहलाती है । इसके घड़ों में ऊपर एक आकर्षक ढक्कन होता है जो खुल और बन्द हो सकता है । ऊपरी मुंह के थोड़ा नीचे कांटों का एक घेरा होता है, इसके नूकीले सिरे नीचे की ओर होते हैं । ऐसा विश्वास है कि बरसात में इन घड़ों में पानी भर जाता है । पौधा भी पाचक रसों को इसमें स्रावित करता है जो कीड़ों को पचा सकता है । जापान के कुछ वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है कि इस द्रव में एक विशेष प्रकार के जीवाणु वृद्धि करते हैं और इनकी यह क्रिया पाचक रसायनों का निर्माण करती है ।

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन इन कीट-भक्षी पौधों से बहुत प्रभावित था । उसने इनका विस्तृत अध्ययन किया, जब डार्विन को उनके एक मित्र ने एक कीटभक्षी पौधे की 39 पत्तियाँ भेजीं । उसमें 142 मरे हुये कीड़े पाये गये । यह कीटभक्षी उन स्थानों पर पाये जाते हैं जहां ज़मीन में नाइट्रोजन (Nitrogen) की कमी होती है । साधारतया कुछ कीड़ों को पकड़ने के बाद इनकी पत्तियां पेड़ से गिर जाती हैं।

5. कागज़ कहां से आया ?

कागज़ की कहानी 5000 वर्ष पुरानी है । मिस्र के निवासी नील नदी के किनारे पाये जाने वाले **पेपाइरस** (*Papyrus*) पेड़ के तनों की छाल में लिखते थे । पेड़ के तने की पतली पर्तों को एक-दूसरे के किनारे रख कर उन्हें गोंद से

बहुभक्षी कीट टिड्डी और उसका नियन्त्रण

सहदेव चौहान, डॉ० मो० युसुफ एवं नवीन बोहरा

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, प्लाट नं० 43-ए ए० सी० एफ० सी० कॉलोनी, लोको शेड, जोधपुर —342001 (राजस्थान)

विश्व में करीब 5000 से अधिक प्रकार के कीट विभिन्न फ़सलों एवं वृक्षों को हानि पहुँचाते हैं। इन कीटों में कई बहुभक्षी कीट भी हैं। बहुभक्षी कीटों में से एक है टिड्डी, जो गण आर्थोप्टेरा के एक्रिडीडी कुल का कीट है। टिड्डियों का वर्णन मिस्र, हिब्रू एवं ग्रीक तथा बाइबिल नामक साहित्यों में भी मिलता है। इसे अँग्रेजी में लोकस्ट (Locust) कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ 'प्लोग' है एवम् लैटिन भाषा में इसका अर्थ 'जला हुआ' होता है।

प्रायः सभी प्रकार की टिड्डियाँ हानिकारक होती हैं। इनकी बनावट लम्बी एवं चपटी होती है। इनके स्पर्श सूत्र छोटे-छोटे एवं टार्सी तीन खण्डों में विभाजित रहती है। इनकी धड़ का अग्र भाग बड़ा एवं स्पष्ट होता है। अग्र छोटे पंख मोटे एवं रंगीन होते हैं, जो उदर को ढंके रहते हैं। इस कीड़े की दो प्रावस्थाएँ पायी जाती हैं, जिसमें टिड्डा एकल प्रावस्था में सीमित क्षेत्र में ही पहुँचता है। इसके विपरीत टिड्डी समूह बनाकर यूथी प्रावस्था में होती हैं। इसके अतिरिक्त टिड्डी में रंग एवं शारीरिक भिन्नतायें भी पायी जाती हैं।

क्षति एवं महत्व

टिड्डी की दोनों वयस्क एवं फड़का (Hopper) अवस्थाएँ अति हानिकारक होती हैं। यह कीट दल अपने पैदाइशी स्थान से सैकड़ों, हज़ारों मील दूर आकर फ़सलों को तथा अन्य वनस्पतियों को खाकर सम्पूर्ण नष्ट कर देता है। टिड्डी दल की विशालतम संख्या, उड़ने की क्षमता एवं इनके द्वारा क्षति समय-समय पर आँकी गई है। एक सूचना (लाल (1961) के अनुसार 1961 में एक बार टिड्डी दल ने लगभग महामारी का रूप ही धारणकर लिया था। 50 देशों में 18-72 करोड़ मील तक 31 करोड़ जनसंख्या और एक चौथाई अफ्रीका व एशिया की तथा सारी दुनिया की कुल जनसंख्या के 1/8 भाग को क्षतिग्रस्त कर दिया था। एक टिड्डी आम तौर से एक दिन में अपने भार के बराबार हरियाली चट कर देती है।

औसतन टिड्डी दल के 16 से 32 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में आने के सम्बन्ध में अभिलेख मिलते हैं। किन्तु यदि मौसम अनुकूल हो तो, टिड्डी दल 60 से 100 किलोमीटर की दूरी एक दिन में तय कर सकने में। पूर्णरूपेण सक्षम होता है।

टिड्डी दल आने के क्रम

प्रारम्भ में कीट एक-एक करके एकत्र होते हुए झुण्ड का रूप धारण कर लेते हैं फिर भोजन की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान अनियमित क्रम से उड़ते हैं। भारत में टिड्डी दल का प्रकोप 17-18 बार हो चुका है। सर्वप्रथम भारत में इसका प्रकोप सन् 1812 में हुआ था। सन् 1959 तथा 1960 में आये टिड्डी दलों ने राजस्थान में 9600 तथा 59200 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में अण्डे दिये थे। पिछला टिड्डी दल 1993 में राजस्थान एवं गुजरात में देखा गया था। 1997 में भी अभी राजस्थान के सीमान्त ज़िलों में टिड्डी दलों को देखा गया है। **[शेष पृष्ठ 22 पर देखें]**

टिड्डियों की जातियाँ

कुल 11 प्रजातियों की टिड्डियाँ पायी जाती हैं, जिनमें से मुख्य प्रजातियों का विवरण निम्न है।

1. रेगिस्तानी टिड्डी : यह टिड्डी रेगिस्तानी इलाकों में पायी जाती है। इसका वैज्ञानिक नाम **'सिस्टोसर्का ग्रिगेरिया** (*Schistocerca gregaria Forsk*) है। इनके सिर मज़बूत होते हैं व आँखों में 6-7 खड़ी धरियाँ होती हैं, अप्रवासी अवस्था में इनका रंग पीला एवं प्रावीस अवस्था में गुलाबी होता है।

यह सूखे घास के मैदानों तथा रेगिस्तान के उन क्षेत्रों में, जहाँ अर्ध शुष्क मौसम रहता है, पाई जाती हैं। इसका क्षेत्र (राजस्तान से शुरू होकर) भारत समेत पाकिस्तान, बलूचिस्तान, ईरान, अरब, उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका, साइप्रस तक फैला है।

2. प्रवासिनी टिड्डी : इस टिड्डी का वैज्ञानिक नाम **लोकस्टा माइग्रेटोरिया** (*Locusta migratoria L*) है। यह उत्तरी आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, यूरोप, एशिया मैडागास्कर, सीरिया, रोडेशिया, नाइजीरिया में पायी जाती हैं। इनकी आँखों पर धारियाँ नहीं होती हैं। अनका वयस्क रेगिस्तानी टिड्डी से छोटा होता है।

3. बम्बइया टिड्डी : यह **पतंगा सक्सिनेटा** (*Patanga succinata*) वैज्ञानिक नाम से जाना जाता है। यह टिड्डी भारत के अलावा श्रीलंका तथा मलेशिया में पायी जाती है। साधारणतः यह टिड्डी दल नहीं बनाती है। इसकी आँख में 8 धारियाँ होती हैं।

इन प्रजातियों के अतिरिक्त टिड्डी की कुछ अन्य प्रजातियाँ यथा मोरोख्कन टिड्डी **डोसियास्टाउरस मोरोकानस;** आस्ट्रेलियाई टिड्डी **कोर्टोइसेटस टर्मिनिफेरा;** इटालियन टिड्डी **कॉलीप्टामस इटालिकस;** अफ्रीकी टिड्डी **लोकसटाना पर्डालिना** इत्यादि पायी जाती हैं।

जीवन-चक्र

टिड्डी की 3 अवस्थाएँ-अण्डा, हॉपर (फुदका) व वयस्क पायी जाती हैं। संगमन (mating) के तुरन्त बाद मादा अण्डे देने शुरू कर देती है। मादा रेतीली भूमि, जिसमें पर्याप्त नमी होती है, में 2-4 इंच गहराई में अपनी ओवीपोजीटर से छिद्र करके उसमें 50 से 100तक अण्डे समूह में देती है। अण्डे देने के बाद मादा एक झागदार द्रव द्वारा अण्डकोष को बन्द कर देती है। अण्डा चावल के दाने के समान 7 से 9 मिमी० लम्बा तथा लगभग 1.0 मिमी० चौड़ा होता है। अण्डे विकसित होकर फूट जाते हैं, एवं उसमें से शिशु (निम्फ) निकलते हैं। अण्डों के विकसित होने का समय भूमि में पर्याप्त नमी एवं तापमान पर निर्भर करता है। नवजात हल्के पीले रंग का होता है। निम्फ 5-6 बार त्वचा निर्मोचन (moulting) करके वयस्क अवस्था को प्राप्त करता है।

नवजात व्यस्क चमकीले गुलाबी होते हैं। कुछ सप्ताह बाद ये हल्के-पीले हो जाते हैं। गुलाबी टिड्डियाँ अधिक सक्रिय होती हैं और फ़सलों को हानि पहुंचाती हैं। पीले रंग के दल अधिक हानि वनस्पतियों को खाकर तो नहीं पहुँचाते, किन्तु चूँकि ये अण्डे देते हैं इस कारण अधिक भयंकर होते हैं। एक वर्ष में टिड्डी दो बार अपना जीवन-चक्र पूरा करती है।

टिड्डी-निरोधक संगठन
(Anti-Locust Organisation)

टिड्डियों के नियन्त्रण का संगठन प्राविधित (Technical) पहलू के समान ही महत्वपूर्ण है क्योंकि टिड्डियाँ बहुभक्षी होती हैं। इनके नियंत्रण का उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों का होता है।

भारत सरकार के टिड्डी चेतावनी संगठन भी नियमित रूप से पाकिस्तान एवं अन्य देशों में टिड्डी दल के अभिगमन की दिशा एवं दलों की संख्या के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करता है। इस प्रकार ये सूचनायें भारत के राज्यों में ही नहीं बल्कि दूसरे देशों एवं भारत के बीच प्रसारित की जाती हैं।

टिड्डी आने पर क्या करें?

टिड्डी दल को जैसे ही आप देखें निकट की ग्राम पंचायत, पुलिस थाना, तहसील, ग्राम-सेवक, कृषि विस्तार

अधिकारी को तुरन्त सूचित करें, इसके साथ ही निम्न जानकारी अवश्य दे। टिड्डी दल, ग्राम का नाम, तहसील, टिड्डियों का रंग, आने-जाने दिशा एवं तारीख आदि।

1. वयस्क टिड्डियों को भारी शोर-गुल, टीन के डब्बे बजाकर, हवा में कपड़े हिलाकर या अन्य उपाय से फ़सलों पर बैठने से रोकें।

2. खाई खोदकर : हॉपर के आगे बढ़ने की दिशा में थोड़ी -थोड़ी दूरी पर खाई खेदनी चाहिए, जिससे वे उनमें गिर जायेंगी। उसके बाद मिट्टी से खाई को भर देना चाहिए, जिससे वें स्वतः मर जायेंगी।

3. झाड़ियों पर आराम कर रहीं टिड्डीयों को ज्वालक यन्त्रों या मशालों से जला देना चाहिए।

4. ज़हरीले बेट (Poisonous bait) का छिडकाव झाड़ियों पर कर देना चाहिए, जहाँ रात्रि में टिड्डियाँ विश्राम करेंगी।

5. फ़सलों पर नीम के बीज के 0.1% घोल का छिडकाव करने पर टिड्डियाँ उन्हें खाती नहीं हैं।

6. अण्डों को नष्ट करना : उन क्षेत्रों का पता लगाना चाहिए जहाँ अण्डे दिये गए हों तत्पश्चात् उन क्षेत्रों में पेराथियान या बी० एच० सी० पाउडर का भुरकाव 25 से 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर मान से करना चाहिये।

7. खेत में उतरी हुई टिड्डियाँ गुलाबी रंग की हों तो उन्हें कुचल कर, कीटनाशक दवा का छिड़काव-भुरकाव शक्ति चालित यन्त्रों, हवाई जहाज़, हैलीकॉप्टर आदि से युद्ध-स्तर पर करना चाहिए।

विज्ञान लेखक सम्मानित

विज्ञान लेखक एन० सी० जैन, (आजीवन सम्य, विज्ञान परिषद् प्रयाग) को इस वर्ष के प्रतिष्ठित भारतीय विज्ञान कॉंग्रेस एसोसियेशन के 'डॉ० बी० सी० देव लोकप्रिय विज्ञान मेमोरियल पुरस्कार' के लिये चुना गया। यह पुरस्कार इन्हें जनवरी 1998 में हैदराबाद में आयोजित भारतीय विज्ञान सम्मेलन के अवसर पर प्रदान किया गया। इस पुरस्कार में पाँच हज़ार रुपये नक़द एवं एक प्रशस्ति-पत्र प्रदान किये जाते हैं।

भारतीय विषयों पर वैज्ञानिक लेखन के लिये 'कैमलाईन पुरस्कार' 1994 एवं सूचना विज्ञान के लिये युवा सूचना वैज्ञानिक के रूप में रायजादा 'मेमोरियल पुरस्कार' 1992 से सम्मानित श्री जैन प्रख्यात विज्ञान-लेखक हैं, जिनकी भारतीय विज्ञान पर आधारित लेखन एवं रेडियो प्रसारणों की संख्या 200 से भी ज़्यादा है। ये भारतीय विज्ञान लेखक एसोसियेशन के 1993 से 1996 तक सचिव भी रह चुके हैं। इनके द्वारा अँग्रेजी में लिखित पुस्तिका "विज्ञान लोकप्रियता के आयाम', जो इको ट्रांसफॉरमेशन द्वारा प्रकाशित है, काफी लोकप्रिय हुई है।

इस पुरस्कार से पूर्व सम्मानित हुए हस्तियों में डॉ० जी० पी० फोंडके, निदेशक, नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान एवं बिरला फेलो श्री दिलीप एम० साल्वी हैं।

प्रस्तुति : डॉ० एच० पी० सिंह, सचिव, इको ट्रांसफॉरमेशन, डी 7-7, सैक्टर 15, रोहिणी, नई दिल्ली -85

महासीर : विलुप्तप्राय मीन

डॉ० अमरेश चन्द्र पाण्डेय

सह-प्राध्यापक, मत्स्य विज्ञान विभाग,
नरेन्द्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैज़ाबाद-224 229

महासीर (श्रेणी टार) मीन वर्ग के आर्डर सीप्रीनीफार्मिस, कुल सीप्रीनीडी की एक प्रमुख आखेट/ भोज्य मीन है। इसकी सात प्रजातियाँ देश के विभिन्न भागों में सागर-तल से 2000 मी० की ऊँचाई (तापमान 6-35 डिग्री सें० ग्रे०) तक पायी जाती है (सारणी -1)। महासीर नाम बड़े सिर के कारण (संस्कृत शब्द महाशीर्ष) दिया गया है। शरीर पर के बड़े शल्कों के कारण इसे महासौल या महासला के नाम से भी जाना जाता है, परन्तु महासीर नाम सर्वाधिक प्रचलित है। इन मछलियों को लोग पहाड़ी नदियों में बड़े चाव से चारा खिलाते हुए देखे जा सकते हैं। रेशेदार आप्यकाएँ, पत्थर/ चट्टानों पर चिपके पदार्थ, कीट एवं छोटी मछलियाँ महासीर की प्रिय आहार हैं।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक विशालकाय (40.0-41.0 किग्रा० भार) महासीर प्रचुरता में उपलब्ध थीं परन्तु वर्ष 1975-78 के पश्चात् इनके आकार/ भार में कमी आयी है। अब पकड़ी जाने वाली अधिकांश महासीर का भार 7.8-12.5 कि० ग्रा० पाया जाता है। कभी-कभी 23.0 से 28.0 कि० ग्रा० भार की महासीर भी मिल जाती हैं।
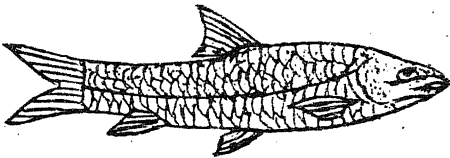
चित्र 1

गोल्डन महासीर (चित्र -1) की प्रजनन क्षमता सर्वप्रथम 700-770.5 मि०मी० की लम्बी मछलियों में विकसित हो जाती है। अधिकतम "कन्डीशन फैक्टर" तथा 'गोनैडोसोमैटिक इन्डेक्स' समान रूप से जुलाई-अगस्त में तथा प्रजनन काल जुलाई से सितम्बर तक पाया जाता है। वर्षा ऋतु में जल-भराव, तापमान में गिरावट तथा घुलनशील ऑक्सीजन में वृद्धि प्रजनन प्रारम्भ होने के लिये अनुकूल होती है। यह प्रजाति गढ़वाल में वर्ष में एक बार, हिमाचल प्रदेश में दो बार, पंजाब में तीन बार तथा भाकरा जलाशय में वर्ष-पर्यन्त प्रजनन करती हुई देखी गयी है। बालू, पत्थर के टुकड़ों से युक्त नदी-स्थल इसके प्रजनन के लिये उपयुक्त होते हैं। कम बहुप्रजता, लगभग 4000-6000 अंडे/ किग्रा० भार, के कारण प्रजनन काल में मादा की संख्या नर के अनुपात में अधिक पायी जाती है।

भ्रमण स्वभाव

गोल्डेन महासीर में तीन चरण का भ्रमण (माइग्रेशन) देखा गया है जिसमें प्रथम मार्च-अप्रैल तथा द्वितीय एवं तृतीय वर्षा काल के प्रारम्भ से लेकर सितम्बर तक पाया जाता है। प्रथम भ्रमण में ये मछलियाँ गंगा के मैदानी भागों से पर्वतीय नदियों /उपनदियों में जाती हुयी देखी जा सकती हैं। द्वितीय चरण में उपरोक्त पर्वतीय जलस्रोतों से क्रमशः अधिक ऊँचाई वाले ठंडे एवं द्रुत गति जल-धाराओं में चली जाती हैं, यहां पर प्रजनन क्रिया सितम्बर तक समाप्त हो जाती है। सितम्बर के बाद तृतीय चरण में प्रजनन-पश्चात् पुनः ये मछलियाँ

वापस गंगा के मैदानी कम ठंडे जल में चली आती हैं।

सम्भवतः जल का तापमान तथा उपलब्ध प्राकृतिक भोजन इस भ्रमण चक्र के मुख्य कारक हैं। ग्रीष्म-काल में जब मैदानी भागों में तापमान बढ़ने लगता है तब ये मछलियाँ ठंडे जल वाले पर्वतीय जल-स्रोतों में चली जाती हैं तथा शीत-काल में जब पर्वतीय जल-स्रोतों का तापमान बहुत अधिक हो जाता है तब ये पुनः ठंडे मैदानी भाग में आ जाती हैं । ठंडे जल में प्राकृतिक भोज्य-पदार्थों की मात्रा अत्यल्प होने के कारण इनका शीत-काल में अपेक्षाकृत कम ठंडे मैदानी जल में चले आना भोजन उपलब्धता तथा महासीर के जीवन-चक्र की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

महासीर ह्रास

वर्ष 1975 में राष्ट्रीय कृषि आयोग ने महासीर की गंभीर रूप से घटती संख्या पर प्रथम बार चिन्ता व्यक्त की थी। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक बड़े आकार की महासीर बहुतायत में उपलब्ध थीं। तत्पश्चात् बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण के कारण जंगलों के कटान, भूमि-क्षरण, वातावरण तथा जलीय प्रदूषण, जल-स्रोतों में गढ़ों का भर जाना, मछलियाँ पकड़ने के लिये विस्फोटकों/ रसायनों का उपयोग, प्रजनन एवं शिशु महासीर का मारा जाना तथा प्रजनन-स्थल एवं निवास-स्थान का विनाश, बाँधों का निर्माण आदि कारणोंके चलते महासीर की संख्या पकड़ी जाने वाली मछलियों के भार में चिन्ताजनक रूप से कमी आयी है यहाँ तक कि सितम्बर 1997 में आयोजित कार्यशाला में महासीर को विलुप्तप्राय घोषित करके इसके संरक्षणके विभिन्न सुझाव दिये गये, लेखक भी इस समिति का एक सदस्य था।

संरक्षण की आवश्यकता क्यों?

यह प्रजाति प्रमुख "आखेट-मीन" है तथा खाने में पौष्टिक व स्वादिष्ट होती है। यह भारतीय एवं विदेशी पर्यटकों में बहुत लोकप्रिय है। पहाड़ के मूल निवासियों के जिविकोपार्जन का मुख्य स्रोत होने के साथ ही ठंडे जल की प्रमुख मीन होने के कारण इसके संरक्षण की अत्याधिक आवश्यकता है। इस प्रजाति के विनाश से हम अपनी एक प्रमुख मीन से वंचित हो जायेंगे!

संरक्षण हेतु आवश्यक उपाय

(क) जल-स्रोतों के किनारों पर वृक्षों की कटान को रोकें तथा घास, झाड़ियों, वृक्षों आदि को लगायें जिससे भूमि-क्षरण रोकी जा सके।

(ख) जल-स्रोतों को स्वच्छ तथा प्रदूषण-मुक्त रखें।

(ग) मछली मारने के लिये विष, विस्फोटकों, रसायनों का उपयोग न करें।

(घ) स्थानीय स्तर पर "महासीर बचाओ समिति" का गठन एवं सदस्य बनकर संरक्षण संबंधी कार्यों में हाथ बटायें तथा हानिकारक गतिविधियों में लिप्त व्यक्तियों को रोकें।

(ङ) सरकारी/ गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा संचालित कार्यक्रमों में भागीदारी करके कृत्रिम प्रजनन विधि द्वारा विकसित महासीर अंगुलिकाओं को प्राकृतिक जल-स्रोतों में पुनर्वासन हेतु छोड़ें।

(च) प्रजनन काल में महासीर न पकड़ें। प्रजनक महासीर तथा बच्चों को न मारें।

संरक्षण कार्य योजना

1. अबाध गति से प्रजनकों एवं शिशु महासीर के मारे जाने को अवैध एवं गैर कानूनी घोषित किया जाय।

2. प्रजयो-काल में महासीर पकड़ने पर प्रतिबंध लगाया जाय।

3. तीस से० मी० से छोटी आकार की महासीर को पकड़े जाने से बचने के लिये बड़े छिद्र वाली जाल को ही प्रयोग करने की अनुमति दी जाय।

उपरोक्त तीनों नियमों का उलंघन करने पर कड़े कारावास तथा आर्थिक दंड की व्यवस्था होनी चाहिए।

4. नदियों पर बाँध न बनाये जायें। यदि सिंचाई

अथवा विद्युत् परियोजनाओं के लिए बाँध-निर्माण अपरिहार्य हो जाये तो मत्स्य-सीढ़ी या निकास-द्वारों का सही ढंग से निर्माण बाँधों में अवश्य किया जाय जिससे महासीर के भ्रमण एवं प्रजनन में बाधा न आने पाये।

5. कुछ विशेष क्षेत्रों को महासीर-अभयारण्य या विहार घोषित किया जाय तथा इन स्थानों में मछली पकड़ने की सभी गतिविधियों को प्रतिबन्धित किया जाय।

6. महासीर पारिस्थितिकी के संरक्षण हेतु जल-स्रोतों के किनारों पर वृक्षारोपण किया जाय जिससे भूमि-क्षरण व गाद भरने से रोका जा सके।

7. महासीर कृत्रिम प्रजनन केन्द्र भारत के विभिन्न क्षेत्रों में नदियों के पास स्थापित किये जायें जिससे कृत्रिम प्रजनन कराकर विकसित शिशुओं को जलधाराओं में छोड़ा जा सके।

राष्ट्रीय मत्स्य संसाधन ब्यूरो एवं उ० प्र० मत्स्य निदेशालय के सहयोग के ढकरानी स्थित प्रक्षेत्र पर महासीर के कृत्रिम प्रजनन का कार्यक्रम गत वर्षों में प्रारम्भ किया गया था। ओवाप्रिम नामक ओषधि 0.20 मिली०/ कि० ग्रा० (मछली के भार) की दर से मादा महासीर के शरीर में सुई के माध्यम से पहुँचाया गया, 24 घंटे पश्चात् "स्ट्रीपिंग" विधि (पेट दबाकर) से अंडे निकाल कर नर के ताज़ा वीर्य द्वारा निषेचित किया गया। निषेचित अंडों से प्राप्त शिशुओं का संवर्धन प्रक्षेत्र पर ही करके विकसित बच्चों को पाला जा रहा है। इस सफलता से विलुप्तप्राय महासीर को बचाने के प्रयास को नया आयाम मिला है। भविष्य में इन बच्चों को निदयों/ नालों/ जलाशयों में भी छोड़ा जा सकेगा।

8. महासीर जल-स्रोतों के समीप स्थित ग्रामों, शहरों के निवासियों की समितियाँ बनाकर सदस्यों को सही ज्ञान दिया जाय जिससे वे महासीर संपदा के संरक्षण की दिशा में जागरूक हों तथा पहल कर सकें। लखनऊ स्थित मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरों के सतत प्रयासों से अनेक "महासीर संरक्षण समितियाँ" गठित की गयीं जिनका उद्देश्य गोष्ठियाँ आयोजित कर, चल-चित्र प्रदर्शन द्वारा, परिचर्चा आदि के माध्यम से महासीर को बचाने के लिये स्थानीय निवासियों को प्रेरित करना था।

सारणी —1 महासीर की प्रजातियों का संक्षिप्त विवरण

वैज्ञानिक नाम	साधरण नाम	अधिकतम लम्बाई	प्राकृतिक आवास स्थल
टार-टार	डीप बाडीड महासीर	(1.2 मी०)	सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र (विशेष रूप से उ० प्र०, म० प्र०, असम, बिहार, उ० बंगाल, पंजाब तथा हरियाणा)।
टार प्यूटी टोरा	गोल्डेन महासीर	(2.75मी०)	सम्पूर्ण हिमालय के तलहटी वाले स्थान (कश्मीर, उ०प्र०, पंजाब, हरियाणा, उ० बंगाल एवं असम)
टार खुटरे	दकन महासीर	(0.40मी०)	उड़ीसा तथा ताप्ती नदी के दक्षिण में तटवर्ती प्रदेशों के मृदुजल क्षेत्रों में।
टार मसुला	हाई-बैक्ड महासीर		तटवर्ती भारत की नदियाँ, कृष्ण एवं गोदावरी।
टार प्रोमिनियस	जंघ महासीर		उत्तर-पूर्वीय हिमालय (असम, नागालैण्ड तथा मणीपुर)।
टार मोसल	कापर महासीर		सिक्किम, असम में हिमालयीय पर्वतीय जल-स्रोत, महानदी।
नियोलिसोकिलस हेक्जागोनोलेपिस	चाकलेट महासीर		असम, उत्तर-पूर्वीय क्षेत्र के हिमालय के तलहटी वाले जलक्षेत्र

न चीरा, न टांका, हो गई शल्यक्रिया
(लेप्रोस्कोपिक सर्जरी का चमत्कार)

राजेन्द्र कुमार राय

सम्पादक, 'सम्प्रेषण', डी-753, सरस्वती विहार, दिल्ली -110034

हमारा पेट एक जादुई पिटारा है, लेकिन इस जादुई पिटारे में कई बार कई तरह की परेशानियाँ आ खड़ी होती हैं। इनमें पित्त की थैली में पथरी, हर्निया व अपेंडिक्स जैसी बीमारियाँ प्रमुख हैं। इनके इलाज के लिये कुछ समय पूर्व ओपन सर्जरी का सहारा लिया जाता था। लेकिन अब चिकित्सक लेप्रोस्कोपिक सर्जरी का सहारा ले रहें हैं। दुनिया के चौथे सबसे बड़े कोपोरेट अस्पताल, इन्द्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल, सरिता विहार, नई दिल्ली के वरिष्ठ चिकित्सक व लेप्रोस्कोपिक गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल इंटरनेशनल सर्जरी विशेषज्ञ डॉ० अनिल जैन कहते हैं कि यह तकनीक अब तक की सभी परंपरागत विधियों में सबसे अधिक सुरक्षित व सर्वश्रेष्ठ है। डॉ० जैन स्वयं इस तकनीक से हज़ारों ऑपरेशन कर चुके हैं।

वास्तव में ओपन सर्जरी के मुकाबले लेप्रोस्कोपिक के कई फ़ायदे हैं। हालांकि ओपन सर्जरी भी सुरक्षित होती है लेकिन इससे बहुत ही सुरक्षित लेप्रोस्कोपिक होता है और सबसे बड़ा फ़ायदा यह होता है कि लेप्रोस्कोपिक सर्जरी में पेट की अन्य बीमारियों का भी पता चल जाता है। ऐसा ओपन सर्जरी में संभव नहीं होता है। ओपन सर्जरी के मुकाबले इसमें खर्च भी काफी कम होता है और ऑपरेशन में मरीज़ को दर्द भी नहीं सहना पड़ता है। आज की इस भागती-दौड़ती ज़िंदगी में समय बड़ा ही महत्वपूर्ण हो गया है। ओपन सर्जरी में जहाँ 8-10 दिन मरीज़ बिस्तर पर पड़ा रहता है और उसके बाद 1-2 माह आराम की आवश्यकता होती है, नहीं लेप्रोस्कोपिक सर्जरी में कुल मिलाकर 1-2 दिन लगते हैं और 8-10 दिनों के बाद व्यक्ति काम पर लौट जाता है, वहीं ओपन सर्जरी में काम पर लौटने में दो माह तक लग जाते हैं। इस तकनीक की एक और खूबी है कि ऑपरेशन के बाद दवाइयाँ नहीं के बराबर खानी पड़ती हैं। डॉ० अनिल जैन के अनुसार इतने सारे फ़ायदों के कारण ही लेप्रोस्कोपिक सर्जरी को चिकित्सक व मरीज़ दोनों अपना रहे हैं।

कैसे होता है ऑपरेशन?

सबसे पहले नाभि के पास एक छेद किया जाता है। इस छेद के द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड गैस पेट में भरी जाती है। दर असल कार्बन डाइऑक्साइड पेट के अंगों को उभार देती है, इससे कंप्यूटर मानीटर पर उनकी स्पष्ट तस्वीर उभरती है। फिर एक छोटा सा छेद पेट में किया जाता है। इस छेद के द्वारा एक दूरबीन को पेट के अंदर प्रवेश कराया जाता है। इस दूरबीन के साथ एक कैमरा यूनिट भी लगी होती है जिससे सामने रखे मानीटर पर पेट के अंदर का सारा दृश्य बड़ा स्पष्ट दिखा देता है, बल्कि सामान्य से 8-10 गुणा बड़ा दिखाई देता है।

इसके बाद पेट के अंदर दो या तीन सूक्ष्म छेद लगभग (आधा सेंटीमीटर) किए जाते हैं। इन छेदों की सहायता ऑपरेशन उपकरणों को पेट के अंदर प्रवेश कराया जाता है।

इसके साथ ही ऑपरेशन की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है । डॉ० अनिल जैन कहते हैं कि यहीं पर लेप्रोस्कोपिक सर्जन की कार्यकुशलता जाहिर होती है। उसकी आँखें तो मानीटर पर होती हैं लेकिन हाथों की अँगुलियाँ पेट के अंदर डाले गए उपकरणों की सहायता से ऑपरेशन कर रही होती हैं। डॉ० जैन के अनुसार इस ऑपरेशन की सफलता की शत प्रतिशत गुंजाइश रहती है, क्योंकि इसमें पेट की भीतरी संरचना मानीटर पर स्पष्ट होती हैं। हाँ चिकित्सक लेप्रोस्कोपिक विशेषज्ञ अवश्य होना चाहिए। इस ऑपरेशन की एक और खास बात यह है कि इसमें पेट के अन्य अंगों को क्षति पहुँचने का खतरा नहीं होता है।

लेप्रोस्कोपिक सर्जरी में एक बीमारी का अध्ययन करते समय अन्य किसी बीमारी के होने की सूचना भी पता चल जाती है। ऐसा मॉनीटर के कारण संभव होता है। पित्त की थैली के पथरी के ऑपरेशन में दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल में कुल खर्चा लगभग 15000 हज़ार रुपये आता है। वैसे लेपरोस्कोपिक सर्जरी की व्यवस्था देश के सभी प्रमुख अस्पतालों में है।

लेप्रोस्कोपिक सर्जरी के बारे में बताते हुए डॉ० जैन कहते हैं कि इसमें रोगी की रिकवरी बहुत ही तेज़ी से होती है। क्योंकि एक तो कोई खास चीर-फाड़ नहीं की जाती है, दूसरे ऑपरेशन के बाद जैसे ही मरीज़ एनस्थीसिया के प्रभाव से मुक्त होता है, उसे तरल पदार्थ देने शुरू कर दिये जाते हैं, ताकि जल्दी से जल्दी सुधार हो सके और अगले दिन से ही सामान्य खाना खाने को दिया जाता है।

हर्निया का ऑपरेशन

लेप्रोस्कोपिक सर्जरी से अब हर्नियाँ का भी ऑपरेशन सफलतापूर्वक व सुरक्षित तरीके से किया जा रहा है। इस ऑपरेशन में भी मरीज़ दूसरे दिन ही घर चला जाता है। इसकी एक खास बात यह है कि इस ऑपरेशन में रोगी ऑपरेशन के पहले होने वाले दर्द को नहीं भुगतता है। साथ ही एक सप्ताह के अंदर ही काम पर वापस चला जाता है। लेप्रोस्कोपिक सर्जरी द्वारा हार्निया के ऑपरेशन के बाद यह दुबारा होने की संभावना शून्य ही रहती है। डॉ० अनिल जैन के अनुसार इस तकनीक से हर प्रकार के हर्नियाँ का ऑपरेशन किया जा सकता है। डॉ० जैन के अनुसार ओपन सर्जरी द्वारा किया जाने वाला हर्नियाँ का ऑपरेशन भी तकनीकी रूप से काफी सुरक्षित है लेकिन इसमें मरीज़ को 4.7 दिन अस्पताल में रहना होता है तथा काम पर वापस जाने में उसे एक डेढ़ माह का समय लग जाता है और मरीज़ को दर्द भी सहना पड़ता है।

लेप्रोस्कोपिक सर्जरी की सहायता से अपेंडिक्स का भी ऑपरेशन हम आजकल कर रहें हैं, ऐसा डॉ० जैन ने 'सम्प्रेषण' को एक विशेष भेंटवार्ता में बताया। इसका सबसे बड़ा फायदा यह है कि लेप्रोस्कोपिक में अपेंडिक्स का निदान एकदम सटीक होता है और अन्य जाँच की आवश्यकता नहीं पड़ती है। साथ ही लेप्रोस्कोपिक सर्जरी के फायदे अपेंडिक्स के ऑपरेशन में भी हैं।

चिकित्सा विज्ञान में नित्य हो रहे नए शोधों ने निश्चित रूप से हमें बड़ा ही सुकून पहुंचाया है और अपने देश में भी इलाज की वो सुविधाएँ मौजूद हैं, जो विदेशों के केवल बड़े अस्पतालों में है। कम से कम दिल्ली का अपोलो अस्पताल तो दुनिया के सर्वश्रेष्ठ अस्पतालों में एक है। यहाँ इलाज की वो तमाम सुविधाएँ मुहैया हैं जिसके लिये अभी तक विदेश में जाना पड़ता था। (सम्प्रेषण)

कहानी काग़ज़ की

दीप्ति भटनागर
पीपुल फार साइंस एंड डिवेलपमेंट
बी-2, वैल्कम अपार्टमेंट, सैक्टर-9 रोहिणी, दिल्ली —110085

कल्पना कीजिए कि यदि दुनिया में काग़ज़ का आविष्कार न हुआ होता, तो क्या होता?

शायद हमारी दुनिया ऐसी न होती। न किताबें होती, न अखबार, न ही सुन्दर और आकर्षक शुभकामना पत्र, कैलेंडर, डायरियाँ और न होतीं कितनी अनगिनत वस्तुएँ।

सच तो यह है कि हमारे जीवन का पर्याय बन जाने वाले काग़ज़ की कहानी सभ्यता के प्रारंभ के साथ ही शुरू होती है। तब से अनेक रूप बदल कर काग़ज़ आज विभिन्न रूपों व प्रकारों में हमारे बीच मौजूद है।

सभ्यता के प्रारंभ में जब मानव ने परस्पर अपने विचार व्यक्त करने की कला सीखी, तब वह किसी यादगार घटना, महत्वपूर्ण जानकारी और संदेश लिखने के लिये पत्थरों, सींगों, मिट्टी और गुफाओं की दीवारों पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचने लगा और आढ़े-तिरछे चित्र बनाने लगा। आज भी हमें इन चित्रों से उस समय के रोजमर्रा के जीवन का चित्रण मिलता है। धीरे-धीरे इस कार्य के लिये रेशम और **बेट्यूला** जैसे पेड़ों की छालों और पत्तों का इस्तेमाल किया जाने लगा। काग़ज़ ने सही स्वरूप ईसा पूर्व 2400 वर्ष के लगभग मिस्र की सभ्यता में पाया। आरंभिक युग में नील नदी के किनारे अधिक संख्या में पाए जाने वाले **पैपायरस** पेड़ के तने के रेशों से सबसे पहले काग़ज़ बना।

शुरू में काग़ज़ बनाने का काम बड़ा श्रमसाध्य था। तने से रेशे निकाल कर उन्हें साथ-साथ सीधा रखा जाता था फिर उनके ऊपर अन्य रेशों को 90 डिग्री के कोण पर अनुप्रस्थ रूप से रखा जाता था। तने से निकलने वाले गोंद से उन्हें चिपका कर किसी भारी वस्तु से अच्छी तरह दबाकर चादरें तैयार की जाती थीं। इसके बाद चादरों को पत्थर या हाथीदांत से घिसकर नरम किया जाता था।

इस तरह बना काग़ज़ धीरे-धीरे मिस्र के अलावा यूरोपीय व अफ्रीकी सभ्यताओं में उपयोग में लाया जाने लगा। **पैपायरस** पेड़ से बनाये जाने के कारण ही अँग्रेजी में काग़ज़ 'पेपर' के नाम से जाना जाता है। भारत में प्राचीन काल में अधिकतर लिखाई ताड़ के पत्तों पर की जाती थी।

ईसा बाद के वर्षों में काग़ज़ बनाने की एक अच्छी विधि ईज़ाद करने का श्रेय चीनियों को जाता है। यहाँ पहली बार काग़ज़ बनाने की विधि विकसित की गई थी। सन् 750 के लगभग अरब देश से युद्ध के समय अरब सेनानियों ने चीनियों से इस विधि को सीखा तथा उनके माध्यम से काग़ज़ के निर्माण की जानकारी विश्व के अन्य देशों में फैलती चली गई। बाद में इस मूल विधि में अनेक विकासात्मक परिवर्तन करके विभिन्न प्रकार के काग़ज़ों को बनाने की आधुनिक तकनीकों का विकास किया गया।

काग़ज़ बनाने के लिये सबसे अधिक चीड़, स्प्रूस और यूकेलिप्टस जैसे पेड़ों की लकड़ी के गूदे या लुग्दी का इस्तेमाल किया जाता है। पेड़ों में सेल्यूलोस होने के कारण आसानी से इनका उपयोग किया जा सकता है। इसके अलावा कपड़ों के रेशों, जूट, बेकार पड़े पत्तियों तथा स्पेन और उत्तरी अमेरिका में पाई जाने वाली घास **एस्पार्टो** का उपयोग भी होता है। भारत में काग़ज़ बनाने के लिये मुख्यतः बांस, घास और भांग के पेड़ की लकड़ी का उपयोग किया जाता है। विश्व में काग़ज़ का सबसे अधिक उत्पादन अमेरिका और जापान जैसे देशों में किया जा रहा है।

काग़ज़ बनाने की प्रक्रिया में प्रमुख कार्य है- लकड़ी से लुग्दी बनाने की विधि। पेड़ की छालों व अन्य कच्चे माल से अनेक मशीनी, रासायनिक और अर्ध-रासायनिक विधियों से लुग्दी को बनाया जाता है। इस लुग्दी को ब्लीचिंग जैसी रासायनिक विधियों से साफ़ करके काग़ज़ तैयार किया जाता है।

काग़ज़ के उत्पादन की प्रक्रिया में लुग्दी से काग़ज़ बनाते समय ब्लीचिंग के लिये क्लोरीन गैस का उपयोग होता है, जिससे क्लोरीन युक्त रासायनिक गैसों का स्राव होता है, जो पर्यावरण के लिये हानिकारक है। ब्लीचिंग के दौरान क्लोरीन के दुष्प्रभाव को कम करने के लिये यद्यपि वैज्ञानिक काफी समय से प्रयत्न करते रहे, परन्तु उन्हें सफलता अब मिली। हाल में ही पर्थ, आस्ट्रेलिया में एक अनुसंधान कम्पनी के वैज्ञानिकों ने इस समस्या का एक हल ढूंढा है । इसे प्रभावशाली बताया जा रहा है।

यह 'बायोटेक प्रक्रिया' का विकास किया गया है, जिसमें ब्लीचिंग चरण से पहले लुग्दी में एक एन्ज़ाइम मिलाया जाता है। एक फफूँद से बने इस एन्जाइम से क्लोरीन के उपयोग में 30 प्रतिशत की कमी लाई जा रही है। इसमें निर्माण की लागत में भारी कमी आने की भी आशा है। इसके अलावा एन्ज़ाइम से क्लोरीनयुक्त विषैले गैसीय पदार्थों का स्राव भी कम हो सकेगा। इसी अनुसंधानशाला में एक अन्य एन्ज़ाइम की भी खोज हुई है, जो ब्लीचिंग की क्षमता को बढ़ाने की संभावना रखता है।

'बायोटेक प्रक्रिया' के निदेशक डॉ० सलीबा सेरोन का कहना है कि अब एक ऐसे एन्ज़ाइम की खोज़ करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं, जिससे क्लोरीन के उपयोग व स्राव में 90 प्रतिशत तक की भारी कमी आ सकेगी।

इस प्रकार विभिन्न वर्गों के काग़ज़ तैयार किए जाते हैं जैसे लिखने के काग़ज़, अखबार के काग़ज़, चित्रकारी करने के काग़ज़, किताबों व कापियों के काग़ज़, कार्बन पेपर, टिश्यु पेपर, बान्ड पेपर, नोट बनाने के काग़ज़ आदि । इन सब से हम भली-भाँति परिचित हैं। सभी प्रकार के कागज़ों में उपयोग के अनुसार गुणवत्ता भी भिन्न होती है।

आइये, अब इस तस्वीर के एक दूसरे पहलू को भी जानें। हालांकि हमारे जीवन के लिये काग़ज़ से निर्मित वस्तुएँ आवश्यक हैं, परन्तु कहीं न कहीं यह हमारी प्राकृतिक सम्पदा के लिये भारी भी पड़ता है। विश्व में करीब 97 प्रतिशत काग़ज़ का निर्माण लकड़ी की लुग्दी से किया जाता है। पूरे विश्व में प्रतिवर्ष न जाने कितने पेड़ कागज़ की शीटों में बदल जाते हैं। इससे विश्व में पेड़ों की संख्या कम होने के साथ-साथ हमारा पर्यावरण भी नष्ट होता है। (अभियान)

डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार घोषित

1996

श्री योगेन्द्र बहादुर सिंह (I)
श्री रवीन्द्र कुमार सिंह, राजाराम, डेजी चौहान जैदी (II)
श्रीमती नलिनी जोशी, कुसुमलता पाण्डेय, नरेन्द्र कुमार (III)

1997

सुश्री दीप्ति भटनागर (I)
डॉ० दीपक कोहली (II)
डॉ० कृष्णानन्द पाण्डेय (II)
श्री जावेद अख़्तर (III)

गौतम बुद्ध का वैज्ञानिक जीवन-दर्शन

डॉ० डी० एन० सिनहा

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, एनाटॉमी विभाग
बी० आर० डी० मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर-273023

इतिहास साक्षी है कि प्रारंभ से ही चिकित्सा विज्ञान करुणा, दया एवं सेवा की भावना पर ही आधारित रहा है। भगवान बुद्ध का जीवन-दर्शन इन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत रहा है।

गौतम बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन में करुणा आध्यात्मिक रूप में एक केन्द्र बिन्दु बनकर सम्पूर्ण विचारों को आगे बढ़ाती है। मनुष्य की चार अवस्थायें सिद्धार्थ के जीवन में एक मोड़ बनकर आयीं। प्रारम्भ में वे सड़क पर एक बूढ़े व्यक्ति को देखकर चकित हुए। उन्होंने सारथी छन्न से इस मनुष्य की अधिक आयु हो जाने पर शरीर में हुए अनेक परिवर्तनों के प्रति अपनी प्रथम जिज्ञासा प्रकट की। उन्हें लगा कि मनुष्य जब अधिक उम्र का हो जाता है तो शरीर की रचना में धीरे-धीरे विकृति आने लगती है। बाल सफ़ेद हो जाते हैं, त्वचा मुरझायी एवं शुष्क हो जाती है। पसलियाँ दिखाई पड़ने लगत है, आँखें धंसी हुयी होती हैं और व्यक्ति लाठी के सहारे चलने के लिये मज़बूर होने लगता है। वृद्धावस्था की स्थिति को देखकर उन्हें जीवन के विभिन्न अवस्थाओं का बोध हुआ। उनको प्रथम बार यह अनुभव हुआ कि 80 वर्ष के बाद शरीर क्षीण होने लगता है। सभी बूढ़े होते हैं और यह कोई आश्चर्य नहीं है। एक बार सिद्धार्थ घूमने निकले तो उन्हें एक बीमार मनुष्य दिखाई पड़ा। वह इतना अशक्त था कि खड़ा तक नहीं हो सकता था। ज़मीन पर लेटा हुआ पीड़ा से ग्रसित था। आँखें लाल थी, मुँह से झाग निकल रहा था। उन्होंने छन्न से इसका कारण पूछा। छन्न ने कहा-"जब कोई बीमार होता है तो अपने को इसी रूप में पाता है। लेकिन यदि मनुष्य अपने खान-पान के प्रति सजग रहे, सफ़ाई के नियमों का पालन करे तथा व्यायाम करता रहे तो वह स्वस्थ रह सकता है।"

तीसरी बार जब सिद्धार्थ घूमने निकले तो उन्हें एक शव-यात्रा दिखाई पड़ी। रोते-चिल्लाते लोग शव को कंधे पर लिये जा रहे थे। उपरोक्त दृश्य देखकर उन्होंने छन्न से इसका कारण पूछा। छन्न ने कहा-"यह मनुष्य के जीवन का अन्त है। वृद्धावस्था के कारण जब मनुष्य चल नहीं पाता तो उसकी सांस रुक जाती है, दिल की धड़कन बन्द हो जाती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। मृत्यु भी जन्म की तरह सार्वभौम है। मृत्यु ही जीवन की सच्चाई है। कोई मौत को रोक नहीं सकता। चिन्तामुक्त होकर मनुष्य को अपने अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घायु की कामना करनी चाहिए।"

बुढ़ापे का कष्ट, बीमारी का कष्ट एवं फिर मृत्यु का दुःख देखकर गौतम बुद्ध के जीवन में मोड़ आया। उनके जीवन में ये घटनायें दार्शनिक विचारों का सृजन करती हैं। चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिये गौतम बुद्ध के जीवस-दर्शन को समझने की अत्यन्त आवश्यकता है।

एक बार छन्न के साथ सुबह के समय घूमते हुए गौतम बुद्ध ने भिक्षा-पात्र लिये नारंगी रंग के कपड़े पहने, शांतिपूर्ण मुद्रा में, पृथ्वी पर आँखें झुकाये हुए मनुष्य को देखकर छन्न

से कहा- " यह व्यक्ति कितना शांत है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसे संसार के न तो दुःख ही स्पर्श कर सकते हैं और न ही सुख।"

छन्न ने कहा- "यह भिक्षु भिक्षा से प्राप्त भोजन पर ही जीवन निर्वाह करता है। यह मन, कर्म एवं विचारों से अपने को पवित्र रखकर एक सादे जीवन का निर्वाह करता है। यह निरन्तर भ्रमण कर लोगों को इस पवित्र जीवन का आनन्द प्राप्त करने का संदेश भी देता है। सादा जीवन ही अच्छे स्वास्थ्य का मुख्य आधार है। चिकित्सा के क्षेत्र में भी बहुत से रोगों को दूर करने का उपाय मन, कर्म एवं विचारों को सादगी से पवित्र रखकर सम्भव है। वर्तमान में 'एड्स' जैसी बीमारियों पर विजय इन्हीं धारणाओं को परिमार्जित कर प्राप्त किया जा सकता है।

गौतम बुद्ध प्रारम्भ से ही मधुर, विनम्र एवं सुसंस्कृत थे। वे वृक्षों की ही साया में बैठकर चिन्तन किया करते थे। यह उनके संतुलित-पर्यावरण के ज्ञान का बोध कराती है।

पर्यावरण के प्रति स्नेह एवं इसके अनुरूप ही रहकर उन्होंने जीवन-यापन करने का आधार माना है। सिद्धि के लिये उस समय कायाकष्ट की विधि प्रचलित थी। प्रारम्भ में उन्होंने धीरे-धीरे भोजन त्याग दिया एवं जंगल के कन्द-मूल फल एवं पत्तियों पर जीवन निर्वाह करने लगे। उनके शरीर की त्वचा मुरझा गयी, हड्डियाँ उभरने लगीं तथा आँखें धँसने लगीं। उन्हें अत्यधिक पीड़ा होने लगी। कभी-कभी सांस को भी रोक लेते थे और इस तरह उनका मस्तिष्क फटने लगता था। यही नहीं, जाड़े में बर्फ पर सोते थे एवं मरघट में रहकर क़फ़न के कपड़ों को भी धारण किया। एकान्त स्थान पर रहने पर भी जंगली पशुओं का उन्हें डर नहीं लगता था। शरीर की रचना एवं क्रिया को अति कष्टकर रूप में रखकर भी एकाग्र चिन्तन एवं ध्यान को अर्पित किया।

इस यातना का परिणाम उनके बेहोश होने तक का साक्षी है। लेकिन उन्हें पुनः स्वास्थ्यप्राप्ति नित्य दूध के सेवन से हुई। दूध का महत्व आज भी स्वास्थ्यवर्धक पदार्थों में प्रमुख होना चाहिए। काया-कष्ट का उदाहरण चिकित्सा संबंधी लेखों में सुन्दर रूप से वर्णित है जो प्रायः सूखा एवं अकाल के समय देखने को मिलता है।

सुजाता का दिया हुआ खीर भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रतीक है। प्राचीन समय में पूजा अथवा भोजन के समय खीर परोसी जाती थी। पौष्टिकता की दृष्टि से खीर उत्तम भोजन का कार्य करती थी। गौतम बुद्ध ने काया-कष्ट के समय में भी कन्द-मूल-फल एवं जंगली पत्तियों का आहार लिया। यह प्रमाणित करता है कि इस तरह का आहार जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक है, जिससे जीवन में क्रियाओं की गतिशीलता बनी रहे।

कहते हैं कि ध्यान करने से उनका हृदय पवित्र हो गया तथा उन्होंने ध्यान से कामेच्छा की वेदना, अमरत्व की इच्छ एवं भूख-प्यास के दुःखों से दूर एक नये जीवन का प्रारम्भ किया। आज के समय में ध्यान (मेडिटेसन) को एक नये रूप में देखा जा रहा है। कई बीमारियाँ जो जीवन के तनाव से उत्पन्न होती हैं, उनको दूर करने का उपाय ध्यान ही है। ध्यान को आज एक चिकित्सीय प्रयोग एवं उपचार के रूप में प्रचलित किया जा रहा है। हृदय रोग, मानसिक रोग तथा आज के प्रदूषित पर्यावरण से उत्पन्न रोगों का इलाज ध्यान से किया जा रहा है। उन्होंने संवोधि प्राप्ति के बाद भोजन के रूप में चावल एवं शहद से बने अच्छे भोजन ग्रहण किये। अब वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि शहद स्वास्थ्यवर्धक पदार्थ तो है ही साथ ही इसमें चिकित्सीय गुण भी विद्यमान हैं।

बुद्ध-दर्शन की आधारशिला के चार सत्य आज भी चिकित्सा-सम्बन्धी कार्यों एवं जीवन के लिये आवश्यक प्रतीत होते हैं। मानव प्रायः अपनी बीमारी, बुढ़ापा एवं मृत्यु के भय से ग्रसित रहता है। इससे कई तरह की मानसिक बीमारियों की चपेट में आ जाता है। कुछ के दुःख का कारण है तृष्णा से जुड़ी इन्द्रिय आनन्द की इच्छा। इसलिये गौतम बुद्ध ने बताया कि दुःख के नाश का उपाय तृष्णा को रोककर ही प्राप्त किया जा सकता है। गौतम ने रागात्मक जीवन एवं काया-कष्ट के प्रति अपना विरोध भी प्रकट किया। उन्होंने रागात्मक जीवन को आध्यात्मिक साधना में अवरोध माना है जो अवश्य ही जीवन में क्रियाशीलता को नष्ट करती है। जीवन के अन्य राग एवं द्वेष को दूर करने के लिये गौतम बुद्ध ने मध्य मार्ग

का दर्शन लोगों तक पहुँचाया आज के युग में अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक है पवित्र चिन्तन-जो काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या इत्यादि से मुक्ति का मार्ग बताता है। यदि बात अच्छी हो, कठोर न हो तो इसका मनुष्य के मस्तिष्क पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है तथा शरीर में क्रियाशीलता एवं हारमोनों में संतुलन बनाये रखने में सहायक होता है, क्योंकि मस्तिष्क शरीर के विभिन्न क्रियाओं को संचालित करती है तथा इसके असंतुलन से विभिन्न बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। आज के वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में बुद्ध के बताये हुए जीवन-दर्शन को पुनः अपनाना होगा। इसमें अहिंसा, सभी जीवों के प्रति उदारता एवं दया के भाव का परिचय देना और चोरी, पर स्त्री-गमन एवं नशे की लत से दूर रहने जैसी बातों का उल्लेख है। वास्तव में इन्हीं से पर्यावरण संतुलन भी बना रहता है।

मध्य मार्ग में बुद्ध के बताये हुए सम्यक आज भी बहुत स्पष्ट है एवं चिकित्सा क्षेत्र में कार्य कर रहे लोगों को इस पर पुनः विचार करना आवश्यक है। उसमें उल्लिखित है कि जीविका के लिये ऐसा कोई व्यापार नहीं करना चाहिए जिसमें धोखा हो, शोषण हो, अथवा किसी के प्रति अन्याय या नुकसान की सम्भावना हो। यही नहीं, गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को क्रय-विक्रय का धंधा, मांस बेचने का धंधा, विष या शराब बेचने का धंधा न करने का स्पष्ट आदेश दिया है।

गौतम बुद्ध ने सेवा के संबंध में प्रथम नहलाने-धुलाने, कपड़े पहनाने और भोजन कराने का आदेश दिया। इन बातों पर पुनः विचार आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन दिनों स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है।

गौतम बुद्ध के जीवन में एक रोगी की सेवा का उदाहरण मिलता है। एक बीमार भिक्षु को दस्त आ रहा था। उसे कष्ट तो था ही, साथ में वह गन्दगी में भी पड़ा था। उसकी तरफ किसी का भी ध्यान नहीं जा रहा था। बुद्ध ने पानी गरम किया, उस बीमार भिक्षु को नहलाकर स्वच्छ किया, स्वच्छ कपड़े पहनाये और उसे स्वच्छ बिछौने पर सुलाया। इस तरह की सेवा भावना एवं नियम आज भी चिकित्सा-सेवा के अंग क्यों नहीं बनतीं ? गरम पानी की उपयोगिता चिकित्सा में प्राचीन काल से चली आ रही है।

बुद्ध ने सभी भिक्षुओं से इसी तरह सेवा भावना अपनाने के लिये कहा। एक अन्य अवसर पर गौतम बुद्ध को एक भिक्षु मिला जिसके शरीर पर खाज के खारण फोड़े हो गये थे और उसमें से दुर्गन्ध आ रही थी। उसे भिक्षुओं ने संघ के बाहर मैदान में लाकर लिटा दिया गया था। गौतम बुद्ध उसकी सेवा करने लगे। यह देखकर अन्य भिक्षु भी गरम पानी ले आये और रोगी की सेवा करने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि गौतम बुद्ध को इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि गरम पानी के प्रयोग से रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं को नष्ट करना सम्भव है।

भोजन के प्रति गौतम बुद्ध का विचार अनोखा रहा है, क्योंकि उनका मानना था कि भूख के कष्ट से बढ़कर दूसरा कोई कष्ट नहीं है। लेकिन अधिक भोजन करना भी उन्होंने स्वास्थ्य के लिये अहितकर माना है। कौशल के राजा प्रसेनजित भोजन के विशेष प्रेमी थे। वह थाली भर भात और साथ में दाल, साग और चटनियाँ खाते थे। एक बार नाश्ता करते-करते वे ऊँघने लगे। बुद्ध से उन्होंने इसका कारण जानना चाहा। गौतम बुद्ध ने कहा, "राजन ! आप भोजनाधिक्य के रोग से पीड़ित हैं। अधिक भोजन करके हर समय सोते रहना और भर पेट अनाज खाये हुये सुअर की तरह लेटे रहना मूर्खता है। अधिक भोजन करना रोग और कष्ट को जन्म देता है।" बुद्ध ने आगे कहा- "राजन! संयम रखकर परिमित भोजन करना बुद्धिमानी है। ऐसा भोजन तृप्तिकारक भी होता है। अल्पहारी धीरे-धीरे बूढ़ा होता है और वह अनेक शारीरिक पीड़ाओं से बचा रहता है।" आज भी चिकित्सा एवं स्वास्थ्य से जुड़े व्यक्ति इन्हीं बातों की सलाह देते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी पता चला है कि सन्तुलित भोजन जीवन के लिये आवश्यक है। समय-समय पर उपवास व्रत से लोगों ने अनुभव किया है कि इसके द्वारा स्वास्थ्य को अधिक सन्तुलित रखा जा सकता है। विज्ञान की कसौटी पर गौतम बुद्ध के विचार पूर्णरूपेण सत्य पाये जाते हैं।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में बेलुआ ग्राम पहुँचते ही गौतम बुद्ध बीमार पड़ गये। उन्हें अत्यधिक पीड़ा होने लगी। परन्तु अपनी पीड़ा की बात उन्होंने किसी को भी नहीं

बतायी। अन्तिम क्षणों में संघ को इन शब्दों में सम्बोधित किया-"कोई भी चीज, जिस रूप में मिलती है, वह एक दिन विघटित होती ही है।" बुद्ध का सारा जीवन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पृक्त था। बुद्ध का दर्शन सभी के लिये जीवंत दर्शन है।

बुद्ध के उपदेशों के पीछे शास्त्र जैसी कोई चीज नहीं है। उनके उपदेश मनुष्य की प्रकृति पर आधारित हैं।

पुस्तक समीक्षा

आओ माडल बनायें

तुरशन पाल पाठक

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं सम्पादक, भारत की संपदा, वैज्ञानिक विश्वकोश,
राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान (सी० एस० आई० आ[illegible] [illegible]न साइड रोड, पूसा गेट, नई दिल्ली - 110012

आओ माडल बनायें : लेखक-- श्याम सुन्दर शर्मा, प्रकाशक - प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली -110002, मुद्रक - राधा प्रेस, दिल्ली, सचित्र पृष्ठ 160, मूल्य- 150 रुपये, संस्करण - 1997

कभी कोई वैज्ञानिक उपकरण आदि देखकर यह विचार आना स्वाभाविक है कि यदि हमने भी इस उपकरण को बनाना सीखा होता तो कितना अच्छा होता। बच्चों को यदि अवसर मिले तो वे ऐसे प्रयास अवश्य करने को तैयार रहते हैं। लेकिन उनके पास जानकारी का अभाव होता है और घर-परिवार के बड़े लोगों ने उनमें ऐसी धारणा भर दी होती है कि ये वैज्ञानिक सामग्री तो बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं में ही रखी जा सकती है, परन्तु ऐसा ही नहीं है। वैज्ञानिक माडल बाज़ार में उपलब्ध चीजों से घर पर ही आसानी से बनाये जा सकते हैं। ये माडल खेल-खेल में बन जाते हैं और इनकी लागत भी कम आती है। "आओ माडल बनायें" नामक पुस्तक में सुन्दर एवं आकर्षक चित्रों सहित माडल बनाने की सरल जानकारी दी गई है जो बच्चों में विज्ञान संबंधी ज्ञान के विकास के साथ उनमें रचनात्मकता विकसित होने की सही दिशा भी प्रदान करती है।

पुस्तक में 51 माडल बनाने का उल्लेख है जो विज्ञान के उपकरणों विधियों एवं व्यवस्थाओं आदि से संबंधित हैं। यह उपकरण बिजली का जनरेटर से लेकर गैलवेनोमीटर, चुंबकीय कंपास, बिजली की घंटी, राख, पेड़ पौधों की पत्तियों, गोबर, आलू, आदि से बिजली बनाने और एक्वेरियम, पेरिस्कोप, केलिडोस्कोप, ज्वालामुखी, टेलीफोन, वर्षा-मापक यंत्र, बैरोमीटर, केला स्वयं बोतल में जाय जैसे यंत्रों एवं विधियों आदि के माडल बनाने से संबंधित भरपूर जानकारी देती है।

भला केला अपने आप बोतल में कैसे जा सकता है? लेकिन इस क्रिया का वैज्ञानिक पहलू समझाते हुये इसका माडल बनाने का तरीका बताया गया है। यह हवा के दबाव से संबंधित प्रयोग का माडल है। इसमें बोतल के ऊपर रखा केला अपने आप छिलता जाता है और बोतल के अंदर प्रवेश करता जाता है।

इसे बताने के लिये पुस्तक में उल्लेख किया गया है कि कम चौड़े मुँह वाली काँच की एक बोतल, एक केला, थोड़ी सी स्प्रिट, रुई और माचिस चाहिये। इस काम के लिये दिल्ली दुग्ध योजना की दूध की बोतल जैसी बोतल उपयुक्त रहती है। स्प्रिट और रूई का उपयोग बोतल के अंदर भरी हवा को समाप्त करने लिये किया जाता है।

रूई को स्प्रिट में भिगोकर बोतल के अंदर डाल दो। फिर एक जलती हुई तीली को रूई के ऊपर डालो। अब जल्दी से केले को थोड़ा सा छील कर बोतल के मुँह पर इस तरह रख दो कि बाहर की हवा बोतल में न जा सके। केले का छिलका बोतल से बाहर रहेगा।

थोड़ी ही देर बाद केला अपने आप छिलता हुआ बोतल के अंदर जाता दिखाई देगा। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि स्प्रिट में भीगी रूई तेज़ी से जलने लगती है, जलने के लिये आवश्यक ऑक्सीजन वह बोतल की हवा से लेती है क्योंकि केले से बोतल का मुँह बंद हो गया है और उसमें से हवा अंदर आने की संभावना काफी कम हो गई है। हालांकि रूई के जलने से कार्बनडाइऑक्साइड और पानी की भाप बनी पर उसका आयतन इतना नहीं था जितना कि ऑक्सीजन का था। बोतल की हवा में ऑक्सीजन का लगभग पाँचवाँ भाग था, इसलिये बोतल में आंशिक निर्वात पैदा हो गया। उसकी पूर्ति के लिये बाहर की हवा बोतल के अंदर जाने की कोशिश करने लगी और उस हवा ने केले को ही बोतल में प्रविष्ट करा दिया। इस तरह हवा के दबाव का यह माडल जहाँ बनाने में आसान है वहीं यह हवा के दबाव से संबंधित अपने उद्देश्य के अनुसार ज्ञान देने में सूक्ष्म भी है।

इस पुस्तक में उल्लिखित सभी माडल ऐसे हैं जिनको बनाते समय ऐसा लगता है मानो कोई रोचक प्रयोग कर रहे हैं। जब माडल पुस्तक में बताई विधि से बनकर तैयार हो जाते हैं तो जहाँ एक ओर आत्मसंतोष होता है वहीं अपनी बुद्धि और चतुराई से अपने आप भी अन्य माडल बनाने की प्रेरणा भी मिलती है। इस तरह यह पुस्तक ज्ञान और प्रशिक्षण दोनों ही प्रदान करने का कार्य करती है।

अतः निः संदेह कहा जा सकता है कि यह पुस्तक छात्रों, अध्यापकों, अभिभावकों आदि सभी जिज्ञासु पाठकों के लिये समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी। इसके लिये पुस्तक के लेखक श्याम सुन्दर शर्मा जी, प्रकाशक प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सहित मुद्रक राधा प्रेस दिल्ली एवं अन्य सभी सहयोगी बधाई के पात्र हैं। आशा है यह पुस्तक बच्चों और जनमानस में विज्ञान के प्रति रुचि जाग्रत करने में सफल होगी।

[पृष्ठ 8 का शेष भाग]

चिपका दिया जाता था। आज भी इन पेपाइरस के स्क्रोल्स को संग्राहलयों में देखा जा सकता है। यूरोप में जानवरों की खाल, जिन्हें पार्चमेन्ट कहा जाता है, लिखने के काम में आता था।

काग़ज़ जिस पर आप यह लिख-पढ़ रहे हैं, सन् 105 ई० में चीन के साई लून (Ts'aiLun) ने बनाया। उसने बांस और शहतूत के पेड़ों के रेशों का उपयोग किया। वहां के राजा होती ने उसे दरबार में प्रमुख पद दिया परन्तु दुर्भाग्य यह खोज करने वाला अधिक दिन ज़िन्दा न रहा। उसने आत्महत्या कर ली। चीनियों ने अपनी काग़ज़ बनाने की तकनीक को बाहर न जाने दिया। परन्तु किसी प्रकार यह जानकारी स्पेन को मिली, जहां से यह पूरे यूरोप में पहुंची। इटली में प्रथम काग़ज़ मिल 1200 ई० में लगा। 1455 ई० में छपाई की मशीन के आविष्कार ने कहानी को नया मोड़ दिया। क्रपास (*Gossypium*), लिनम (*Linum*) और भूसे के उपयोग के बाद आज अनेक प्रकार के पेड़ों की लकड़ी का प्रयोग होता है। सुसान लूरी के अनुसार अमेरिका, जापान, कनाडा और रूस में कुल मिलाकर 14 करोड़ टन काग़ज़ प्रतिवर्ष बनाया जाता है, जिस पर हम खुशी-खुशी लिखते हैं, चित्र बनाते हैं। पर क्या आप पेरू के प्राचीन निवासियों द्वारा प्रयुक्त काग़ज़ पर लिखना चाहेंगे ? वे मनुष्यों की खाल से बने पार्चमेन्ट को लिखने के काम में लाते थे।

भारत के 50वें स्वतंत्रता वर्ष पर परिषद् द्वारा सम्मानित व्यक्तियों की सूची

विज्ञान वाचस्पति

1. श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
2. श्री दुर्गा प्रसाद मिश्र
3. श्री राजीव रंजन उपाध्याय
4. डॉ० आर० सी० तिवारी
5. डॉ० श्रवण कुमार तिवारी
6. डॉ० गिरीश पाण्डेय
7. डॉ० हेमचन्द्र जोशी
8. श्री राधेश्याम शर्मा
9. श्री सुभाष लखेड़ा
10. श्री रामचन्द्र मिश्र
11. डॉ० रमेश सोमवंशी
12. श्री श्याम सुन्दर पुरोहित
13. डॉ० सतीश कुमार शर्मा
14. डॉ० अरविन्द मिश्र
15. डॉ० चतुर्भुज साहू
16. डॉ० विजय कुमार उपाध्याय
17. डॉ० चन्द्रमोहन नौटियाल
18. डॉ० हरिश्चन्द्र गुप्त
19. श्री ब्रजमोहन गुप्त
20. डॉ० गोविन्द प्रसाद कोठियाल
21. डॉ० सुबोध महन्ती
22. श्री मनोज पटैरिया
23. श्री राजेन्द्र कुमार राय
24. श्री प्रमोद जोशी
25. श्री राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप
26. श्री दर्शनानन्द
27. श्री शुकदेव प्रसाद
28. डॉ० दिनेश मणि
29. डॉ० यतीश अग्रवाल
30. श्री कुलदीप शर्मा

विज्ञान भास्कर

1. डॉ० नरेन्द्र सहगल
2. डॉ० प्रेम स्वरूप सकलानी
3. डॉ० बी० के० नायर
4. डॉ० देवेन्द्र शर्मा
5. डॉ० कामेश्वर सहाय भार्गव
6. डॉ० सुधांशु कुमार जैन
7. प्रो० बी० डी० गुप्ता
8. डॉ० देवी शंकर मिश्र अमर
9. डॉ० महाराज नारायण मेहरोत्रा
10. डॉ० पुरुषोत्तम खन्ना
11. श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी
12. श्री श्याम नारायण कपूर
13. डॉ० शिवगोपाल मिश्र
14. श्री तुरशन पाल पाठक
15. श्री हरीश अग्रवाल
16. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद

विज्ञान श्री (महिलायें)

1. डॉ० कृष्णा मुखर्जी
2. श्रीमती डॉ० राधा पन्त
3. डॉ० कृष्णा मिश्र
4. डॉ० सुशीला राय
5. श्रीमती बी० अनुराधा
6. श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी
7. श्रीमती दीक्षा विष्ट
8. श्रीमती विनीता सिंघल

विज्ञान वारिधि

1. डॉ० डी० डी० पन्त (प्रयाग)
2. डॉ० जयन्त विष्णु नार्लिकर (पुणे)
3. डॉ० एस० के० जोशी

डॉ० शिवगोपाल मिश्र, प्रधान मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयाग

प्राप्ति स्वीकार (पुस्तकें)

- **विज्ञान मुक्तावली (निबंध संकलन)**

  लेखक - डॉ० विष्णुदत्त शर्मा
  प्रकाशक- शोध प्रकाशन अकादमी
  5/48, वैशाली, गाजियाबाद-201010
  प्रकाशन वर्ष - 1997, पृष्ठ 334 (सचित्र)
  मूल्य - 150.00 रु०

- **महर्षि गालव**

  लेखक- डॉ० विष्णु दत्त शर्मा
  प्रकाशक- शोध प्रकाशन अकादमी
  5/48, वैशाली, गाजियाबाद-10
  प्रकाशन वर्ष- 1998, पृष्ठ 70
  मूल्य - पचास रुपये

- **मरुस्थलीय पारितंत्र में वानिकी एवं वन्यजीव**

  लेखक-डॉ० दुर्गादत्त ओझा एवं
  पुष्पेन्द्र सिंह चौहान
  प्रकाशक- साइन्टिफिक पब्लिशर्स
  5-ए, न्यू पाली रोड, पो० बा० नं० 91
  जोधपुर - 342001 (भारत)
  प्रकाशन वर्ष - 1996, पृष्ठ-184
  VII (सचित्र) मूल्य 225.00

- **विज्ञान लोकप्रियकरण : प्रारंभिक प्रयास**

  सम्पादक- डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं
  डॉ० दिनेश मणि
  प्रकाशक-विज्ञान प्रसार,
  सी-24 इंस्टियूशनल एरिया
  ए० एस० सी० आई० भवन
  कुतुब होटल के पीछे, नई दिल्ली -110016
  प्रकाशन वर्ष - 1997, पृष्ठ 1+197

- **आर्ष साहित्य में मूलभूत विज्ञान**

  लेखक- विष्णुदत्त शर्मा
  प्रकाशक- आर्य प्रकाशन मण्डल
  सरस्वती भण्डार, गाँधी नगर दिल्ली - 110031
  प्रकाशन वर्ष-1993, पृष्ठ 144
  मूल्य - पचहत्तर रुपये

- **मौजेक के गमलों में उगा शहर (कविता संकलन)**

  लेखक- सागर मीरजापुरी
  प्रकाशक- उदीयमान प्रकाशन
  उदीयमान भवन
  681 ए मालवीय नगर, इलाहाबाद-211003
  प्रकाशन वर्ष -1996, पृष्ठ 48, मूल्य - 40 रुपये

- **प्रदूषण रोधी वृक्ष**

  लेखक- विष्णु दत्त शर्मा
  प्रकाशक- किताब घर, 24/4866
  शीलतारा हाउस, अंसारी रोड
  दरियागंज, नयी दिल्ली -110002
  संस्करण- 1993, पृष्ठ 132, मूल्य- 70 रुपये

- **दुनिया न माने**

  लेखक- राजेन्द्र प्रताप सिंह
  जमौरा फैजाबाद
  संस्करण - 1997, पृष्ठ संख्या 75
  मूल्य - 30 रुपये

- **हिन्दी में बाल विज्ञान लेखन**

  लेखक- डॉ० शिव गोपाल मिश्र
  प्रकाशक - उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
  राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
  6, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ
  संस्करण - 1997, पृष्ठ 90
  मूल्य- 50 रुपये

पुस्तकायन की पुस्तकें

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वावधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बालज्ञान-विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें		Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेताः	आशुतोष मिश्र	50
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	35
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	35
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जैव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईंधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया		Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें		Rs.
क्या क्यों कैसे (सामान्य विज्ञान) :	हरिदत्त शर्मा	60
क्या क्यों कैसे (शरीर रोग विज्ञान) :	हरिदत्त शर्मा	60
क्या क्यों कैसे (पृथ्वी एवं खनिज) :	हरिदत्त शर्मा	60
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धिवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारी पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध		Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा

आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हज़ार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 1 मार्च 1999 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

लेख निम्न पते पर भेजें :

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सम्पादक , विज्ञान

विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

ल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल
नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

ISSN : 0373 - 1200

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशि

हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिक

मार्च 1998

यह अंक : 5 रु०

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 83 अंक 12

मार्च 1998

मूल्य : आजीवन : 500 रु० व्यक्तिगत, 1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०, एक प्रति : 5 रु०

♦

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

♦

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

♦

सहायक संपादक

डॉ० दिनेश मणि

♦

मुद्रक

अरुण राय

कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

♦

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

विज्ञान विस्तार

विज्ञान वक्तव्य	...	1
श्रद्धान्जलि गीत	...	2
विज्ञान परिषद् प्रयाग के संस्थापक : प्रो० सालिगराम भार्गव	...	3
सोयाबीन : कितना प्रोटीन, कितना स्वास्थ्य वर्धक	...	5
उपचार हेतु सही निदान आवश्यक है	...	7
जनसंख्या विस्फोट : कारण एवं सुझाव	...	12
प्लास्टिक सर्जरी का कमाल : तन-मन को संवारती सर्जरी	...	16
ब्रह्माण्ड-निर्माण की बुनियादी ईंटें	...	19
बायोसेंसर पकड़ेंगे अब नशीली दवाओं के तस्करों को	...	21
कारबन	...	23

♦ ♦

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

'विज्ञान' का मार्च 1998 अंक आपके हाथों में है। डॉ० चंचलमल चोरड़िया का लेख, जो चिकित्सा विज्ञान से संबंधित है, उस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। मुझे अपने बचपन की याद आती है। कभी जब डॉक्टर के पास जाना पड़ता था, तो वहाँ बहुत समय लगता था। चुपचाप सहमा-सा बैठा रहता था और डॉक्टर के देख लेने के बाद ऐसा लगता था जैसे कैद से मुक्ति मिली हो। किन्तु अब लगभग 5 दशकों के बाद ऐसा लगता है कि वह स्थिति अच्छी थी। रोगी से चिकित्सक तमाम बातें खोद-खोद कर पूछते थे। भूख लगती है? प्यास लगती है? मीठे, खट्टे, नमकीन में किसका स्वाद अच्छा लगता है? शरीर के किस अंग में दर्द होता है? तकलीफ सुबह, दोपहर, शाम और रात में किस समय घटती या बढ़ती है? साथ ही परिवार के बड़े-बड़े लोगों के रोगों की जानकारी भी हासिल करते थे। किन्तु अब तो भाग-दौड़ की ज़िन्दगी में न तो चिकित्सक के पास समय है और न ही रोगी के पास धैर्य। रोगी ज़ल्दी से ज़ल्दी आराम अथवा रोग से छुटकारा चाहता है और चिकित्सक को दूसरा मरीज़ देखने की जल्दी। परिणाम सामने है। चिकित्सा विज्ञान की उपलब्धियाँ आसमान छू रही हैं, किन्तु रोगों से मरने वालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। कैंसर, थैलसीमिया और एड्स जैसी जानलेवा बीमारियाँ काबू में नहीं आ रहीं हैं। आदमी की औसत आयु बढ़ी है पर रोगों के चपेट में आने की संभावनायें भी बढ़ी हैं। ऐसे में डॉ० चोरड़िया का लेख चिकित्सा विज्ञान से जुड़े लोगों को निश्चित रूप से विचार करने को बाध्य करेगा।

पिछले दिनों परिषद् की स्थानीय गतिविधियाँ विशेष उल्लेखनीय नहीं रही हैं, किन्तु सूचनायें अवश्य हैं।

परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी और 'विज्ञान' पत्रिका के सहायक सम्पादक डॉ० दिनेश मणि जी 'सागर की रोचक बातें', 'मानव की रोचक बातें' एवं 'अंतरिक्ष की रोचक बातें,' पुस्तकों के विमोचन के लिये दिल्ली गए थे। उपरोक्त पुस्तकों का विमोचन माननीय डॉ० नरेन्द्र सहगल जी के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

27 फरवरी को "डॉ० गंगानाथ झा स्मृति व्याख्यानमाला" का प्रथम व्याख्यान 'डॉ० गंगानाथ झा संस्कृत शोध संस्थान' के निदेशक डॉ० गया चरण त्रिपाठी जी द्वारा दिया गया और 21 मार्च को 'डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यान डॉ० हरिश्चन्द्र गुप्त, दिल्ली द्वारा दिया जायेगा। वार्ता का विषय होगा 'लोकप्रिय गणित तथा कविता।'

एक बात और ! पुरातत्व विज्ञान से संबंधित एक ताज़ी खोज़ जहाँ एक और चौंकाने वाली है, वहीं दूसरी ओर सिन्धु घाटी सभ्यता (इण्डस वैली सिविलाइजेशन) पर नई रोशनी डालती है और साथ ही पुराने विचारों को ध्वस्त करती है।

लगभग 6 वर्ष पूर्व भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के एक दल ने, जिसके नेता प्रसिद्ध पुरातत्वविद् रवीन्द्र सिंह बिष्ट थे, ने गुजरात में खारे दलदलीय कच्छ के रन में धौलाविरा नामक स्थान पर खुदाई द्वारा पत्थर के प्रवेश द्वार और जल संग्रह की विकसित व्यवस्था की खोज की है। और तो और, हड़प्पा लिपि में लिखा हुआ शिलालेख भी ढूँढ़ निकाला। बिष्ट जी का कहना है कि 5000 वर्षों के बाद भी भारतीय ऐसा सुन्दर नगर नहीं बना सके हैं।

इस विषय में कभी विस्तार से चर्चा करेंगे किन्तु जो बातें उभर कर सामने आती हैं वे हैं—

क्या 'इण्डुस वैली सिविलाइजेशन' को 'सरस्वती सिविलाइजेशन' कहें?' इस प्रकार की सभ्यता वाले लोग भारतीय थे अथवा विदेशी ? क्या वास्तव में वे लोग बुद्धिमान थे अथवा किसी की नकल की ? क्या उस समय जनतंत्र था? क्या आर्य लोगों ने उन्हें मार दिया था अथवा भगा दिया था? क्या हम उनकी लिपि को पढ़ सकते हैं आदि । उपरोक्त प्रश्नों के प्रकाश में जो बात स्पष्ट दिखाई देती है वह यह कि इतिहास की पाठ्य पुस्तकों को नये तथ्यों के आधार पर फिर से लिखना होगा। इस खोज को आगे जारी रखने की ज़रूरत है।

अप्रैल अंक में आपको पढ़ने को मिलेगी एक विज्ञान-कथा और नयी पुस्तकों के विषय में जानकारी। अभी इतना ही।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

श्रद्धान्जलि गीत

डॉ० प्रभाकर द्विवेदी "प्रभामाल"

अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, दुग्ध विज्ञान विभाग,
कुलभास्कर आश्रम डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद-1

आज कर लें स्मरण उस पुरुष का ज्ञान की ज्योति जिसने जलाई।
ज्ञान विज्ञान संग योग संगम नव त्रिवेणी धरा पर बहाई।।
नाम जिसने किया अपना सार्थक, सत्य का बन प्रकाशक जगत् में।
कर्मयोगी ने आजन्म मन्थन, कर निकाला अमिय निज लगन से।।

योग तप त्याग की मूर्ति प्यारी, शोध सार्थक, सृजन का पुजारी।
जिसके श्रम से खिले रंग-रंग के, हैं अनेकों सुमन, बिहंसे क्यारी।।
ज्ञान को आचरण में उतारा, धर्म संस्कृति का चिर सत्य सारा।
सादा जीवन विचारों की गरिमा, आर्य भूषण वरद पुत्र प्यारा।।

योगदानों की गणना न उसके कर्मयोगी का है जग आभारी।
उसकी पावन धरोहर हो रक्षित सूखने दें न सृजनों की क्यारी।।
सच्ची श्रद्धान्जलि होगी वह जब हों अधूरे स्वप्न पूरे उसके।
हम सभी का है कर्तव्य पावन, हों उऋण, हैं दबे ऋण से जिसके।।

आज है पुण्य दिन हम शपथ लें, उस मनीषी के पदचिन्ह पर चल।
हम सुनायें वही मंत्र-ध्वनि फिर, हम बहायें वहीं धार भूतल।।
युग पुरुष ऐसे बिरले का सादर, भाव विह्वल हृदय से स्तवन है।
ऐसे त्यागी, तपस्वी, मनीषी, योगी के चरणों में शत-शत नमन है।।

विज्ञान परिषद् प्रयाग के संस्थापक : प्रो० सालिगराम भार्गव

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211 002

मनुष्य अमर नहीं होता किन्तु ख्याति, वंश-मर्यादा, लोगप्रियता, जीवन-संघर्ष में सफलता आदि की दृष्टि से उस मृत आत्मा के प्रति सम्मान व उसके नाम को अक्षुण्य बनाये रखने के लिये विभिन्न प्रकार के आलेख किये जाते रहते हैं। यही तब उसे युग युगान्तर तक जीवन्त रखते हैं व अमरत्व प्रदान करते हैं। यह आयोजन भी एक ऐसी ही आत्मा प्रो० सालिगराम भार्गव की स्मृति के प्रति समर्पित मात्र श्रद्धासुमन है।

प्रो० सालिगराम भार्गव का जन्म 12 दिसम्बर सन् 1988 को गुड़गाँव ज़िले के खोरी नामक स्थान में ननिहाल में हुआ था। बारह वर्ष की अल्पायु में ही सन् 1900 ई० में पिता मुं० लच्छीराम जी भार्गव का देहावसान हो गया और वे पितृविहीन हो गये। सन् 1905 में उन्होंने अलवर हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और 1909 में आगरा कॉलेज से बी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद आगे की पढ़ाई हेतु इलाहाबाद चले आये और सन् 1912 में म्योर सेन्ट्रल कॉलेज से भौतिक विज्ञान में एम० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। वहीं डिमान्सट्रेटर के पद पर नियुक्त कर दिए गये। सन् 1919 में भौतिक विज्ञान के सहायक अध्यापक नियुक्त हुए और उत्तर प्रदेश की प्रांतीय एजूकेशनल सर्विस में भी रहे। जब प्रयाग विश्वविद्यालय का पुनर्संगठन हुआ तो उन्हें प्रयाग विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान विभाग में रीडर नियुक्त किया गया। सन् 1946 से 1949 तक विभागाध्यक्ष भी रहे और 1 मई सन् 1949 में विभागाध्यक्ष के रूप में ही अवकाश ग्रहण किया।

प्रो० सालिगराम भार्गव उन दूरदर्शी व विवेकशील व्यक्तियों में थे जिन्होंने आज से 84 वर्ष पूर्व ही इस बात का अनुमान कर लिया था कि हिन्दी एक न एक दिन राष्ट्रभाषा होकर ही रहेगी और देश की वास्तविक तथा सच्ची उन्नति तभी होगी जब शिक्षा का माध्यम हिन्दी होगा और वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण भी हिन्दी में होने लगेगा। इन्ही महान उद्देश्यों को सामने रखकर और बैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार को ध्यान में रखकर जनता की अभिरुचि वैज्ञानिक साहित्य की ओर जागृत करने के आन्दोलन को भूर्तमान स्वरूप देने के लिये 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' को जन्म दिया गया। 10 मार्च 1913 को 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की संस्थापना का उल्लेख महामहोपाध्याय डॉ० गंगानाथ झा ने विज्ञान परिषद् के 'रंजत जयंती अंक' में किया है। इसके चार संस्थापक विभूतियों- डॉ० गंगानाथ झा, श्री रामदास गौड़, प्रो० हमीदुद्दीन और प्रो० सालिगराम भार्गव में भार्गव साहब मात्र 24 वर्ष के ही थे। इससे उनकी स्फूर्ति, निष्ठा, लगन और हिन्दी भाषा के प्रति लगाव का अनुमान सहज ही

लगाया जा सकता है।

उन्होंने अपने चारों ओर के वातावरण को विज्ञानमय बना रखा था। इनकी विज्ञान- निष्ठा असीम थी। विज्ञान की सेवा वे बड़े उत्साह, लगन और प्रेम से करते थे। प्रो० सालिगराम जी के लेखक की प्रतिभा पूर्ण रूप से विकसित न हो सकी थी और लिखने में संकोच भी करते थे पर व्यवस्था में सिद्धहस्त थे। उन्होंने अनेक अवसरों पर जनसामान्य के हितार्थ और ज्ञान संवर्धनार्थ सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा वैज्ञानिक विषयों पर भाषण कराने की व्यवस्था की। कई अवसरों पर तो उन्होंने स्वयं व्याख्यान दिये। ये व्याख्यान आडम्बरशून्य, सरल व सुगम शब्दों में होते थे। भार्गव जी अनुभवशील अध्यापक थे, जिससे उन्हें विज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान अधिक था। वे व्याख्यान को प्रयोग व प्रदर्शन द्वारा रुचिकर बनाये जाने के पक्ष में थे, जिससे सुनने वालों में नीरसता का भाव उत्पन्न न होकर रुचि व उत्साह लगातार बना रहे।

भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रो० भार्गव अपनी सूझ से काम लेते थे। 'Ion' (आयन) शब्द के लिये उन्होंने ग्रीक आधार के अनुसार "यवन" शब्द दिया क्योंकि यवन और आयन दोनों ही घुमक्कड़ हैं। Electrode, Anode और Cathode को क्रमशः ब्रिजलोद, धनोद और ऋणोद नाम भार्गव साहब द्वारा ही दिये गये थे। उनका निश्चित मत था कि हिन्दी में यदि "Table of Physical and Chemical Constants" प्रकाशित हो जाये तो विज्ञान को काफी लाभ पहुँचेगा। यह पुस्तक पारिभाषिक शब्दों का भी काम करेगी और स्थिरांकों का उपयोग भी इससे हो सकेगा। उनका यह सपना उस समय साकार हो गया जब डॉ० सत्यप्रकाश और डॉ० निहालकरण सेठी ने उनकी प्रेरणा से "वैज्ञानिक परिमाण" नामक पुस्तक की रचना कर डाली।

हिन्दी भाषा से उन्हें बहुत ही प्रेम था और वे सदा इस प्रयास में रहते थे कि विज्ञान-साहित्य हिन्दी में सर्वसुलभ हो जाय। उनका हिन्दी अनुराग इसी से स्पष्ट है कि एम० एस-सी० उपाधि प्राप्त करते ही वे इस दिशा में प्रयासरत हो गये और सर्वप्रथम "विज्ञान प्रवेशिका" नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित कराई। "चुम्बक" नामक पुस्तक की रचना हिन्दी में उस समय की जब हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य का नितांत अभाव था। अप्रैल 1915 से विज्ञान परिषद् की मासिक पत्रिका "विज्ञान" , जो कि विज्ञान सम्बन्धी हिन्दी की प्रथम पत्रिका है, प्रो० भार्गव के उत्साह, परिश्रम से प्रकाशित होना शुरू हुई। वे अनेक लोगों के प्रेरणास्रोत थे क्योंकि अनेक विद्यार्थियों में हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य सृजन करने का शौक उन्हीं के कारण उत्पन्न हुआ था। हालांकि उस समय अनेक व्यक्ति उनके हिन्दी प्रेम और विज्ञान-निष्ठा को नहीं समझ सके थे।

उनमें नवीनता व प्राचीनता का अद्‌भुत सम्मिश्रण था। भौतिक-विज्ञान के आचार्य होते हुए भी वे भारतीय संस्कृति तथा धर्म के प्रति अपूर्व निष्ठा रखते थे। प्रो० भार्गव का जीवन सादा था और पोशाक उससे भी सादी। अभी जो कोई भी भार्गव जी से मिलता था उनकी सादगी से बरबस ही प्रभावित हो जाता था। जाड़ा, गर्मी, बरसात- सभी मौसमों में वे एक ही पोशाक पहनते थे। वे सादा जीवन उच्च विचार की सजीव प्रतिमूर्ति थे। पाश्चात्य देशों के लौकिक अभ्युदय, संगठन शक्ति, लगन, परिश्रम, व्यवस्था के प्रशंसक होते हुए भी वे सच्चे भारतीय थे। वे सुधारवादी होते हुए भी क्रांतिकारी नहीं थे। उन्होंने जीवन को स्वतंत्र दृष्टिकोण से परखा था। वे संयम, नियन्त्रण, अनुशासन और व्यवस्था पर बल देते थे। उनका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए और जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ नहीं व्यतीत करना चाहिए।

मित्रता करने और निभाने में बड़े कुशल थे। इनकी मित्र-मण्डली बहुत ही व्यापक थी। इनकी मित्र-मण्डली में अनेक वर्गों, श्रेणियों, अवस्थाओं तथा सचित्रों वाले व्यक्ति सम्मिलित थे। अपनी साधारण बुद्धि, सूझ-बूझ तथा दूरदर्शिता से वे कठिन से कठिन गुत्थियों को भी अत्यन्त सुगम बना देते थे। सहिष्णुता के तो मानों वे सागर ही थे। उनकी उदारता व दानशीलता में संकीर्णता एवं क्षुद्रता नहीं थी। उनका नवनीत सा कोमल भावुक एवं संवेदनशील हृदय दूसरों के दुःखों को देखकर व्यथित हो उठता था। वे अपनी उदार और व्यापक सहानुभूति के कारण बहुत ही लोकप्रिय थे तथा सभी के आदर व श्रद्धा के पात्र बन गये थे। विषम परिस्थितियों में भी वे मुस्कराते रहते थे। विरोधियों के कटु

से कटु वाक्य एवं तीव्र से तीव्र आलोचनाएँ भी उन्हें विचलित न कर पाती थीं। उनमें इच्छा शक्ति एवं आत्मविश्वास हिलोरें लेते रहता था। यही कारण था कि जिस बात को वे ठीक समझते थे उससे पीछे हटना उनके लिये असम्भव था। उनके लिये कर्तव्य और प्रेम पर्याय थे। उन्हें सदा इस बात का ध्यान रहता था कि उनके कारण किसी को कष्ट न हो। वे किसी पर अविश्वास नहीं करते थे। समय के वे बड़े ही पाबन्द थे। उनका सभी कार्य नियमित समय पर होता था।

सालिगराम जी ने मंत्री, प्रधानमंत्री, सभापति और उपसभापति के रूप में विज्ञान परिषद् व विज्ञान की स्थापना से लेकर मृत्यु पर्यन्त (16 सितम्बर 1953) तक गौरवपूर्ण सेवा की है। उनकी मृत्यु से विज्ञान परिषद् ही क्या, समस्त हिन्दी विज्ञान सेवियों को काफी हानि हुई है। उनका नाम आते ही आदर्श अध्यापक, स्नेही मित्र, सफल प्रबंधक तथा संगठनकर्ता, आदर्श समाजसेवी, अद्वितीय हिन्दी विज्ञान-सेवी, परोपकारी, दानी, उच्च विचारक आदि न जाने क्या-क्या गुण उन्हें जानने वालों के मन-मस्तिष्क पर अंकित हो जाते हैं, किन्तु निस्वार्थता एवं पर दुःख कातरता से उनके व्यक्तित्व का जो समन्वित चित्र लोगों के मस्तिष्क में अंकित होता है वह इतना विविधतापूर्ण और व्यापक है कि यह निश्चित रूप से कह सकना अत्यन्त कठिन है कि वे वास्तव में क्या थे?

हमें आशा करनी चाहिए कि स्व० प्रो० भार्गव का अनुकरणीय उदाहरण दीर्घकाल तक देशवासियों का मार्गदर्शन करता रहेगा और उन्हें सादे व सरल जीवन के साथ उच्च आदर्श रखकर देश और मातृ-भाषा हिन्दी की सच्ची सेवा करने के प्रेरणा देता रहेगा। अन्त में व्यक्तित्व के धनी ऐसे गौरववान प्रो० भार्गव जी को मेरा शत्-शत् प्रणाम।

सोयाबीन : कितना प्रोटीन, कितना स्वास्थ्य वर्धक?

राजेन्द्र कुमार राय

डी-753, **सरस्वती विहार, दिल्ली**-110 034

तेल-संकट के कारण खाद्य पदार्थ के रूप में सोयाबीन ने विश्व में अपना एक अलग स्थान बनाया है। कुछ एशियाई देशों में सोयाबीन हड्डी के रूप में जाना जाता है। सोयाबीन में 50 प्रतिशत प्रोटीन, 20 प्रतिशत तेल और 25 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट होता है।

सोयाबीन के उपयोग की संभावनाएँ अंतहीन है। ऐसी सैकड़ों विधियाँ हैं, जिससे सोयाबीन मनुष्यों के भोजन के रूप में, जानवरों के चारे के रूप में, यहां तक कि औद्योगिक रूप में भी इसे प्रयोग में लाया जा सकता है। सोयाबीन को युवक-युवतियों के पौष्टिक भोजन के रूप में, वयस्कों को स्टेपल फूड के रूप में दिया जा सकता है। हृदय के मरीज़ों के लिये तो यह एक वरदान है। सोयाबीन से बने व्यंजन न केवल पौष्टिक होते हैं, बल्कि ये खाने में रुचिकर भी होते हैं। एक किलो सोयाबीन से लगभग 10 किलो दूध निकलता है। हंगरी जैसे कुछ यूरोपीय देशों में तो सोयाबीन की खेती वृहत पैमाने पर हो रही है। हंगरी के तीन संस्थान सोयाबीन की उचित किस्म को विकसित करने के प्रयास में लगे हुए हैं।

सोयाबीन का इतिहास लंबा और दिलचसप है। इतिहास की शुरूआत के पहले, यहाँ तक कि पिरामिडों के पहले सोयाबीन की खेती हुआ करती थी। 5,000 वर्ष पहले लिखी गयी कविताओं में सोयाबीन के गुणों की चर्चा मिलती है, वैसे तो इसके उद्योग की सही जानकारी उपलब्ध नहीं है। लेकिन ऐसा विश्वास किया जाता है कि चीन, कोरिया, मंचुरिया, मंगोलिया और जापान में यह काफी अरसे से पाया जाता है।

सोयाबीन की उत्पत्ति से संबंधित किस्से काफी मोरंजक है। जापानी मिथ के अनुसार स्वर्ग से 'इजनांगो' को जापान द्वीप बनाने के लिये भेजा गया था।

इजनांगो ने देवी-देवताओं को काफी प्रसन्न कर लिया और उसने दवी-देवताओं में से एक को सूरज की देवी, दूसरे को चाँद का देवता और तीसरे को समुद्र का देवता बना दिया। लेकिन तीसरे यानी सुसानो ने नये साम्राज्य को पसंद नहीं किया। अंत में इजनांगो ने उसे नहीं अपनाया जिसके बाद सुसानो इधर-उधर भटकने लगा। एक दिन उसे भूख लगी शक्ति और स्फूर्ति पाने के लिये उसने भोजन की देवी से अनुनय विनय की। देवी के पास जो था, वह उन्होंने उसे दे दिया, लेकिन इससे उसे संतोष नहीं हुआ। उसने देवी की जान ले ली और उसे दफ़ना दिया। जिस जगह देवी को दफ़न किया गया, वहाँ से भोजन के पाँच पौधे सहसा उग आये। इनमें से पहला था सोयाबीन, फिर बड़ी वाली बीन, चावली, बाजरा और अंतिम थी जौ। तब से जापान में भोजन के रूप में इन पाँच अनाजों का प्रचलन हुआ। जापानियों के बीच में एक कहावत है कि जब आप सोया पैदा करते हैं, तो आप सोया के साथ मांस, दूध और अंडा सारी चीजें पैदा करते हैं।

सोयाबीन के संबंध में एक चीनी किवंदती के अनुसार पूर्वी चीन में सोना, चाँदी, हीरा, मोती आदि से भरा हुआ एक काफ़िला जा रहा था तो उसे कुछ डकैतों ने घेर लिया। इन डकैतों से बचने के लिये अपने नौकरों के साथ व्यापारियों ने ऐसे द्वीप में शरण ली ज़ो चट्टानों से घिरा हुआ था। यहाँ पर वे तब तक रहे जब तक उनका राशन खत्म नहीं हो गया। उसके बाद उन्हें भूख सताने लगी। नौकरों में एक की नजर एक अनोखे पौधे पर पड़ी जिसे उन लोगों ने पहली बार देखा था। उस पौधे में से बीन को तोड़कर उसके दानों का उन्होंने आटा बनाया और बाद में आटे को पानी से गूँथ कर उसके केक बनाये। इस भोजन के सहारे काफी समय गुजारा और तब से चीन में 'स्टेपल' फूड के रूप में सोयाबीन काफी लोकप्रिय हो गया।

पूरब से यूरोप और अमेरिका तक पहुँचने में इस बीन को हज़ारों वर्ष लगे। यूरोप में सोयाबीन पहली बार जाना गया सन् 1712 में जबकि एक जर्मन वनस्पति शास्त्री ऐंग्लीबर्ट फांसकर ने जापान में दो वर्ष गुजारने के बाद इसके संबंध में आलेख प्रकाशित किया।

यूरोप में पहली बार इनके बीजों को इन्होंने ही प्रचलित किया, लेकिन एक लंबे समय तक इसकी खेती में किसी ने कोई उत्साह नहीं दिखाया। सन् 1975 में वियना के फ्रेडरिक हैब्रल ऐंडफ ने सोयाबीन की महत्ता के संबंध मे लोगों का ध्यान आकर्षित करवाया। उनकी किताब 'डाई सोजा-बोहनी' के प्रकाशन के पश्चात् ही ऐसा संभव हो सका।

अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले सोयाबीन का प्रचलन अमेरिका में सन् 1804 में अचानक ही हुआ। वापसी के लिए माल ढोने की आशा लिये अमेरिकी लोग समुद्र से चीन तक पहुँचे जहाज़ के कप्तान को अपनी यात्रा का अंदाज़ा नहीं था और उसने आपातकाल के लिये सोयाबीन की कुछ बोरियाँ रख ली और इस तरह सोयाबीन पहुँच गया अमेरिका। एक दूसरी कथा के अनुसार, पूरब में एक अमेरिकी मिशन ने सोयाबीन की एक बोरी अपने मित्र को भेंट स्वरूप भेजी थी। उस मिशन ने कभी यह सोचा भी नहीं था कि एक दिन सोयाबीन अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था में इतनी बड़ी भूमिका निभायेगा। कुछ वर्षों तक तो यह वनस्पतिशास्त्र के लिये कौतूहल का विषय बना रहा। लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में यह काफी लोकप्रिय हो गया।

भारत में जहाँ खाना बनाना एक कलात्मक प्रक्रिया है, वहाँ सोयाबीन से अनेक रुचिकर एवं स्वादिष्ट व्यंजन बनाये जाते हैं, जैसे पुलाव, दाल, भाजिया, उसल, सब्ज़ी इत्यादि, साथ ही सोयाबीन से तेल, पेंट, वार्निश, लिनोलियम, जल निरोधक सामान, काग़ज़ के छाते इत्यादि बनाये जाते हैं।

सोयाबीन से प्राप्त होने वाला प्रोटीन-मांस, मछली और अंडे से प्राप्त होने वाले प्रोटीन जैसा है। शायद इसीलिए इसे गरीबों का मांस कहा जाता है। इसमें ए, बी और डी विटामिन पाये जाते हैं और अंकुरित सोयाबीन में विटामिन सी भी पाया जाता है। चिकित्सकों के अनुसार सोयाबीन में काफी मात्रा में अमीनो अम्ल पाया जाता है जो काफी पौष्टिक होता है। एक पौंड गेहूँ में 1,750 कैलोरी होती है, जबकि सोयाबीन के एक पौंड में 2,100 कैलोरी पायी जाती है। चूँकि सोयाबीन में फॉस्फेट काफी मात्रा में उपलब्ध होता हैं, इसलिये धमनियों से संबंधित व्याधियों में इससे काफी लाभ पहुँचता है।

कुछ बड़े चिकित्सकों ने रिकेट्स, खून की कमी आदि बीमारियों में इसका सेवन करने को कहा है। यदि सच कहा जाये तो सोयाबीन जैसे साधरण बीन की मानव जीवन के लिये एक जीवनरक्षक भूमिका है। (सम्प्रेषण)

■■■

उपचार हेतु सही निदान आवश्यक है

डॉ० चंचलमल चोरड़िया

चोरड़िया भवन, जालोरी गेट के बाहर
गोल बिल्डिंग, जोधपुर- 342001

निदान में अप्रत्यक्ष रोगों की उपेक्षा अनुचित

चिकित्सा की प्रथम आवश्यकता है सही निदान। दूसरा प्रभावशाली एवम् स्थायी उपचार। तीसरा परहेज और सावधानियाँ अथवा भविष्य में रोगों की पुनरावृत्ति न हो। क्या वर्तमान प्रचलित चिकत्सा पद्धतियाँ इन मापदण्डों पर खरी उतरती है? हमारे शरीर में प्रायः सैकड़ों रोग होते हैं, जिनकी उपस्थिति हमें परेशान न करने लग जावें, रोग हमारी सहनशक्ति से परे होने लगें। अतः हमें मानना होगा कि रोग के जो लक्षण प्रकट होते हैं, वे रोगों के समूह के नेता की भांति होते हैं, जिन्हें सैकड़ों अप्रत्यक्ष रोगों का सहयोग प्राप्त होता है। जिस प्रकार जनतन्त्र में नेता को हटाने के लिये उसके सहयोगियों को अलग करना पड़ता है, सहयोगियों को अलग किये बिना नेता को हटाना सरल नहीं, ठीक उसी प्रकार निदान करते समय यदि चिकित्सक अप्रत्यक्ष रोगों के प्रभावों की उपेक्षा करेगा तो निदान आंशिक अथवा अधूरा होगा।

क्या दो रोगी एक जैसे हो सकते हैं?

रोग के जो लक्षण बाह्य रूप से प्रकट होते हैं, अथवा पैथालोजिकल टेस्टों एवं यंत्रों की पकड़ में आते हैं वे लक्षण तो सामान्य (Generalised) ही होते हैं, जिनके आधार पर प्रायः रोगों का नामकरण किया जाता है। उपचार हेतु एक जैसी पद्धति प्रायः अपनायी जाती है। सभी प्रकार के दर्दों में एक जैसे दर्द नाशक (Pain Killer) और अन्य रोगों में एक जैसे एण्टीबायेटिक्स दवाइयाँ देने के पीछे आधुनिक चिकित्सकों का सोच कितना वैज्ञानिक है, शोध का विषय है। रोग के अन्य कारण, जो रोगी के स्वयं से ही सम्बन्धित होते हैं, जिनकी जड़ें बहुत गहरी होती हैं, निदान करते समय प्रायः उपेक्षित रहते हैं। रोग के मूल कारणों को समझने के लिये जो अनुभव और व्यापक दृष्टिकोण चिकित्सक का होना चाहिए, निदान में प्रायः दुर्लभ प्रतीत होता जा रहा है। पुराने अनुभवी वैद्य नाड़ी देख कर रोग का सही निदान करने में सक्षम थे, परन्तु आज आयुर्वेद में भी निदान का वह आधार कम होता जा रहा है। दुनिया में दो व्यक्ति जब एक जैसे नहीं हो सकते तब दो रोगी और उनका निदान एक जैसा कैसे हो सकता है? व्यक्ति की मनोवृत्तियों, भावनाओं, संकल्पों, विकल्पों, संवेदनाओं, आवेगों आदि के अनुसार अंतः स्राव ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। परिणामस्वरूप शरीर के अवयवों में उसके अनुसार बदलाव होता रहता है। इसी कारण एक ही व्यक्ति के अलग-अलग समय पर कराये जाने वाले मल, मूत्र, ई० सी० जी० आदि पैथालोजिकल टेस्ट सदैव एक जैसे नहीं होते। आधुनिक चिकित्सा-पद्धति के निदान का यही मूलाधार है। जब रोग का आधार ही बदलता रहे तो ऐसे निदान कैसे विश्वसनीय, सही, वैज्ञानिक हो सकते हैं?

क्या कीटाणु ही रोग का कारण हैं?

आधुनिक चिकित्सा पद्धिति रोग का मुख्य कारण शरीर में वायरस अथवा रोग के कीटाणुओं को मानती है।

मानव अनन्त शक्तिशाली है। उसमें अनन्त क्षमता है। क्या लाखों चूहे मिलकर किसी शेर को परेशान कर सकते हैं? हाँ यदि शेर को अपनी क्षमता का ख्याल न हो। वह प्रमादी हो अथवा गहरी निद्रा में सोया हो तो निश्चित रूप से उसे परेशानी हो सकती है। अन्यथा उसका कुछ भी बिगड़ नहीं सकता। ठीक उसी प्रकार यदि हमारी प्रतीकारात्मक शक्ति अच्छी हो तो वायरस और कीटाणु हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं? शरीर की प्रतीकारात्मक शक्तियों को क्षीण करने में गर्भावस्था से ही ली जाने वाली आधुनिक दवाइयों, इंजेक्शनों और टीकाकरण से पड़ने वाले दुष्प्रभावों की अहम् भूमिका होती है, जिसको क्यों नकारा जा रहा है? गन्दी बस्तियों में रहने वाले, रोजाना मल-मूत्र और गटर, नालियों की सफाई करने वाले और प्रतिदिन अस्पताल में असाध्य एवं संक्रामक रोगियों के बीच रह कर सेवायें देने वाले चिकित्सकों और नर्सेज आदि को तो इस मान्यतानुसार सदैव रोगग्रस्त ही होना चाहिए? परन्तु इसमें कितनी वास्तविकता है, जनसाधारण से छिपी नहीं। अतः किसी एक कारण को अत्यधिक महत्व दे अन्य कारणों की उपेक्षा से निदान सही नहीं हो सकता।

गर्भावस्था में माता-पिता का दायित्व

कभी-कभी पूर्वाजित कर्म और माता-पिता के रोग पैतृक संस्कारों के रूप में विरासत में मिलते हैं। उसकी तरफ न तो निदान करने समय चिकित्सक का ध्यान ही जाता है और न उसके स्थायी उपचार वर्तमान चिकित्सा से प्रायः संभव हैं। बच्चे का अधिकतम विकास तो माता के गर्भ में ही हो जाता है। जिस प्रकार अच्छी खेती के लिये किसान न केवल अच्छे बीज बोता है, परन्तु जब तक खेती न लहलहाने लगे, उसकी पूर्ण देखभाल करता है। वैसे मानव जैसी अनमोल कृति के सृजन हेतु माता-पिता को बालक की गर्भावस्था में जितना संयमित, नियन्त्रित, अनुशासित, सजग और सतर्क रहना चाहिए, प्रकृतिक जीवन जीना चाहिये, जैसी संतान की अपेक्षा हो वैसे विचारों को पोषण देने वाले साहित्य का अध्ययन , मनन, चिन्तन, स्वाध्याय और आचरण करना चाहिये।

परन्तु आजकल प्रायः वैसा नहीं होता। आजकल अज्ञानवश बिना सोचे-समझे दुष्प्रभावों की उपेक्षावृति के कारण गर्भावस्था में जो दवाइयाँ और इंजेक्शन लिये जा रहे हैं, सोनोग्राफी और एक्स-रे की किरणों का गर्भस्थ बालक के सुकोमल स्वास्थ्य पर जो दूरगामी जीवन पर्यन्त दुष्प्रभाव पड़ रहा है, उस तरफ चिकित्सकों की निदान में अपेक्षा अनुचित है? जब मूल में ही भूल हो, ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित निदान कैसे सम्पूर्ण हो सकते हैं? यह चिन्तन का विषय है।

निदान हेतु समग्र दृष्टिकोण आवश्यक?

ब्राह्य लक्षणों की एकरूपता के बावजूद संवेदनाओं की ग्रहण शक्ति रोग के सर्वाधिक प्रभाव का समय एवं वर्ष का महीना, रोगी की आयु, उसके शरीर से निकलने वाली विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ जेसे निद्रा में खर्राटे आना, हिचकियाँ, डकार, छींक, खांसी आदि की आवाज़, रोगी का स्वभाव एवं संस्कार, जीवनचर्या, शरीर में वात, कफ़ और पित्त के संतुलन की स्थिति, शरीर में यिन-येंग अंगों का संतुलन, प्रत्येक अंग में मूलभूत प्राण ऊर्जाओं (वायु, गर्मी, नमी, शुष्कता, ठण्ड) का संतुलन, उदय में आने वाले कर्मों की स्थिति, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, चिन्तन-मनन, पारिवारिक, सामाजिक और व्यवसायिक वातावरण, श्रम पुरुषार्थ आदि की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी घटनाक्रम अथवा प्रतिक्रिया को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव प्रभावित करते हैं। रोग का निदान करते समय इनके प्रभावों की अपेक्षाओं से चिन्तन आवश्यक है।

कोई भी रोग रातोंरात पैदा नहीं हो जाता। जिस प्रकार बीज धीरे-धीरे वृक्ष का रूप लेता है, उसी प्रकार रोग भी धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखाता है। 'जैन धर्म' में किसी भी घटना के घटित होने के लिये पांच समवाय का सिद्धान्त मूल है। वस्तु का स्वभाव, काल, नियति, कर्मों के उदय में आने की स्थिति और पुरुषार्थ। शरीर के स्वभाव अर्थात् उसकी समस्त गतिविधियों, रोग उत्पन्न होने का समय, कर्म और नियति पर हमारा सीधा नियन्त्रण नहीं है। हमारे नियन्त्रण में तो एक मात्र सम्यक् पुरुषार्थ है। अतः हम ऐसा कोई कार्य न करें जो स्वास्थ्य के नियमों के प्रतिकूल हो। परन्तु जब पूर्वोपर्जित कर्म उदय में आने का समय परिपक्व हो जाता है, नियति कुछ ऐसी परिस्थितियाँ बना देती है कि हम रोग अथवा

दुर्घटनाग्रस्त न चाहते अथवा सावधानी रखते हुए भी हो जाते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। अतः निदान करते समय हमारा चिन्तन न केवल रोग के शारीरिक कारणों तक ही केन्द्रित रहे, अपितु मानसिक और आत्मिक कारणों की भी समीक्षा आवश्यक है।

रोग के प्रभावी समय का निदान में महत्व

शरीर के सभी अंग चौबीसों घंटे एक जैसे क्रियाशील नहीं रहते। अतः निदान करते समय हमें मालूम करना होगा कि रोगी को सबसे अधिक परेशानी एवं राहत कब अनुभव होती है? उस समय शरीर के कौन से अंगों में प्राण ऊर्जा का प्रभाव सर्वाधिक अथवा अपेक्षाकृत कम होता है, वे अंग रोग से विशेष संबन्धित होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि किसी रोगी को प्रातःकाल चक्कर आते हैं, दर्द होता है, बैचेनी रहती है और वैसे ही लक्षणों वाले अन्य रोगी को दोपहर सायंकाल अथवा रात्रि के चक्कर , दर्द और परेशानी हो तो दोनों रोगियों के रोग का कारण और निदान अलग-अलग होगा।

मौसम और रोग का निदान

जिस प्रकार पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने से दिन-रात होते हैं और साथ ही साथ की परिक्रमा करने से सदैव मौसम एक सा नहीं रहता। ठीक उसी प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग में प्राण-ऊर्जा का प्रवाह सदैव एक-सा नहीं रहता। प्रतिमास किसी न किसी अंग में प्राण-ऊर्जा का प्रभाव सर्वाधिक रहता है तो किसी में अपेक्षाकृत कम। परिणामस्वरूप किसी रोगी को गर्मी तो किसी को सर्दी, वर्षा, पतझड़ अथवा बदलता मौसम अनुकूल नहीं होता किसी न किसी रोग के लक्षण उस समय उनमें प्रकट होने लगते हैं। इस दृष्टि से मनुष्य का जिस समय जन्म होता है, उस समय ऊर्जा-चक्र में जिस अंग में प्राण-ऊर्जा का सर्वाधिक प्रवाह होता है, उस अंग की उस व्यक्ति के लिये महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जब तक उस अंग को क्षति नहीं पहुँचती, घबराने जैसी कोई बात नहीं। इस अंग की शरीर में भूमिका सेना में सेनापति के जैसी होती है। जिस प्रकार सेनापति के हार जाने पर सारी सेना पराजित हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जब तक वह अंग ठीक ढंग से कार्य करता है तो उसको मृत्यु का खतरा नहीं रहता। इसी कारण बहुत से व्यक्ति प्रथम हृदयघात में ही मर जाते हैं, तो बहुत से रोगी 3-4 बार हृदयघात होने के बावजूद जीवन जीते हैं। मृत्यु के समय कोई गुर्दे के रोग से तो कोई फेफड़े, हृदय, लीवर, आमाशय आदि के रोगों से ग्रस्त होते हैं। सबकी मृत्यु का ढंग एक जैसा नहीं होता । अमेरिका के डॉ० माइकल ब्लेट ने इस विषय पर गहन अध्ययन कर अपनी पुस्तक 'एक्यूप्रेशर' के भाग 4 में एक तालिका प्रकाशित की जिसमें जन्म समय के अनुसार कौन से महीने में कौन से अंग में सर्वाधिक प्राण-ऊर्जा का प्रवाह होता है, उसका जो विवरण किया, वह निम्नवत है।

जन्म का समय	सर्वाधिक प्राण-ऊर्जा प्रवाह वाला अंग
7 फरवरी से 8 मार्च	फेफड़े
9 मार्च से 8 अप्रैल	बड़ी आँत
9 अप्रैल से 7 मई	आमाशय
8 मई से 7 जून	प्लीहा-पैन्क्रियाज़
8 जून से 7 जुलाई	हृदय
8 जुलाई से 7 अगस्त	छोटी आँत
8 अगस्त से 7 सितम्बर	मूत्राशय
8 सितम्बर से 7 अक्टूबर	गुर्दे
8 अक्टूबर से 7 नवम्बर	पेरिकार्डियन-Brain
8 नवम्बर से 7 दिसम्बर	ट्रीपल वार्मर-Spine
8 दिसम्बर से 7 जनवरी	पित्ताशय
8 जनवरी से 6 फरवरी	लीवर

[स्रोत -डॉ० माइकल ब्लेट की पुस्तक 'एक्यूप्रेशर', भाग 4]

अतः निदान करते समय रोगी की जन्म-तिथि से संबन्धित अंग के लक्षणों तथा जिस मास में रोग हो उससे संबन्धित अंग की गतिविधियों की सूक्ष्मतम जानकारी काफी महत्वपूर्ण होती है।

रोग निदान और रोगी की आयु

हमारा शरीर वायु, गर्मी, ठण्डक, नमी, शुष्कता आदि पांच प्रकार की ऊर्जाओं द्वारा संचालित होता है। ये ऊर्जायें

प्रत्येक अंग में कम-ज़्यादा रूप से होती है। किसी भी ऊर्जा के पूर्ण रूप से समाप्त होने की स्थिति में मृत्यु हो जाती है। जीवन-पर्यन्त मनुष्य की सोच, चिन्तन, स्मरणशक्ति, शारीरिक-मानसिक क्षमता एक जैसी नहीं रहती। बाल्यावस्था में वायु ऊर्जा का प्रभाव अपेक्षाकृत ज्यादा होता है। वायु अस्थिर होती है। इसी कारण बच्चा अपेक्षाकृत अस्थिर होता है। शरीर में हलन-चलन में वायु ऊर्जा की प्रभावी भूमिका होती है। बच्चा कितना जिज्ञासु होता है? कैसे-कैसे प्रश्न पूछता है? बड़े-बड़े व्यक्ति जिज्ञासु क्यों नहीं होते? बच्चा जितना क्या, क्यों, कब, कैसे, कहाँ की भाषा में शंकाये रखता है, उतना अन्य आयु वाले अपनी शंकाओं के बारे में प्रश्न क्यों नहीं करते? वायु ऊर्जा से विशेष संबन्धित शरीर में लीवर और गाल ब्रेडर अंग होते हैं। अतः बच्चों का उपचार करते समय अथवा बच्चों जैसी प्रवृत्ति के अभाव वाले रोगी के निदान में लीवर, गाल ब्रेडर की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। युवावस्था में व्यक्ति में गर्मी ऊर्जा का विशेष प्रवाह होने से जोश ज़्यादा होता है। अतः युवकों का निदान करते समय गर्मी से सम्बन्धित ऊर्जा वाले अंगों की तरफ ध्यान देना आवश्यक है। वृद्धावस्था में व्यक्ति का हलन-चलन कम हो जाता है, इन्द्रियाँ क्षीण होने लगती हैं। जिस प्रकार बर्फ जमने से पानी का प्रवाह मन्द पड़ जाता है, उसी प्रकार इस अवस्था में ठण्डक ऊर्जा अधिक सक्रिय हो जाने से जोश ठण्डा पड़ जाता है। अतः वृद्धों के रोगों का निदान करते समय ठण्डक ऊर्जा से सम्बन्धित अंग गुर्दे और मूत्राशय पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

शारीरिक ध्वनियाँ और रोग

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर से अलग-अलग प्रकार की आवाज़े निकलती हैं। जैसे कोई निद्रा में खर्राटें लेता है तो किसी को डकारें, जम्माईयाँ, हिचकियाँ, छीकें, खांसी आती है। किसी की आवाज़ बदल जाती है तो किसी के आवाज़ के साथ गैस विसर्जित होती है। किसी की आवाज़ मधुर सुरीली तो किसी की कर्कष और मोटी क्यों? शरीर में इन ध्वनियों के स्पन्दन का नियन्त्रण कौन और कैसे करता है? क्या इन ध्वनियों का हमारे स्वास्थ्य से कोई संबन्ध हैं? क्या इन ध्वनियों को मन चाहे घटाना बढ़ाना संभव हैं? क्या निदान में इनकी समीक्षा होती है?

रंग और रोग

कोई काला तो कोई गोरा या अन्य रंग वाला क्यों? कभी-कभी शरीर के कुछ भाग काले, नीले या लाल क्यों हो जाते हैं? कभी-कभी त्वचा का रंग क्यों उड़ जाता है? क्या आधुनिक परीक्षणों में इस परिवर्तन के कारणों का निदान संभव है? क्या इन परिवर्तनों का रोग से कोई संबंध है? इन रंगों के परिवर्तन में कौन से अंग की प्रभावी भूमिका है? इसके अतिरिक्त किसी को लाल तो किसी को पीला, हरा, नीला आदि रंग अच्छे या बुरे क्यों लगते हैं? क्या रंगों की पसन्द या नापसन्द का स्वास्थ्य से कोई सम्बन्ध है? क्या निदान करते समय इस तथ्य की उपेक्षा तो नहीं होती ?

स्वाद और रोग

किसी व्यक्ति को खट्टा तो किसी को मीठा, किसी को नमकीन तो किसी को चटपटा क्यों अच्छा लगता हैं? क्या इन स्वादों की पसन्द या अरुचि का स्वास्थ्य से कोई संबंध है? मधुमेह वालों को मिठाई और रक्तचाप के रोगियों को नमक छोड़ने की क्यों सलाह दी जाती हैं? शरीर में इन स्वादों का नियन्त्रण कौन करता है? क्या अपनी इच्छानुसार जब चाहे स्वादों के प्रति लगाव बदला जा सकता है? क्या स्वादों का रोग से संबंध है?

गंध और रोग

चन्द व्यक्ति अत्याधिक सुगन्ध प्रिय होते हैं। चन्द तनिक भी दुर्गन्ध सहन नहीं कर सकते। कुछ व्यक्तियों को दूर में कुछ भी जल रहा हो, सहज आभास हो जाता है तो कुछ को समीप में जलने का भी आभास नहीं होता । किसी के शरीर से कैसी गंध आती है और अन्य के शरीर में दूसरे प्रकार की। ऐसा क्यों? क्या शरीर से निकलने वाली तथा बाहर से आने वाली गंधों के प्रति रुचि अथवा अरुचि के भाव का स्वास्थ्य से कोई संबंध हैं? क्या गन्ध का नियन्त्रण एकमात्र नाक से संबन्धित हैं? क्या गन्ध के प्रति हमारी प्रकृति को दवा द्वारा मन चाहा बदलना संभव है? क्या गंध निदान को प्रभावित करती है?

शरीर से विसर्जित होने वाले तरल पदार्थों की रोग-निदान में भूमिका

किसी व्यक्ति को बैठे-बैठे ही पसीना आता है तो अन्य को कठिन परिश्रम अथवा दौड़ने के बावजूद भी नहीं आता। ऐसा क्यों ? किसी को आँखों में बिना कारण आँसू आ जाते हैं। किसी के थूक, कफ अथवा पसीना ज़्यादा तो वैसे ही लक्षणों वाले अन्य रोगियों को कभी-कभी कम भी आता है? क्या हम जैसा चाहें, जितना चाहें, जिस मार्ग से चाहें तरल विजातीय पदार्थों का विसर्जन अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं? क्या विजातीय तरल विभिन्न द्रवों के विसर्जन तरीकों का आपसी संबंध है? क्या पैथालोजिकल अथवा अन्य परीक्षणों द्वारा इनके कारणों का पूर्ण निदान संभव है?

आवेग और स्वास्थ्य

कोई व्यक्ति दयालु तो कोई क्रूर, हिसंक क्यों ? कोई निराश, बैचेन, अधीर तो कोई धैर्यवान क्यों? लोभी, लालची तो कोई संतोषी क्यों? कोई क्रोधी, चिड़चिड़ा तो दूसरा शान्त और मधुर वक्ता क्यों? कोई मायावी, कपटी, दगेबाज़ तो दूसरा सहज, सरल क्यों? कोई घमण्डी तो कोई विनम्र क्यों? कोई भयभीत, तनावग्रस्त, दुःखी तो कोई निर्भय, तनावमुक्त और सुखी क्यों? क्या ये संस्कार स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं? क्या आधुनिक चिकित्सा पद्धतियाँ निदान में इन तथ्यों को महत्व देती हैं? क्या ब्राह्य लक्षणों के साथ इनका कोई संबंध है? क्या समान लक्षणों वालों का स्वभाव एक जैसा होना जरूरी है? प्रत्येक व्यक्ति का आभामण्डल उसके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ऊर्जा के संतुलन, सामन्जस्य एवम् तालमेल की स्थिति का प्रतीक होता है। जितना आभामण्डल विशुद्ध, प्राकृतिक स्वच्छ और स्पष्ट होगा उतना व्यक्ति संतुलित और स्वस्थ होगा। विकारों से आभामण्डल विकृत हो जाता है। एक जेसे बाह्य लक्षणों वाले रोगियों में ऊर्जा-चक्रों की स्थिति, शरीर में सक्रियता एक जैसी नहीं होती है? रोगी की मनोवृत्तियाँ, संकल्प-विकल्प, इच्छाएँ, चिन्तन, मनन, संस्कार, ज्ञान-तन्त्र एक जैसा नहीं होता है? आत्म बल कर्मों की स्थिति, पुरुषार्थ करने का साहस समान नहीं होता है? क्या उनमें क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, दुःख , असंतोष, अधीरता, चिड़चिड़ापन, बैचेनी, निराशा, प्रमाद अथवा सजगता, विवेक, जिज्ञासा, उत्साह, भावना, कार्यकुशलता, निर्णय लेने की क्षमता, आत्मानुशासन की स्थितियाँ एक जैसी होती हैं?

क्या आधुनिक निदान वैज्ञानिक है?

कहने का तात्पर्य यही है कि उपरोक्त सारे तथ्य शरीर में असंतुलन पैदा कर रोग उत्पन्न कने में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। परन्तु प्रायः विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों में निदान करते समय इनकी उपेक्षा होती है। सम्पूर्ण आरोग्य के लिये रोग का सही और पूर्ण निदान आवश्यक है। किसी भी चिकित्सा-पद्धति द्वारा एकपक्षीय सिद्धान्तों पर आधारित निदान आंशिक, अधूरा, अपूर्ण होता है। ऐसे निदानों को वैज्ञानिक मानना कितना अदूरदर्शिता पूर्ण है, यह प्रत्येक बुद्धिमान चिन्तनशील प्राणी के लिये चिन्तन का विषय है। अतः निदान करते समय हमें अनेकान्त और समग्रता का दृष्टिकोण रखना होगा ताकि निदान सही और उपचार प्रभावशाली हो।

जनसंख्या विस्फोट : कारण एवं सुझाव

[भारत की 50वीं वर्ष गाँठ पर समर्पित 1947 से 1997 तक तथा 1998 से 2047 तक का विश्लेषण]

डॉ. एस. एस. मिश्र
गणित एवं सांख्यिकी विभाग,
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

एवं

डॉ. एस. के. मिश्र
रसायन विज्ञान विभाग,
अमरपाटन शासकीय महाविद्यालय, अमरपाटन, सतना

हमारा देश विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक देश रहा है। इसके सामने समय-समय पर अनेक गम्भीर समस्यायें आती रही हैं। आज, बल्कि विगत कुछ वर्षों से ही अन्य समस्याओं की तरह जनसंख्या-विस्फोट की समस्या हमारा ध्यान आकृष्ट करने हेतु हमें बाध्य करती है। यहाँ तक कि इसने हमारे सामने वर्तमान में चेतावनी की स्थिति पैदा कर दी है।

प्रारम्भ में इस सम्या की तरफ समाज एवं देश के जिम्मेदार व्यक्तियों का ध्यान नहीं गया। क्योंकि लोग समझते रहे कि आने वाला समय इस समस्या का निदान अपने आप खोज लेगा और उन्हें किसी विशेष समयबद्ध प्रयास के बिना ही इसका निदान मिल जायेगा। इस सोच को मन में रखते हुए समाज के जिम्मेदार व्यक्ति इस दिशा में प्रभावी क़दम न उठाकर ढुलमुल नीति अपनाते रहे। इसकी गंभीरता हमारे कानों तक तब पहुँची जब समाज का व्यक्ति मौलिक आवश्यकताओं से वंचित होने लगा। संसाधन का अभाव हमारे दैनन्दिन क्रिया-कलापों में खटकने लगा। तब हमें प्रतीत होने लगा कि जनसंख्या विस्फोट तमाम छोटी-बड़ी समस्याओं की जननी है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जनसंख्या विस्फोट की गंभीरता को देखते हुए इसकी मौलिक अवधारणा, कारण एवं निदान जैसे पहलुओं पर सामान्य एवं तकनीकी अध्ययन को निम्नवत रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

तकनीकी आधार पर जनसंख्या-विस्फोट जनसंख्या वृद्धि का एक प्रकार है। इसलिये इसको समझना उतना ही जरूरी है जितना कि वृद्धि। जनसंख्या वृद्धि व्यक्तियों द्वारा उनके जन्म के माध्यम से होता है तथा जनसंख्या घटोत्तरी व्यक्तियों की मृत्यु के द्वारा होती है। इस प्रकार विशुद्ध कुल जन्म एवं मृत्यु का जनसंख्या पर प्रभाव जनसंख्या बढ़ोत्तरी के रूप में परिलक्षित होता है। स्वाभाविक तरीके से जन्म दर मृत्युदर से अधिक होती है, इसलिये जनसंख्या वृद्धि स्वाभाविक मानी जाती है, जो किसी भौगोलिक क्षेत्र के लिये किसी निश्चित समय काल के दौरान लागू हो सकती है। इसी

जनसंख्या वृद्धि के स्वाभाविक दर को सही मायने में जनसंख्या वृद्धि (पॉपुलेशन ग्रोथ) कहते हैं। परन्तु दृढ़ता की भाषा में, किसी निश्चित समय काल में जनसंख्या के परिवर्तन की दर जनसंख्या वृद्धि कहलाती है। जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति बढ़ सकती है, घट सकती है तथा नियत भी रह सकती है, जैसा कि उस समय की जन्म मृत्यु एवं देशान्तर गमन की स्थिति हो। कुछ परिस्थितियों जैसे अकाल, भूचाल इत्यादि प्रलयकारी कारणों से जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति नकारात्मक भी हो सकती है।

जन्म एवं मृत्यु के समान ही जनसंख्या वृद्धि का मापन सुपरिभाषित दरों द्वारा किया जाता है। इन दरों को सकल सन्तानोत्पत्ति दर एवं विशुद्ध सन्तानोत्पत्ति दरों के रूप में माना जाता है। सकल सन्तानोत्पत्ति दर कुल जन्म दर तथा लिंग अनुपात की सहायता से परिभाषित किया जाता है। जब कुल मृत्यु दर को स्त्री जन्म एवं कुल जन्म के अनुपात से गुणा करते हैं तो यह सन्तानोत्पत्ति की नाप को प्रस्तुत करता है जिसको हम सकल सन्तानोत्पत्ति दर के रूप में जानते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि 1980 में कुल जन्म दर 4436 प्रति 1000 महिलायें हों तो जी० आर० आर० का आकलन $4.436 \times 100/205 = 2.2$ होता है। जहाँ लिंग अनुपात सौ महिलाओं पर 105 पुरुषों का है। इसी प्रकार जब जी० आर० आर० को मृत्युकारक के सपेक्ष प्रतिशोधित कर देते हैं, तो यह विशुद्ध सन्तानोत्पत्ति (एन० आर० आर०) का रूप ले लेता है।

जनसंख्या विस्फोट की अवस्था

सम्प्रति यह स्पष्ट हो चुका है कि एन० आर० आर० जनसंख्या वृद्धि का एक मानक एवं सक्षम दर है। संक्षेप में यह इंगित करता है कि वर्तमान माताओं द्वारा भविष्य में कितनी सम्भावी मातायें जन्म लेंगी जब उस समय की जन्म एवं मृत्यु की स्थिति दी गयी हो। अब हम जनसंख्या-विस्फोट की अवस्था एन० आर० आर० के आलोक में व्यक्त करने का प्रयास करते हैं।

1. यदि एन० आर० आर० इकाई हो तो यह स्पष्ट होता है कि जन्म एवं मृत्यु के स्तर इस तरह से संबंधित हैं कि एक नवजात स्त्री समूह अपनी माता समूह को भविष्य में प्रतिस्थापित (रिप्लेस) कर सकेगा। इस अवस्था में जनसंख्या की प्रवृत्ति नियत होगी।

2. यदि एन० आर० आर० इकाई से कम होगा तो इसका आशय यह हुआ कि नवजात स्त्री समूह अपनी माता समूह से छोटा होगा और यह अवस्था जनसंख्या प्रवृत्ति में नाकारात्मक लक्षणों को जन्म देती है।

3. यदि एन० आर० आर० इकाई से बड़ा हो तो यह प्रदर्शित होता है कि वर्तमान जन्म एवं मृत्यु की स्थिति इस तरह है कि नवजात स्त्री समूह अपनी माता समूह से बड़ा होगा जो अगली पीढ़ी में माता समूह के स्थान को ग्रहण करेगा।

यह अवस्था जनसंख्या बढ़ोत्तरी की प्रवृत्ति को बताती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति जब एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती है तो जनसंख्या-विस्फोट की स्थिति पैदा हो जाती है, जिसका जीता-जागता उदाहरण आज का भारतीय समाज है।

जनसंख्या विस्फोट के नियंत्रण के कारक एवं उपाय

विश्लेषण

उपर्युक्त विश्लेषण को प्रस्तुत करने से पहले यहाँ कुछ मौलिक तथ्यों को समझना उचित होगा, जो निम्नवत हैं—

1. आदर्श प्रतिस्थापना स्तर (आइडियल रीप्लेसमेन्ट लेवल): आदर्श प्रतिस्थापना स्तर के रूप में अधिकांश विद्वानों द्वारा एन. आर. आर. के स्थान पर टी. एफ. आर. को मान्यता दी गयी है। यदि टी. एफ. आर. प्रति महिला 2.1 अर्थात् 2 हो तो इसको वर्तमान में लक्ष्य के रूप में ग्रहण किया गया है। इसका मतलब यह हुआ कि माता-पिता को मिलाकर दो व्यक्तियों को अधिकतम दो नवजात स्त्री का समूह नई पीढ़ी में प्रतिस्थापित करेगा अर्थात् दोनों पीढ़ियों में जनसंख्या का आकर एवं संरचना लगभग स्थिर-सी रहेगी। कोई खास परिवर्तन नहीं होगा।

2. मानवीय विकास (ह्यूमन डेवलेपमेन्ट) : मानवीय विकास के अन्तर्गत् शिक्षा विशेषतः प्राथमिक शिक्षा, पर्याप्त

स्वास्थ्य सुविधायें विशेष रूप से बच्चों के मृत्यु दर में कमी वांछित परिवार नियोजन की सेवायें समग्र रूप से आती हैं। सक्रिय एवं सचेतन प्रयास इस विकास के सही महत्व को स्पष्ट करता है।

3. सुरक्षा संबंध (सेक्यूरिटी बाण्ड्स) : इन सुरक्षा संबंधों के तहत ऐसे संबंधों का उल्लेख है जो व्यक्ति के स्नेहात्मक, भावनात्मक तथा सामाजिक जीवन-स्तर को बनाये रखते हैं। यह मुख्य रूप से तीन प्रकार के हैं, जिनका उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा रहा है—

(अ) सामाजिक सुरक्षा (सोसल सिक्यूरिटी बाण्ड्स) : इस सुरक्षा संबंध के तहत एक व्यक्ति अपने जीवन काल में विशेष रूप से वृद्धावस्था में अपने सगे संबंधियों (सन्तानों) से सहयोग की अपेक्षा रखता है, जिससे वह अपनी शारीरिक एवं मानसिक असमर्थता की कमी को पूरा करना चाहता है। यह सुरक्षा प्रायः हर व्यक्ति के जीवन में अपेक्षित होती है।

(ब) आर्थिक सुरक्षा संबंध (इकोनमिलकल सेक्यूरिटी बाण्ड्स) : इस सुरक्षा के अंतर्गत् सगे-संबंधियों अथवा विवाह पर आधारित संबंधियों को उनके बच्चों द्वारा रखरखाव के साधन, जीविका के साधान इत्यादि आपेक्षायें मुख्य रूप से आती हैं। वृद्ध एवं गैर अर्जित करने वाले व्यक्ति विशेष रूप से इसके अन्तर्गत् आते हैं।

(स) भावनात्मक सुरक्षा संबंध (इमोशनल सेक्यूरिटी बाण्ड्स) : ऐसा समझा जाता है कि व्यक्ति की कुछ मौलिक चेतनायें हैं, जिसके अन्तर्गत् भावना, प्रेम, स्नेह एवं इच्छायें आती हैं, जिसके द्वारा व्यक्ति स्पंदित, सक्रिय एवं खुशहाल बना रहता है। वृद्धावस्था में व्यक्ति कुछ विशेष ही भावनात्मक संतुष्टीकरण की लालसा एवं ललक रखता है जिसकी पूर्ति वह अपनी सन्तानों तथा सन्तानों की सन्तानों से करना चाहता है।

उपरोक्त सुरक्षा संबंधों की जनसंख्या-विस्फोट के विशलेषण में अन्य कारकों की तरह अनदेखी नहीं की जा सकती।

भारत देश की जनसंख्या 1947 में लगभ 450 मिलियन थी जो 1997 में बढ़कर (पचास वर्षों में) 950 मिलियन हो चुकी है। यह जनसंख्या विस्फोट की स्थिति अपने आप में एक पहेली को बुझाती है। विश्व बैंक के एक प्रक्षेपण के मुताबिक भारत की जनसंख्या 2047 तक सत्रह सौ मिलियन हो जाने का अनुमान है। हम लोगों ने विगत पचास वर्षों में भारत की जनसंख्या के साथ जो रवैया अपनाया वह हमारी कुछ सफलता परन्तु ज़्यादातर हामारी विफलता को प्रदर्शित करता है। 1947 में भारतीय जन्म दर लगभग एक हज़ार हो गया है। औसत वार्षिक कमी लगभग 0.28 प्रतिशत है। यदि हम इसी गति से आए बढ़ते रहे तो हमको आदर्श प्रतिस्थापना स्तर 21 जन्म प्रति हज़ार प्राप्त करने में लगभग और पच्चीस वर्ष लगेंगे। यह लगभग 2022 ई० का समय होगा जबकि हमने विगत वर्षों में प्रति स्थापना स्तर प्राप्त करने के लिये 2001 ई० का लक्ष्य निर्धारित किया था। यह प्रदर्शित करता है कि हम अभी तक प्रभावोत्पादक प्रयास नहीं कर सके हैं।

अभी हाल में रजिस्ट्रार जनरल द्वारा प्रक्षेपण यह इंगित करता है कि भारत 21 जन्म प्रति हज़ार का प्रतिस्थापना स्तर 2026 तक प्राप्त कर सकेगा। कुछ प्रदेश जैसे आन्ध्र प्रदेश 2002 तक, महाराष्ट्र 2009 तक इस स्तर को लक्ष्य से पहले प्राप्त कर सकेंगे परन्तु वहीं कुछ प्रदेश जैसे बिहार सन् 2029 ई० तक, मध्य प्रदेश 2060 ई० तक तथा उत्तर प्रदेश 2100 ई० तक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

उपर्युक्त के विपरीत केरल अपना प्रति स्थापना स्तर 21 प्रति हज़ार 1988 ई० में प्राप्त कर चुका है। गोवा इससे कुछ पहले तथा तमिलनाडु सन् 1993 में इस लक्ष्य की पूर्ति करने में सक्षम रहा है। इन प्रदेशों ने इस जन्म नियंत्रण के स्तर को क्यों एवं कैसे प्राप्त कर लिया और दूसरे प्रदेशों ने नहीं ? यहाँ जेहन में एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जिन प्रदेशों ने जन्म नियंत्रण के स्तर (प्रतिस्थापना स्तर) प्राप्त कर लिया है, क्या उनके साथ कोई खास बात है? उत्तर है नहीं। जिन प्रदेशों ने अपने लक्ष्यों की पूर्ति कर ली है, उन्होंने चेतन अथवा अचेतन रूप से मानवीय विकास सेक्टर में उल्लेखनीय निवेश किया है। यही कुछ महत्वपूर्ण कारण रहा है जो हमने विगत पचास वर्षों में गड़बड़ी की है। हमारे राष्ट्रीय नेता जनसंख्या-विस्फोट की प्रवृत्ति एवं दुष्प्रभाव को पूर्णतया

समझ नहीं सके। उन्होंने मानवीय एवं सामाजिक विकास के महत्व को समझने का समुचित प्रयास नहीं किया, बल्कि आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के प्रति कटिबद्ध रहे। उन्होंने प्रायः अपने संकल्प को प्राथमिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य-समस्याओं को बढ़ाने के लिये दोहाराया, परन्तु सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणित नहीं कर सके। जब बात सामाजिक एवं मानवीय विकास में धन निवेश की आयी तो जितनी आवश्यकता थी उतना निवेश न कर थोड़ा बहुत निवेश कर अपने फर्ज़ की अदायगी करते रहे। जहाँ पर प्रतस्थापना स्तर के लक्ष्य की प्राप्त हो चुकी है, उन्होंने वांछित हद तक सामाजिक एवं मनवीय विकास में निवेश किया, जितने की आवश्यकता थी। केरल, तमिलनाडु तथा गोवा ऐसे प्रदेश हैं, जिन्होंने प्रसंगतः निवेश की तरफ विशेष ध्यान दिया। उदाहरणतया 1991 में भारतीय जनगणना के अनुसार केरल की साक्षरता स्तर 90 प्रतिशत, गोवा की 76 प्रतिशत, तमिलनाडु की 63 प्रतिशत थी।

उपर्युक्त के विपरीत राजस्थान की साक्षरता स्तर 1991 में 38.6 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश की 41.6 प्रतिशत, बिहार की 38.5 प्रतिशत थी। यदि हम इनकी महिला साक्षरता स्तर की बात करें तो यह और दुःखद प्रतीत होता है। 1991 में राजस्थान की महिला साक्षरता स्तर 20 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश की 25 प्रतिशत एवं बिहार की 22 प्रतिशत थी।

उपर्युक्त के विपरीत राजस्थान की साक्षरता स्तर 1991 में 38.6 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश की 41.6 प्रतिशत, बिहार की 38.5 प्रतिशत थी। यदि हम इनकी महिला साक्षरता स्तर की बात करें तो यह और दुःखद प्रतीत होता है। 1991 में राजस्थान की महिला साक्षरता स्तर 20 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश की 25 प्रतिशत एवं बिहार की 22 प्रतिशत थी।

सीधे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि हमारे विगत 50 वर्षों की कहानी लड़की - संतान की उपेक्षा की कहानी थी यदि 1947 एवं 1997 के बीच में भारत देश ने अपना ध्यान लड़की-संतान पर केन्द्रित किया होता तो जनसंख्या विस्फोट की स्थिति से बचा जा सकता था। अब यह स्वाभविक प्रश्न उठता है कि भारत का जनसंख्या - विस्फोट देश के सामने किस तरह की समस्याएं रखेगा? विस्फोट की समस्या हमारे सामने ढेर सारी समस्याएं रखती है। विस्फोट के नियंत्रण की दिशा में हमारे उपेक्षापूर्ण रवैये के लिये हमको बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी । 2047 ई० में अगले 50 वर्षों में - भारत की जनसंख्या लगभग 1600 मिलियन होगी। शुरुआत की जनसंख्या 1947 की 350 मिलियन में, हमने लगभग 1250 मिलियन की बढ़ोत्तरी की है। इस जनसंख्या को खिलाने के लिये हमें बहुत बड़ी मात्रा में अनाज की पैदाइश सुनिश्चित करनी पड़ेगी। 1996-97 में 199 मिलियन अनाज की पैदाइश थी, तेजी से हमें बढ़ाकर 2047 ई० तक लगभग 598 मिलियन करना होगा। क्या भारत इतनी मात्रा में अनाज पैदा कर सकेगा? तकनीकी सुविधायें तो हैं, परन्तु धरती पर आधारित संसाधन सीमित होने के कारण उपर्युक्त उपलब्धि प्राप्त करने में निश्चित रूप से कठिनाई होगी। इसी प्रकार अन्य समस्यायें-मकान की उपलब्धि, रोज़गार, अन्य मौलिक सुविधाओं की समस्यायें हमारे सामने यक्ष प्रश्न की तरह उठ खड़ी होंगी। अब यह प्रश्न उठता है कि, क्या हम जनसंख्या-विस्फोट की स्थिति से छुटकारा पा सकते हैं अथवा नहीं? क्या आने वाले 50 वर्ष हमारे लिये समस्याओं के उपहार होंगे अथवा हम इन पर नियंत्रण पा सकेगें? उपर्युक्त का उत्तर है ''नहीं''। तब क्या हम उपर्युक्त समस्या की गम्भीरता को कम कर सकते हैं? उत्तर है 'हाँ' । यदि हम अभी से वांछित नीति का क्रियान्यवन करना प्रारम्भ कर दें तो हम निश्चित रूप से हम उल्लेखनीय सुधार की स्थिति में होंगे हमें पाठ के तौर पर अपने देश से बाहर नहीं जाना होगा। इसके अन्दर ही गोवा, केरल तथा तमिलनाडु से इस संदर्भ में शिक्षा लेनी होगी। इनकी सफलता में कोई रहस्य नहीं छुपा है। अनुकरण करना सम्भव है, बिमारू प्रदेश (Bimoru States) बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश को सही दिशा में ढकेलना होगा जिससे यह अच्छी दिशा में चलने हेतु प्रोस्ताहित किये जा सकें। यदि आवश्यक हो तो उन्हें अतिरिक्त संसाधन आवंतित किये जाये। वशर्ते की इनका उपयोग दूसरे मदों में न किया जाये। यदि आने वाले वर्षों में यहाँ की जनसंख्या को अच्छी स्वास्थ्य एवं शैक्षिक सुविधा मिलती है तो देश के लिये आने वाले पचास वर्ष तक जनसंख्या-विस्फोट की स्थित का प्रबंधन किया जा सकता है।

साथ ही, यदि हम जनसंख्या-विस्फोट की समस्या का चिन्तन सुरक्षा संबंधों के प्रकाश में करें तो समस्या का परिणाम कुछ और कम किया जा सकता है। यदि हम आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षाओं को संभव हद तक किसी वैकल्पिक (प्रदेशीय अथवा राष्ट्रीय व्यवस्था) द्वारा प्रतिस्थपित करने तथा भावनात्मक सुरक्षा, जिसको अधिकांश लोग पुत्र से ही प्राप्त करना चाहतें हैं, को पुत्रियों द्वारा पूरा किया जा सके तो जनसंख्या-विस्फोट, जिसके लिये महिला जनसंख्या, जो पुत्र संतान की इच्छा की पूर्ति में बढ़ती जाती है, पर नियंत्रण पाना आसान हो सकता है। इस महत्वपूर्ण क़दम को उठाकर जनसंख्य-विस्फोट के प्रकोप से बचा जा सकता है।

अन्त में हम यह सोचते हैं कि क्या भारत के पास कोई जनसंख्या-विस्फोट की समस्या का निदान आने वाले 50 वर्षों में संभव हैं अथवा नहीं? क्या हम दूसरी इमरजेन्सी की आवश्यकता समझते हैं? नहीं, हम इसकी आवश्यकता नहीं समझते। हम किसी अनचाहे दबाव में विश्वास नहीं करते। हम बहुत ही साधारण प्रयास, जो कुछ नहीं बल्की लड़की संतान की शिक्षा पर बल देने में विश्वास करते हैं। हमें आवश्यकता है कि हम और तेज़ गति से शिशु - मृत्यु में कमी लायें। आवश्यकता है कि और अच्छी परिवार नियोजन की सुविधाएं उपलब्ध करायी जायें, और सबसे ज़्यादा इस बात की आवश्यकता है कि जनता द्वारा जनता की जनसंख्या-वृद्धि को कम करने की दिशा में संकल्प जागृत किया जाये। राजनीतिक लोग इस दिशा में विफल हो चुके हैं। हम लोगों को सफल होना है। हमारी वास्तविक आशा की किरण लड़की-संताने हैं। आने वाले 50 वर्षों में अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता इन्हीं को देनी होगी।

■■■

प्लास्टिक सर्जरी का कमाल : तन-मन को संवारती सर्जरी

राजेन्द्र कुमार राय

डी- 753, सरस्वती बिहार, दिल्ली-110 034

नई दिल्ली से प्रकाशित एक राष्ट्रीय दैनिक नवभारत टाइम्स के 10 फरवरी 97 के अंक में प्रथम पृष्ठ पर एक समाचार छपा था की डॉक्टरों के एक दल ने एक बच्चे का हाथ कटने के 20 घंटे बाद में जोड़ दिया। अब इस बच्चे का हाथ लगभग सामान्य है। डॉक्टरों के इस दल का नेतृत्व कर रहे थे देश के जाने-माने प्लास्टिक सर्जन डॉ० आर० के० सेठ नई दिल्ली के सरिता विहार क्षेत्र में स्थित देश के सबसे बड़े और दुनिया के चौथे सबसे बड़े कारपोरेट अस्पताल इन्द्रप्रस्थ अपोलो में कार्यरत आस्ट्रेलिया और कुवैत आदि देशों में भी अपना कौशल दिखा चुके हैं।

वास्तव में प्लास्टिक सर्जरी क्या है? इसके जवाब में डॉ० सेठ कहते हैं कि हमारे यहाँ प्लास्टिक सर्जरी को लेकर बड़ी भ्रांतियाँ हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि प्लास्टिक सर्जरी में प्लास्टिक का इस्तेमाल किया जाता है और अधिकांश लोग तो प्लास्टिक सर्जरी को केवल कास्मेटिक सर्जरी ही मानते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। प्लास्टिक सर्जरी ग्रीक भाषा के शब्द **प्लास्टिकास** से बना है जिसका अर्थ है "गढ़ने योग्य"। किसी बीमारी के कारण शरीर के विकृत भाग को इस पद्धति से फिर से गढ़ा जाता है। कॉस्मेटिक सर्जरी, प्लास्टिक सर्जरी का ही एक भाग है। प्लास्टिक सर्जरी का पूरा स्पेकट्रम काफी

बड़ा है और इसमें कई तरह की सर्जरी आती हैं जैसे बर्न, किनियों फेशल सर्जरी, माइक्रोसर्जरी, हैंड सर्जरी, हेड एण्ड नेक कैंसर की सर्जरी आदि।

आज दुनिया भर में अपना चमत्कार दिखाने वाली प्लास्टिक सर्जरी का जन्म अपने देश भारत में ही हुआ था। ईसा पूर्व 600 में सुश्रुत ने एक कवि की नाक को गढ़ा था। प्लास्टिक सर्जरी का इससे पुराना उदाहरण दुनिया में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। पश्चिमी देशों में 10 वीं से लेकर 19 वीं शताब्दी तक इसका विकास हुआ। लेकिन इसका सार्वजनिक विकास इस सदी में ही हुआ। सर हेराल्ड मिलीज ने प्लास्टिक सर्जरी का काम काफी आगे बढ़ाया। उन्हें आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी का पितामह माना जाता है।

यह सच है कि आदि काल से मानव चिर यौवन व सौंदर्य की तलाश में लगा रहा है। प्लास्टिक सर्जरी के साथ-साथ सौंदर्य शर्य-चिकित्सा कॉस्मेटिक सर्जरी का भी काफी विकास हुआ है। आज कॉस्मेटिक सर्जरी द्वारा यह संभव है कि कोई कुरूप-सा चेहरा, बड़ा ही आकर्षक बन जाए।

प्लास्टिक सर्जरी की सहायता से आज जन्मजात विकृतियों, कटने, जलने व दुर्घटना से उत्पन्न विकृतियों या कैंसर के कारण की गई शल्य-क्रिया आदि को ठीक किया जा सकता है। इस शताब्दी के सातवें दशक में सूक्ष्म शल्य-क्रिया (माइक्रोसर्जरी) के कारण एक बड़ा परिवर्तन आया है। अब शरीर की त्वचा, मांसपेशियों, हड्डी आदि एक या संयुक्तघटक को उसकी रक्त-वाहिनियों के साथ पूरी तरह काटकर विकृति वाले स्थान पर रक्त-वाहिनियों के साथ जोड़ा जा सकता है। डॉ० आर० के० सेठ कहते हैं कि बड़ी मुश्किल प्रतीत होने वाली इस पद्धति के कारण विकृत हुए अंगों की पुनर्रचना के क्षेत्र में अब क्रांतिकारी प्रगति हो गई है। इसी माइक्रोसर्जरी की सहायता से हम दुर्घटनाओं में कटीं हुई उंगालियाँ, हाथ आदि को फिर से जोड़ पा रहे हैं।

प्लास्टिक सर्जरी में शरीर के अन्य भागों से हड्डी, वसा या मांस लेकर पुर्ननिर्मित किया जाता है। अतः आमतौर पर शरीर के एकाधिक स्थानों पर ऑपरेशन किया जाता है। और कुछ समय बाद सब कुछ सामान्य हो जाता है। जबकि कॉस्मेटिक सर्जरी में लगभग पूरी तरह एक ही अंग कुरूप या अनगढ़ अंग का ऑपरेशन किया जाता है। कॉस्मेटिक सर्जरी की सहायता से अनगढ़ नाक, ठोडी, हाथी जैसे कानों को तो सुधारा ही जा सकता है, साथ ही साथ शारीरिक और मानसिक तनावों और बढ़ती उमर के कारण चहरे पर पड़ी हल्की, मोटी झुरियों, चेहरे पर लटकती त्वचा, चर्बी की अधिकता, झाइयाँ आदि भी दूर की जाती हैं। चेहरे से बढ़ती उम्र के चिन्ह इतने कम हो जाते हैं कि उम्र 10-20 साल कम लगती है। चेचक के दाग़, कील, मुहाँसे से क्षतिग्रस्त त्वचा आदि को भी इसकी सहायता से ठीक किया जा सकता है। महिलाओं के लिये चेहरे के साथ-साथ स्तन के सौंदर्य को भी सुधारा जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि कॉस्मेटिक सर्जरी के सभी ऑपरेशनों के परिणाम आम-तौर पर स्थायी होते हैं और इनमें शारिरिक क्रिया-कलापों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

जन्मजात विकृतियाँ

महत्वपूर्ण जन्मजात विक्तियों में कटे हुए होंठ और कटे हुए तालु का समावेश होता है। इसके कई प्रकार हो सकते हैं। कभी केवल होंठ या कभी मंसुड़े और होठ कटे हो सकते हैं। इसके साथ-साथ या इसके अलावा तालु भी कटा हो सकता है। साथ ही यह विकृति दाहिने और बाएँ भाग में एक साथ भी हो सकती है।

इस विकृति में होंठ के साथ-साथ नाक भी प्रभावित होती है। बच्चा ठीक से दूध नहीं पी पाता और आवाज़ भी सामान्य नहीं रह पाती है। इसका कारण हैं कि तालू के चीरे के कारण हवा का पर्यात दबाव का निर्माण नहीं हो पाता है और इसके कारण बच्चा नाक से बोलता है। कानों को जोड़ने वाली जो नलिका गले में खुलती है उसके बंद या खुली रहने के कारण इन बच्चों के कान में बार-बार पानी व मवाद जमा होता है। यह स्थिति खतरनाक हो सकती है। डॉ० आर० के० सेठ कहते हैं कि इस बीमारी में विकृति की गंभीरता के आधार पर एक या उससे अधिक ऑपरेशन करने पड़ सकते हैं। बच्चा सामान्यतः तीन से छः महीने का हो तब ऑपरेशन किया जाता है।

डॉ० सेठ द्वारा होठों के ऑपरेशन का उदाहरण

बच्चा जब बोलने-सीखने लगे, इसके पहले ही तालू के ऑपरेशन को करना चाहिए, जो कि लगभग 6 माह की उम्र में किया जाता है, ऐसा डॉ० सेठ ने बताया। यदि कुछ बच्चों कि नाक चपटी बनी रहे, तो 7-8 वर्ष की उम्र के बाद उसमें सुधार लाया जा सकता है। इन दो प्रमुख ऑपरेशनों के अलावा कुछ बच्चों का लगभग 7-8 वर्ष की उम्र में मसूड़ों में हड्डियों का ग्राफ्ट लगाने और पूर्ण विकास होने के बाद 14 से 16 वर्ष की उम्र में नाक का आकार ठीक करने वाले ऑपरेशन किये जाते हैं। इसके अलावा ऊपर और नीचे के विकृत जबड़े को ऑपरेशन द्वारा आगे-पीछे करके उसे सामान्य रूप दिया जा सकता है।

जिन बच्चों में विकृति होती है, उन्हें जन्म से लेकर युवा होने तक डॉ० की निगरानी में रहना पड़ता है। ऐसे बच्चों के माता पिता को भी समझ की आवश्यकता होती है। शायद यही कारण है कि पश्चिमी देशों में ऐसे अभिभावकों ने एक होकर एक क्लेफ्ट लिप एंड पैलट एसोसिएशन नामक संस्था की स्थापना की है। डॉ० सेठ कहते हैं कि अपने यहाँ भी ऐसे एसोसिऐसन की आवश्यकता है और सबसे बड़ी बात है कि लोगों में इसके प्रति जागरुकता पैदा की जाए, क्योंकि अधिकांश लोग डॉक्टर के पास तब पहुँचते हो जब तक काफी देर हो चुकी होती है। क्लेफ्ट लिप और पैलट के साथ ही मंदबुद्धि या मानसिक कमजोरी और खोपड़ी-कवच या चेहरे की अन्य कई विकृतियाँ भी कुछ बच्चों में पाई जाती हैं। डॉ० सेठ के अनुसार इसे केनियो फेसियल सर्जरी के द्वारा ठीक किया जा सकता है। आज प्लास्टिक सर्जरी के इतने आयाम व चमत्कार हैं कि उनको एक लेख में नहीं समेटा जा सकता है। लेकिन अब प्लास्टिक का चमत्कार अपने देश में भी डॉ० आर० के० सेठ जैसे सर्जन दिखा रहे हैं। सौदर्य को निखारने और कुरूपता को खत्म करने या छिपाने के लिये आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने मानव को प्लास्टिक सर्जरी का वरदान दिया है।

(सम्प्रेषण)

ब्रह्माण्ड-निर्माण की बुनियादी ईंटें

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक, भूगर्भ, इंजीनयरिंग कॉलेज, भागलपुर-813 210

प्राचीन भारत के महान दार्शनिक **कणाद** ने सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में अपने द्वारा लिखित 'वैशेषिक दर्शन' में बताया कि ब्रह्माण्ड में मौजूद सभी पदार्थ अत्यन्त छोटे-छोटे कणों से निर्मित हैं। इन सूक्ष्म कणों का नाम उन्होंने परमाणु रखा। कणाद का विचार था कि जब परमाणु एक दूसरे से पृथक अवस्था में रहते हैं तो यह प्रलय की अवस्था होती है। परन्तु जब ये परमाणु एक साथ आपस में मिल जाते हैं तो विभिन्न प्रकार के पदार्थों की रचना होती है। महर्षि कणाद का विचार था कि यद्यपि 'प्रलय' के दौरान पदार्थों तथा सृष्टि का विनाश हो जाता है, परन्तु परमाणु नष्ट नहीं होते, वे मुक्त तथा पृथक अवस्था में मौजूद रहते हैं।

आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक **डेमोक्रीटस** ने भी कणाद से ही मिलता-जुलता विचार प्रगट किया। उसने भी बताया कि संसार के सभी पदार्थ सूक्ष्म कणों से बने हुए हैं, जिन्हें परमाणु कहा जाता है।

ब्रिटिश रसायनविद **जॉन डॉल्टन** ने सन् 1808 में अपने 'परमाणु-सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया तथा विस्तारपूर्वक इसकी व्याख्या की। डॉल्टन द्वारा प्रतिपादित 'परमाणु-सिद्धान्त' की मूल बातें निम्नलिखित हैं-

(i) संसार के सभी पदार्थ सूक्ष्म, ठोस तथा अविभाज्य कणों से निर्मित हैं जिन्हें परमाणु कहा जाता है,

(ii) एक ही पदार्थ के सभी परमाणु एक ही आकार, एक ही रंग रूप तथा एक ही आयतन वाले होते हैं,

(iii) परमाणु किसी भी तत्व का वह सबसे छोटा कण है जो रासायनिक प्रतिक्रिया में भाग लेता है, तथा

(iv) दो या अधिक तत्वों के परमाणु जब आपस में संयुक्त होते हैं तो एक यौगिक का निर्माण होता है।

डॉल्टन द्वारा 'परमाणु-सिद्धान्त' के प्रतिपादन के कुछ समय बाद वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि परमाणु भी अनेक सूक्ष्मतर कणों से निर्मित हैं। विभिन्न तत्वों के परमाणुओं के गुणों में अन्तर का कारण है परमाणुओं के भीतर मौजूद इन सूक्ष्मतर कणों की सजावट में अन्तर का होना। इस प्रकार डॉल्टन की यह धारणा ग़लत साबित हुई कि परमाणु अविभाज्य होते हैं। परमाणु के भीतर मौजूद सूक्ष्मतर कणों के नाम हैं- एलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन ।

परमाणु का निर्माण करने वाले सूक्ष्मतर कणों में से सबसे पहले खोज हुई ऋण आवेश से युक्त एक कण की। इसकी खोज वैज्ञानिकों की इस धारणा के आधार पर हुई कि किसी पदार्थ में विद्युत्धारा की उत्पत्ति उस पदार्थ में उपस्थित ऋण आवेश से युक्त कणों के प्रवाह के फलस्वरूप होती है। चूँकि कोई भी परमाणु स्वयं ऋण आवेश से युक्त नहीं होता अतः वैज्ञानिकों ने निषकर्ष निकाला कि ऋण आवेश से युक्त उपर्युक्त कणों को उदासीन बनाने हेतु परमाणु में निश्चय ही धन आवेश से युक्त कण भी मौजूद रहना चाहिए। शीघ्र ही धन आवेश से युक्त कण की खोज भी कर ली गयी। सन् 1897 ई० में **जे० जे० थॉमसन** नामक वैज्ञानिक ने ऋण आवेश से युक्त कण का नाम एलेक्ट्रॉन तथा धन आवेश से युक्त कण

का नाम प्रोटॉन रखा। प्रोटॉन का द्रव्यमान एलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान का लगभग 1800 गुना होता है।

कुछ समय के बाद परमाणु के भीतर एक अन्य कण की भी खोज की गयी जिसका नाम रखा गया न्यूट्रॉन। इसका द्रव्यमान प्रोटॉन के बराबर था परन्तु यह आवेशरहित था। इस दिशा में किये गये कुछ और शोधों से वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला कि प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन परमाणु के नाभिक में मौजूद रहते हैं, जबकि एलेक्ट्रॉन इस नाभिक के चारों ओर घूमते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य के चारों ओर ग्रह घूमते रहते हैं। जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर विभिन्न ग्रहों का भ्रमण-पथ निर्धारित रहता है, उसी प्रकार नाभिक के चारों ओर विभिन्न एलेक्ट्रॉन निश्चित कक्षा में घूमते हैं।

वैज्ञानिकों ने परमाणुओं के मूल कणों को चार वर्गों में विभाजित किया है। ये चार वर्ग हैं-

(i) फोटॉन,

(ii) लेप्टॉन,

(iii) मेसॉन तथा

(iv) बेरियॉन ।

फोटॉन ऐसे मूल कण हैं जो द्रव्यमानरहित हैं। ये कण किसी परमाणु से उस समय उत्पन्न होते हैं जब उस परमाणु पर विशेष प्रकार के किरणों की बौछार की जाती है। फोटॉन ऐसे परमाणुओं से भी उत्पन्न होते हैं जो स्वतः विखंडित होते रहते हैं। पदार्थ का दूसरा मूल कण लेप्टॉन एक हल्का कण है। लेप्टॉन समूह में शामिल हैं पदार्थ के सबसे हल्के मूल कण एलेक्ट्रॉन जो ऋण आवेश से युक्त होते हैं। मेसॉन तथा बेरियॉन भारी कण होते हैं। बेरियॉन यूनानी भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ होता है 'भारी'। इसमें शामिल हैं नाभिक में स्थित प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन नामक कण।

जापानी वैज्ञानिक **यूकावा** के मन एक प्रश्न उठा कि किसी परमाणु के नाभिक में स्थित प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन किन बलों के द्वारा परस्पर जुड़े रहते हैं? उसने सन् 1935 में इस संबंध में एक नयी परिकल्पना प्रस्तुत की। इस परिकल्पना के अनुसार नाभिक के अन्दर प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन कणों का आपस में रूपान्तरण चलता रहता है। इस प्रक्रिया में दोनों कणों के बीच एक प्रकार के नये कणों का विनिमय होता है। इस कण का नाम मेसॉन रखा गया। इन कणों का द्रव्यमान एलेक्ट्रॉन से अधिक परन्तु प्रोटॉन से कम बताया गया। यूकाबा ने इन कणों की उपस्थिति का सिर्फ अनुमान लगाया, परन्तु उनकी उपस्थिति की पुष्टि नहीं कर पाया।

सन् 1937 में **ऐंडरसन, नेडरमेयर, स्ट्रीट** तथा **स्टीवेंसन** नामक वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड किरणों (कॉस्मिक रेज) में एक नये प्रकार के कण की खोज की जिसके कुछ गुण यूकावा द्वारा बताये गये मेसॉन नामक कणों से मिलते थे जबकि कुछ गुण उससे भिन्न थे। इस नये कण का द्रव्यमान एलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान का 206.8 गुना था। सन् 1947 में **सी० एफ० पावेल, एम० सी० लेट्स, एच० मूइटहैड** तथा **जी० ओखियालिनी** नामक ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड किरणों में मेसॉन कणों की खोज कर ली। इन्होंने बताया कि मेसॉन कण दो प्रकार के होते हैं, जो पाई मेसॉन तथा म्यु मेसॉन कहे जाते हैं। पाई मेसॉन बिल्कुल अस्थायी होते हैं। ये शीघ्र ही म्यु मेसॉन में परिवर्तित हो जाते हैं। म्यु मेसॉन को म्युऑन अथवा भारी एलेक्ट्रॉन भी कहा जाता है। वस्तुतः सन् 1937 में ऐंडरसन और अन्य द्वारा ब्रह्माण्ड किरणों में जिन कणों की खोज की गयी थे वे म्यु मेसॉन ही थे। ब्रिटिश वैज्ञानिकों द्वारा म्यु मेसॉन की खोज के कुछ ही समय के उपरान्त एक अन्य प्रकार के मेसॉन कण की खोज की गयी, जिसे के० मेसॉन कहा जाता है। के० मेसॉन का द्रव्यमान म्यु मेसॉन से अधिक होता है। वैज्ञानिकों द्वारा इस दिशा में आगे की खोज जारी है।

बायोसेंसर पकड़ेंगे अब नशीली दवाओं के तस्करों को

डॉ० बृजमोहन कुमार प्रसाद

पीपुल फार साइंस एंड डिवेलपमेंट
बी-2, वैल्कम अपार्टमेंट, सैक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110 085

दुनिया में नशीली दवाओं का अवैध व्यापार अब काफी तेज़ हो गया है। प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि इसकी लत लोगों में काफी तेज़ी से बढ़ी है।

कनाडा के एक नागरिक के पास से भारतीय राजस्व गुप्तचर विभाग ने 16 सितम्बर 1996 को नई दिल्ली के इंदिरा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर 6 करोड़ रुपए मूल्य की हेरोइन पकड़ी। इसे पाकिस्तान से लाया गया था और कनाडा ले जाने की योजना थी।

सन् 1993 में ब्रिटिश पुलिस ने 655 किलोग्राम और 1994 में कस्टम आधिकारियों ने620 किलोग्राम हेरोइन बरामद की। इन दोनों ही विभागों ने हेरोइन की बरामदगी में दस प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की सूचना दी। आश्चर्य की बात तो यह है कि बरामद की गई हेरोइन की यह मात्रा बाजार में गोपनीय ढंग से उपलब्ध नशीले पदार्थों की कुल मात्रा का एक बहुत थोड़ा-सा हिस्सा ही है।

सबसे बड़ी चिंता तो इस बात की है कि नीशीली दवा की लत युवा पीढ़ी को अपना निशाना बना रही है। इस लत के कारण होने वाली मौतों में तेज़ी से वृद्धि हो रही है। हेरोइन का अत्यधिक मात्रा में सेवन इस समय ब्रिटेन में नशीले पदार्थों से होने वाली मौतों के लिये सर्वाधिक जिम्मेदार बताया जा रहा है। इसकी वजह यह भी है कि ब्रिटेन में उपलब्ध हेरोइन परिष्कृत होने के साथ ही काफी शक्तिशाली भी होती है।

नशीली दवाओं के विरुद्ध चलाए जा रहे अभियान में पुलिस और कस्टम अधिकारियों द्वारा गोपनीय सूचनाओं को एकत्रित करने एवं निगरानी करने के साथ ही विशेष तरह के कुत्तों की भी मदद ली जाती है। ये कुत्ते सूंघ कर सामान के भीतर छिपी नशीली दवाओं को ताड़ लेते हैं। लेकिन इस काम के लिये कुत्तों को प्रशिक्षित करना काफी मंहगा और मेहनत का काम है। इसके अतिरिक्त परीक्षणों के दौरान यह भी पता चला है कि प्रशिक्षित कुत्ते भी कुछ विशेष तरह के नशीले पदार्थों की पहचान कर सकने में सक्षम नहीं होते ।

हवाई अड्डों पर सामान की जाँच के लिये फिलहाल एक्सरे परीक्षण के साथ क्रोमेटोग्राफिक और स्पैक्ट्रोमीट्रिक पहचान विधियों को आजमाया जाता है। इसके लिये जरूरी उपकरण विश्व के सभी प्रमुख हवाई अड्डों और बंदरगाहों पर उपलब्ध तो हैं, पर इनका उपयोग आसान नहीं होता। इन उपकरणों से सामान की जाँच करने में समय तो ज़्यादा लगता ही है, इसके संचालन के लिये ऐसे प्रशिक्षित कर्मचारियों की भी जरूरत पड़ती है जो जाँच के बाद मिली जानकारी का तुरंत विश्लेषण कर सकें।

नशीली दवाओं, खासकर हेरोइन के बढ़ते उपयोग को देखते हुए जाँच को अधिक व्यापक बनाने की जरूरतें बढ़ती जा रही हैं। अब तो उच्च पदों पर कार्यरत लोगों, जैसे कि विमान सेवाओं के पायलट व रक्षा सेवाओं में भरती के समय अधिक सावधानी और सतर्कता की जरूरत है। इसके

अतिरिक्त पुलिस एवं कास्टम अधिकारियों के लिये एक ऐसे पोर्टेबल सेंसर की भी जरूरत महसूस की जाने लगी, जो हर तरह के नशीले पदार्थ की मामूली से मामूली मात्रा में उपस्थित होने पर भी तुरंत पहचार कर सकने में काफी निपुण हों।

इस क्षेत्र में अनुसंधान कार्य काफी तेज़ी से चल रहे हैं। इनसे कुछ विशेष आशाएँ बँधी है। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैड के इंस्टिट्यूट ऑफ बायोटेक्नोलॉजी में किस लोव और नील ब्रूस के नेतृत्व में शोधकर्त्ताओं के एक दल ने एक ऐसा ही बायोसेंसर तैयार किया है जो नशीली दवाओं की उनके पास के हवा के नमूनों से ही पहचान कर सकता है। यह नमूना बायोसेंसर प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होने वाले एंज़ाइमों पर आधारित है।

इस नए सेंसर में एंज़ाइम और ऐण्टीबाडीज एक ऐसी झिल्ली से जुड़े रते हैं जो परीक्षण के नमूने से सूचनाएँ देने वाले संकेतों को पकड़ लेते हैं। कैम्ब्रिज के शोधकर्त्ताओं ने बगीचे की मिट्टी के एक नमूने का किण्वन, अर्थात् फरमेंटेशन करके **रोडोकोकस** नामक एक बैक्टीरिया उससे अलग किया। फिर इसे ऐसीटिलमारफिन कार्बोक्सीएस्टरेज (ए एम सी ई) नामक एक एंज़ाइम के साथ मिलाया। यह एंज़ाइम हेरोइन पर पनपने के साथ उसे पचा भी सकता है। साथ ही यह हेरोइन के ऐसीटिलेस्टर समूहों पर एस्टरेज की तरह काम करके मारफीन का निर्माण करता है।

हेरोइन का मारफीन में बदलना दो चरणों में पूरा होता है। इस प्रक्रिया में हेरोइन से ऐसीटिल एस्टर समूह के अवयव अलग हो जाते हैं।

उच्च क्षमता वाली द्रव क्रोमेटोग्राफी से किये गये विश्लेषणों से यह पता चला है कि सी 3 ऐसीटिल एस्टर समूह के साथ हाइड्रोलिसिस की प्रक्रिया से 6 ऐसीटिल मारफीन अवयव बनते हैं, जो बारी-बारी से बायोसेंसर में संकेतों के जरिए उभरते हैं। मारफीन अफीम का भी एक प्रमुख अवयव होता है। यह एक ऐसा चिकना और लसीला पदार्थ होता है जो अफीम के दानों को तोड़ने पर निकलता है। कैम्ब्रिज के शोधकर्ताओं ने यह पाया कि मारफीन का ऑक्सीकरण करके उसे मारफिनोन में बदला जा सकता है। इस दौरान होने वाली एंज़ाइमों की प्रतिक्रिया से निकले इलेक्ट्रॉन परीक्षण के दौरान सेंसर में दर्ज़ हो जाते हैं।

मारफीन के ऑक्सीकरण के लिये एक हाइड्रोजिनेस (एम डी एच) नामक एंज़ाइम का इस्तेमान किया गया। शोधकर्ताओं ने इस एंज़ाइम को **न्यूडोमोनस प्यूटिडा** नामक बैक्टीरिया से प्राप्त किया। यह बैक्टीरिया अफीम का प्रसंस्करण करने वाले एक संयंत्र में निकलने वाली गंदगी में पाया गया। परीक्षणों के दौरान यह देखा गया कि ए एम सी ई और एम डी एच का संयुक्त एंज़ाइम प्रभाव हेरोइन की उपस्थिति में इलेक्ट्रॉन उत्पन्न करता है। यह परीक्षण विधि इतनी ज़्यादा संवेदनशील होती है कि हेरोइन की मामूली सी मात्रा से भी यह अत्यधिक शक्तिशाली संकेत प्रसारित करती है।

कैम्ब्रिज के शोधकर्त्ताओं द्वारा तैयार किया गया बायोसेंसर नई प्रौद्योगिकी का एक अनूठा नमूना हैं, हालांकि इसे अभी केवल हेरोइन और उससे संबंधित नशीले पदार्थों के समूहों जैसे अफीम और कोडीन के परीक्षण के लिये ही तैयार किया गया है। लेकिन यह आशा की जा रही है कि इस क्षेत्र में हो रहे विकास कार्यों की बदौलत अन्य नशीले पदार्थों की पहचान करने के लिये भी ऐसे ही संवेदनशील उपकरणों को बनाना संभव हो सकेगा।

बायोसेंसर को हवाई अड्डों एवं बंदरगाहों पर सामान में छिपे नशीले पदार्थों की जांच करने एवं तुरंत परिणाम जानने के लिये उपयोग में लाया जा सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि पुलिस अधिकारी इसका उपयोग मेटल डिटेक्टर की तरह कर सकते हैं।

कारबन

डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

परिसर कोठी काके बाबू, देवकाली मार्ग, फैजाबाद (उ० प्र०)

हे चतुर्भुज कारबन!
यदि तुम न होते, न होते हम मानव,
पशु-पक्षी न होते।
न होते वृक्ष, न वनस्पति,
न होती धरा पर हरीतिमा, न पुष्प,
तुम ही जनक हो धरा पर सृष्टि के।
मानव-सृष्टि के नियंत्रक हो, संचालक हो।
अहो! चतुर्भुज कारबन!
तुम्हारा त्रिपद स्नेह-बंध,
करता है जनन उन योगियों का,
जो होते क्षण भंगुर हैं।
क्लोरोफ्लोरो कारबन, उन्हीं का एक प्रतिनिधि है,
करता यह विनाश है ओज़ोन की परत का।
तुम्हारा द्विपद बंध, देता नव यौगिकों को अधिक स्थायित्व है।
लेकिन विलक्षण है एक पद बंध,
जो कोयले को, हीरे को करता बराबर है।
इनमें भी तुम्हारा ही प्रतिबिंब रहता है,
कोयला और हीरा दो पहलू, तुम्हारे हैं।
हे सृष्टिकारक! रोम-रोम में बसे हुये,
पुष्पों की सुगंधि से नव रसों के बोध तक,
हृदय के स्पन्दन से, भावों की सृष्टि तक।
हे जगन्नियंता! प्राणि-स्पन्दन के प्रणेता,
हे विष्णु स्वरूप कारबन!
तुम्हें शत-शत प्रणाम है।

फार्म 4/ FORM IV
नियम 8 देखिये (See Rule 8)

1. प्रकाशन स्थान	:	विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद - 211002
2. प्रकाशन अवधि	:	मासिक, प्रत्येक माह का 15 दिनांक
3. मुद्रक का नाम	:	श्री अरुण राय
क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
पता	:	कम्प्यूटर कम्पोजर, 7, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद-2
4. प्रकाशक का नाम	:	डॉ० शिवगोपाल मिश्र
5. पता	:	अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, रसायन विभाग
	:	इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2
5. सम्पादक का नाम	:	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
क्या भारत का नागरिक हैं?	:	हाँ
पता	:	रीडर एवं अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद-2

मैं शिवगोपाल मिश्र एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 01.03.1998

शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग
इलाहाबाद-211002

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा

आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हज़ार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 1 मार्च 1999 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

लेख निम्न पते पर भेजें :

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सम्पादक , विज्ञान

विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

...सिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल ...
नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

ISSN : 0373 - 1200

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशि...

हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रि...

अप्रैल 1998

एक प्रति : 5 रु०

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 84 अंक 1
अप्रैल 1998
मूल्य : आजीवन : 500 रु० व्यक्तिगत, 1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०, एक प्रति : 5 रु०

♦

प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

♦

सम्पादक
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

♦

सहायक संपादक
डॉ० दिनेश मणि

♦

मुद्रक
अरुण राय
कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

♦

सम्पर्क
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

विज्ञान विस्तार

विज्ञान वक्तव्य	...	1
रोबोनाइड्स	...	3
मेरी क्यूरी :	...	8
दुर्लभ वनस्पति सम्पदा विनाश के कगार पर	...	12
जासूस मक्खियां और कीड़े	...	13
बहुमूल्य पत्थर : एक वैज्ञानिक दृष्टि	...	15
पर्यावरण पर दोहे	...	16
ऐसा क्यों होता है ?	...	17
आओ प्रयोग करें	...	19
डॉ० गोरख प्रसाद अच्छे कवि थे	...	20
विज्ञान और कला में कल्पना और सत्य	...	21
आख्यानों का वैज्ञानिक पौराणिक दष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन	...	24

♦ ♦

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

पर्यावरण से संबंधित एक खबर, कुछ आँकड़ों सहित, मुझे पढ़ने को मिली। खबर धरती के साफ़-सुथरे भविष्य की ओर इंगित करता है इसलिये पढ़कर बड़ा अच्छा लगा। मुझे लगा क्यों न अप्रैल अंक में आपसे इसी से संबंधित बातचीत की जाये।

इन दिनों पर्यावरण से संबंधित जिस प्रकार की डरावनी खबरें पढ़ने को मिलती हैं, उसे देखते हुए हो सकता है आप में से बहुत लोग मानने को तैयार न हों, पर मैं तो आशावादी हूँ, खबर तपती दोपहरी में ठंडी फुहार जैसी लगी।

"फुचरिस्ट" नामक पत्रिका के माध्यम से रोनाल्ड बेली बताते हैं, कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से जहाँ विश्व जनसंख्या दुगनी हो गई है, वहीं अन्नोत्पादन में तिगुनी वृद्धि हुई है। विश्व के इतिहास में अन्न सस्ता और अधिक मात्रा में उत्पन्न हुआ है, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। पिछले वर्षों में ग़रीब देशों में जिस गति से जनसंख्या बढ़ी है उसकी दुगनी गति से भोजन की मात्रा। 1970 में वैज्ञानिकों ने एक भविष्यवाणी की थी कि लाखों-करोड़ों लोग दुर्भिक्ष के शिकार हो जायेंगे, किन्तु इसके विपरीत आदमी की औसत आयु बढ़ी है। औसत आयु जो 1950 में 47 वर्ष थी, आज बढ़कर 65 वर्ष हो गई है।

आइए, विश्व के सर्वाधिक साधनसम्पन्न और धनी देश अमेरिका के विषय में कुछ ताज़ी जानकारियाँ हासिल करें। प्रथम "धरती दिवस" के बाद से अमेरिका की जनसंख्या में 22 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, किन्तु आर्थिक उन्नति 60 प्रतिशत हुई। इसका एक सुखद परिणाम यह हुआ कि अमेरिका में वायु-प्रदूषण में नाटकीय रूप से कमी देखने में आयी है। सल्फर डाइऑक्साइड के हवा में जाने में 53 प्रतिशत कमी हुई है, कार्बन मोनोऑक्साइड में 57 प्रतिशत और कालिख के घटकों में 35 प्रतिशत की कमी हुई है। कालिख और धूल में तो 1972 के बाद 60 प्रतिशत की कमी देखी गई।

उपरोक्त आँकड़ों का अध्ययन करने से पता चलता है कि आर्थिक उन्नति से प्रदूषण में कमी आती है, वृद्धि नहीं होती है। एक बात और जो उभर कर सामने आती है वह यह कि धरती नामक इस ग्रह पर आर्थिक रूप से सम्पन्न देश साफ़-सुथरे हैं। प्रदूषण कम है। वे कारक जो आर्थिक उन्नति में गतिरोध पैदा करते हैं, प्रदूषण बढ़ाते हैं। एक बात और, जब आदमी अपने लोभ से ऊपर उठ जाता है तभी वह स्वच्छ वायु और स्वच्छ जल की सबके लिये मांग करता है और जब लोगों के पास अर्थाभाव नहीं रहता तब समाज को साफ़-सुथरा रखने की बात सोचते हैं अन्यथा अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतों में ही उलझे रहते हैं।

धरती के बढ़ते ताप के प्रति जो आशंकायें व्यक्त की जाती हैं वे निर्मूल नहीं हैं। वास्तविकता तो यह है कि धरती के बढ़ते ताप के सभी परिणामों की जानकारी हमें न तो पूरीतौर से है और न ही होना संभव है, बस एक बात जो हम कर सकते हैं, वह यह कि लकड़ी, कोयले और पेट्रोल के दहन को कम करें। पर्यावरणीय समस्याओं से हम तभी अच्छी तरह निपट सकते हैं जब हम उनके संबंध में अधिक से अधिक जानकारी हासिल करें। और जानकारियाँ हम तभी पा सकेंगे जब हमारे पास समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये समुचित आर्थिक साधन हों। अतएव हमें अपने आर्थिक स्रोतों में वृद्धि के उपाय ढूँढ़ने होंगे। ग़रीबी मानवता के लिये सबसे बड़ा अभिशाप है।

पिछले दिनों परिषद् में कई महत्वपूर्ण संगोष्ठियाँ और व्याख्यानमालायें सम्पन्न हुईं।

22 फरवरी 1998 को आभा होटल, फैज़ाबाद के सभागार में विज्ञान परिषद् की फैज़ाबाद शाखा के तत्वावधान में डॉ० सी० एस० सिंह अध्यक्ष और प्रधानमंत्री डॉ० राजीव

रंजन उपाध्याय के निर्देशन में "डॉ० रत्नकुमारी व्याख्यान माला" के अंतर्गत् साहित्य में "विज्ञान कथाओं की भूमिका" विषय पर डॉ० शोभा सत्यदेव द्वारा रोचक एवं ज्ञानवर्धक व्याख्यान दिया गया। इस अवसर पर नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, नरेन्द्र नगर (कुमारगंज), फैज़ाबाद के कुलपति डॉ० बी० आर० त्रिपाठी मुख्य अतिथि थे।

इसके पूर्व इसी शाखा के तत्वावधान में 2 जनवरी 1998 को "फैज़ाबाद जनपद में खुम्ब की खेती की सम्भावनायें" विषय पर एक संगोष्ठी सफलता पूर्वक सम्पन्न हुई थी। सभापति थे अवध विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० अगने लाल। सहभागियों को उत्पादित खुम्ब की थैलियाँ भी प्रदान की गईं।

27 फरवरी 1998 को "डॉ० गंगानाथ झा स्मृति व्याख्यानमाला" के अंतर्गत् गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के प्राचार्य डॉ० गया चरण त्रिपाठी द्वारा "प्राचीन भारत में राजकीय सेवा एवं प्रशासन व्यवस्था" विषय पर विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि थे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी, सभाध्यक्ष थे प्रो० डी० डी० पंत।

21 मार्च 1998 को "डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यानमाला" के अंतर्गत् दिल्ली विश्वविद्यालय के गणित के अवकाशप्राप्त प्रो० हरिशचन्द्र गुप्त ने "लोकप्रिय गणित और कविता" विषय पर व्याख्यान दिया। मुख्य अतिथि थे स्व० डॉ० गोरख प्रसाद जी के सुपुत्र प्रो० चंद्रिका प्रसाद और अध्यक्षता की प्रो० डी० डी० पंत ने। इसी अवसर पर दिल्ली से आये डॉ० विष्णु दत्त शर्मा जी की पुस्तक "विज्ञान मुक्तावली" का विमोचन प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी जी के कर कमलों से सम्पन्न हुआ।

सभा विसर्जित होने के पूर्व प्रो० हरिशचन्द्र गुप्त जी ने बताया कि उन्होंने स्वरचित "गणित विविधा" पुस्तक की 40 प्रतियाँ परिषद् को इस आशय से भेंट की है कि परिषद् उसे उत्पादन मूल्य पर बेचकर लोकप्रिय गणित साहित्य का भी प्रचार कर सके। उन्होंने इसके अतिरिक्त भी कुछ पुस्तकें और शोधपत्र परिषद् को भेंटस्वरूप प्रदान किये। हम प्रो० गुप्त के हृदय से आभारी हैं। अभी इतना ही।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

रोबोनॉइड्स

इरफान ह्यूमन

सम्पादक, 'साइंस टाइम्स न्यूज़ एण्ड न्यूज़'
विज्ञान मिशन, 167/1 अन्टा, शाहजहाँपुर- 242001

".....नमस्कार। ये थे आज के मुख्य समाचार, अब समाचार विस्तार से । उड़ने वाली अजनबी वस्तुओं को देखे जाने का इतिहास बहुत पुराना है। वैज्ञानिकों का एक पक्ष यह मानता आया है कि जब हमारे सौरमण्डल में अपार्थिव (एक्सट्राटेरेस्ट्रियल) जीवन के चिन्ह ही मौजूद नहीं हैं, तब कोई अपार्थिव शक्ति अपने यान में बैठकर पृथ्वी पर कैसे आ सकती है? लेकिन आज यह बात तब ग़लत साबित हो गई जब एक स्थान पर बहुत से लोगों ने उड़नतश्तरी अर्थात् यू० एफ० ओ० को देखा। वैज्ञानिकों ने इसे फर्स्ट काइंड क्लोज एनकाउण्टर्स बताया है। यही नहीं, रडार द्वारा इसे मॉनीटर भी किया गया.....।"

मैं टी० वी० स्क्रीन पर नज़रे गड़ाए बैठा था। उड़नतश्तरी का समाचार सुनते ही मेरे शरीर में एक ठण्डी लहर-सी दौड़ गई। मेरे चेहरे पर ग़हरी मुस्कुराहट थी। मैं कल घटी एक रोमांचक और आविस्मरणीय घटना के बारे में फिर सोच में डूब गया।

*　*　*　*

आज सुभाष घई की नई फिल्म रिलीज़ हुई थी, यह उसी की पार्टी थी। पार्टी में छोटे-बड़े कलाकारों के साथ बहुत से निर्माता और निर्देशक उपस्थित थे। सुभाष मेरा एक अच्छा दोस्त था, उसके बहुत आग्रह पर मैं कभी-कभी उसकी शूटिंग देखने भी चला आता था। आज वह बहुत खुश दिखाई दे रहा था, लेकिन जब भी उसकी कोई नई फिल्म रिलीज़ होती तो मैं उससे नाराज़ हो जाया करता था।

"सुभाष तुमने फिर ऐसी फ़िल्म का निर्माण किया जिसमें खून-खराबा और लड़ाई-दंगे के अतिरिक्त कुछ नहीं है। क्या तुम कोई....।"

"हां भई, मुझे मालूम है तुम आगे क्या कहना चाहते हो।" उसने मेरी बात काटते हुए कहा-"तुम यही कहोगे न कि मैं इन सबसे हटकर कोई वैज्ञानिक फ़िल्म का निर्माण क्यों नहीं करता, क्यों है न!"

"हाँ सुभाष, तुम्हें मालूम है कि विज्ञान गल्प और फंतासी हमें भावी दुनिया को गढ़ने में मदद करती है।"

हमारी बात सुनकर सभी निर्माता और निर्देशक भी हमारी बहस में सम्मिलित हो गए और वहाँ वैज्ञानिक फ़िल्मों का निर्माण ख़ासा चर्चा का विषय बन गया।

"वैसें विज्ञान गल्प और फंतासी पर आधारित सिनेमा की शुरुआत सन् 1902 में हो गई थी जब जार्जेज मेलीज़ के कैमरे में एक तकनीकी खराबी आ जाने के कारण खींची हुई फ़िल्म में विशेष प्रभाव अर्थात् स्पेशल इफेक्ट आ पड़े । इस फ़िल्म को डेवलप करनें पर देखा गया कि सड़क पर चलते पुरुष अचानक स्त्रियों में बदल गये और गाड़ियाँ हवा में गायब हो गई।" मैंने अपनी बात खत्म की तो एक और निर्माता बोल पड़ा-

"और यह फास्ट एण्ड स्लो मोशन, मल्टिपल एक्सपोजर, मैटे एफेक्ट, स्पाट मोशन, डिजाल्व फेड आदि विशेष प्रभाव मेलीज़ की ही खोज के परिणाम हैं।"

"अच्छा बाबा ठीक है, मैं अपनी अगली फ़िल्म का निर्माण साइंस फ़िक्शन पर ही करूँगा।"

"यह हुई न बात.... ।" सुभाष की बात सुनकर मैं खुश होते हुए बोला।

"लेकिन एक शर्त है।" सुभाष बोला।

" क्या ? " मैंने पूछा।

"फ़िल्म के लिये विज्ञान पर आधारित कथा तुम ही लिखोगे।"

"देखो सुभाष... ।"

"नहीं, मैं न नहीं सुनना चाहता।"

इस प्रकार उसके आग्रह पर मैंने हाँ कह दिया। पार्टी लगभग समाप्त हो चुकी थी। सात बज चुका था, मैंने उस फ़िल्म की एक वीडियो कैसेट उठा ली और आज्ञा लेते हुए बोला-

"अच्छा सुभाष अब चलता हूँ।"

"अच्छा ... लेकिन ठहरो, अगर तुमको आपत्ति न हो तो अपनी गाड़ी में माधुरी दीक्षित को भी लेते जाओ।"

"ऑफ कोर्स।" मैंने हॉमी भर दी। माधुरी उस फ़िल्म की अभिनेत्री थी। वह मेरे फ्लैट के करीब ही रहती थी। हम लोग कार में बैठकर चल दिए। कार सड़क पर फर्राटे भरती हुई दौड़ रही थी और दूर पहाड़ों के बीच सूर्य डूबता हुआ पीला पड़ता जा रहा था।

हम लोगों को एक घण्टा बीत चुका था। सड़क तो जैसे खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही थी, अंधकार भी बढ़ने लगा था। पहाड़ियाँ खत्म करके अब सड़क के दोनों ओर पथरीले मैदान प्रारम्भ हो गए थे।

" यह सड़क है या शैतान की आँत.... ।" माधुरी बोली।

"बस पन्द्रह-बीस मिनट का रास्ता और है।" मैंने हंसकर कहा ही था कि तभी कार हिचकोले खाती हुई रुक गई, फिर मैं उसे आगे बढ़ाने की लाख कोशिश करता रहा लेकिन वह अपने स्थान से नहीं हिली।

"क्या हुआ?" माधुरी बोली।

"कुछ समझ में नहीं आ रहा..... ।"

और तब मैंने फिर कोशिश की लेकिन कार की स्थिति में परिवर्तन नहीं आया। तभी मुझे दूर कहीं हल्की सीटी की आवाज़ सुनाई दी। ऐसी विचित्र आवाज़ सुनकर माधुरी ने प्रश्नवाचक दृष्टि से मेरी ओर देखा। सीटी की आवाज़ धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी, तभी आकाश में एक प्रकाश पुंज स्पष्ट होने लगा था। वह नीले व हरे प्रकाश में नहाई हुई कोई वस्तु थी, जो धीरे-धीरे मैदान में उतर रही थी।

"उड़न तश्तरी।" मैं फुसफुसाया।

"उ-उड़नतश्तरी?" माधुरी ने दुहराया। उसके माथे पर पसीना छलक आया था।

उड़नतश्तरी मैदान में उतर चुकी थी। नीले-हरे प्रकाश का चक्र उसके चारों ओर घूम रहा था। तभी उसमें एक द्वार प्रकट हुआ और लगा जैसे कोई अज्ञात शक्ति हमें उड़नतश्तरी की ओर खींच रही है। हमारा सिर चकराने लगा था और यकायक आँखें बन्द होने लगीं।

आँखें खोलीं तो स्वयं को एक विचित्र स्थान पर पाया, सिर अभी भी चकरा रहा था। मैंने पीछे मुड़कर देखा तो माधुरी भी आँखें फाड़े चारों ओर देख रही थी। उस स्थान पर मशीनों के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। सामने ही एक स्क्रीन लगी थी जिस पर कोई नीला-सा पिण्ड दिखाई पड़ रहा था।

"हम कहाँ हैं? " माधुरी बोल उठी। मैंने कुछ कहने के लिये होंठ खोले ही थे कि कक्ष में खरखराती हुई आवाज़ गूँजी-

"घबराओ नहीं, तुम जहाँ भी हो सुरक्षित हो।"

"पर हम हैं कहाँ..... ?" मैं बोला।

"तुम हमारे यान में हो। स्क्रीन पर जो गोला देख रहे

हो, वास्तव में तुम्हारी पृथ्वी है।"

"य-यह पृथ्वी ?" हमारे आश्चर्य की सीमा न रही।

"हाँ तुम्हारी पृथ्वी, और इस समय हम इक्वीग्रेवीस्फीयर [1] पर रुके हुए हैं।

"लेकिन क्यों?" माधुरी घबराकर बोली।

"क्योंकि हमें तुम लोगों की आवश्यकता है। खैर सबसे पहले हम अपना परिचय देते हैं। हम इसी आकाशगंगा के हैं। हमारे ग्रह की दूरी तुम्हारे सूर्य से लगभग 30,000 प्रकाश वर्ष है और हमारे ग्रह का विज्ञान तुम्हारी पृथ्वी से करोड़ों वर्ष आगे है। " कुछ क्षण रुककर आवाज़ पुनः सुनाई दी-

"मैं इस यान का कमाण्डर आर० ए० 1 एक एक्स-बायोलोजिस्ट [2] हूँ और मेरे साथ प्रोफेसर पिडिलेच्यु अर्थात् आर० ई० 4 एक एथनोलोजिस्ट, डॉ० नेलेवर अर्थात् आर० जी० 10, एक जियोलोजिस्ट व डॉ० वेनेत्स्की अर्थात् आर० जी० एस० 7 एक एस्ट्रोनोट हैं।

"लेकिन कमाण्डर .... ?"

"घबराओ नहीं, सब पता चल जायेगा। हम जिस ग्रह से आये हैं वह अब वीरान हो चुका है। जैविक और रासायनिक युद्ध से वहाँ के प्राणियों ने दम तोड़ दिया है। हमें इस युद्ध का पूर्वाभास हो गया था इसलिए हमने अपने ग्रह के अभी बताए गये चारों वैज्ञानिकों के ज्ञान को अपनी मैमोरी में कैद कर लिया।"

"इसका मतलब यह कि तुम लोग प्रणी नहीं बल्कि सुपर कम्प्यूटर युक्त मशीनी मानव हो।" मैं बोला।

"हाँ, आपने ठीक समझा। हम चारों रोबोटों ने अपना ग्रह नष्ट होते ही एक अन्य ग्रह की खोज कर ली, जिसकी पारिस्थितिकी बिल्कुल तुम्हारे ग्रह जैसी है लेकिन वहाँ पर कोई बुद्धिमान जीव नहीं है।" कुछ देर रुकने के बाद वह फिर बोला-

"हम चाहते हैं कि उस ग्रह पर एक ऐसे समाज का उदय हो जो द्वेष और घृणा से मुक्त हो, जहाँ धर्म, जातियाँ, रंग-भेद, क्षेत्रीयता और भाषा जैसी समस्याएँ और इनको लेकर खून-खराबा का नाम निशान तक न हो। जहाँ हो सिर्फ वैज्ञानिक मनोवृत्ति और मानवता । इसी उद्देश्य को लेकर हम अपनी आकाशगंगा के हर ग्रह का अध्ययन कर रहे हैं। जब हमारा यान तुम्हारे ग्रह के पास से गुज़रा तो हमें तुम्हारी पृथ्वी पर जीवन के लक्षण दिखाई दिये । कुछ और निकट पहुँचने पर हमारी दृष्टि तुम पर पड़ी और हमने उस ग्रह के लिये तुम लोगों को चुन लिया।"

"उस वीरान ग्रह के लिये।" मैं सूखे कण्ठ से बोला।

"हाँ, उस ग्रह को आवाद करने और हमारी भावनाओं के अनुरूप उस समाज के गठन करने का सौभाग्य तुम्हीं को प्राप्त होगा, यदि तुम हमारे परीक्षणों के अनुकूल उतरे।"

"न-नहीं-नहीं, मुझे मेरी पृथ्वी पर पहुँचा दो।" माधुरी ने घबराकर कहा।

"घबराओ नहीं, वहाँ तुमको पृथ्व से कहीं अच्छी शुद्ध वायु, भोजन, वातावरण और सभी सुविधाएँ मिलेंगी। अब मैं परीक्षण के लिये महान इथनोलोजिस्ट प्रोफेसर पिडिलेच्यु अर्थात् आर० ई० 4 को भेज रहा हूँ। यदि तुम इसके परीक्षण पर सही उतरे तो यह यान इक्वीग्रेवीस्फीयर से बाहर निकल आयेगा और हम हर क्षण पृथ्वी से करोड़ों किलोमीटर दूर होते जायेंगे।"

"हे भगवान, यह अपना फैसला बदल दें। " माधुरी आँखें मूँदे ईश्वर से प्रार्थना करने लगी तभी पीछे की समतल दीवार में एक द्वार प्रकट हुआ और एक विचित्र शक्ल-सूरत का रोबोट अन्दर प्रविष्ट हुआ। उसने निकट आकर सबसे पहले मेरे थैले की ओर इशारा किया। मैंने अपना थैला उसकी ओर बढ़ा दिया जिसमें सुभाष की दी हुई वीडियो कैसेट रखी हुई थी। मैं सोचने लगा कि क्या ऐसे उच्च विचारों को लेकर

---

1 इक्वीग्रेवीस्फीयर- यह पृथ्वी के चारों ओर ब्रहमाण्ड में गोलाकार सतह है, जिस पर पृथ्वी का गुरूत्वीय बल स्थिर रहता है।

2 एक्स-बायोलोजिस्ट- अन्य ग्रहों पर जीवन की सम्भावना का अध्ययन करने वाला वैज्ञानिक।

कोई रोबो मिशन भी हो सकता है। धन्य है मशीनी दिमाग़! लेकिन यह हमारी भाषा कैसे बोल और समझ रहे हैं? लेकिन ऐसा सम्भव है, क्योंकि इनके ग्रह का विज्ञान हमारी पृथ्वी से इतना आगे जो ठहरा।

इस बीच रोबोट कैसेट को अपने वक्षस्थल में रिक्त हुए स्थान में लगा चुका था। अब उसकी आँखे एक दूसरे स्क्रीन की ओर थीं और स्क्रीन पर सुभाष की फ़िल्म के दृश्य उभर रहे थे। एक दृश्य में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को जान से मारने का प्रयत्न कर रहा था.... और फिर चारों ओर बहता हुआ खून.... ।

"ओह नहीं कमाण्डर, यह लोग हमारे मिशन के काबिल नहीं हैं। इनके मस्तिष्क बुरी तरह दूषित हैं। इस गृह के लोग हमारे सपनों के समाज की नींव कभी नहीं रख सकते!" अचानक आर० ई० 4 चीख पड़ा।

"इसका मतलब हमें इन लोगों को पृथ्वी पर वापस भेज देना चाहिए। खैर, हमारी आकाशगंगा में अभी बहुत से ग्रह हैं जहाँ पर जीवन होगा। किसी न किसी ग्रह के लोग तो ऐसी दूषित भावनाओं से मुक्त होंगे।" कमाण्डर ने अपनी बात खत्म करके आर० जी० 7 को वापस पृथ्वी पर चलने की आज्ञा दी। यान पृथ्वी की ओर बढ़ने लगा था तभी कक्ष में धुंध छाने लगी और जब धुंध हटी तो हमने स्वयं को अपनी कार के निकट पाया।

"बच गये...... ।" माधुरी ठण्डी सांस खींचती हुई बोली।

"हाँ, आज इस कैसेट ने बचा लिया वरना...... ।" मैंने हँसते हुए कहा।

"क्या आज की घटना को लेकर हमारी बातों पर कोई विश्वास करेगा?" माधुरी ने प्रश्न किया।

"शायद नहीं। लेकिन हाँ, सुभाष की फ़िल्म के लिये आज की घटना पर विज्ञान कथा ज़रूर लिखी जा सकती है।" इतना कहकर मैंने कार चालू कर दी और हम लोग तेज़ी से शहर की ओर बढ़ चले।

* * * *

"ट्रिन-ट्रिन... ट्रिन-ट्रिन .....।" तभी फोन की घण्टी बजी जिसने मेरी सोच भंग कर दी। टीवी पर समाचार समाप्त हो चुके थे। मैंने रिमोट से टीवी बंद किया और फोन का रिसीवर उठा लिया।

"हेलो?"

"हेलो, मैं माधुरी .... ।"

"ओह माधुरी हाउ आर यू ...... ?"

"फाइन, ... शायद तुम टीवी पर न्यूज़ देख रहे होगे... .... और कल की घटना .... ।"

'हाँ माधुरी, अभी-अभी टीवी ने कल की याद फिर ताज़ा कर दी।"

"जैसा कि अभी टीवी पर बताया गया, वह 'क्लोज एनकाउण्टर्स ऑफ फर्स्ट काइंड' क्या होता है?" माधुरी ने प्रश्न किया।

'क्लोज एनकाउण्टर्स ऑव फर्स्ट काइण्ड' का अर्थ एक ऐसी स्थिति से हैं जिसमें उड़नतश्तरी को निकट से देखा भर गया हो तथा कोई शारीरिक सम्पर्क न होने पर भी देखने वालों पर उस घटना का भावात्मक प्रभाव पड़ा हो। लेकिन वास्तव में वह 'क्लोज एनकाउण्टर्स ऑव फर्स्ट काइंड' ही नहीं कुछ और भी था .... ।"

"क्या ?" माधुरी ने फिर प्रश्न किया।

"वास्तव में वह 'क्लोज काउण्टर्स ऑव थर्ड काइंड' था अर्थात् हम लोग रोबोनाइड्स[1] से मिले और उनकी उड़नतस्तरी में बैठकर अंतरिक्ष की सैर भी की। अच्छा माधुरी एक बात बताओ, कल तुम्हें डर नहीं लगा था?"

'लगा था ...... लेकिन तुम जो साथ थे।"

---

1 रोबोनाइड्स-अंतरिक्ष से आये रोबोट को लेखक ने रोबोनाइड्स नाम दिया है।

"रियली। ..... अच्छा अगर वे लोग हम दोनों को ले जाते तब?"

"तब क्या ..... उस वीरान ग्रह पर हम दोनों ही एक दूसरे के दुख-सुख बांटते। कितने महान थे उन यंत्र-मानवों के विचार। काश! हम पृथ्वीवासी भी देशों की सीमाओं, जातियों, धार्मिक मतभेदों, भाषाओं, रंगभेद आदि को त्यागकर उन्हीं के अनुरूप अपने ग्रह को भी बनाएँ।" माधुरी ने अपनी बात पूरी की तो मैं बोला।

" यह क्रान्ति हमारी नयी पीढ़ी ही ला सकती है। मैंने तो फ़ैसला किया हुआ है कि मैं भी एक नए समाज की नींव रखूंगा और इसकी शुरुआत होगी मेरे विवाह से ....।"

"विवाह से?" माधुरी मेरी बात सुनकर ज़ोर से हँसी।

"हाँ माधुरी, मेरा विवाह और उस धर्म की लड़की से जो मेरे धर्म की न हो।"

'वाओ ...... इंट्रेस्टिंग । लेकिन ...... कहीं तुम सीरियस तो नहीं?"

"हाँ, यकीन नहीं आ रहा। ..... क्या तुम मेरा साथ दोगी?"

"......।" माधुरी खामोश रही।

"क्या सोच रही हो?"

"अरे बाबा, ये बातें फोन पर थोड़े ही होती है।"

"फिर?"

"एक काम करते हैं, आज शाम हम लोग होटल ताज़ के रेस्टोरेन्ट में मिलते हैं, वहीं बाते होंगी .... ओ० के० .... ।" अब माधुरी धीमे-धीमे हँसती जा रही थी। फोन पर उसकी गर्म साँसों को महसूस कर रहा था जो मेरे शरीर में अजीब उन्माद पैदा कर रहीं थीं।

अनुवाद एवं प्रस्तुति : सुश्री रूफिया

प्रबन्ध संपादक, साइंस टाइम्स न्यूज एंड व्यूज

विज्ञान मिशन, 167/1, अन्टा, शाहजहाँपुर -242001

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक ओहेन का निधन

मेलबोर्न (अमेरिका) 15 मार्च 1998–विश्व का पहला टर्बोजेट इंजन बनाने वाले जर्मनी के वैज्ञानिक हेन्स जोशिम पाबस्ट वान ओहेन का निधन हो गया। वे 85 वर्ष के थे। वान ओहेन 1947 में अमेरिका चले गये और अमेरिका के सर्वाधिक प्रतिष्ठित सैन्य अनुसंधानकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

वान ओहेन ने 27 वर्ष की उम्र में जर्मनी के गोइटिंग यूनिवर्सिटी में रहते हुए पहला टर्बोजेट इंजन बनाया था। इस इंजन से एक विमान को लगभग 300 किमी प्रति घंटे की रफ्तार से उड़ाया जा सकता था। पहली परीक्षण उड़ान 27 अगस्त, 1939 को बाल्टिक सागर पर भरी गई, जिससे जर्मनी को काफी प्रतिष्ठा मिली। इसके बाद अप्रैल 1947 को वान ओहेन ने एक अन्य इंजन तैयार किया, जो पहले प्रोटोटाइप दो इंजनों वाले जेट लड़ाकू विमान में लगाया गया। उन्होंने अमेरिका के विमानन के क्षेत्र में भरपूर योगदान दिया और 32 वर्ष तक ओहिया के डेटन में राइट पैटरसन सैनिक हवाई अड्डे के लिये काम किया और 1963 में एयरोस्पेस रिसर्च लेबोरेटरी के प्रमुख वैज्ञानिक बने। वर्ष 1992 में वह मेलबोर्न (फ्लोरिडा) आ गए। वह गत सितम्बर से बीमार थे। उनका निधन 13 मार्च 1998 को हुआ।

मेरी क्यूरी

सुलेखा कुमारी एवं कृषिचयन
द्वारा
डॉ० चतुर्भुज साहु

रीडर एवं अध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग, गिरिडीह कॉलेज, गिरिडीह, बिहार

वैज्ञानिकों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करना किसी मनुष्य के व्यक्तितत्व पर कितना गहरा अमिट छाप छोड़ता है इसे हम महान वैज्ञानिक 'नोबेल पुरस्कार' विजेता सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन के शब्दों में आसानी से समझ सकते हैं-

- "विज्ञान की व्यक्तिगत शाखाओं और उनके विकास में योग देने वाले मुख्य वैज्ञानिकों की जीवनियों का अध्ययन विज्ञान के वास्तविक अर्थ और उसकी आत्मा को ठीक तरह समझने के लिये जरूरी है। उसके पढ़ने से हमें जो स्फुरण प्राप्त होती है, वह प्रायः विज्ञान पर लिखे गये अत्यन्त विद्वतापूर्ण औपचारिक ग्रन्थों से अधिक होती है।"

अगर आज हम वैज्ञानिकों की ओर दृष्टि डालें तो हमें पुरुष वर्ग में ऐसे अनेक वैज्ञानिक मिल जाएँगे जिन्होंने बहुत से नए-नए अविष्कार कर मानव-जीवन को सुखमय बनाया हैं और साथ ही नयी-नयी वस्तुओं के विषय में जानने के लिये उत्प्रेरित किया है। लेकिन यदि हम महिला वैज्ञानिकों की ओर दृष्टि ले जायें तो जो सर्वश्रेष्ठ नाम हमारे सामने उभर कर आता है वह नाम है मेरी क्यूरी। **मेरी क्यूरी** संसार के सर्वोच्च विज्ञान पुरस्कार- 'नोबेल पुरस्कार' -प्राप्त करने वाली न केवल प्रथम महिला रहीं अपितु दोबारा 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त करने वाली प्रथम वैज्ञानिक भी थीं।

मेरी क्यूरी का जन्म 7 नवम्बर, 1867 ई० को पोलैण्ड देश के वारसा नगर में हुआ था। बचपन में उसका नाम मान्या था। वह अपने चार भाई-बहनों (एक भाई और तीन बहन) में सबसे छोटी थीं। अभी मान्या को अपनी माँ का पूरा प्यार मिल भी न पाया था कि उसकी माँ क्षय रोग से ग्रसित होकर स्वर्गवासी हो गई। माँ की मृत्यु से जहाँ एक ओर उनके जीवन में सूनापन आया वहीं उन्हें बचपन में ही समझदार बना दिया।

मेरी क्यूरी का पोलैण्ड में उस समय जन्म हुआ था जब पोलैण्ड पर रूस का शासन था। गुलामी की जंज़ीर को तोड़ने के लिये पोलैण्ड के देशभक्त जितने भी प्रयास करते उन्हें कठोरता से कुचल दिया जाता था, क्योंकि तत्कालीन रूसी जार बड़े ही निर्दयी तथा अत्याचारी होते थे। और तो और, पोलैण्ड के विद्यालयों में वहाँ की भाषा 'पोलिश' पढ़ाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। उसके स्थान पर रूसी भाषा व्यापक रूप से पढ़ायी जाती थी। पोलैण्ड का इतिहास पढ़ना वहाँ के महापुरुषों के बारे में बातें करना, सब कुछ वर्जित था। वहँ के बच्चों तक को रूस का राष्ट्रीय गीत गाने के लिये विवश किया जाता। इतना होने के बावजूद भी पोलैण्ड के बुद्धिजीवी लोग, जिनमें अध्यापक, पादरी, पढ़े-लिखे

नवयुवक आदि लोग शामिल थे, अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए भी नई पीढ़ी में स्वतंत्रता की चाह तथा गुलामी की जंज़ीर तोड़ने के लिये लुके-छिपे कार्य करते रहते थे। और इस दिशा में छोटी सी मान्या भी कम न थी। वह पाठशाला में अपनी अध्यापिकाओं से पोलैण्ड के इतिहास के बारे में अधिक से अधिक जानने के लिये सदैव उत्सुक रहती थी।

एक दिन की बात है जब मान्या की कक्षा में एक अध्यापिका छात्र-छात्राओं को पोलैण्ड के इतिहास के बारे में बता रही थीं तथा उसी से संबंधित प्रश्न पूछ रही थीं और उत्तर मान्या दे रही थी, इसी बीच एक मध्यम-सी आवाज़ वाली घंटी बज उठी। यह कोई छुट्टी की घंटी नहीं थी, बल्कि किसी रूसी निरीक्षक के आ जाने का संकेत था। इसलिये घंटी की आवाज़ सुनते ही सारी कक्षा में पोलिश भाषा से संबंधित सारी पुस्तकें इकट्ठी करके तेज़ी के साथ सुरक्षित स्थानों में छिपा दी गयीं। व्यवस्थित ढंग से सभी विद्यार्थियों ने रूसी भाषा की पुस्तकें निकालकर उन पुस्तकों को इस प्रकार पढ़ने लगे जैसे कुछ हुआ ही न हो। अध्यापिका ने भी रूसी भाषा की किताब मेज़ पर खोल रखी थी। ऐसा लग रहा था जैसे वह उसी पुस्तक को पढ़ा रही हों।

इतने में रूसी निरीक्षक ने कक्षा में प्रवेश किया। सतर्क आँखों से एक ही बार में चारों तरफ देख लिया। अध्यापिका ने अपनी घबराहट को छिपाते हुए उन्हें बैठने के लिये कुर्सी दी। रूसी निरीक्षक कठोर शब्द में बोला- "तुम जोर-जोर से क्या पढ़ा रही थी? इस मेज़ पर रखी पुस्तक, कौन सी पुस्तक है?" अध्यापिका ने नम्रता से उत्तर दिया- " वह रूसी परी-कथाओं की प्रसिद्ध पुस्तक है।" वास्तव में रूसी निरीक्षक तो सिर्फ यह जानने के लिये आया था कि पाठशाला में कहीं चोरी-छिपे पोलिश भाषा और पोलैण्ड का इतिहास तो नहीं पढ़ाया जाता है। रूसी निरीक्षक कुर्सी पर बैठ गया और अध्यापिका से किसी छात्रा को बुलाने को कहा।

कक्षा की सभी छात्राएँ सहमी और डरी हुई थीं। पर अध्यापिका जानती थीं कि मान्या कक्षा की ऐसी छात्रा है जो इस रूसी निरीक्षक के सभी प्रश्नों के जवाब दे सकती है, क्योंकि वह रूसी भाषा बहुत अच्छी तरह से बोल भी लेती थी।

मान्या को भी इस बात का अंदाज़ा था कि अध्यापिका संभवतः उसी का नाम लेंगी पर उसे उस रूसी निरीक्षक के पास जाने की कतई इच्छा न थी। इसलिये उसने अपना मुँह पीछे की ओर घुमा रखा था ताकि अध्यापिका की नज़र उस पर न पड़े।

जब मान्या को ही बुलाया गया तब वह अनमने ढंग से डरते-सहमते निरीक्षक के पास खड़ी हो गई। निरीक्षक ने उसे प्रार्थना सुनाने को कहा। मान्या ने तोते की तरह पूरी की पूरी प्रार्थना सुना दी। बाद में उससे पाँच जार शासकों के नाम भी पूछे गये। इस बार भी मान्या ने शांत भाव से जारों के नाम बता दिये। परन्तु जब मान्या से पोलैण्ड पर शासन करने वाले का नाम बताने को कहा गया तो उत्तर जानते हुए भी मान्या ने बताना ठीक नहीं समझा, क्योंकि उसका स्वाभिमान एक विदेशी को अपना शासक कहने से रोक रहा था। किन्तु निरीक्षक के कड़ियल चेहरे को देखते हुए उसे जवाब देना पड़ा। उस समय उसके मन में ज्वालामुखी फूट रहा था और उस ज्वालामुखी में स्वतंत्रता के बीज प्रस्फुटित हो रहे थे। रूसी जार को अपना शासक बताते हुए वह अपने आप में काफी लज्जित हो रही थी। किन्तु दूसरी तरफ इस छोटी सी लड़की के उत्तरों को सुनकर रूसी निरीक्षक बहुत प्रसन्न हो गया। उसे लगा कि यहाँ सभी बच्चों को रूसी भाषा पढ़ाई जाती है। उसे क्या पता था कि उसे मूर्ख बनाया जा रहा है। यहाँ के तो बच्चे-बच्चे के मनमें स्वतंत्रता की धारा बह रही थी।

मान्या अपनी स्कूली शिक्षा प्राप्त कर घर में बैठ गयी थी, क्योंकि वारसा में लड़कियों के लिये कॉलेज में प्रवेश की सुविधा नहीं थी। मान्या के पिता स्कलोदोवस्की एक साधारण शिक्षक थे। घर की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे अपनी होनहार बेटियों को पढ़ने के लिये अन्यत्र भेजते। परन्तु मान्या ने अपनी सूझ-बूझ से एक ऐसी योजना बनायी, जिससे दोनों बहने (मान्या और उसकी दीदी ब्रोन्या) एक-एक करके पेरिस में आगे की पढ़ाई जारी रख सकीं। बाद में ब्रोन्या ने पेरिस में ही अपने एक पोलैण्ड के सहपाठी कैसीमर से विवाह कर लिया।

वास्तव में मान्या का पेरिस जाना नये जीवन की

शुरुआत थी, जो आगे चलकर उसकी मंज़िल बन गयी। उसने पेरिस के एक विश्वविद्यालय में अपना नामांकन करवाया और अब उसे ऐसा लगने लगा था जैसे विज्ञान की शिक्षा पाने का उसका स्वप्न पूरा होने जा रहा है। विश्वविद्यालय में फ्रांसीसी ढंग से उसका नाम मेरी स्कोलोदोवस्की लिखा गया। बचपन की मान्या अब मेरी हो गयी।

मेरी बड़े उत्साह के साथ पढ़ने में व्यस्त हो गयी। मेरी अपनी परीक्षा के समीप आते ही दिन भर पढ़ने लगी। उसे अपने खाने-पीने तक की सुध नहीं रही। खाना बनाने में समय खर्च होता और होटल में खाने के लिये उसके पास पैसे नहीं थे। इसका प्रभाव उसके शरीर पर पड़ने लगा और वह धीरे-धीरे दुर्बल होने लगी।

एक रात की बात है। सर्दी का मौसम था। मेरी के पास पर्याप्त कपड़े नहीं थे। घर को गर्म रखने के लिये कोयले को जलाने तक का खर्च भी भारी लगता था। सर्दी से बचने के लिये उसने सारे कपड़े पहन लिये। फिर भी जब ठंड नहीं मिटी तो उसने कुर्सी को ही अपने ऊपर डाल लिया ताकि उसके दबाव से कुछ गर्माहट मिल सके। इस प्रकार इतनी कठिनाइयों को झेलते हुए भी वह अपनी पढ़ाई से विचलित न हुई। कष्ट सहकर भी अनवरत पढ़ती रही। अंत में 1893 के जुलाई माह में परीक्षाफल की घोषणा की गयी। प्रथम स्थान पर जब मेरी का नाम पुकारा गया तो उसकी खुशी की सीमा न रही। और तो और, वह सभी सहपाठियों की प्रशंसा की पात्रा भी बन गई। किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि विदेश से आई और तंगी से पढ़ रही मेरी सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करेगी।

इसके बाद मेरी को राष्ट्रीय उद्योग प्रोत्साहन समिति के तहत विभिन्न इस्पातों की चुम्बकीय शक्तियों के अध्ययन हेतु एक विषय दिया गया। इसी दौरान उसकी मुलाकात पियरी क्यूरी से हुयी जो स्वयं एक ऐसे उभरते हुए फ्रांसीसी वैज्ञानिक थे, जिन्होंने 18 वर्ष की अल्पायु में ही 'मास्टर ऑव साइंस' की डिग्री प्राप्त कर ली थी।

दिन बीतते गये। मेरी और पियरी क्यूरी की मित्रता बढ़ती गयी। मित्रता प्रेम संबंध में बदल गई और 26 जुलाई 1895 को दोनों विवाह के बंधन में बंध गये। विवाह के बाद मेरी स्कोलोदोवस्की अब मेरी क्यूरी बन गयीं।

मेरी ने गणित की एम० एस-सी० परीक्षा प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की तथा फेलोशिप की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। फेलोशिप प्राप्त कर लेने के बाद मेरी को 'डॉक्टरेट' की डिग्री के लिये किसी एक विषय को चुनकर उस पर शोध-प्रबंध लिखना था। पर वह एक ऐसी वैज्ञानिक गुत्थी को सुलझाना चाहती थीं जिसे अभी तक कोई भी सुलझा न सका हो।

उन दिनों वैज्ञानिक इस बात की खोज कर रहे थे कि युरेनियम धातु से निकलने वाले अज्ञात किरणों का स्वभाव और कारण क्या था। मेरी ने इसी विषय को शोध के लिये चुना। बाद में उसने युरेनियम की किरणों पर शोध बंद कर दी और दूसरी ऐसी धातुओं के परीक्षण में लग गयीं जिनसे इसी प्रकार की रेडियोसक्रिय किरणें निकलती थीं।

मेरी का शोधकार्य ज्यों-ज्यों प्रगति करता गया, उसका काम भी बढ़ता गया। इस कारण पियरी उसके साथ मिलकर काम करने लगे। अब यहाँ एक और एक ग्यारह वाली बात हो गयी, क्योंकि उन दोनों में दुनिया को कुछ नया कर दिखाने की ललक थी।

27 दिसंबर 1898 को इन दोनों ने विज्ञान एकेडेमी के सम्मुख यह घोषणा की- "हमने एक नए तत्व की खोज कर ली है और उसका नाम 'रेडियम' रखा है।" इस घोषणा के साथ ही भौतिक विज्ञानियों में हलचल सी मच गयी।

सन् 1902 ई० में वे शुद्ध रूप से रेडियम की अत्यल्प मात्रा तैयार करने में सफल हुए। इसे देखा, छुआ और तौला जा सकता था। इसी के साथ उन दोनों वैज्ञानिकों का नाम पूरी दुनिया में उसी प्रकार फैल गया जिस प्रकार सुबह होते ही सूर्य की किरणें चारों ओर फैल जाती हैं।

1903 ई० को पेरिस विश्वविद्यालय ने मेरी को 'डॉक्टर ऑव फ़िज़िकल साइंस' की उपाधि प्रदान की।

इसी वर्ष मेरी क्यूरी को 'रॉयल सोसाइटी' की बैठक

में भाग लेने की अनुमति प्रदान की गई। मेरी क्यूरी विश्व की प्रथम महिला थीं जो रॉयल सोसाइटी की सदस्य बनी थीं।

10 दिसम्बर, 1903 ई० को हेनरी बेकरेल, मेरी क्यूरी तथा पियरी क्यूरी को सर्वोच्च विज्ञान पुरस्कार 'नोबेल पुरस्कार' प्रदान किया गया।

16 अप्रैल 1906 ई० को क्यूरी दम्पत्ति की जोड़ी उस समय बिछुड़ गयी जब पियरी क्यूरी की एक घोड़े-गाड़ी की दुर्घटना में मृत्यु हो गयी। पियरी की आकस्मिक और असामयिक मृत्यु से कई प्रश्न पैदा हो गये- क्या अब क्यूरी उनके दुस्सह वियोग के कारण अपने आप को संभाल पायेंगी? क्या वह अपना वैज्ञानिक शोध जारी रख पायेंगी? क्या अपनी दोनों छोटी-छोटी बच्चियों का भविष्य उज्ज्वल कर पायेंगी? परन्तु विज्ञान को समर्पित मेरी क्यूरी ने अनपे आप को सम्भालते हुए पति के कार्यों को आगे बढ़ाया।

1911 ई० में मेरी क्यूरी ने वह इतिहास रचा जो अब तक किसी न रचा था। और वह इतिहास था दोबारा 'नोबेल पुरस्कार' द्वारा सम्मानित होना। यह पुरस्कार रसायन-विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक खोज करने के कारण मिला था।

एक बार एक अमेरिकी महिला श्रीमती मैलोन, मेरी से मिलने आयीं और उन्होंने मेरी से पूछा —"आप कौन सी वस्तु उपहार स्वरूप लेकर प्रसन्नता का अनुभव करेंगी?" मेरी ने कहा-"मुझे अपने शोधकार्य के लिये एक ग्राम रेडियम की आवश्यकता है। किन्तु वह इतना मँहगा है कि मैं उसे कभी नहीं खरीद सकती। अगर आप कुछ देना ही चाहती हैं तो मुझे एक ग्राम रेडियम ही दे दीजिए।"

श्रीमती मैलोन मेरी का उत्तर सुनकर हैरान रह गईं। जिसने रेडियम की खोज की हो उसके पास मात्र एक ग्राम रेडियम नहीं। और वह भी पैसों के अभाव के कारण। किन्तु सच्चाई यह है कि यदि मेरी चाहतीं तो रेडियम की खोज से अथाह पैसा कमा सकती थीं। रेडियम ही विश्व का सबसे कीमती धातु है। परन्तु मेरी ने ऐसा नहीं किया। उसने अपने शोधकार्य को सार्वजनिक कर दिया। इससे उनकी महानता झलकती है।

जब मेरी क्यूरी अपनी दोनों बेटिओं, आइरीन और ईव, को लेकर अमेरिका गयीं तो वहाँ उनका भव्य स्वागत किया गया। अमेरिकी राष्ट्रपति हार्डिंग ने मेरी क्यूरी को श्रेष्ठ मानव, आदर्श पत्नी, और आदर्श माता कहकर संबोधित किया। आदर्श माता इसलिये क्योंकि उन्होंने अपनी बड़ी पुत्री आइरीन को उस मुक़ाम तक पहुँचा दिया था, जिस मुकाम पर पहुँचाने की हर माँ-बाप की तमन्ना होती है। नतीजा यह था कि आइरीन अपनी मां की तरह ही एक उच्च कोटि की वैज्ञानिक बनीं और छोटी पुत्री ईव एक विख्यांत संगीतज्ञा बनीं।

4 जुलाई, 1934 ई० को मेरी क्यूरी की, हृदय गति रुक जाने से, इहलीला समाप्त हो गयी। मेरी क्यूरी की मृत्यु रेडियम के सम्पर्क में प्रयोग करते रहने के कारण हुई। मेरी उन्हीं रेडियोसक्रिय किरणों की शिकार बनीं, जिनकी खोज उन्होंने स्वयं की थी।

मेरी क्यूरी की मृत्यु से सारे विज्ञान जगत् में ग़हरे शोक की लहर दौड़ गयी। मेरी के रूप में एक ऐसी दीप्तिमान प्रतिभा लुप्त हो गयी, जिसका नाम सदैव ही आदर के साथ लिया जाता रहेगा।

दुर्लभ वनस्पति सम्पदा विनाश के कगार पर

डॉ० देवी दयाल पाण्डे

उद्योग अनुभाग-2, एनेक्सी भवन, सचिवालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

भारत में वनस्पति सम्पदा का विशाल भण्डार है जो भारत के विभिन्न प्रदेशों, क्षेत्रों में फैला हुआ है। उन प्रदेशों में केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु तथा गोआ तक फैले पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण के संवेदनशील और सघन वनों से अच्छादित पश्चिमी घाट वनस्पति सम्पदा किसी कोषागार से कम नहीं है। भारत में पाई जाने वाली 16,000 से अधिक वनस्पति और ओषधीय जड़ी -बूटियों में से 6000 से अधिक पश्चिमी घाट में पाई जाती हैं। किन्तु मानव के बढ़ते गलत दखलंदाज़ी के कारण लगभग 80 वनस्पति जातियाँ विनाश के कगार पर हैं। पारिस्थितिंकीविदों का कहना है कि पश्चिमी घाट के आधारभूत प्राकृतिक वन आच्छादन वाले इस क्षेत्र में वनस्पति सम्पदा के नष्ट होने का मुख्य कारण वाणिज्यिक रोपण और औद्योगिक वानिकी का तेज़ गति से लगातार होने वाला फैलाव है। पश्चिमी घाट में जो वानस्पतिक विविधता खतरे में है, उनमें अनेक दुलर्भ और बहुमूल्य ओषधीय पौधे हैं, जो एल्कलायड का प्रभावकारी और सम्पन्न स्रोत हैं तथा जिनके बारे में समझा जाता है कि कैंसर जैसी बीमारी व जटिल हृदय रोगों में काम आने वाली अनमोल ओषधि की आधारभूत कच्ची सामग्री इसमें पाई जाती है। विश्व प्रकृति निधि के जैवविविधता निर्देशक थॉमस मैथ्यू के अनुसार यदि पश्चिमी घाट के पारिस्थितीकीय स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के लिये आवश्यक रूप से शीघ्र क़दम नहीं उठाये गये तो, तेज़ी से संकुचित या कम होती वनस्पति के सामने और भी अधिक खतरे पैदा हो सकते हैं।

पांडिचेरी स्थित फ्रेंच इन्सटीट्यूट के वैज्ञानिकों का विचार है, कि जनसंख्या वृद्धि का बढ़ता दबाव पश्चिमी घाट के सघन वन वाले इस क्षेत्र में विध्वंसक रूप से सामने आया है जिससे अनेक दुलर्भ वनस्पतियों का अंत हो गया है। हिमांचल प्रदेश व जम्मू और कश्मीर के जंगलों के दूरस्थ क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय ओषधि निर्माताओं और सुसंगठित शिकार सिंडिकेट द्वारा निर्दयतापूर्वक दोहन किये जाने से अथवा गैर-कानूनी रूप से निर्यात के कारण अनेक जड़ी-बूटियों और ओषधीय वनस्पतियों का बुरी तरह से नाश हुआ है। फलतः 15,00 से अधिक फूल वाले पौधों का जो दुर्लभ ओषधीय गुणवत्ता लिये हैं, या तो उनका अंत हो चुका है, अथवा वे अंत के निकट हैं। उदाहरण के तौर पर अतिरिक्त दाब में काम आने वाली दवा का निर्माण सर्पगन्धा द्वारा किया जाता है। इसे वैज्ञानिक शब्दावली में **रॉवोलफिआ सरपेंटिना** कहा जाता है जिसका आज वाणिज्यिक उद्देश्य से सौंदर्य प्रसाधन वाली फर्मों द्वारा अति दोहन किया गया है और जिसका शीघ्र ही अपने प्राकृतिक आवास क्षेत्र से सफाया हो सकता है। यह एक रोचक तथ्य है कि सर्पगन्धा से एल्कालायड याक्षाराम जो उच्च रक्तदाब के उपचार के उपयोगी है को प्राप्त करने की विधि दवा उद्योगों ने दक्षिण भारत की पहाड़ी जन-जातियों से सीखा है। एक नई बात सामने आई है, कि कैंसर प्रतिरोधी रसायनों को पैदा करने वाली **रोज़ी पेरिविंकल** नामक जंगली वनस्पति का दवा उद्योग द्वारा अति दोहन किया जा रहा है जिससे यह वनस्पति अंत के निकट पहुँच गई है। 'ट्रैफिक

इंडिया' नामक संस्था का मानना है, कि **टैक्सस बैकाटा** नामक जाति की वनस्पति से निकलने वाला रालदार पदार्थ जिसे टॉक्सोल भी कहा जाता है का गैर कानूनी निर्यात हो रहा है। इस वनस्पति में कैंसररोधी सामग्री के प्रति किलो एक रुपये पचास पैसे दिये जाते हैं, और फिर इसे कच्चे रसायन में संशोधित कर बाज़ार में बेचकर भारी मुनाफा कमाया जा रहा है। किन्तु सत्यता यह है कि इस दवा का बाज़ार में मूल्य प्रति ग्राम 3 लाख रुपये तक लिया जा रहा है। वन विभाग प्रबंध द्वारा मद्रास स्थित कम्पनी द्वारा **कोल्चिकम ल्यूटेम** नामक वनस्पतिक का भारी मात्रा में निर्यात की बात सामने आई जो एक बहुमूल्य वनस्पति है। पर्यावरणविदों का मानना है, कि संकटग्रस्त जैव-सम्पदा के व्यापार के संबंध में कस्टम विभाग तो चौकन्ना होता है, किन्तु जहाज़ों में लादकर गैर-कानूनी ढंग से ले जा रही वनस्पति पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। कु छ समय पू र्व ऐ सी सामग्र ी पकड़ ी गई , जो अत्यन्त थी। वनस्पति के गैर-कानूनी व्यापार को रोकने के लिये योजनाएँ बनाती हैं, किन्तु विविध संकटग्रस्त वनस्पति की जातियों की सही व उपयुक्त सूचना उपलब्ध न रहने से, इसे रोकना कठिन होता है। इस कमी को दूर करने हेतु पर्यावरण एवं वन विभाग द्वारा संकटग्रस्त वनस्पतियों की एक सूची तैयार की जा रही है। पूणे स्थित वनस्पति संग्रहालय में दुलर्भ और संकटग्रस्त वनस्पति को लेकर सघन अध्ययन और क्षेत्रीय सर्वे का कार्य किया जा रहा है। इसी प्रकार कनाडा स्थित एक इन्टरनेशनल डेवलपमेंट रिसर्च सेन्टर (सी० डी० आई० सी०) नामक संगठन ने केरल में कोटअकला स्थित वेधशाला के साथ एक परियोजना पर कार्य शुरू किया है।

प्राकृतिक सम्पदाओं से सम्पन्न भारत की वनस्पति सम्पदा कुछ स्वार्थी तत्वों के कारण आज विनाश के कगार पर आ चुकी है, इसलिये इस सम्बंध में आज न केवल चिंतन आवश्यक हो गया है वरन् उन्हें उनके आवासों की सुरक्षा द्वारा उनकी संख्या वृद्धि भी आवश्यक है। इस ओर सरकारी और गैर-सरकारी मिले-जुले प्रयासों की अविलम्ब जरूरत है।

जासूस मक्खियाँ और कीड़े

नरविजय यादव

पत्रकार, 302 पिंक बिल्डिंग, दूसरा तल, मंडावली मेनरोड
(गवर्नमेंन्ट डिस्पेंसरी के सामने), दिल्ली - 110092

खबरदार! अब ऐसे जासूस ड्यूटी पर तैनात हो चुके हैं, जो न सूंघने वाले कुत्तों की मदद लेते हैं, न ही उंगलियों के निशान पहचानते हैं बल्कि अपने काम में ये मदद लेते हैं मक्खियों और अन्य दूसरे कीट-पतंगों की। अपने इन संगी-साथियों की सहायता से ये जासूस, हत्या, बलात्कार और जनवरों के अवैध शिकार जैसी गुत्थियों को चुटकी बजाकर सुलझा देते हैं। है न मज़ेदार बात!

ये अपराध कीट-विशेषज्ञ मौकाए वारदात पर वह सब नहीं ढूँढ़ते जो आम पुलिस वाले खोजते हैं। ये न तो हत्या में इस्तेमाल हथियार को ढूँढ़ते हैं और न ही मृतक की शिनाख्त करते हैं। इसके विपरीत ये जासूस शव के आसपास मौजूद मक्खियों तथा अन्य कीट-पतंगों में अधिक दिलचस्पी लेते हैं। इन कीटों के अध्ययन से ये हत्या का समय, स्थान और कई बार असली अपराधी को ठीक-ठीक पहचान लेतें हैं।

इनका कार्य प्रकृति के उस प्राचीन सिद्धांत पर आधारित होता है, जिसके अनुसार प्रत्येक प्राणी को अंततः मिट्टी में ही मिल जाना होता है। मिट्टी में विलीन करने की ज़िम्मेदारी कीड़े-मकोड़ों और जीवाणुओं की होती है।

अगर शवों को प्रकृति ठिकाने न लगाये तो इस धरती पर जीना दूभर हो जाता । शवों को मिट्टी में मिलाने और सरल कार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित करने का दायित्व आंशिक रूप से कीट-पतंग ही निभाते हैं। इसलिये वे किसी हत्या अथवा अन्य वारदात के संबंध में काफी महत्वपूर्ण सूचनाएँ एवं सुबूत मुहैया करा सकते हैं।

कीड़े-मकोड़ों के लिये मृत पशु एक मज़ेदार भोजन का काम करता है। एक बार ये कीट शव पर आ बैठें, तो वहीं डेरा डाल लेते हैं। ये कीट उसी स्थान पर रहते हैं, प्रजनन करते हैं, बच्चे पैदा कते हैं और इनका जीवन-चक्र वहीं चलने लगता है हालाँकि, ये सब क्रियाएँ निश्चित समय -अंतराल पर सम्पन्न होती हैं। बस इसी समय-अंतराल की तलाश में तो हमारे कीट-विज्ञानी जासूस रहते हैं। इसी से उन्हें अपराध का समय पता करने में आसानी होती है।

कीड़े-मकोड़े अपनी वंश-वृद्धि एक खास परिस्थिति में ही कर सकते हैं। प्रजनन के लिये उन्हें एक विशेष तापमान, धूप और नमी चाहिए होती है। विभिन्न कीटों के जीवन-चक्र की अलग-अलग दशाओं का अध्ययन करने पर वारदात के स्थान, समय और तापमान आदि की सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं।

विभिन्न स्थानों और अलग-अलग मौसमों में कीटों की जनसंख्या में फ़र्क मिलता है। संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में अलग-अलग मौसमों में कीटों की जनसंख्या -संबंधी विस्तृत अध्ययन होते रहे हैं। इसीलिए वहाँ कीट-विशेषज्ञों को अपराधों के सुबूत एकत्रित करने के लिये समय-समय पर बुलाया जाता है। साइमन फ्रेशर विश्वविद्यालय की डॉ० गैल एंडरसन ने इस विषय में खासी विशेषता हासिल की हुई है। वे और उनके छात्र मिलकर अब तक न जाने कितने अपराधों की गुत्थियाँ सुलझा चुके हैं।

अपराध अन्वेषण संबंधी कीट विज्ञान की इस शाखा का जन्मदाता डॉ० बरग्रेड डिआरबोइस को माना जाता है, जिन्हें एक शताब्दी से भी पहले एक हत्या की गुत्थी सुलझाने के लिए बुलाया गया था। अपराध एक बालक से संबंधित था, जिसे 1849 में मारकर भूमि में गाड़ दिया गया था। पुलिस के हिसाब से यह अपराध उस मकान में रह रहे किराएदार ने किया था, जबकि डॉ० डिआरबोइस ने कीड़े-मकोड़ों का अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला कि हत्या कई माह पूर्व उसी मकान में रह चुके पूर्व किराएदार ने की थी। शव के पास जिस तरह के कीड़े थे, उनसे वारदात के तापमान और मौसम का अंदाज़ा लगाया गया।

अब डॉ० गैल एंडरसन उसी तरह से शव अथवा घटनास्थल पर मौज़द कीड़ों की संख्या से अपराध के प्रमाण एकत्र करती हैं। हाल ही में उन्होंने कनाडा में जंगली भालुओं की हत्या-संबंधी एक मामला सुलझाया था। पुलिस ने जिन संदिग्ध शिकारियों को पकड़ा था, उनके पास से भालुओं के शरीर का कोई हिस्सा बरामद नहीं हो पाया था।

लेकिन गश्ती पुलिस अधिकारियों ने भालुओं के बच्चों के शवों पर एक खास तरह की मक्खियों को उड़ते पाया।

इन्हें पकड़कर उन्होंने कुछ मक्खियाँ डॉ० एंडरसन के पास भिजवा दीं

डॉ० एंडरसन को उन मक्खियों के गर्भाधान के समय का पता था। उन्होंने जो समय बताया, उसी के आस-पास संदिग्ध अपराधियों का वाहन घटना स्थल पर देखा गया था। अपराधियों को सजा हुई और डॉ० एंडरसन को विश्व प्रकृति निधि' (डब्ल्यू. डब्ल्यू. एफ.), कनाडा की 'वन्यजीव सेवा' तथा कई अन्य ऐसी ही संस्थाओं ने पुरस्कृत किया। यदि अब कोई मक्खी आपको दिखे तो याद रखिए कि वह किसी जघन्य अपराध का राज़ बताने की कोशिश में तो आपके इर्द-गिर्द चक्कर काट रही है?

■■■

बहुमूल्य पत्थर : एक वैज्ञानिक दृष्टि

डॉ० अरुण आर्य

3, ज्ञानयोग अपार्टमेंट, 42-सी, प्रतापगंज, वडोदरा-390002 (राजस्थान)

मूर्धन्य भारतीय भू-विज्ञानी प्रो० दाराशा नौशीखान वाडिया (प्रो० डी० एन० वाडिया) के निवास स्थल वडोदरा में गत् 2 जून 1997 को नागरिकों ने एक ख्यातिप्राप्त जेमालॉजिस्ट प्रो० आर० वी० कारन्थ का उत्कृष्ट व्याख्यान सुना। विज्ञान परिषद् द्वारा आयोजित इस व्याख्यान को कुछ चुनी हुयी सुन्दर पारदर्शियों नें और भी रोचक बना दिया। 3 जून को आकाशवाणी वडोदरा (अहमदाबाद) ने सायंकाल इसे प्रसारित भी किया। शाखा के उपाध्यक्ष एवं प्रसिद्ध पादप रसायनविद् डॉ० एम० डेनियल ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया। इस वर्ष के कार्य कलापों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए युवा अध्यक्ष डॉ० योगेस जशराय ने संस्था द्वारा वैज्ञानिक विषयों पर ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी सदस्यों तक पहुँचाने के संकल्प को दोहराया। इस चर्चा की प्रस्तावना को प्रस्तुत किया डॉ० अरुण आर्य ने। आप ने बताया कि गुजरात देश में तराशे गये हीरों का 80 प्रतिशत भाग उत्पन्न करता है। अहमदाबाद, पालनपुर, भावनगर, वलसाड एवं नवसारी में हीरों की यूनिट्स हैं। अकेले सूरत में 10,000 हीरों के कारखाने हैं। भारत का इस क्षेत्र में योगदान महत्वपूर्ण है। 1760 में जब से ब्राज़ील में हीरों की खोज हुयी, तब से भारत से हीरों की माँग में कमी आयी है।

प्रो० एस० जे० बेदी ने इस सभा की अध्यक्षता की। विख्यात भू-वैज्ञानिक प्रो० एस० एस० मेढ़, जो संकायाध्यक्ष भी रह चुके हैं, ने मुख्य अतिथि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। प्रो० कारन्थ विज्ञान संकाय के जियोलॉजी (भू विज्ञान) विभाग में वरिष्ठ उपाचार्य (रीडर) के पद पर कार्य कर रहे हैं। आपने अनेक देशों में अपने शोधपत्र प्रस्तुत किये हैं और इस विषय पर आपकी एक पुस्तक भी प्रकाशित हो रही है।

प्रो० कारन्थ ने सर्वप्रथम 'जेम्स' (Gems) अर्थात् हीरों एवं अन्य पत्थरों के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डाला। आपने कहा कि लोगों को सिन्धु घाटी काल के समय में भी इन कीमती पत्थरों का कुछ ज्ञान था। भारत सोने की चिड़या कहा जाता था और प्रसिद्ध हीरा 'कोहिनूर' भारत की गोलकुण्डा और पन्ना खानों से ही निकाला गया था। आपने कहा कि नग अपने रंग, रूप एवं सुन्दर संरचना के कारण जाने जाते हैं। कुछ नग, इस प्रकार के होते हैं कि उन पर पड़ने वाला प्रकाश उन्हें सुन्दर रंग प्रदान करता है। प्रकाश के विकीर्णन (Disperson), अववर्तन (Refraction) एवं पारदर्शी (Transparent) होने के कारण इन पत्थरों की शोभा बढ़ जाती है। गुजरात के खंबात प्रान्त में इन पत्थरों को बहुतायत में एकत्रित कर के उनकी चमक को बढ़ाया जाता है, उनकी पालिश की जाती है, जिन्हें बाद में जयपुर (राजस्थान), दिल्ली, लखनऊ एवं वाराणसी (उ० प्र०) एवं हैदाराबाद (आन्ध्रप्रदेश) के कारीगर अनेक आभूषणों में पिरो कर हमारे हाथों, गलों एवं बाहों में शोभा के योग्य बनाते हैं।

आपने आँकड़े प्रस्तुत करते हुये बताया कि भारत ने 1970-71 में मात्र 43 करोड़ रुपयों के आभूषणों का निर्यात किया जो 1995-96 में बढ़कर 17,644 करोड़ हो गया। आपने स्लाइड्स की सहायता से बहुमूल्य पत्थरों की संरचना एवं प्रकाश के परावर्तन को दिखाया। हीरा प्रकाश को पूरी तरह परावर्तित करता है अतः अधिक चमकदार दिखायी देता है। हीरे भी रंगीन हो सकते हैं। आपने कहा कि पत्थरों में मिलने वाली अशुद्धियाँ उनमें विशेष रंग भर देती हैं। इन अशुद्धियों से कुछ प्रकाश की तरंगे अवशोषित हो जाती हैं और उनका रंग बदल जाता है। हीरा रसायनिक रूप से $C(Fe_2O_3)$ है। इसका रंग पारदर्शी पीला होता है। यह सबसे कठोर अर्थात् इसकी हार्डनेस 10, रूबी की 9 एवं टोपाज़ की 8 है। इन मणियों एवं पत्थरों की उपयोगिता पर भी आपने प्रकाश डाला। जहाँ सभी पत्थर आभूषणों के बनाने के काम आते हैं, हीरे काटने के यंत्रों में कोरन्डम (Corrundum), रूबी एवं सफायर लेसर एवं कारखानों में

यन्त्रों की बियरिंग के काम आते हैं। क्वार्टज ऑप्टिकल रेशों, तो कुछ 'जेम्स' आप की घड़ी एवं यंत्रों का प्रमुख हिस्सा हैं।

आपने कार्बनिक पत्थरों (Organic Gems) जैसे मोतियाँ एवं एम्बर की भी चर्चा की। मोती जहाँ समुद्र में एक विशेष प्रकार के मोलस्का समूह के जन्तु द्वारा बनाये जाते हैं, एम्बर एक प्रकार का जीवाश्मीभूत रेज़िन है, जो प्राचीनकाल के चीड़ वृक्ष (Conifers) द्वारा उत्पन्न किया गया। आपने लाखों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर पाये जाने वाले एक कीड़े को इस एम्बर में दबा हुआ दिखाया। अप्राकृतिक रूप से (Chemically /Synthetic) तैयार किये गये हीरों एवं अन्य पत्थरों की चर्चा भी की। पहला हीरा 1970 में अमेरिका में बना।

सभा में उपस्थित लोगों ने हाथों में पहने जाने वाली अँगूठियों के व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव को जानना चाहा। डॉ० अरुण आर्य ने नागों द्वारा हीरों एवं मणिकों की रक्षा किये जाने को अवैज्ञानिक मान्यता बतलाया। प्रो० बेदी एवं डॉ० कारन्थ का विचार था कि विदेशी बच्चों की तरह हम स्कूल के छात्रों में इन्हें एकत्रित करने की परम्परा डाल सकते हैं।

पर्यावरण पर दोहे

दिलीप भाटिया

टाइप 5/5, अणुकिरण कॉलोनी
रावतभाटा, भाभानगर-323307 कोटा-राजस्थान

पर्यावरण का गीत गाते रहते, पर कोई कहीं नहीं सुनता ।
उद्योगों का कूड़ा-करकट, हमारी जलवायु को है प्रदूषित करता ।।
इस प्रदूषित वातावरण को, कैसे हम सब स्वच्छ बनाएं ।
वाहनों का बढ़ता शोर धुआँ, कैसे इसको हम घटाएं ।।
वर्तमान का जब यह आलम है, तो भविष्य भला क्या होगा ।
कटते पेड़, कम होते जंगल, इससे बुरा और क्या होगा ।
कथनी में दोहराते चिंता, करनी में मन मरजी करते ।
शुद्ध वायु स्वच्छ जल है सपना, फिर भी नहीं हम संभलते ।।
अब तो जागो, अब तो चेतो, प्राकृतिक संतुलन बनाए रखो ।
विनाश छोड़ो, विकास करो, पर्यावरण को संतुलित करो ।।

पुस्तक समीक्षा

ऐसा क्यों होता है?

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग
इलाहाबाद- 211002 (उ० प्र०)

ऐसा क्यों होता है? लेखक : तुरशन पाल पाठक; प्रकाशक : ज्ञान गंगा, 205-सी चावड़ी बाज़ार दिल्ली- 110006, मुद्रक ; राधा प्रेस दिल्ली वर्ष : 1996 पृष्ठ : 148 मूल्य : 150 रुपये, सचित्र 81-85829-15-2.

प्रायः हर व्यक्ति के मन में किसी भी कार्य अथवा घटना के होने के पीछे जिम्मेदार कारणों आदि के जानने की जिज्ञासा अवश्य होती है। यदि यह जानकारी न मिले तो मन भटकता रहता और कुछ अधूरा-अधूरा-सा व्यक्तित्व विकसित होकर दुखी करता रहता है- खास तौर से तब जब संसार में कुदरत के अपार कारनामें घट रहे हों।

साँप बिना पैर के घोड़े से भी तेज़ दौड़ सकता है, बिना कान के आवाज़ भी सुन लेते हैं। उल्लू अँधेरे में भी खूब अच्छी तरह देख सकता है, जबकि अन्य कोई प्राणी नहीं। चमगादड़ रात में उड़ते हुये भी दूर से ही पता लगा लेता है कि सामने कोई बाधा है या नहीं। गिरगिट अपने शत्रुओं से बचाव के लिये अपने रंग बदल लेता है, जबकि छिपकली शत्रु से सामना होते ही अपनी पूछ तोड़कर फेंक देती है। पर क्यों?

क्या कभी आपने सोचा है कि मुहांसे चेहरे पर ही क्यों निकलते हैं? पानी को कितना ही गरम कर लें, फिर भी वह आग पर गिरकर आग को बुझा देता है, लेकिन पेट्रोल में लगी आग पानी डालने से नहीं बुझती है, क्यों?

बात यही समाप्त नहीं होती, इस तरह की तो हज़ारों बातें हैं जिन्हें हम प्रतिदिन के जीवन में देखते हैं और जो हमें सोचने पर मजबूर करती हैं कि आखिर ऐसा क्यो होता है? हर कार्य एक-एक कारण होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो आप निश्चय ही यहीं कहेंगे कि ऐसी हर बात के पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक तथ्य है।

तुरशन पाल पाठक की पुस्तक "ऐसा क्यों होता है?" इसी दिशा में एक सराहनीय प्रयास है जो जीवन में आये दिन आने वाले जिज्ञासा भरे 250 प्रसंगों के वैज्ञानिक पहुलों की सचित्र जानकारी सुबोध और सीधी-सादी सरल भाषा में जनसाधारण तक पहुँचाती हैं।

इस पुस्तक का प्राकक्थन राष्ट्रीय विज्ञान प्रौद्योगिकी एवं संचार परिषद्, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली के संयुक्त सलाहकार एवं प्रमुख तथा विज्ञान लोकप्रियकरण के सर्वोच्च सम्मान 'कलिंग पुरस्कार' से सम्मानित डॉ० नरेन्द्र सहगल ने लिखा है- "विज्ञान तो हर जगह, हर चीज़ में है। एक बार नहीं, कई बार आपने ऐसा पढ़ा या सुना अवश्य होगा। लेकिन क्या इस यथार्थ का अनुभव होना शुरू हुआ आपको? यदि नहीं तो यह पुस्तक पढ़कर देखिये। इस कथन के पीछे सचाई आपको स्पष्ट रूप से दिखने लगेगी और शायद आप अपने आस-पास हर चीज़

को, हर प्रक्रिया को, हर घटना को अधिक ध्यान और अधिक पैनी नज़र से देखना शुरू कर देंगे, जिससे कहाँ, कौन, क्यों और कैसे जैसे प्रश्न आपके अंदर उठेंगे। इनमें से कुछ का उत्तर तो आप स्वयं अपने सामान्य ज्ञान से दे सकेंगे और कुछ का उत्तर आपको ढूँढ़ना पड़ेगा। यदि यह किताब पढ़ने के साथ-साथ ऐसा कुछ परिवर्तन आप में आना शुरू हो जाता है तो तुरशन पाल पाठक जी का 'ऐसा क्यों होता है?' पुस्तक की रचना का यह प्रयास और एन० सी० एस० टी० सी० के कार्यक्रम 'क्यों और कैसे' सार्थक हो जायेंगे। ऐसा ही हो, इस हेतु आशा और शुभ कामनाओं सहित– नरेन्द्र सहगल।''

समीक्षा की दृष्टि से इस पुस्तक को देखने, पढ़ने और मनन करने पर मुझे 'ऐसा क्यों होता है?' पुस्तक की सचित्र, शैली, भाषा एवं घटनाओं के पीछे के विज्ञान का वर्णन डॉ० नरेन्द्र सहगल की आशा और शुभकामनाओं के अनुकूल लगा। तभी तो समूची पुस्तक को प्रारम्भ से अंत तक एकाग्रचित्त पढ़ता चला गया। पुस्तक में उल्लिखित एक जिज्ञासा 'लकड़ी जल तो जाती है लेकिन पिघलती क्यों नहीं?' का वैज्ञानिक वर्णन सचित्र, सरल एवं सादे शब्दों में कुछ इस प्रकार है-

''सभी पदार्थों का गठन उनके अणुओं और परमाणुओं की एक विशेष संरचना से जुड़े रहने के कारण होता है। यह परमाणु आपस में एक दुर्बल बल से जुड़े होते हैं। जब किसी पदार्थ को पिघलाना होता है तो उसे गरम किया जाता है। इससे इसका ताप बढ़ता है। ताप बढ़ने से दुर्बल बल टूटने लगता है। जब यह बल टूटता है तो पदार्थ के परमाणुओं से बनी संरचना बिखरने लगती है और संरचना के बिखरने से पदार्थ पिघलने लगता है। लेकिन जब लकड़ी को गरम किया जाता है तो ताप मिलने पर वह ऑक्सीजन के सहयोग से पिघलने की स्थिति आने से पहले ही जलने लगती है। यही कारण है कि लकड़ी को पिघलाना कठिन नहीं बल्कि वर्तमान परिस्थितियों में असंभव है।''

चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली की सहयोगी संस्था ए डब्लू आई सी अर्थात् बच्चों के लेखक एवं चित्रकारों के संघ द्वारा इस पुस्तक को 'बालप्रिय पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है। हिन्दी अकादमी दिल्ली सरकार, नई दिल्ली द्वारा बाल साहित्य पुरस्कार से और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली द्वारा 20 हज़ार रुपये के 'मौलिक हिन्दी विज्ञान पुस्तक लेखन पुरस्कार'' से पुस्तक के लेखक श्री तुरशन पाल पाठक को पुरस्कृत किया जा चुका है। इससे पुस्तक की लोकप्रियता की स्पष्ट झलक मिलती है।

यह बात बड़ी सामान्य है कि जब बच्चे कोई नई चीज़ देखते हैं तो प्रायः अपनी जानकारी के लिये नाना प्रकार के प्रश्न पूछने लगते हैं, यह क्या है? वह क्या है? अथवा ऐसा क्यों होता है? आदि-आदि। बच्चों के ऐसे प्रश्नों का सिलसिला तभी समाप्त होता है जब उन्हें अपनी जिज्ञासा की शान्ति हेतु कोई संतोषजनक उत्तर मिल जाता है। इसीलिये बच्चों में प्रश्न पूछने की आदत को ज्ञान मार्ग पर आगे बढ़ने की पहली सीढ़ी कहा जाता है।

इस क्षेत्र में युवा, वयस्क अथवा बूढ़े भी बच्चों से भिन्न नहीं हैं। उन्हें भी अपने आस-पास की घटनाओं तथा प्रक्रियाओं को जानने की प्रबल लालसा रहती है, पर वे उन्हें किसी से पूछने के बजाय अपनी ही तर्कबुद्धि से समझने का प्रयास अधिक करते हैं। इस कार्य में कभी वे सफल हो जाते हैं तो कभी असफल। जब वे असफल होते हैं तो सही उत्तर पाने हेतु उनका भटकना स्वाभाविक हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि उनकी जिज्ञासा के समाधान हेतु कोई सरल सुबोध पुस्तक मिल जाय तो उनका काम आसान हो सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह पुस्तक उपयुक्त प्रतीत होता है।

हाँ, एक बात पर ध्यान देना समयानुकूल होगा, जैसा समीक्षा के प्रारंभ में ही कहा गया है कि जिज्ञासाएँ अनंत हैं और इस पुस्तक में केवल 250 जिज्ञासाओं के वैज्ञानिक पहलू समझाये गये हैं जो अपर्याप्त हैं। इसलिये इस कार्य को पुस्तक के आगे के कई खण्डों के रूप में, और आगे बढ़ाया जाना चाहिए। यदि ऐसा हो सका तो यह कार्य समाज के लिये अधिक उपयोगी हो सकेगा।

पुस्तक की छपाई, चित्र, विषय सामग्री के अनुकूल है, इस कार्य के सम्पादन में लगे लेखक, चित्रकार, प्रकाशक, मुद्रक आदि सभी सहयोगी बधाई के पात्र हैं।

आओ प्रयोग करें

तुरशन पाल पाठक

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं संपादक, भारत की सम्पद-'वैज्ञानिक विश्व कोश
राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान, सी० एस० आई० आर०, हिल साइड रोड, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
निवास : सी-4-एच/ 56, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

आओ प्रयोग करें; लेखक श्यामसुन्दर शर्मा, पृष्ठ-105, मूल्य 125 रु०, सचित्र, संस्करण 1996, प्रकाशक- ग्रंथ अकादमी, 1686, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, मुद्रक-राधा प्रेस दिल्ली 181-85826-00-5

दिन प्रतिदिन होते रहने वाली घटनाओं को देखकर कभी किसी को आश्चर्य अथवा कौतूहल नहीं होता लेकिन जब सामान्य बातों से हटकर कोई बात सामने आती है तभी आश्चर्य मिश्रित कौतूहल होने के साथ उसे जानने की जिज्ञासा भी बलवती होने लगती है। तथाकथित जादूगरों के खेल जिन्हें हम अद्भुत कमाल मान बैठते हैं और उनसे आश्चर्यचकित होने लगते हैं, वे कोई भी कमाल नहीं होकर विज्ञान के सफल प्रयोग होते हैं जिन्हें जादूगर भरपूर प्रेक्टिस के बाद पूरी दक्षता से दिखाकर उन्हें जादूभरी खेलों का रूप दे देते हैं। आप भी यदि विज्ञान के इन प्रयोगों को जान लें तो जरा सी सावधानी बरत कर उन्हें आसानी से कर सकते हैं। इससे आपका ज्ञान तो बढ़ेगा ही साथ ही आप अपने इस ज्ञान से समाज में अपना स्थान भी बना सकते हैं।

'आओ प्रयोग करें' नामक पुस्तक भी ऐसे ही सरल और जादूभरे रुचिकर 51 प्रयोगों की संपूर्ण विधियों को बताती है। बानगी के तौर पर इन प्रयोगों में से कुछ प्रयोग-बरतन बदलते ही रंग भी बदल जाय, फब्बारा अपने आप चले, चिपक जायें तो छूटें नहीं, काग़ज़ की कटोरी में पानी उबालो, हथेली के आर-पार भी देख सकते हो, अंडे में चूजा दिखाना, पहले को मारा आखिरी उछला, आग लगा दो फिर भी न जले, हाथ पोछो तौलिया रंग बदले, लोहे को तांबे में बदलना, मोमबत्ती जले पानी के अंदर, छलनी में पानी भरना, ठण्डा करने पर पानी उबले आदि से संबंधित है।

इस पुस्तक में उल्लिखित प्रयोगों में से एक प्रयोग 'बोतल के अंर अण्डा' कुछ इस प्रकार बताया गया है और साथ में प्रयोग का चित्र भी है।

तुमने कुछ घरों, में विशेष रूप से शौकीन लोगों के घरों में शो केस में छोटे मुँह की बोतल में अंडा पड़ा देखा होगा। उस बोतल का मुँह इतना छोटा होता है कि उसमें अंडा, बिना टूटे घुस नहीं सकता, फिर भी उसके अंदर अंडा बिना तोड़े घुसाया गया है। अगर चाहो तो तुम भी छोटे मुँह की बोतल में अंडा घुसाने का प्रयोग कर सकते हो।

इस प्रयोग के लिये छोटे मुँह की काँच की एक बोतल और अंडे के अतिरिक्त तुम्हें थोड़ा-सा, इतना जिसमें अंडा भली-भाँति डूब सके, सिरका और खाने का सोडा तथा पानी भी चाहिये। सिरके में अंडे को डूबो दो और कुछ दिनों के लिये किसी एकान्त स्थान पर रख दो। कुछ दिनों तक सिरके में डूबे रहने से अंडे का बाहरी कठोर खोल, जो कैल्शियम कार्बोनेट का बना होता है, मुलायम पड़ा जाता है। इस अवस्था में खोल को कितना भी दबाया, तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। इस प्रकार अंडे को दबाकर छोटे मुँह वाली काँच की बोतल में घुसा दो।

जब अंडा बोतल में चला जाय तो उसमें खाने के सोडे का थोड़ा सा घोल डाल दो। कुछ समय बाद अंडा फिर फैलकर पहले जैसे आकार में आ जायेगा और ऊपरी खोल

भी पहले जैसा कठोर हो जायेगा। अब बोतल को टेढ़ा करके सोडे के घोल को बाहर निकाल दो। फिर इस बोतल को तुम भी अपने घर के शो केस में रख सकते हो और लोगों को आश्चर्यचकित कर सकते हो।

वैसे इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह तो सिरका, कैल्शियम कार्बोनेट, सोडा-पानी की-परस्पर वैज्ञानिक क्रिया का परिणाम है। तभी तो कहा जाता है कि सिरके से हड्डियाँ भी इतनी मुलायम हो जाती हैं कि उनमें आपस में गाँठ भरी जा सकती है।

बच्चों में अपने आस-पास होने वाली घटनाओं को देखने और उनके बारे में पूछने की स्वाभाविक जिज्ञासा होती है। वे हर वस्तु एवं घटना के बारे में सब कुछ जान लेना चाहते हैं और स्वयं करके देख लेना भी चाहते हैं। स्वयं करके देखने की इसी स्वाभाविक इच्छा के कारण वे प्रयोग करना चाहते हैं। यदि वे छोटे-छोटे, सरल पर अचंभे में डाल देने वाले प्रयोग हों तो और भी अच्छा लगता है उन्हें। परन्तु अधिकांश बच्चों के पास ऐसे प्रयोगों के बारे में न जानकारी होती है और न ही उन्हें मालूम कर पाने के साधन होते हैं। यदि ऐसी जानकारी हो तो वे आसानी से अपने घर में प्रयोग करने के आवश्यक साधन जुटा कर उन्हें सरलता से कर सकते हैं और ज्ञान प्राप्त करने की आदत डाल सकते हैं।

'आओ प्रयोग करें' नामक यह पुस्तक बच्चों को कुछ ऐसे ही प्रयोगों के बारे में भरपूर जानकारी देती है, जिन्हें बिना विशेष सामग्री जुटाये, घर में ही आसानी से किया जा सकता है। इन प्रयोग की लागत तो कम होती ही है साथ ही इनमें बच्चों को कोई चोट आदि लगने का खतरा तथा दूसरे लोगों को भी कोई हानि होने की संभावना नहीं होती है। पर हाँ, जो भी इन प्रयोगों को देखता है वह आश्चर्यचकित होकर प्रयोग करने वाले बच्चों को शाबासी और प्रोत्साहन अवश्य देने लगता है। इस तरह यह पुस्तक बच्चों और वयस्कों-सभी के लिये ज्ञानवर्धक है।

इस पुस्तक की रचना के लिये लेखक, प्रकाशक और मुद्रक आदि सभी बधाई के पात्र हैं। आशा है पुस्तक अपने उद्देश्य में सफल होगी।

■■■

डॉ० गोरख प्रसाद अच्छे कवि भी थे

21 मार्च को "विज्ञान परिषद् प्रयाग" द्वारा आयोजित "डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यानमाला' का चौथा व्याख्यान दिल्ली के प्रो० हरिश्चन्द्र गुप्त द्वारा दिया गया। डॉ० गुप्त के व्याख्यान का विषय था "लोकप्रिय गणित और कविता"। डॉ० गुप्त ने बड़े ही रोचक ढंग से गणित को कविता के माध्यम से व्यक्त करने पर बल दिया।

मुख्य अतिथि डॉ० चन्द्रिका प्रसाद जी ने बताया कि उनके पिता श्री डॉ० गोरख प्रसाद कविता भी करते थे और गणित को सदैव रुचिकर और सरल रूप में प्रस्तुत करने के पक्ष में थे।

इस अवसर पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी ने दिल्ली से आये हिन्दी विज्ञान लेखक डॉ० विष्णुदत्त शर्मा की पुस्तक 'विज्ञान मुक्तावली' का लोकार्पण किया। डॉ० शर्मा ने कहा कि लेखन की प्रेरणा और प्रोत्साहन उन्हें विज्ञान परिषद् से सदैव प्राप्त होता रहा है और "विज्ञान" पत्रिका ने उनके बहुत से लेख प्रकाशित करके उनका उत्साहवर्धन किया है।

सभाध्यक्ष प्रो० दिव्यदर्शन पंत जी ने बताया कि कविता में भी मात्राओं को गिनना पड़ता है इसलिये कविता और गणित का निकट का संबंध है। उन्होंने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

सभा का प्रारंभ स्व० डॉ० गोरख प्रसाद जी के चित्र पर माल्यार्पण द्वारा हुआ। इसके बाद सभाध्यक्ष मुख्य अतिथि और व्याख्यानदाता का स्वागत माल्यार्पण द्वारा हुआ डॉ० प्रभाकर द्विवेदी "प्रभामाल" ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की अर्चना में एक सुमधुर गीत प्रस्तुत किया। सभा का संचालन परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने किया।

इस अवसर पर प्रो० पूर्णचन्द्र गुप्त, जगदीश सिंह चौहान, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव,प्रो० मोहन अवस्थी, डॉ० दिनेश मणि, डॉ० ईश्वर चन्द्र शुक्ल,डॉ० माधुरी मोहन राय, श्री दर्शनानन्द, श्री रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय, डॉ० सुनील दत्त तिवारी, डॉ० अरुण कुमार चतुर्वेदी, श्री संजीव त्रिपाठी सहित विश्वविद्यालय के अनेक गण्यमान आचार्य उपस्थित थे। (अमृत प्रभात से सभार)

विज्ञान एवं कला में कल्पना और सत्य

डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

उपाध्याय कैंसर शोध संस्थान, परिसर कोठी काके बाबू
देवकाली मार्ग, फैज़ाबाद-224001

विज्ञान को विशिष्ट ज्ञान का वह पथ अथवा मार्ग माना जाता है, जो न केवल प्रकृति के रहस्यों का भेदन-स्पष्टीकरण करता है, वरन् सत्य को दर्शाता भी है। इसी प्रकार एक कलाकार अपने चित्रों अथवा रचनाओं के माध्यम से, कवि अपनी कविता के माध्यम से, उसी तथ्य जो सत्य कहा जाता है, को उद्घटित करते हैं। परन्तु एक मूलभूत प्रश्न है कि सत्य है क्या?

संस्कृत भाषा में 'सत' शब्द के अर्थ है, जो अनादिकाल से सत्त् है, वर्तमान है, मनीषियों ने इसी सन्दर्भ में कहा है ''एकम् सत- विप्र बहुधा वदत्ति''।

यदि हम इस दृष्टि से विज्ञान में निहित सूक्ष्माति सूक्ष्म के विश्लेषण की पद्धति, उसके नीर-क्षीर विवेचना के गुण की चित्रकार, लेखक अथवा कवि के कल्पना की उड़ान से तुलना करें तो इन सभी में साम्यता है। यही तथ्य इन सभी को अपनी कल्पना की तरंग को मूर्त स्वरूप देने और उसे देखने (नेत्रों के माध्यम अथवा कल्पना में डूबकर) की क्षमता प्रदान करता है।

इसी तथ्य का सुन्दर निरूपण प्रसिद्ध वायुयान निर्माता उसके आविष्कारक तथा विश्व विख्यात वायुयान - चालक चार्ल्स लिन्डवर्ग, जो विश्व में प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने प्रशान्त महासागर के ऊपर एकाकी उड़ान भरी थी, के शब्दों में प्रकट होती है: ''विज्ञान, स्वतंत्रता, सौंदर्य एवं साहस जीवन के अभिन्न अंग हैं। वायुयान-चालन के समय इन सभी के दर्शन होते हैं। प्रत्येक तार में उसके मुड़ने में, उसके कोण में, स्पार्क-प्लग की चिनगारी में, तथा निष्कासित धूम्र के रंग में विज्ञान है। उड़ते समय आकाश, प्रत्येक दिशा में मुड़ने की, ऊपर उठने की, नीचे उतरने की स्वतंत्रता है। विमान उड्डयन के समय में चालक को पृथ्वी पर फैली हरितिमा, समुद्र की आभा, पहाड़ों की चोटिओं पर बर्फ से टकराती सूर्य किरणों के फलस्वरूप बिखरते-बनते अनेक रंग-चित्र उसका ध्यान अपने सौंदर्य के कारण आकर्षित कर लेते हैं, तथा बादलों के बीच से निकलने की चुनौती, उसका आनन्द, पृथ्वी पर उतरते समय सावधानी की अनुभूति मन में एक असीम हर्ष की उत्पत्ति करता है। यह अनुभूति ही साहस की प्रेरणा देती है तथा यह स्वयं में एक विचित्र प्रकार का सत्य है।''

इसी प्रकार के सत्य की अनुभूति डॉ० बारबरा मैफकिलनटॉक को मक्के में लगे दानों को देखकर हुई थी, जिनमें कुछ के रंग सामान्य रंग से हटकर थे। उन्होंने इस तथ्य की तह में पहुँच कर जो परिणाम निकाले उससे समस्त वैज्ञानिक जगत् चौंक गया। उनको इस सत्य स्पष्टीकरण-धारणा में 34 वर्ष लगे, और 1883 में दिया गया 'नोबेल पुरस्कार' इस धैर्य से सत्य-साधना की महत्ता को प्रदर्शित करता है। यह डॉ० मैककिलनटॉक के शोध के फलस्वरूप स्पष्ट हो सका कि क्यों मक्के के दानों में निहित एक रसायनिक पदार्थ- एन्थो रासायनिक की संरचना में परिवर्तन हो जाता है और इसीलिये कुछ मक्कों के दानों का रंग बदल जाता है।

हज़ारों वर्षों से अनेक लोगों ने एक मक्के की बाली अथवा केरनेल में यह रंगों में भेद देखा होगा परन्तु इस सत्य को दर्शाने के लिये यह परिवर्तन क्यों और कैसे होता है, डॉ० मैककिलनटॉक के पूर्व कोई सोच न सका था। सत्य प्रत्यक्ष

होते हुये भी सूक्ष्म होता है। उसे देखने के लिये, उसका सौंदर्यपान करने के लिये प्रज्ञाचक्षु की आवश्यकता होती है।

हम में से कितने लोगों ने यह समझने का प्रयास किया है कि किस प्रकार घने अन्धकार में एक चमगादड़ दूरस्थ कीड़े को देखता है, उसे पकड़ता है। इस सत्य को कि यह कार्य यह चमगादड़ अपने मस्तिष्क में निहित राडार के तरंगों द्वारा संपादित करता है, कितने लोग जानते हैं? इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त प्रकृति में भरे पड़े हैं। जो सत्य में भरपूर हैं और सत्य के बहुआयामी पक्ष को दर्शाते हैं।

यदि हम कुछ पलों के लिये विज्ञान से हट कर कला में निहित सत्य को देखने का प्रयास करें तो उसकी अनुभूति कुछ अलग सी है। एक चित्रकार चित्र-पट्टिका अथवा 'कैनावास' पर अपनी तूलिका से जो चित्र बनाता है, उसमें भी वह प्रकृति और अपने कल्पना के समिश्रण से जो रंग भरता है, उसकी छवि हमें आकर्षित करती है, मन को सुख देती है, यह तथ्य भी सत्य है, ठीक उसी प्रकार जैसे जब हम माइकलएन्जिलो, फानगॉग, पिकासो, सल्वाडोर डाली आदि बहुश्रुत पाश्चात्य चित्रकारों के अनेक प्रयोगयुक्त चित्रों को देखते हैं तो उनमें भी कल्पना के उड़ान की, जीवन में निहित कटुता की, संत्रास की और समय के पंखों पर सवार बदलते परिवेशों के दर्शन होते हैं जो पाश्चात्य समाज के विभिन्न पक्षों से संबंद्ध हैं। यह वह सत्य है जो उस समाज की मान्यताओं वर्जनाओं से जुड़ा है और जीवन्त है।

परन्तु राजा रवि वर्मा के चित्र, अजन्ता के चित्र, भारतीय जीवन दर्शन के प्रतिनिधि हैं। उनमें निहित सौंदर्य, मांसलता, जिजीविषा के प्रतीक तो हैं ही लेकिन वे उस शाश्वत सत्य के दर्शन कराने में भी सक्षम हैं जिससे हमारा भारतीय वांगमय ओत-प्रोत है। इन सभी चित्रकारों, कलाकारों को अपने भावनाओं की अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता है। वे पूर्णरूपेण कल्पना को साकार करने में कवियों की ही भाँति स्वच्छन्द हैं।

कवि भाषा के माध्यम से उन भावनाओं को सुनियोजित कर प्रस्तुत करता है जो सुनने वालों को भावविभोर कर देती है, तो कभी उसकी उर्मियों में रक्त के प्रवाह को तीव्र कर देती है। यह रस-सृष्टि कवि की विशेषता है। इसका आनन्द महाकवि कालीदास की उपमाओं में, भारवि के भावर्थों, नैषेध्य के पदों के लालित्य में, तथा महाकवि माघ की रचनाओं के पठन से प्राप्त होता है। यह बात नहीं है कि यह मात्र देवभाषा संस्कृत के कवियों की विरासत थी, सत्य तो यह है कि यह गुण भारत अथवा विश्व की सभी भाषाओं की कविताओं में विद्यमान है।

अपनी भाषा की एक अलग महक होती है। यही बात संस्कृत के साथ है। इसके इतनी पूर्ण भाषा अभी तक विकसित नहीं हुयी है और इसी कारण संस्कृत वांगमय की तुलना किसी अन्य भाषा से की ही नहीं जा सकती। संस्कृत में कवियों की प्रशंसा में अनेक श्लोक है परन्तु :

"अमारे काव्य संसारे, कवि रेवा प्राजपतिः।

इयस्माम रेचिते विश्वम्, तथेधम परिवर्तते।।"

की बात अलग है- क्यों कि यहाँ कवि विश्वकर्मा से भी आगे बढ़ गया था।

हमारा प्राचीन वांगमय अनेक रचनाओं, कल्पना की उड़ानों, ऐतिहासिक तथ्यों से भरा पड़ा है। यदि हम कल्पना के उड़ान की बात करें तो 'दशावतार' की कल्पना अद्‌भुद् है। परन्तु सबसे हृदयग्राही विचित्र है 'नरसिंहावतार' की कल्पना।

हिरण्यकश्यप की कथा से सभी परिचित हैं। हिरण्यकश्यप को वरदान था कि उसकी मृत्यु न मनुष्य अथवा मनुष्य योनि के किसी भी प्रजाति से होगी, न अस्त्र-शस्त्र से, न धरती पर और न अन्तरिक्ष में, न दिन में न रात में, उसने अपने को अजर-अमर रखने की सभी संभावनाओं को ध्यान में रखकर अमरता का वरदान प्राप्त किया था। लेकिन कवि की कल्पना नरसिंह अवतार में मूर्त हुयी और उन्होंने हिरण्यकश्यप को अपने पैरों पर घुटनों पर रखकर नरव से उसका वक्ष विदीर्ण कर रक्त-पान कर, उसे गोधूलि वेला में मार डाला।

कितनी सशक्त कल्पना है, अपने में पूर्णतः विलक्षण और पूर्ण इसी घटना को किस प्रकार संस्कृत के कवि ने वर्णित

किया है, देखिये:

"किं किं सिहस्ततः कि नर सदृशव पुर्देव चिंत्र गृही तो नैता दृक्रीये जी चोवऽदन्त मुपनय में देव सम्प्रसि एषः। चाप चांप न चापित्व ह ह ह ह हा कर्कशत्वं नरवानामित्थं दैत्येन्द्र वक्षः रवर नरव मुखैर जंध्नि वान्य सवो व्यात।।"

कवि को अपनी कल्पना के साथ विचरण करने में पूर्ण स्वतंत्रता है, उसके इस पक्ष में कोई बाधक नहीं हो सकता, परन्तु विज्ञान के साथ ऐसा नहीं है।

विज्ञान ने तथ्यों और कल्पना की उर्वरता का संवल लेकर मानव जीवन को सुखद बनाने के लिये अनेक प्रभावशाली ओषधियाँ, संसाधन, दूर संचार की विधियाँ, स्वास्थ्य की रक्षा हेतु नवीन तकनीकों, कृषि में उरर्वता बढ़ाने हेतु अनेक नवीन प्रजातियाँ तो विकसित की है, उसने ऊर्जा दोहन के कार्य में अणुशक्ति का उपयोग भी किया है। अब विज्ञान का सहारा लेकर मानव सुदूर अंतरिक्ष में जाने की योजना बना रहा है, वहाँ वास करने और दूसरे ग्रहों पर अपनी कॉलोनी बनाने के प्रयास में रत है। अब तो वह दिन दूर नहीं है जब अंतरिक्ष -यात्रा, वायुयान की यात्रा की भांति सुलभ एवं आनन्दकारी हो जायेगी।

विज्ञान अपने में अनुदार नहीं है, पर जब यह कुटिल राजनीतिज्ञों के हाथ में जा फंसता है तो यह अपने निहित गुण के बाद भी दुरुपयोगी हो जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध में जापान के दो नगरों, हीरोशिमा एवं नागासाकी पर गिराये गये परमाणु बमों के परिणाम के फलस्वरूप हुयी विभीषिका से हम सभी परिचित हैं। इन बमों से उत्पन्न ऊर्जा और विकिरण से असंख्य लोगों की मृत्यु हुंयी । इस तथ्य से आज हम सभी पूर्ण परिचित हैं।

अभी हाल में हम में से अधिकांश लोगों ने अपने ड्राइंग रूम में बैठकर टेलीवीजन पर, ईराक पर हुये आक्रमण का हाल, विज्ञान की घातक विध्वंस की क्षमता की अनुभूति, प्रत्यक्ष देखी होगी। यह विज्ञान के राजनीतिकरण का परिणाम है।

विज्ञान की नवीन विधाओं जैसे जैव-तकनीकी का विकास, वैज्ञानिकों को "ब्रम्हा" के समकक्ष कर देता है। यह तथ्य है कि आज का विज्ञान और वैज्ञानिक नवीन सृष्टि कर रहा है। वह गुलाब के पौधों में एक विशिष्ट प्रकार के रंग उत्पन करने वाली कोषिकाओं में निहित एन्थोसायनिन की जैव-संरचना में परिवर्तन कर लाल गुलाब के स्थान पर उसमें नीले हरे, और श्याम वर्ण के गुलाब के पुष्पों को उत्पन्न करने में सक्षम है। वह नवीन प्रकार के फलों, कीटरोधी, खाद्यानों-फलों-वनस्पतियों को उत्पन्न कर रहा है। वह मानव भ्रूण के साथ, उसकी वृद्धि के साथ, भ्रूणों के प्रत्यारोपण, को भ्रूण चिकित्सा पद्धति को, भ्रणों की संरचना में आमूल परिवर्तन कर, नवीन प्रकार की समस्याओं को सुलझा सकता है तो वह नवीन तकनीकी का उपयोग कर काल्पनिक "नरसिंह" को साकार कर सकता है। यह तथ्य, जैव तकनीक की विकसित नवीन विद्या के उपयोग से जेब्रा व अश्व से उत्पन्न जीव की धारणा से, सत्यापित है यह तथ्य नवीन पादप प्रजातियों के उत्पत्ति से भी तथा चूहों की पीठ पर कान उत्पन्न करने के सफल प्रयोग से ।

आज अधिकांशतः लोग इस सत्य से परिचित हो रहे हैं कि इस पृथ्वी पर व्याप्त प्रकृति से पूर्ण कुछ अन्य इतना सुनियोजित, संतुलित एवं सतत् नहीं है। इसी हेतु विज्ञान को प्रकृति के रचित पदार्थों में, अधिक परिवर्तन और प्रवर्धन नहीं करना चाहिए। कारण स्पष्ट है कि कहीं इस प्रकार के कार्य मानव-सभ्यता को विनाश के कगार पर खड़ा न कर दें। इस धरा पर व्याप्त प्रकृति के संरक्षण की आवश्यकता है। विज्ञान इस प्रकृति का अंश बना रहे, रचयिता और अन्तिम नियंता नहीं। विज्ञान को असीम स्वतंत्रता मानवता के लिये कभी घातक भी हो सकती है। यही सत्य कला और विज्ञान के अन्तर को स्पष्ट करता है। कलाओं के गुण मानवता को विनाश की ओर नहीं ले जाते पर विज्ञान की उपलब्धियों का दुरुपयोग कर मानव अपना ही विनाश 'भस्मासुर' की भांति करने में सक्षम है। मर्यादित विज्ञान आज के मानव की आवश्यकता है, यह एक स्वयंसिद्ध सत्य है। इसी मर्यादा को बनाये रखने में ही मानव का हित निहित है।

■■■

परिषद् की फ़ैज़ाबाद शाखा से

पौराणिकआख्यानों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन जरूरी : डॉ० शोभा

फैजाबाद, 24 फरवरी (सं० सू०) 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की स्थानीय शाखा के तत्वाधान में आभा होटल के सभागार में डॉ० रत्नकुमारी व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० वंशराज त्रिपाठी थे। साहित्य में विज्ञान कथाओं की भूमिका विषय पर मुख्य व्याख्यान साकेत महाविद्यालय में हिन्दी की प्रवक्ता डॉ० शोभा सत्यदेव ने दिया।

कार्यक्रम के आरम्भ में डॉ० गिरीश पाण्डेय ने 'डॉ० रत्न कुमारी व्याख्यानमाला' के विषय में जानकारी दी। विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० राजीवरंजन उपाध्याय ने विज्ञान परिषद् की स्थापना के उद्देश्य और कार्यों का विवरण दिया।

साहित्य में 'विज्ञान कथाओं की भूमिका' शीर्षक अपने व्याख्यान में डॉ० शोभा सत्यदेव ने साहित्य को ललित कला तथा विज्ञान को उपयोगी कला बताकर दोनों को एक ही स्रोत से उद्भूत मानते हुए विज्ञान और साहित्य के अभिन्न सम्बन्ध को रेखांकित किया। विज्ञान और साहित्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए आज के विज्ञानयुग में दोनों की सहभागिता की अनिवार्यता पर बल देते हुए डॉ० शोभा सत्यदेव ने अँग्रेजी, रूसी, मराठी और हिन्दी की विज्ञान कथाओं के विविध आयामों का परिचय दिया। उन्होंने बताया कि विज्ञान कथाओं में निहित लेखक के उद्देश्य साहित्यिक भाषा शैली के माध्यम से सरस और रोचक बनकर जनमानस के लिये सुबोध और सुग्राह्य बन जाते हैं।

विज्ञान कथाओं के माध्यम से वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी-सम्भावित खोजों की कल्पना अंधविश्वासों का तर्कपूर्ण खण्डन और वैज्ञानिक अनुसन्धानों के दुरूपयोग से होने वाले दुष्परिणामों की कल्पना करके मानव को उनके प्रयोग के प्रति सचेत भी किया जा सकता है। टेस्ट ट्यूब बेबी की सामाजिक स्थिति और वैज्ञानिक प्रयोगों में होने वाली जीव हिंसा के संवेदनात्मक पहलू जैसे अनीक्षित विषयों की ओर भी उन्होंने इंगित किया।

डॉ० शोभा सत्यदेव ने साहित्यकारों से अपील की कि साहित्य में विज्ञान कथाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए कथा साहित्य के विषयगत वर्गीकरण में एक वर्ग विज्ञान कथाओं का भी निर्धारित होना चाहिए। यही नहीं, विज्ञान कथाओं की समीक्षा के पृथक मानदण्ड निर्धारित कर उनका मूल्यांकन होना चाहिए। काव्य के लिये व्युत्पत्ति की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि साहित्यकारों को विज्ञान की भी अभिरुचिपूर्वक जानकारी प्राप्त कर विज्ञान कथाओं के लेखन और मूल्यांकन के लिये आगे आना चाहिए। इस दिशा में वैज्ञानिकों और साहित्यकारों का वैचारिक आदान-प्रदान होना चाहिए। भारतीय पौराणिक आख्यानों को भी वैज्ञानिक साहित्य में विज्ञान कथाओं को अपेक्षित स्थान मिलना ही चाहिए।

मुख्य अतिथि डॉ० त्रिपाठी ने आयोजन की सराहना करते हुए इस बात पर जोर दिया कि वैज्ञानिकों और साहित्यकारों को परस्पर सम्पर्क करते रहना चाहिए क्योंकि साहित्य से विज्ञान का प्रचार-प्रसार भली प्रकार होता है। विज्ञान ने भी साहित्य को बहुत कुछ दिया है। यदि छापेखाने का आविष्कार न होता तो **रमाचरित मानस** घर-घर में नहीं पुहंच सकती थी। आपने यह भी बताया कि हमारे देश में जनमानस की मानसिकता को बदलने उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने में साहित्य बहुत सहायक हो सकता है।

कार्यक्रम के अन्त में विज्ञान परिषद् के अध्यक्ष डॉ० चन्द्रशेखर सिंह ने मुख्य अतिथि तथा उपस्थित सामान्य नागरिकों, साहित्यकारों एवं विज्ञान परिषद् के सदस्यों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

(साभार 'दैनिक जागरण', बुधवार 25 फरवरी 1998 फैजाबाद, अम्बेडकर नगर, गोण्डा बलरामपुर, संस्करण)

■■■

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा

आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हजार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 1 मार्च 1999 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

लेख निम्न पते पर भेजें :

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक, विज्ञान

विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिस
नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

ISSN : 0373 - 1200

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशि
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रि

मई-जून 1998

प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव स्मृति अंक

यह अंक : 15 रु०

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915

वर्ष 84 अंक 2-3

मई-जून 1998

मूल्य : आजीवन : 500 रु० व्यक्तिगत
1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

यह प्रति : 15 रु०

♦

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

♦

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

♦

सहायक संपादक

डॉ० दिनेश मणि

♦

मुद्रक

अरुण राय

कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

♦

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद - 211002

विज्ञान विस्तार

विज्ञान वक्तव्य	...	1
बस बाबू जी, हाँ बाबू जी	.	3
हमारे बाबू जी	...	4
प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव	...	7
हिन्दी विज्ञान मनीषी	...	9
हिन्दी विज्ञान जगत् के भीष्म पितामह	...	13
श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव	...	19
प्रोफेसर श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव	...	24
आज़मगढ़ की साहित्यिक विरासत	...	34
कुशल विज्ञान लेखक	...	32
विज्ञान का साहित्यकार	...	34
मेरे गुरुदेव	...	36
प्रो० श्रीवास्तव : स्मरणांजलि	...	40
लोकप्रिय विज्ञान-पत्रकारिता के पुरोधा	...	43
स्व० भगवती बाबू	...	47
प्रो० श्रीवास्तव की पुस्तकों का परिचय	...	50
प्रो० श्रीवास्तव के तीन लेख	...	55

♦ ♦

प्रिय सुहृद!

एक लम्बे अंतराल के बाद आप से संवाद हो रहा है। इस बीच राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर की अनेक घटनाएं घटित हुई हैं। पर पहले चर्चा इस अंक के विषय में।

दिल्ली से डॉ० रमेश दत्त शर्मा जी ने डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी को स्व० प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी पर "विज्ञान" का एक अंक निकालने का सुझाव दिया। डॉ० मिश्र जी ने प्रस्ताव मेरे सामने रखा और मैंने आप सभी के सहयोग की ताकत के आधार पर यह दायित्व स्वीकार कर लिया।

वास्तव में प्रो० श्रीवास्तव उन गिने चुने व्यक्तियों में रहे हैं जिन्होने न केवल मुझे प्रभावित किया है वरन् मुझे प्रेरणा दी है, मार्गदर्शन किया है, त्रुटियों की ओर इंगित किया है और स्नेह की बौछार से सराबोर किया है। अतएव इस अंक को आप सभी को सौंपते हुए मुझे विशेष आत्म-संतोष का अनुभव हो रहा है। इस अंक को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी को और मुझे स्व० भगवती प्रसाद जी के बड़े पुत्र श्री गोपाल कृष्ण श्रीवास्तव जी ने हर प्रकार का संभव सहयोग प्रदान किया है। उन्होंने श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी पर प्रकाशित सामग्री और उनके कुछ पुराने लेखों की फोटोस्टेट प्रतियाँ उपलब्ध कराई, कुछ लेखकों के लेख भेजवाये, श्रीवास्तव जी का चित्र दिया और सम्पर्क द्वारा प्रोत्साहन देते रहे हैं। स्व० श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव की पत्नी श्रीमती कौशिल्या श्रीवास्तव जी ने 5001/- रुपयों की सहायता राशि देकर आर्थिक सहायता की। मैं इनके प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मैं सभी लेखकों के प्रति भी आभार प्रदर्शित करता हूँ, जिन्होंने कृपापूर्वक लेखकीय सहयोग प्रदान किया है। मैं परिषद् के लिपिक श्री चन्द्रभान सिंह का भी आभारी हूँ, जिन्होंने लेखों को टाइप किया है। परिषद् के अन्य पदाधिकारी तो सहयोग के लिए धन्यवाद के पात्र हैं ही।

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय जी ने बताया कि स्व० प्रो० श्रीवास्तव की समस्त पाठ्यसामग्री डी ए वी कॉलेज, अलीगढ़ और दैनिक उपयोग की सामग्री चित्रगुप्त मंदिर, आज़मगढ़, को उनके बड़े पुत्र ने दान स्वरूप दे दिया है।

अब कुछ और बातें- भारत में सत्ता परिवर्तन के बाद देश के नए प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने नीतिगत निर्णय लेकर पाँच नाभिकीय विस्फोटों के सफल परीक्षण करवायें हैं। इसका श्रेय उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को दिया और साथ ही यह भी घोषणा की कि भारत इसका शांतिपूर्ण उपयोग करेगा। इन नाभकीय परीक्षणों के लिए प्रधानमंत्री को बधाई। प्रधानमंत्री जी के साथ ही रक्षामंत्री श्री जार्ज फर्नाण्डीज, रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार डॉ० अब्दुल कलाम और परीक्षण से जुड़े सभी व्यक्तियों को परिषद् परिवार की बधाई।

हमारे नगर के गौरव, प्रसिद्ध भौतिकीविद् प्रो० मुरली मनोहर जोशी जी ने भारत सरकार में शामिल होकर मानव संसाधन एवं विकास और विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा मंत्रालय का कार्य भार संभाल लिया है। प्रो० जोशी जी को परिषद् परिवार की बधाई। प्रो० जोशी जी के प्रति हम एक और कारण से हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। उन्होंने कृपा करके परिषद् प्रांगण में एक छोटा सभा भवन बनवा दिया है।

दिल्ली की संस्था "विज्ञान प्रसार" और इसके निदेशक डॉ० नरेन्द्र कुमार सहगल जी की अनुकम्पा से डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी के निर्देशन में शोध सहायक डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने एक रिसर्च प्रोजेक्ट का एक अंश सफलता पूर्वक समाप्त कर लिया है। इस प्रोजेक्ट के अंतर्गत् प्रारम्भ से लेकर 1950 तक के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी विज्ञान लेखकों के चुने हुए लेखों का संकलन किया गया है। इसी प्रकार 1950 के बाद के लेखों को चुनकर संकलन

प्रकाशित करने की योजना है। राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, दिल्ली से एक नया प्रोजेक्ट और भी मिला है।

एक और शुभ समाचार। पिछले दिनों प्रसिद्ध विज्ञान लेखक श्री दिलीप एम० सालवी जी परिषद् में पधारे थे। उन्होंने अपनी सद्यः प्रकाशित पुस्तक "युग प्रवर्तक आविष्कार" (निदेशक, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली 110001 द्वारा प्रकाशित, मूल्य 50 रुपये) जो अंग्रेजी में प्रकाशित लेखों का अनूदित संकलन है, भेंट की । समीक्षा आगामी अंक में । उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ से डॉ० शिवगोपाल मिश्र की पुस्तक "हिन्दी में बाल विज्ञान लेखन" (प्रथम संस्करण 1997, मूल्य 50.00 रू०) प्रकाशित हुई है। समीक्षा आगामी अंक में।

इलाहाबाद में के. पी. इण्टरमीडिएट कॉलेज के मैदान में 17, 18, 19 और 20 जून को एक विज्ञान प्रदर्शनी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। 17 जून के इस प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए केंद्रीय मानव संस्थान विकास, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री प्रो० मुरली मनोहर जोशी ने कहा कि हमें पश्चिमी देशों से आयी तकनीक का मुंहतोड़ जवाब देना है और सीमित संसाधन के वाबजूद दुनिया की सबसे बड़ी ताक़त बनकर दिखाना है । उन्होंने कहा कि इतिहास साक्षी है कि पश्चिमी देशों की सारी वैज्ञानिक और तकनीकी उन्नति भारत से प्रेरणा लेकर ही हुई है। इसका जीवंत उदाहरण है दिल्ली में कुतुबमीनार के पास स्थित "लौह स्तम्भ" जिसमें आज भी मोर्चा नहीं लगा है और अंजता-एलोरा की गुफाओं में बने चित्र, जिनका रंग हज़ारों वर्ष बाद भी बरकरार है। प्रो० जोशी जी सत्य के कितने निकट हैं जब ने कहते हैं कि हमारी वैज्ञानिक और तकनीकी विकास का चेहरा पूरी तरह मानवीय होना चाहिए।

सभा की अध्यक्षता उत्तर प्रदेश सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री श्री हरिशंकर तिवारी ने की। उन्होंने कहा कि आज जब दुनिया विज्ञान के दुरुपयोग से विनाश की ओर अग्रसर है, भारत मानवता के कल्याण के लिए कटिबद्ध है।

मेरी अपनी सोच है कि इस प्रकार की विज्ञान प्रदर्शनियों का आयोजन इलाहाबाद में कम से कम वर्ष में 3-4 बार होना चाहिए और प्रदर्शनी लगाने के पूर्व और अधिक प्रचार की आवश्यकता जान पड़ी। इसमें बच्चों के लिए कुछ सामग्री खरीदने लायक भी देखने में आयी। उदाहरण के लिए 55 रुपये का 'प्लास्टिक की बॉडी वाला 'डिसेक्टिंग माइक्रोस्कोप', 40 रुपये का प्लास्टिक का 'टेलिस्कोप', 10 रुपये की 'मैजिक आई' आदि। कुल मिलाकर प्रदर्शनी का प्रयास सराहनीय कहा जा सकता है। आयोजकों को बधाई।

एक दुःखद समाचार भी है। वयोवृद्ध पत्रकार, लेखक, सम्पादक, स्वतंत्रता सेनानी, गाँधीवादी, राजनेता, कुशल प्रशासक, पूर्व राज्यपाल, प्रयाग नगर के गौरव श्री विश्वम्भर नाथ पाण्डेय जी नहीं रहे। दिवंगत आत्मा को परिषद् परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है।

एक और दुःखद समाचार। हमारे परिषद् के आय-व्यय निरीक्षक श्री दर्शना नन्द जी के बड़े भाई का निधन हो गया है। दिवंगत आत्मा को परिषद् परवार की हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित है।

अंत में एक बार पुनः सभी सहयोगियों के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ और प्रो० श्रीवास्तव की स्मृति को प्रणाम करते हुए अपनी बात यहीं समाप्त करता हूँ।

आपका
प्रेमचंद्र श्रीवास्तव

बस बाबू जी, हाँ बाबू जी

अखिल रमन (परिवार सदस्य)

सहायक अभियन्ता, सिंचाई विभाग, लखनऊ (उ० प्र०)

जब से हमने जाना-पहचाना
    इनके मुखमण्डल पर
इक चिर परिचित 'चिर मुस्कान' रही ।
    अन्त समय भी, जब जग छोड़ा
चेहरे पर तब भी
    वही 'चिर मुस्कान' रही ।
कइयों को भ्रम हो रहा
    'बाबू जी' क्यूं आँखें बंद कर मुस्कुरा रहे ?
किसे पता था इस दुनिया के
    इक शाश्वत् सत्य को
यह "भौतिकविद्" यह ज्ञानी प्रोफेसर ।
    आज भी कुछ तथ्य तत्व
सिद्ध कर गये
    हम सबको विह्वल कर
रोता छोड़कर, स्वयम्
    'अनन्त यात्रा' पर प्रस्थान कर गये वह ।
'प्रोफेसर' कह जग जाना
    किन्तु हम सबके तो वे थे
बस 'बाबू जी'
    हाँ 'बाबू जी' ।।

हमारे बाबू जी--प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी

वीना श्रीवास्तव (ज्येष्ठ पुत्रवधु)

4 शांति निकेतन, न्यू हैदराबाद
लखनऊ-226007 (उ० प्र०)

जब मैं ब्याह कर आई मेरी आयु मात्र 18 वर्ष की थी । नया परिवेश, नया-नया वातावरण, मन में डर व घबराहट होना स्वाभाविक ही था । वैवाहिक कार्यक्रमों के बाद जब घर के ही लोग रह गए, मैं बाबू जी के कमरे में पहुँचाई गई । परम्परानुसार मेरे मुख पर घूँघट था । पैर छूते ही जो प्रथम शब्द कानों में पड़े-- "यह घूँघट वगैरह नहीं करो वरना मुझे तुममें और अपनी बेटियों (अपनी बेटियों के नाम लेकर) में अन्तर लगेगा ।" यह हमारी अपने पूज्य बाबू जी से प्रथम मुलाकात थी ।

ऐसा निश्चल सरल स्वभाव की नेमत विरलों को ही भगवान देता है । बच्चों में बच्चे बन जाना, वयस्कों से उन्हीं के अनुरूप बातें करना व बुजुर्गों को ध्यान से सुनना, यह उनका स्मरणीय स्वभाव था । हमारी बढ़ती बेटियों से यदा-कदा फैशन व फिल्मों की बातें भी कर लेते थे । जीवन तो सभी जीते हैं मगर जीवन्त कैसे रहें, यह उनसे ही हमने सीखा । सुबह बहुत ही जल्दी जगते थे, मगर किसी की नींद न खराब हो इसलिए अपनी चाय जीवनपर्यन्त उन्होंने स्वयं ही बनाई व पी । तीन या चार बजे के करीब ही उठते थे । फिर पुस्तकों को पढ़ते, लेख लिखते या पत्रों के उत्तर देते । पोतों-नातियों को विज्ञान के गूढ़ रहस्य भी वह बड़े मनोरम ढंग से समझाते । हमारी अम्मा जी ठहरी एकदम घरेलू पारिवारिक महिला-विचारों में सामंजस्य न होने पर भी कितना आदरमान-सम्मान वे उनको देते थे, यह आज के आधुनिक पीढ़ी के लिए प्रेरणा-स्रोत है । अपने भाई-बहनों को लेकर वह बड़े ही संवेदनशील थे । उनकी कुशल-मंगल सदैव जानते रहते थे । उनके परिवार व मित्रों में संभवतः ऐसा कोई व्यक्ति न होगा जिसको अपनी कृपा से उन्होंने अनुग्रहीत न किया हो । स्नेह की निर्मल धारा सदैव ही उनके मन में बहती रहती थी, जो हमको सुखद बौछारों से सराबोर करती थी ।

किसी दैवीय शक्ति से प्रेरित हो कर हमारे पति ने उनका अन्तिम जन्म दिन मनाया । उन्हीं के इष्ट मित्रों व परिवार जनों को लेकर यह आयोजन किया गया । जब फूलों के हार से उनका गला भर गया तब वाणी के कम्पन व अश्रुपूरित नयनों से उन्होंने हम सभी को आशीर्वाद दिया व फोटो खिंचाई । कृशकाय काया में उज्ज्वल दीप सी चमकती उनकी आँखें उनके व्यक्तित्व का सम्मोहन थीं । तब क्या पता था यह वर्षगांठ एक स्मरणीय क्षण बन जाएगा । यह उनका अन्तिम सोपान था । इधर अपने निरन्तर गिरते स्वास्थ्य से वह परेशान रहते थे । दीपशिखा मद्धिम पड़ती जा रही थी । दुर्बलता बढ़ती जा रही थी । बड़े डॉक्टरों की मँहगी दवाएँ भी स्वास्थ्य-लाभ करने में असमर्थ हो रही थीं । इसी निराशा से उबरने के लिए वह कुछ दिनों के लिए अपने गृह जनपद आज़मगढ़ गए । वहाँ ही अपनी जन्म-भूमि की देहरी में उन्होंने अपनी अंतिम श्वांस ली । उसी आँगन की माटी ने उनको अपने आँचल में समेट लिया जिसकी धूल ने उनको बड़ा किया था । एक आकाशदीप प्रकाश पुंज में विलीन हो गया और प्रेरणा में अपने असंख्य सितारे अपनी पुस्तकों के रूप में छोड़ गए, जो न जाने कितनों को मार्ग दिखाएगा । अपनी असीमित पुस्तकों के भण्डार को वह बड़े यत्न से रखते

थे । उनके बाद वह सब हम लोगों ने आज़मगढ़ के ही एक कॉलेज को दे दिया ।

उनका अभाव हम सभी को महसूस होता है । यत्र-तत्र उनकी बिखरी हुई स्मृतियाँ ही हमारा संबल हैं । जीवनभर सबको सुख देने वाला अन्त में भी अपने मुखमंडल में मधुर स्मित ही लिए चला गया । उनके परिवारजनों का यह सौभाग्य है कि वह उनके स्नेह के भागीदार बने । हम सभी को गर्व है कि वह हमारे बाबू जी थे ।

स्वर्गीय प्रोफेसर भगवती प्रसाद श्रीवास्तव का पारिवारिक परिचय एवं कृत साहित्य का विवरण

1. जन्म तिथि – 1 जुलाई 1911

2. जन्म स्थान – आज़मगढ़ (उ० प्र०)

3. पिता – स्व० श्री जगपति लाल (मुख़्तार), पाण्डे बाज़ार, आज़मगढ़

4. शिक्षा – प्रारंभिक शिक्षा आज़मगढ़ । उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय
एम० एससी० (भौतिकी),
एल० एल० बी०

5. शिक्षण कार्य – 1974 में अध्यक्ष भौतिकी, डी० एस० पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, अलीगढ़ से रिटायर हुए । तदुपरान्त लेखन कार्य में लगभग 20 वर्षों तक व्यस्त रहे ।

6. मृत्यु – 6 मई 1997 को आज़मगढ़ में अचानक देहावसान ।

7. परिवार का संक्षिप्त विवरण – इनकी धर्मपत्नी अपने बड़े पुत्र गोपाल-कृष्ण श्रीवास्तव, मुख्य अभियन्ता, उ० प्र० राज्य विद्युत् परिषद्, 4-शांति निकेतन, न्यू हैदराबाद, लखनऊ के साथ रहती हैं । कनिष्ठ पुत्र श्री विनोद कृष्ण श्रीवास्तव, सहकारी चीनी मिल, नजीबाबाद में उप मुख्य अभियन्ता के पद पर कार्यरत हैं । प्रो० साहब को पोतों तथा नातियों के बच्चों को देखने एवं खिलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

8. प्रकाशित साहित्य का विवरण–

- विज्ञान के चमत्कार 1940-ज्ञान मण्डल, वाराणसी इस पुस्तक के चार संस्करण अब तक प्रकाशित हो चुके हैं ।
- विज्ञान प्रगति 1951-ज्ञान मण्डल, वाराणसी
- परमाणु शक्ति 1948–ज्ञानमण्डल, वाराणसी । इस पुस्तक के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं ।
- घरेलू बिजली 1957-ज्ञान मण्डल, वाराणसी
- आविष्कार कथा 1959-पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
- विज्ञान और जीवन 1961-विनय पुस्तक भण्डार, इन्दौर
- वायु की कहानी 1956-भारत प्रकाशन, अलीगढ़
- प्रगति के पथपर 1956-श्रीराम मेहरा, आगरा
- अंतरिक्ष यात्रा 1967-नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली
- यात्रा के साधन 1959–जामिया मिलिया, नई दिल्ली
- चाँद
- सूर्य परिवार
- पृथ्वी और आकाश 1964-भारत प्रकाशन, अलीगढ़

नोट : "अंतरिक्ष यात्रा" के अनुवाद में इस पुस्तक के पंजाबी, मराठी, गुजराती, तेलुगु तथा उर्दू संस्करण

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के तत्वावधान में प्रकाशित हो चुके हैं ।

अनुवाद---विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्यपुस्तक के हिन्दी में अनुवाद योजना में--

हिन्दी ग्रंथ अकादमी, उ० प्र० एवं हिन्दी समिति, उ० प्र० के तत्वावधान में--

- एम मिनैरेट की अंग्रेजी पुस्तक ''लाइट एण्ड कलर'' का हिन्दी अनुवाद 'प्रकाश और वर्ण' शीर्षक से
- पेवू की पाठ्यपुस्तक ''इलेक्ट्रीसिटी एण्ड मैगनेटिज्म'' हिन्दी अनुवाद ।

9. सम्मान, पारितोषिक आदि –

- ''घरेलू बिजली'' तथा ''आविष्कार कथा'' उ० प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत
- ''विज्ञान और जीवन'' मध्य प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत
- 1977 में दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में आयोजित विज्ञान सम्मेलन में विशेष रूप से सम्मानित किया गया
- 1983 में विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद ने सम्मानित किया
- कृषि मंत्रालय, भारत सरकार ने 1991 में विज्ञान लेखक की हैसियत से हिन्दी सलाहकार समिति का सदस्य मनोनीत किया।
- हिन्दी में प्रथम सचित्र वैज्ञानिक मासिक पत्र 'विज्ञान लोक' आगरा के संपादक 1961-63 तक। पुनः 1963 से 65 तक 'विज्ञान जगत' - इलाहाबाद के संयुक्त प्रधान संपादक।
- हिन्दी भाषी विभिन्न राज्यों के शिक्षा संस्थानों के पाठ्यक्रमों के लिए तैयार की गई हिन्दी पुस्तकों में उनके अनेक वैज्ञानिक लेख संकलित हुए हैं। फलतः उ०प्र० हाई स्कूल परीक्षा के हिन्दी प्रश्न पत्र में 1965, 67 एवं 73 में उनकी जीवनी एवं कृतित्व पर प्रश्न पूछे गये।
- 1969 से 1972 तक आगरा विश्वविद्यालय में विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद के लिए समुचित परामर्श देने के लिए अवैतनिक विशेष अधिकारी (ओ०एस०डी०) रहे।
- उ० प्र० हिन्द्री ग्रंथ अकादमी के भौतिकी पैनेल के सदस्य।

प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

मैंने 'विज्ञान लोक', 'विज्ञान जगत' तथा 'विज्ञान प्रगति' में प्रो० भगवती प्रसाद के वैज्ञानिक निबन्ध पढ़े थे, किन्तु उनके विषय में कुछ भी नहीं जानता था । 1983 में मुझे उनके दर्शन हुए । तब विज्ञान परिषद् की ओर से एक गोष्ठी का आयोजन हुआ था । उसमें उन्हें आमन्त्रित किया गया था । श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव उनका पता जानते थे । प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव इस गोष्ठी में आये । हम लोगोंने हिन्दी के विज्ञान लेखकों को सम्मानित करने की एक योजना भी बनाई थी । अतः इस अवसर पर प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव को भी सम्मानित किया गया । वस्तुतः यह शुभ अवसर था उनसे परिचित होने का । वे काफी बुजुर्ग, सरल एवं स्पष्टवादी लगे । शाम को उनके साथ हम हाइडेल कॉलोनी गये, जहाँ उनके पुत्र थे । बड़ी आत्मीयता प्रतीत हुई ।

इसके बाद वे पत्र लिखते रहे और "विज्ञान" में अपनी रचनाएँ भी भेजते रहे । इधर दो-तीन वर्षों से सम्पर्क-सूत्र टूट गया था । वे आज़मगढ़ में रहते थे । पिछले वर्ष उनके निधन का समाचार मिला तो हम विज्ञान परिषद् परिवार के सभी लोग अत्यन्त दुखी हुए ।

इसी वर्ष मार्च माह में मेरे मित्र डॉ० रमेश दत्त शर्मा का दिल्ली से पत्र आया कि स्वर्गीय प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव के पुत्र लखनऊ में चीफ इंजीनियर हैं । उनसे लिखकर सामग्री मँगाई जाय और प्रो० श्रीवास्तव की स्मृति में एक विशेषांक निकाला जाय । उनका यह सुझाव सबों को भा गया । मैंने लखनऊ पत्र लिखा और मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब 1 अप्रैल को प्रो० श्रीवास्तव के सुपुत्र उनके विषय में पर्याप्त सामग्री लेकर विज्ञान परिषद् में एकाएक उपस्थित हुए । उन्होंने यह सामग्री मुझे दी । मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि हम शीघ्र ही एक विशेषांक निकालने की व्यवस्था करेंगे ।

प्रो० श्रीवास्तव का विज्ञान परिषद् से शुरू से ही लगाव था । 1988 के एक संस्मरण में उन्होंने लिखा है कि किस तरह प्रयाग में अध्ययन करते समय वे "विज्ञान" पत्रिका के जिज्ञासु पाठक बने । उन्हीं के शब्दों में -"इण्टर कक्षा में मैंने विज्ञान लिया था । हिन्दी के प्रति मेरी विशेष रुचि थी, किन्तु उन दिनों विज्ञान के विद्यार्थियों को हिन्दी नहीं मिलती थी । अतः उस वक्त मुझे मानसिक संघर्ष से गुजरना पड़ा कि विज्ञान लें या हिन्दी । अंततः निर्णय लिया कि विज्ञान की कक्षा में प्रवेश ले लें और हिन्दी का अध्ययन, स्वयं करते रहें .....सौभाग्यवश कॉलेज के वाचनालय में "विज्ञान" की एक प्रति देखने को मिली । ऐसा लगा जैसे मुझे कोई अमूल्य निधि प्राप्त हो गई थी ।"

प्रो० श्रीवास्तव ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की थी । इस अवधि में वे विज्ञान परिषद् के सम्पर्क में आये थे । बाबू रामदास गौड़, डॉ० गोरख प्रसाद, प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डॉ० सत्यप्रकाश

से आपका परिचय हुआ और आपने ''विज्ञान'' में लिखना शुरू कर दिया था । 1938 में जब विज्ञान परिषद् की रजत जयन्ती मनाई गई तो ''विज्ञान'' के विशेषांक में आपका जीवन चरित भी छपा । पाठकगण इसी से समझ लें कि कुछ ही वर्षों में प्रो० श्रीवास्तव ने विज्ञान लेखक के रूप में अपना स्थान बना लिया था ।

जब प्रो० श्रीवास्तव अध्यापक बने तो वे दिल्ली तथा अलीगढ़ में रहे । उनका लेखन चलता रहा । उनकी पहली पुस्तक 1940 में ''विज्ञान के चमत्कार'' नाम से छपी । वस्तुतः यह उनके प्रारम्भिक प्रकाशित निबन्धों का संग्रह था । यह काफी चर्चित हुआ ।

चूँकि प्रो० श्रीवास्तव भौतिकी के अध्यापक थे अतः उनका लेखन प्रायः भौतिकी के क्षेत्र से सम्बद्ध रहा । आपने 1948 में ''परमाणु शक्ति'' और 1959 में ''ज्ञान भारती'' का लेखन किया । आपने कुछ उत्कृष्ट विदेशी पुस्तकों के अनुवाद भी किये । मैंने आपकी ऐसी अनूदित कृति ''प्रकाश और वर्ण'' पढ़ी है । मैंने पाया कि आप सरल हिन्दी के पक्षधर थे । उर्दू शब्दों को व्यवहृत करते हुए आप तनिक भी संकोच नहीं करते थे । आपकी एक अन्य उत्तम कृति ''अन्तरिक्ष यात्रा'' (1967) है, जिसका अनुवाद कई भारतीय भाषाओं में हुआ है । यह कम गौरव की बात नहीं ।

आपने साठ वर्षों के लेखन काल में दर्जनों पुस्तकें और सैकड़ों निबन्ध लिखे । मैं चाहूँगा कि ऐसे मनस्वी एवं कर्मठ विज्ञान लेखक की सम्पूर्ण कृतियाँ सम्पादित होकर ग्रन्धावली के रूप में प्रकाशित हों । आपने विज्ञान लेखन के क्षेत्र में जो स्थान बनाया है वह चिरस्मरणीय रहेगा । खेद है कि ऐसे मूक हिन्दी सेवी के योगदान का मूल्यांकन उनके जीवन काल में हिन्दी संस्थान भी नहीं कर पाया । पाठकों को प्रो० श्रीवास्तव की विनम्रता का परिचय नीचे लिखी पंक्तियों से मिल जावेगा-

''वस्तुतः यह स्वीकार करने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि हिन्दी के विज्ञान लेखन में आज जो स्थान मुझे प्राप्त है उसके लिए सर्वाधिक श्रेय ''विज्ञान'' पत्रिका तथा विज्ञान परिषद् के उन मनीषियों को देना चाहूँगा जो परिषद् के उन्नयन के लिए निःस्वार्थ भाव से जीवन पर्यन्त कार्य करते रहें हैं--स्व० डॉ० गोरख प्रसाद, स्व० प्रो० सालिगराम भार्गव एवं स्वामी सत्यप्रकाश जी इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं ।''

प्रो० श्रीवास्तव के निबन्ध अनेक पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं । वे लेखक के साथ-साथ कुशल सम्पादक भी रहे । उन्होंने 1961-1963 में ''विज्ञान लोक'' और 1963-1965 ''विज्ञान जगत'' का सम्पादन करके हिन्दी में नवीन लेखकों को प्रोत्साहन दिया ।

हम विज्ञान परिषद् परिवार के लोग ''विज्ञान परिषद् प्रयाग'' के प्रति उनके लगाव से अति रोमांचित हैं और उनकी स्मृति में यह विशेषांक निकाल कर उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए अपने को कृतकृत्य अनुभव कर रहे हैं ।
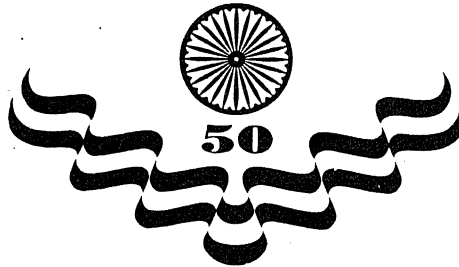
हिन्दी विज्ञान मनीषी : भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

शोध सहायक, विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

प्रायः सामान्य लोग भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि जो बात विज्ञान सिद्ध है, वही हमें ग्राह्य हो सकती है । हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि विज्ञान के क्षेत्र में नित्य नये-नये अनुसन्धान होते रहते हैं, जिसका जनसामान्य तक प्रवाह अत्यन्त आवश्यक है । इसी ज्ञान-विज्ञान को आम लोगों तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम पत्र-पत्रिकाएँ हैं । आमतौर से इसमें विद्वानों के नये-नये विचार और जानकारियों को समेटने का प्रयास किया जाता है । प्रायः यह देखने में आता है कि जिज्ञासु मन में नयी-नयी जानकारियाँ प्राप्त करने की इच्छा तो जाग्रत होती रहती है, किन्तु भाषा की समस्या आड़े आ जाती है । अतएव भारत जैसे देश के लिए, जहाँ अधिकांश लोग हिन्दी को समझते हैं, यदि ज्ञान-विज्ञान की बातें राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से लोगों तक पहुँचायी जायें तो इसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है । सम्भवतः यही सब सोच-समझकर (स्व०) श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी ने हिन्दी भाषा में विज्ञान को जनसामान्य तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया और अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक इस पुनीत कार्य में संलग्न रहे ।

भगवती प्रसाद श्रीवास्तव का जन्म 1 जुलाई सन् 1911 को आज़मगढ़ के पाण्डेय बाज़ार नामक मुहल्ले के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था । अक्षरारम्भ से लेकर सन् 1928 में हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे उच्च शिक्षा के लिए प्रयाग आ गये । सन् 1933 तथा 1935 क्रमशः में बी० एस-सी० आनर्स तथा एम० एस-सी० (भौतिक विज्ञान) की उपाधियाँ प्राप्त करने के बाद वे स्थानीय इविंग क्रिश्चियन कॉलेजके भौतिकी विभाग में जूनियर व्याख्याता नियुक्त हो गये । किन्तु एक वर्ष के पश्चात् ही अध्यापन कार्य छोड़कर एल० एल० बी० में प्रवेश ले लिया तथा सन् 1938 में एल० एल० बी० की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त अपने गृह नगर आज़मगढ़ में वकालत करना शुरू कर दिया । किन्तु विज्ञानुरागी श्रीवास्तव जी को वकालत के पेशे में मानसिक संतुष्टि न मिल सकी और वे सन् 1939 में किशोरी रमण इण्टर कॉलेज, मथुरा में प्रवक्ता के रूप में अध्यापन कार्य में जुट गये । किन्तु 3 वर्ष शिक्षण कार्य करने के बाद दिल्ली चले गये और वहां से धर्म समाज पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, अलीगढ़ में 1947 में व्याख्याता नियुक्त हो गये । यहाँ वे पूर्णतया शिक्षण कार्य में जुट गये और सन् 1974 में विभागाध्यक्ष के रूप में यहीं से अवकाश प्राप्त किया।

भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी का हिन्दी व विज्ञान के प्रति सहज आकर्षण व लगाव था । हिन्दी के प्रति अनुराग की प्रेरणा उन्हें 'भारत-भारती' नामक उपन्यास से प्राप्त हुई, और इसे पुष्ट किया हाई स्कूल स्तर पर पढ़ाने वाले उनके योग्य विज्ञान शिक्षकों ने । इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० एस-सी० की शिक्षा के दौरान वे डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० सत्य प्रकाश व प्रो० सालिगराम भार्गव जैसे प्रतिष्ठित हिन्दी विज्ञान लेखकों के निकट सम्पर्क में आये । यहाँ हिन्दी विज्ञान के प्रति उनकी रुचि में अभिवृद्धि होती गई । इसका प्रभाव यह

हुआ कि वे "विज्ञान परिषद् प्रयाग" से जुड़ गए । परिषद् में प्रो० रामदास गौड़ के सम्पर्क में आने का सुखद परिणाम यह हुआ कि प्रो० गौड़ ने उनकी प्रतिभा को तराशकर उन्हें एक सफल हिन्दी विज्ञान लेखक बना दिया । भगवती प्रसाद श्रीवास्तव का प्रथम लेख "विशाल भारत" के अक्टूबर 1936 अंक में –"धर्म के रास्ते में विज्ञान" शीर्षक से प्रकाशित हुआ और इसी के साथ उनके लेखकीय जीवन की शुरुआत हो गयी । इसके बाद फिर प्रो० श्रीवास्तव ने पीछे मुड़कर नहीं देखा और हिन्दी विज्ञान को पुष्ट करने के कार्य में प्राणपण से जुट गये । फिर क्या था ? तत्कालीन अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं यथा-हिन्दी, विश्वभारती, विश्वकोश, सरस्वती, विश्वमित्र, भूगोल, हिन्दुस्तान, आज, नवनीत, विज्ञान प्रगति, विज्ञान, विशाल भारत, विज्ञान-लोक, विज्ञान-जगत, आदि में उनके लेख धड़ल्ले से प्रकाशित होने लगे । बाद में "विज्ञान-जगत" तथा "विज्ञान-लोक" जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं का कुशल सम्पादन भी आपने कई वर्षों तक किया ।

भगवती प्रसाद श्रीवास्तव के लेखन का प्रमुख उद्देश्य विज्ञान को जनसामान्य तक पहुँचाना था । उनके अनुसार इसके अतिरिक्त विज्ञान लेखन का कोई अर्थ नहीं रह जाता है । अपने इस विचार को उन्होंने 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' द्वारा सन् 1983 में आयोजित राष्ट्रीय विज्ञान गोष्ठी के विषय "वैज्ञानिक अभिरुचि" के अवसर पर फिर से दुहराया है--

"व्यक्तिगत रूप से मैं महसूस करता हूँ कि विज्ञान लेखकों को यह दायित्व पूरी तरह निबाहना होगा कि वे न केवल विज्ञान की उपलब्धियों का विवरण रोचक और जनसुलभ शैली में प्रस्तुत करें बल्कि इसके साथ ही वे वैज्ञानिक कार्य शैली की झाँकी भी प्रस्तुत करें ताकि पाठकगण वैज्ञानिक अभिरुचि के अभिलक्षणों को आत्मसात करके उन्हें अपने जीवन का मूलभूत अंग बना सकें--तभी समाज से अंधविश्वास, रूढ़िवादिता और धर्मान्धता को मिटाया जा सकेगा ।"

श्रीवास्तव जी के लेखन की भाषा सरल, स्पष्ट, रोचक व स्वाभाविक है । उसमें बनावटीपन का आभास न होकर एक सहज प्रवाह है । उनके लेखन में प्रायः ऐसे शब्दों का ही समावेश मिलता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति आसानी से समझ सके । शब्दों के चयन में सावधानी बरती गई है और कठिन शब्दों के प्रयोग से सदैव बचने की झलक दिखती है । लेखन शैली अत्यन्त भावानुकूल होने से उसको आसानी से आत्मसात किया जा सकता है । यत्र-तत्र उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी सफल प्रयोग किया है । खाद्य पदार्थों की सुरक्षा में रेडियो समस्थानिक के महत्व (विज्ञान-लोक, अक्टू० 1961) को बताते हुए लिखते हैं--

"अनाज के दानों को कीड़ों तथा नन्हें कीटाणुओं से बचाने के लिए रेडियो सक्रिय किरणों की मदद ली जाती है । ये किरणें कीटाणुओं का नाश करती हैं, साथ ही उनके अण्डों को निष्प्राण भी बना देती हैं । अतः अब यह सम्भव हो सका है कि भण्डार में अनाज को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखा जाय । माँस, अण्डे, मछली आदि को भी इन किरणों की बदौलत अपेक्षाकृत अधिक दिनों तक ताज़ा बनाये रख सकते हैं । गर्म और तर जलवायु में आलू में से अंकुर निकलने लग जाते हैं अतः वे खाने योग्य नहीं रहते । यदि आलुओं पर रेडियोसक्रिय किरणों की बौछार कुछ देर तक पड़ने दी जाय तो गर्म जलवायु में भी इसमें अंकुर फूटने नहीं पाते, और इन्हें कई वर्ष तक सुरक्षित रख सकते हैं तथा दूर-दूर देशों तक इनका निर्यात किया जा सकता है ।"

लेखों के अतिरिक्त उन्होंने पुस्तकों का भी प्रणयन किया है । इनकी प्रथम पुस्तक-- "विज्ञान के चमत्कार" सन् 1940 में ज्ञान मण्डल, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुई थी । पुस्तक की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि अब तक इसके चार संस्करण निकल चुके हैं । अंतरिक्ष विज्ञान भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी का बहुत ही प्रिय विषय रहा है । इस सम्बन्ध में उनकी पुस्तक "अंतरिक्ष की यात्रा" का अनुवाद 'नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' के तत्वावधान में तेलुगु, गुजराती, पंजाबी, उर्दू व मराठी में भी हुआ है । इनकी कुल 14 मौलिक व 2 अनूदित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जो कि पाठकों द्वारा काफी सराही गयी हैं । शायद इसका प्रमुख कारण रहा है कि इसके माध्यम से विज्ञान को यथार्थवादी मंच पर जन-सामान्य के निकट लाने का सफल प्रयास किया गया है ।

श्रीवास्तव जी का स्वभाव अत्यन्त सरल था । कार्य

की नियमितता उनके स्वभाव का सहज गुण था । इसी सबका सम्मिलित प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर भी पड़ा था । उन्होंने अपने लेखन के द्वारा हिन्दी विज्ञान साहित्य को अत्यन्त समृद्ध किया है । सन् 1983 में जब देश की लब्धप्रतिष्ठित हिन्दी की वैज्ञानिक संस्था 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' ने देश के चोटी के हिन्दी विज्ञान लेखकों-सम्पादकों को सम्मानित किया तो वे भी उनमें से एक थे । उन्हें यह सम्मान उनके द्वारा हिन्दी में उच्च स्तरीय वैज्ञानिक लेखन/सम्पादन क्षेत्र में की गयी दीर्घकालीन बहुमूल्य सेवाओं के लिए प्रदान किया गया था । इसके पूर्व उन्हें हिन्दी में विज्ञान लेखन के योगदान के लिये 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' में आयोजित विज्ञान सम्मेलन में तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री डॉ० कर्ण सिंह द्वारा 1977 में सम्मानित किया जा चुका था ।

विधि का विधान है कि प्रत्येक मनुष्य को एक न एक दिन यह संसार छोड़कर जाना ही पड़ता है । 6 मई 1997 को वह दिन उनके लिए भी आ गया जब वे संसार से बिदा लेकर चिर निद्रा में लीन हो गये । "विज्ञान परिषद् प्रयाग" ही क्या देश के समस्त हिन्दी विज्ञान-प्रेमियों को इससे गहरा आघात लगा । मनुष्य अमर नहीं होता--यह जानते हुए भी "विज्ञान परिषद् प्रयाग" ने उनके योगदान को अक्षुण्ण बनाये रखने के उद्देश्य से उनकी स्मृति में "विज्ञान" का यह अंक प्रकाशित करने के निश्चय किया है । परिषद् का यह प्रयास सराहनीय है । विज्ञान मनीषी प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी को मेरा शत-शत प्रणाम ।

विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रो० श्रीवास्तव के कुछ प्रमुख लेखों की सूची

लेख	पत्रिका	माह	वर्ष
◆ धर्म के रास्ते में विज्ञान	विशाल भारत	अक्टूबर	1936
◆ पिछला सूर्य ग्रहण	विज्ञान	जनवरी	1937
◆ क्या ब्रह्माण्ड अनन्त है ?	विश्वमित्र	मार्च	1937
◆ विज्ञान की अधूरी समस्यायें	विश्वमित्र	अप्रैल	1937
◆ कास्मिक रश्मियां	विश्वमित्र	जुलाई	1937
◆ मंगल निवासियों से बातचीत	विश्वमित्र	अगस्त	1937
◆ हालीवुड के जादूगर	विश्वमित्र	फरवरी	1938
◆ मार्कोनी रेडियो का जन्मदाता	विज्ञान	अप्रैल	1938
◆ अतुल जलराशि के नीचे	विश्वमित्र	जून	1938
◆ दुनिया की सबसे बड़ी दूरबीन	भूगोल	सितम्बर	1938
◆ अनन्त अन्तरिक्ष के संदेश वाहक	विश्वमित्र	अक्टूबर	1938
◆ यह प्रसरणशील जगत	विज्ञान	दिसम्बर	1938
◆ फैसिस्ट मुल्कों में विज्ञान की दुर्गति	विज्ञान	नवम्बर	1939
◆ प्रोफेसर हाल्डेन-इंग्लैण्ड के एक जागरूक वैज्ञानिक	विज्ञान	अगस्त	1940
◆ मिट्टी के तेल का स्टोव	विज्ञान	जनवरी	1944
◆ स्व० प्रो० पावलोव	विज्ञान	जून	1944
◆ चन्द्रलोक की यात्रा	विज्ञान-लोक	फरवरी	1960

♦	हिरोशिमा और नागासाकी	विज्ञान-लोक	फरवरी	1961
♦	जब सूर्य धरती पर उतरा	विज्ञान-लोक	मार्च	1961
♦	परमाणु विस्फोट के हानिकारक प्रभाव	विज्ञान-लोक	अप्रैल	1961
♦	परमाणु ऊर्जा पर नियंत्रण	विज्ञान-लोक	मई	1961
♦	परमाणु ऊर्जा और यातायात के साधन	विज्ञान-लोक	जुलाई	1961
♦	रेडियो समस्थानिकों की उपयोगिता	विज्ञान-लोक	अगस्त	1961
♦	रेडियो समस्थानिक कृषि क्षेत्र में	विज्ञान-लोक	अक्टूबर	1961
♦	परमाणु विस्फोटन द्वारा इंजी० के कार्य	विज्ञान-लोक	अक्टूबर	1962
♦	साबुन के उपयोग में सावधानी बरतिये	विज्ञान-लोक	नवम्बर	1962
♦	चन्द्रमा पर मानव के चरण	विज्ञान-लोक	जनवरी	1963
♦	ऊर्ध्वाकाश में पहुँचने वाली दूरबीन	विज्ञान-जगत	मई	1963
♦	डॉ० नार्लीकर की क्रान्तिकारी खोज	विज्ञान-जगत	सितम्बर	1965
♦	माइक्रोवेव के चत्मकार	विज्ञान-जगत	जनवरी	1966
♦	पारा एक उपयोगी धातु	विज्ञान-जगत	अप्रैल-जुलाई	1966
♦	दृष्टि सूक्ष्मता की हद	विज्ञान-जगत	अप्रैल-जुलाई	1966
♦	आप की आँखें	विज्ञान-जगत	अप्रैल-जुलाई	1966
♦	भू-उपग्रह द्वारा जन शिक्षण	आज-समाचार	23 फरवरी	1967
♦	वैज्ञानिक पुस्तकों का अनुवाद	कादम्बनी	फरवरी	1975
♦	क्या मनुष्य ब्रह्माण्ड में अकेला है ?	आविष्कार	अक्टूबर-दिसम्बर	1981
♦	वैज्ञानिक अभिरुचि	विज्ञान	सितम्बर	1983
♦	विज्ञान—क्या और कैसे ?	विज्ञान वीथिका	मार्च-अप्रैल	1986

हिन्दी विज्ञान जगत् के भीष्म पितामह : प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग
सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद-211002

मैं आज जब 'प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव स्मृति अंक' के लिए कुछ लिखने बैठा तो समझ में नहीं आ रहा है कि कहाँ से शुरू करूँ। इसे मैं अपना सौभाग्य समझूँ या मात्र संयोग कि 1960-1965 के बीच जब प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका "विज्ञान जगत" और आगरा से प्रकाशित पत्रिका "विज्ञान लोक" के संपादन से संबंधित थे, उसी बीच मैंने लिखना प्रारम्भ किया था। मेरा प्रथम लेख "डंक मारने वाला पौधा-बिच्छू घास" 1961 में "विज्ञान जगत" में प्रकाशित हुआ। बाद में "जीवन के सबसे सूक्ष्म शत्रु वायरस" "प्रकृति का कुशल बुनकर" लेख प्रकाशित हुए। इसी बीच "विज्ञान लोक" में भारत का जादुई पौधा सर्पगंधा और "पादप हार्मोन" लेख प्रकाशित हुए।

इस प्रकार प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी के लेखन और सम्पादन कौशल से मैं उसी समय से परिचित हो चुका था। यह बात दूसरी है कि "विज्ञान जगत" के प्रधान संपादक श्री आर० डी० विद्यार्थी और "विज्ञान लोक" के श्री शंकर मेहरा थे और इसी कारण मेरा पत्राचार उपरोक्त विख्यात संपादकों से ही था। इनके पत्र मेरे पास आज भी सुरक्षित हैं।

लगभग दो दशकों के बाद 1983 में जब विज्ञान परिषद् में "वैज्ञानिक अभिरुचि" विषय पर एक अखिल भारतीय स्तर की संगोष्ठी आयोजित हुई तो प्रतिभागियों से संगोष्ठी में भाग लेने के संबंध में जो पत्राचार हुए तब पुनः उनसे सम्पर्क स्थापित हुआ। तब मैं परिषद् में संयुक्त मंत्री था। इस संगोष्ठी में मुझे देश के शीर्षस्थ हिन्दी विज्ञान लेखकों और सम्पादकों - प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी, श्री श्याम सरन "विक्रम" जी, श्री (अब डॉ०) रमेश दत्त शर्मा जी, श्री श्याम सुन्दर शर्मा जी, श्री डी० एन० भटनागर जी, सहित अनेक विशिष्ट व्यक्तियों- से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बाद में तो अनेक लब्धप्रतिष्ठि लेखकों-सम्पादकों से विभिन्न संगोष्ठियों और कार्यशालाओं के माध्यम से मिलने का अवसर प्राप्त होता रहा है, जो आज भी चल रहा है। किन्तु प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी की मुझ पर विशेष कृपा रही। मुझे उनका स्नेह प्राप्त हुआ। बाद में पत्रों के माध्यम से उनसे सम्पर्क बना रहा, किन्तु 1986 में जब मैंने और मेरी पत्नी श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी ने मिलकर एक प्रकाशक के माध्यम से "विज्ञान वीथिका" का सम्पादन प्रारम्भ किया तो मुझे प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी से पत्रिका के संबंध में अनेक सुझाव प्राप्त हुए। लगभग एक दर्जन से अधिक उनके लिखे पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। यह वह समय था जब उनके बड़े पुत्र श्री जी० के० श्रीवास्तव जी इलाहाबाद में ही पोस्टेड थे और तब जब भी प्रो० श्रीवास्तव इलाहाबाद आते तो मेरे निवास पर अवश्य आते थे। घंटों बैठ कर बातें किया करते थे। उन्हें पान खाने का शौक था और उस समय मेरे घर में पान का पूरा सामान उपलब्ध रहा करता था क्योंकि मेरी माता जी पान खाती थीं।

जब प्रो० श्रीवास्तव अपने पैतृक निवास आजमगढ़ चले जाते थे तो भी पत्रों के माध्य से उनसे सम्पर्क बना रहता था। उनके पुत्र का जब इलाहाबाद से स्थानान्तरण हो गया तब उनका इलाहाबाद आना रुक गया। कुछ दिनों बाद उनकी धर्मपत्नी आदरणीया श्रीमती कौशिल्या श्रीवास्तव जी अस्वस्थ रहीं, प्रो० श्रीवास्तव का भी स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता गया और सम्पर्क टूट-सा गया। 6 मई 1997 को आजमगढ़ में प्रो० श्रीवास्तव के निधन का समाचार सुनकर हम सभी स्तब्ध रह गये।

यहाँ उनके कुछ पत्र दिये जा रहे हैं। इन पत्रों के माध्यम से जहाँ एक ओर उनके सहज-सरल व्यक्तित्व की झलक मिलती है वहीं हिन्दी विज्ञान लेखन को लेकर वे कितने गंभीर थे, यह भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। अपने से कम उम्र वालों का वह किस स्नेह से मार्गदर्शन करते थे इसकी भी झाँकी आपको इन पत्रों में मिलेगी।

अर्थाभाव के कारण तीन अंकों के पश्चात् ही असामयिक मौत मरने वाली मेरी संपादित पत्रिका ''विज्ञान वीथिका'' के प्रति उनमें कितना अपनत्व का भाव था, तथा उसके स्वरूप में निरन्तर सुधार के लिए वे कितना प्रयत्नशील रहते थे, इसका पूरा पता इन पत्रों से चलता है।

अतएव अब उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में कुछ अधिक न लिखकर मैं उन पत्रों को प्रस्तुत कर रहा हूँ जो उन्होंने मुझे लिखे हैं--

द्वारा जी० के० श्रीवास्तव
हाइडेल कॉलोनी
20, क्लाइव रोड, इलाहाबाद
09.12.85

प्रिय प्रो० श्रीवास्तव,

कल श्री रमेश प्रसाद शर्मा का मैंने ''विज्ञान वीथिका'' के संदर्भ में जिक्र किया था। उनका सही पता है-

श्री आर० पी० शर्मा
टी 26 जी, रेलवे कालोनी, बीकानेर (राजस्थान)

कृपया उन्हें एक कार्ड अवश्य लिख दें।

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

---

46 पाण्डेय बाज़ार
आज़मगढ़
9.1.86

प्रियवर,

मैं दो तीन दिनों के लिए दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में इलाहाबाद गया था। मिसेज की आँख की जाँच करा कर चश्मा आदि लेना था। उन्हीं दिनों थोड़ा समय निकाल कर मैं आप के निवास पर गया था और लेख वहाँ छोड़ आया था। फिर समय नहीं मिला कि आप से संपर्क कर पाता।

कृपया लिखें कि प्रस्तावित विज्ञान पत्रिका कब प्रकाशित हो रही है।

आशा है कि आप स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे।

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

आज़मगढ़
13.3.86

प्रिय डॉ० श्रीवास्तव,

पत्रिका मिली। धन्यवाद। पत्रिका का गेट अप पसन्द आया, तथा संपादकीय भी सटीक एवं सामयिक रहा। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। मुखपृष्ठ की साजसज्जा सरल सुन्दर एवं आकर्षक है। यह देखकर संतोष हुआ कि प्रूफ की अशुद्धियाँ कहीं भी देखने को नहीं मिलीं जिसकी मुझे आशंका थी, आपने अवश्य ही इसके लिए विशेष सावधानी बरती होगी।

लेखों के बारे में कहना चाहूँगा कि महानाद से महाअणु तक, विश्वकर्मा को नमस्कार, हेली एवं डॉ० साहा, लेख बहुत अच्छे रहे। इनके प्रतिकूल महारास नियामक- सागर विज्ञान- उड़न सश्तरियाँ, कुछ खास नहीं जँचें। एक बात और है- विषय सूची में प्रेमानन्द चन्दोला (पृ० 27) के लेख को शामिल करना कदाचित आप भूल गये।

आप अन्यथा न समझें तो कतिपय सुझाव भी देना चाहूँगा।

लेख समाप्त होने पर पृष्ठ के बचे हुए भाग में पुस्तकों के विज्ञापन, पुस्तक समीक्षा आदि आँखों को खटकती है। शायद इस कारण भी कि ये ब्लाक प्रेस में छपे है और पृष्ठ 36 पर तो "वैज्ञानिक निबंध मंजूषा" बहुत बड़े टाइप फेस में है। अच्छा हो यदि विज्ञापन इनर टायटिल पृष्ठ या अंत में दिये जाँय, और भीतर के पृष्ठों के खाली जगह पर फिलर्स दिये जायँ जो विज्ञान से संबंध रखते हैं- जैसे वैज्ञानिकों के एनेकडोट्स आदि। इससे लगेगा कि यह एक वैज्ञानिक पत्रिका है। अंतिम टायटिल पृष्ठ तथा इनर भी खाली हैं। यहाँ एशिया बुक कं० की पुस्तकों का विज्ञापन आ सकता था। वरना पीछे से देखने पर लगता है कि यह किसी कॉलेज या स्कूल की पत्रिका है।

यह भी सुझाव देना चाहूँगा कि कुछ नियमित स्तंभ भी प्रतिमास दें जैसे बालकों के लिए सरल विज्ञान, ग्रामीण समस्यायें, स्वास्थ्य चर्चा, हाऊ इट वर्क्स, परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में पर्यावरण समस्या, अंतरिक्ष विज्ञान, पाठकों के प्रश्न, क्विज, घरेलू मशीनों की देख-रेख, गैसस्टोव, फ्यूज, पंखा, विद्युत् स्टोव, फ्रिज आदि।

पत्रिका के प्रकाशन के लिए पुनः बधाई।
शेष मिलने पर।

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

डॉ० प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, इलाहाबाद

---

46 पाण्डेय बाज़ार
आज़मगढ़
1.4.86

प्रिय डॉ० श्रीवास्तव ,

खेद है कि इलाहाबाद में पुनः आपसे मिल नहीं सका। अचानक ही कानपुर जाने का प्रोग्राम बन गया था, अतः जार्ज टाउन आने का अवसर नहीं मिल पाया।

आशा है आप सपरिवार स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे। 'विज्ञान वीथिका' का अगला अंक कब तक प्रकाशित हो रहा है?

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

46 पाण्डेय बाज़ार
आज़मगढ़
1.4.86

प्रियवर,

मुझे खेद है कि आपके प्रश्न का उत्तर मैं शीघ्र नहीं दे सका। इन दिनों मैं पारिवारिक मामलों में व्यस्त रहा। फिर अपनी पुस्तकों के नवीन संस्करण की रूपरेखा निर्धारित करने के सिलसिले में मुझे तीन चार दिनों के लिए दिल्ली जाना पड़ गया। आशा है आप मेरी इस मजबूरी को अन्यथा न समझेंगे।

इस बार का अंक पहले की अपेक्षा बहुत सुन्दर रहा। मैटर इस तरह का था कि विद्यार्थी भी इसके प्रति आकृष्ट हो सकेंगे। आपका भेजा गया मनीआर्डर भी यथा समय मिल गया था, धन्यवाद।

अभी भी जल्दी में हूँ, अतः द्वितीय अंक के बारे में विस्तार से अगले पत्र में लिख पाऊँगा। इस बीच "राकेट" पर भी लेख तैयार करने का प्रयास करूँगा।

यह अच्छा किया कि पत्रिका द्वैमासिक कर दी- अंक की छपाई आदि के लिए समय आसानी से मिल जाये गा।

शेष फिर,

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

---

46 पाण्डेय बाज़ार
आज़मगढ़
31.5.86

प्रियवर,

"राकेट" पर लेख भेज रहा हूँ। यदि संभव हो तो रेखाचित्र एवं राकेट का हाफ्टोन चित्र भी दें।

विज्ञान वीथिका 2 में "विज्ञान शिक्षा विवेचन" विशेष रूप से पसन्द आया। युवा लेखक पुरस्कार योजना निस्संदेह एक वांछनीय कदम होगा।

मेरे पुत्र यहाँ निरीक्षण कार्य के लिए आये थे- उन्हीं के हाथ लेख भेज रहा हूँ।

शेष कुशल,

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

प्रो० प्रेमचंद्र श्रीवास्तव, इलाहाबाद

---

46 पाण्डेय बाज़ार
आज़मगढ़
11.6.86

प्रियवर,

जून के प्रथम सप्ताह में अपने पुत्र के हाथ मैंने "राकेट" पर लेख भिजवाया था। कृपया लेख-प्राप्ति की सूचना भेजें।

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

46 पाण्डेय बाज़ार
आज़मगढ़
2.7.86

प्रियवर,

आपका 17/6 का पत्र मुझे यथासमय प्राप्त हो गया था। खेद है कि बारातों आदि के सिलसिले में अत्यधिक व्यस्त होने के कारण मैं अभी तक उत्तर न दे पाया था। यह जान कर चिंता हुई कि आप की आँख में परेशानी उत्पन्न हो गयी थी। आशा है कि अब तक आप इस परेशानी से मुक्ति पा चुके होंगे।

अपने प्रकाशक को सुझाव दें कि सत्र के प्रारम्भ में ही स्कूलों एवं इण्टर कॉलेजों से वार्षिक चंदा प्राप्त करके उन्हें स्थायी ग्राहक बना लें तो इससे एकमुश्त धनराशि प्राप्त हो सकेगी। मेरा संपर्क अब तो स्कूलों से रहा नहीं तथापि मैं इस दिशा में प्रयास करने की कोशिश करूँगा। आपके विद्यार्थी इधर उधर अध्यापक लगे होंगे, उनकी सहायता भी ले सकते हैं।

पत्रिका को कम से कम 3-4 वर्ष तो चलना ही चाहिए।

अगली बार इलाहाबाद आने पर भेंट करने पर विस्तार से बातें होगीं।

साग्रह
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

---

46 पाण्डेय बाज़ार
आज़मगढ़
15.8.86

प्रियवर,

अरसे से कोई समाचार आप से नहीं प्राप्त हुआ। आशा है कि आप सकुशल होंगे। कई महीने हो गए मेरा भी इलाहाबाद आना नहीं हुआ अन्यथा आप से मिलने अवश्य आया होता। पत्रिका की प्रगति के बारे में भी लिखें।

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

दिन व स्थान नहीं

प्रिय डॉ० श्रीवास्तव,

आप का 10-6 का कार्ड मिला। यह जानकर बड़ी प्रसन्तता हुई कि प्रधान संपादक "विज्ञान" का दायित्व आप ने संभाल लिया है- मेरी बधाई स्वीकार करें और मेरा सहयोग तो रहेगा ही।

होली के अवसर पर इलाहाबाद गया था- मेरी पत्नी भी साथ थीं। बाजार के हुड़दंग से बचने के प्रयास में बाहर कम निकला। डॉ० चंद्रा से अपनी पत्नी की आँख की जाँच करानी थी। फिर वहाँ से दो दिनों के लिए अपनी पुत्री के मिलने हम दोनों इटावा भी गये। इन्हीं व्यस्तताओं के कारण आप से मिल नहीं पाया। केवल एक सप्ताह की अवधि में ये सभी भाग दौड़ पूरी करनी थी।

'स्मारिका' के बारे में तो मुझे आप से ही पता चला। आप का आभारी हूँ कि आपने मेरे जीवन वृतान्त को 'स्मारिका' में भेजा।

संभवतः मेरे पुत्र का जून में ही इलाहाबाद से मुरादाबाद या शायद अनपरा ट्रांसफर होने वाला है। यदि इधर वर्षा शीघ्र हुई तो ट्रांसफर के अवसर पर उन लोगों से मिलने इलाहाबाद आऊँगा। आप से भी संपर्क करूँगा। अब तो विज्ञान परिषद् के फोन पर आप नियमित रूप से उपलब्ध हो सकेंगे।

आपका विज्ञान परिषद् का छपा कार्ड पोस्ट आफिस के नये नियमों के अन्तर्गत् 15 पैसे में आ-जा नहीं सकता है। उसके लिए दण्ड अधिक 1/- देने पड़ते हैं। शायद कुछेक कार्ड आप के पास वापस लौट आए होंगे। भविष्य में उन्हें भेजें तो उन पर उचित मूल्य का डाक टिकट लगायें।

शेष मिलने पर,

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

---

46 पाण्डेय बाज़ार
आज़मगढ़
12.8.87

प्रियवर,

6/8 को दिल्ली से वापस आते समय एक दिन के लिए इलाहाबाद रूका था। अगले दिन 7 अगस्त को अपने पौत्र के साथ उसके स्कूटर पर आपके निवास पर प्रातः 9 बजे गया तो वहाँ मकान पर ताला लगा मिला। इधर उधर कोई दीखा नहीं कि आपके बारे में पूछताछ करता। उसी दिन शाम को मुझे आज़मगढ़ वापस आना था, अतः आपके भेंट न हो सकी, इसका अफसोस रहा।

आशा है कि आप सपरिवार प्रसन्न एवं स्वस्थ होंगे। अब तो कदाचित मेरे पुत्र का ट्रांसफर होने वाला है, अतः मेरा इलाहाबाद आ सकना कई अन्तराल पर ही संभव हो पायेगा।

दिल्ली में डी० एन० भटनागर से फोन पर ही संपर्क कर पाया था।

अपनी कुशल का समाचार दें तथा ''विज्ञान'' के बारे में विस्तार से लिखें।

सभी को यथायोग्य,

आपका
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

स्व० प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी उन गिने चुने लोगों में से रहे हैं जो पार्थिक शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी अपने कृतित्व में अमर रहते हैं। उन्होने अपने लेखों और पुस्तकों के रूप में ऐसा प्रकाशपुंज छोड़ा है जो आगे आने वाली पीढ़ियों को प्रेरणा देता रहेगा, उनका मार्गदर्शन करता रहेगा। उनके निधन से जहाँ एक ओर हिन्दी विज्ञान जगत् ने एक लब्धप्रतिष्ठित लेखक और सम्पादक खो दिया वहीं मैने व्यक्तिगत स्तर पर विज्ञान लेखन का एक प्रेरणास्पद मार्गदर्शन खो दिया, और यह क्षति अपूरणीय रहेगी। स्व० प्रो० श्रीवास्तव जी की स्मृति को कोटिशः नमन।

श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव : एक सरल व्यक्तित्व और गम्भीर कृतित्व

डॉ० हरीश रायजादा

रीडर, अंग्रेजी विभाग, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव मेरे अतीत की मधुरतम् स्मृतियों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । किशोरावस्था की स्मृतियाँ सबसे अधिक सुखद होती हैं । उस समय हमारा निश्चल और भावुक हृदय स्वतः ही कुछ व्यक्तियों के प्रति अन्य की अपेक्षा अधिक आकर्षित हो जाता है, उनके प्रति अनुराग और श्रद्धा रखने लगता है । उनसे मिला स्नेह हमारे जीवन की अमूल्य और स्थायी निधि बन जाता है । अपने जीवन के इसी चरण में मैं श्रीवास्तव साहब के सम्पर्क में आया । उनके शिष्ट और सौम्य व्यवहार और उदार विचारों ने जो छाप उस समय मुझपर छोड़ी वह आज भी अमिट है । उन्होंने मेरी आकांक्षाओं को बढ़ावा दिया और मुझे उच्च आदर्शों को लेकर जीवन जीने की प्रेरणा दी । किसी भी अन्य व्यक्ति ने मुझे इतना प्रभावित नहीं किया जितना श्रीवास्तव साहब ने ।

श्रीवास्तव साहब से पहली बार मिलने की स्मृति मेरे मस्तिष्क में आज भी ताजा है । किशोरीरमण कॉलेज में विज्ञान की माध्यमिक स्तर की शिक्षा सन् 1939 में पहली बार प्रारम्भ हुई थी । मैं इण्टर विज्ञान का विद्यार्थी था । सत्र के प्रारम्भ में भौतिकी में जो अध्यापक आते थे वे त्यागपत्र देकर किसी अन्य स्थान पर चले गये थे । इसके बाद लगभग एक मास तक भौतिकी की पढ़ाई सुचारु रूप से न चल सकी । फिर एक दिन हमने अपनी कक्षा में रसायन विज्ञान के अध्यापक के साथ एक अपरिचिति व्यक्ति को प्रवेश करते हुए देखा । हमें यह समझने में तनिक भी देर न लगी कि वे ही भौतिकी विज्ञान के हमारे नये अध्यापक हैं । रसायन विज्ञान के अध्यापक के चले जाने के बाद हमने अपने नये अध्यापक का परिनिरीक्षण आरम्भ किया जिससे कि उनके विषय में हम अपनी धारणा बना सकें । हमने देखा कि हमारे सम्मुख एक लम्बा और दुबला-पतला व्यक्ति खड़ा था । उसके नेत्रों में चमक, व्यवहार में शालीनता और बोलने में स्वाभाविकता थी । वह बादामी रंग के सिल्क का सूट पहने हुए था और अपने विषय में कुछ बता रहा था । हमने देख लिया था कि सूट के साथ वह व्यक्ति चप्पल पहने हुए था । केवल यह बात ही हमें नये अध्यापक के बारे में प्रतिकूल धारणा बनाने और हमारी अपरिपक्व दृष्टि में उन्हें साधारण व्यक्ति के स्तर पर गिरा देने के लिए काफी थी । हमने एक दूसरे की ओर देखकर नेत्रों के संकेत द्वारा बता दिया कि हम नये अध्यापक से विशेष प्रभावित नहीं हुए ।

कक्षा में चालीस मिनट के दौरान जो बातें हमने सुनी अनसुनी कर दी थीं उनसे पता चला था कि नये अध्यापक ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० ऑनर्स करने के बाद 1935 में भौतिकी में एम० एस-सी० किया । फिर एक वर्ष वे इविंग क्रिश्चियन कॉलेज में अध्यापक रहे और बाद में दो वर्ष तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में लॉ का अध्ययन करते रहे । लॉ की डिग्री प्राप्त कर लेने के उपरान्त कुछ महीने उन्होंने आजमगढ़ में वकालत की और बाद में विज्ञान की

शिक्षा के प्रति रुझान रखने के कारण अवसर मिलते ही वे वकालत छोड़कर हमारे विद्यालय में भौतिकी के अध्यापक के रिक्त स्थान पर आगए । कक्षा के अन्दर हमारा मन नये अध्यापक की बातें सुनने में नहीं लग रहा था । हम उनके विषय में अपनी धारणाएँ एक दूसरे को सुनाने के लिए आतुर थे । घण्टा बजते ही हम जैसे ही कक्षा से बाहर बरामदे में आये हमने एक मत होकर अपना विचार प्रकट कर दिया कि सूट के साथ चप्पल पहिनने वाला यह व्यक्ति यदि वकालत में सफल नहीं हुआ तो अध्यापक के रूप में वह कदापि भी सफल न हो सकेगा ।

किसी भी व्यक्ति के विषय में हमारी प्रथम दृष्टि कितनी त्रुटिपूर्ण हो सकती है, यह अनुमान करने के लिए हमें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी । दूसरे ही दिन जब श्रीवास्तव साहब ने हमें भौतिक विज्ञान पर लेक्चर दिया तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा । दुरूह सिद्धान्तों और जटिल फार्मूलों से भरा शुष्क और नीरस भौतिकी विषय इतना सरस भी हो सकता है इसकी हमने कभी कल्पना भी न की थी । श्रीवास्तव साहब ने विषय के सरल और सुवोध विवेचन के साथ प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के जीवन के अंतरंग प्रसंगों को जोड़कर अपने लेक्चर को बहुत रोचक बना दिया था । उनके लेक्चर के दौरान हमें विज्ञान के निर्जीव तथ्यों और अनुसन्धानों के पीछे आर्कमेडीज, न्यूटन, गलीलियो, कोपर्नीकस, ब्रूनो, एडीसन, मैडम क्यूरी आदि वैज्ञानिकों के गम्भीर एवं संघर्षरत चेहरे उभरते हुए दिखाई पड़ने लगे । हमने उनका लेक्चर मंत्र-मुग्ध होकर सुना । उसके बाद भौतिकी का प्रत्येक घण्टा हमारे लिए नया अनुभव होता और श्रीवास्तव साहब हमारी चर्चा के स्थायी विषय हो गए । कभी हम विज्ञान के चमत्कारी आविष्कारों के विषय में सोचते और कभी प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम, संघर्ष, त्याग और यातनाओं के विषय में जिनके द्वारा उन्होंने मानवीय सभ्यता को आगे बढ़ाया । श्रीवास्तव साहब से प्रेरणा लेकर उन दिनों मैंने "विज्ञान की बलिवेदी पर" शीर्षक लेख विद्यालय की पत्रिका में प्रकाशित कराया था और बाद में "प्रचलित अन्धविश्वास और वैज्ञानिक अनुसन्धान" नामक लेख 'विज्ञान' पत्रिका में ।

हमारे अन्दर विज्ञान के प्रति रुचि एवं जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए श्रीवास्तव साहब खाली घण्टों में हमें अपने आफिस में बुला लेते और विज्ञान के नवीनतम् अनुसन्धानों और आविष्कारों के विषय में हमसे बातचीत करते । प्रायः छुट्टियों के दिन वे हमें अपने घर पर आमंत्रित करते और हमसे विज्ञान के अतिरिक्त, साहित्य, राजनीति, मनोविज्ञान आदि विषयों पर चर्चा करते । कभी-कभी हम उनके निजी संग्रह से पुस्तकें और पत्रिकायें ले जाते और उनसे मिलने पर उनमें प्रकाशित लेखों पर अपनी राय प्रकट करते । उन्हीं दिनों हमें 'विशाल भारत', 'विश्वमित्र', 'सरस्वती' और 'विज्ञान' आदि सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित श्रीवास्तव साहब के अनेक लेखों के पढ़ने का अवसर मिला था । हम इन लेखों को पढ़कर गर्व का अनुभव करते और बहुधा कला विभाग के अपने सहपाठियों पर अपने ज्ञान का सिक्का जमाते । विद्यालय की अन्य कक्षाओं के विद्यार्थी श्रीवास्तव साहब के विषय में हमसे पूछताछ करते और हमारे सौभाग्य पर ईर्ष्या व्यक्त करते ।

श्रीवास्तव साहब के जिस गुण ने विद्यार्थियों को उनके प्रति सबसे अधिक आकर्षित किया था उनकी उदारता और सद्व्यवहार । वे हमारे व्यक्तित्व और स्वतन्त्र विचारों का सम्मान करते थे और हमें हमारी प्रतिभा के स्वाभाविक विकास की प्रेरणा देते थे । कांग्रेस द्वारा आह्वान किए गये स्वतन्त्रता संग्राम ने हमारे अन्दर जो स्वाभिमान और जागरूकता उत्पन्न की थी उसका महत्व वे समझते थे और उसकी वृद्धि के लिए हमें प्रोत्साहित करते थे । अपने से छोटों के प्रति सम्मान की भावना की कमी हमारे देश में आज भी है । अब से तीन दशक पूर्व तो उसका सर्वथा अभाव था । अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध का तो उन दिनों प्रश्न ही नहीं उठता था । उस समय विद्यार्थियों में अनुशासन बनाये रखने के लिए उनके व्यक्तित्व को कुंठित कर देना आवश्यक समझा जाता था । 'पब्लिक केनिंग' की प्रथा अन्य विद्यालयों की तरह हमारे विद्यालय में भी प्रचलित थी और जब तब विद्यार्थियों में अध्यापकों का आतंक जमाने के लिए उसका प्रदर्शन होता रहता था । ऐसे रूढिवादी वातावरण में श्रीवास्तव साहब के उदार विचारों के प्रति सहयोगी अध्यापकों की क्या प्रतिक्रिया हुई होगी इसका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है ।

किन्तु अपने सहयोगियों की रूढ़िवादी मनोवृति से वे स्वयं कभी विचलित नहीं हुए और विद्यार्थियों के प्रति उनके वही उदार विचार बने रहे । हमारे ज्ञानवर्धन के लिए उन्होंने 'विज्ञान परिषद्' और 'फोटोग्राफिक क्लब' की नींव डाली । उस वर्ष में ही दोनों परिषदों का मंत्री चुना गया था । अपने ही विद्यालय से हाईस्कूल परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की गरिमा का आभास मुझे उन्हीं दिनों हुआ था । 'विज्ञान परिषद्' के तत्वावधान में हम लोगों ने अंग्रेजी में एक टंकित पत्रिका निकाली थी और वैज्ञानिक विषयों पर लेक्चर एवं वाक्-प्रतियोगिता आयोजित की थी ।

इसके बहुत दिनों बाद एक दिन मेरी भेंट एक ऐसे स्थान पर हुई जिसकी मुझे कभी कल्पना भी न थी । सन् 1948 में मेरी नियुक्ति अंग्रेजी के अध्यापक के रूप में धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ में हुई थी । कार्य भार संभालने के प्रथम दिन ही जब मैं अध्यापक कक्ष में बैठा हुआ था, श्रीवास्तव साहब अपनी स्वाभाविक मुस्कान के साथ मेरे पास आकर खड़े होगए । यद्यपि मुझे अध्यापक बनने की प्रेरणा श्रीवास्तव साहब ही से मिली थी, जिसे मैं आज भी अपना सौभाग्य समझता हूँ, पर मैंने यह कभी भी न सोचा था कि मुझे उनके सहयोगी के रूप में कार्य करने का अवसर मिलेगा । श्रीवास्तव साहब ने एक वर्ष पूर्व ही धर्म समाज कॉलेज के भौतिकी विभाग में अध्यापक का पद ग्रहण कर लिया था ।

सन् 1948 से अब तक श्रीवास्तव साहब मेरे सहयोगी भी रहे हैं और अभिभावक भी । उन्होंने मेरा मार्ग दर्शन किया है और जीवन में उन्नति करने की प्रेरणा दी है । इस बीच हम लोगोंने अपने साथी आचार्य मुरारीलाल, डॉ० मनोहरलाल गौड़, डॉ० गिरिराज किशोर गहराना, श्री शिवानी, डॉ० देवर्षि सनाढ्य और यतीन्द्र कुमार गर्ग के साथ अलीगढ़ में कितने ही साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन किया है । उत्तर प्रदेश साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन का आयोजन, श्री गोकुलचन्द्र शर्मा का अभिनन्दन और 'विश्व साहित्य' का प्रकाशन, हमारे साथियों के कुछ अभिनन्दनीय कार्य करे हैं । इन सभी साहित्यिक योजनाओं को सफल बनाने में श्रीवास्तव साहब का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । त्रैमासिक पत्रिता 'विश्व साहित्य' द्वारा हम लोगों ने विभाषी साहित्य को हिन्दी में रूपान्तरित करने का दुर्लभ कार्य प्रारम्भ किया था । इस पत्रिका की हिन्दी के सभी प्रमुख साहित्यकारों ने प्रशंसा की थी । इस पत्रिका में श्रीवास्तव साहब ने नियमित रूप से प्रसिद्ध अमेरिकन लेखक ओ० हेनरी की कहानियों के अनुवाद प्रकाशित कराये । सन् 1961 में मैं धर्म समाज कॉलेज छोड़कर अलीगढ़ विश्वविद्यालय में आ गया । पर इससे हमारे सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं आया । मेरे परिवार के प्रति उनका असीम प्रेम निरन्तर बना रहा और मेरे कार्यों में वे सदैव अभिरुचि दिखाते रहे ।

मेरे सदृश अनेक व्यक्तियों और परिवारों को श्रीवास्तव साहब का स्नेह मिला है । उनके सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्ति उनके प्रति श्रद्धा रखते हैं और उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं । उनके व्यक्तित्व में ऐसा आकर्षण है जो बरबस लोगों को उनकी ओर खींच लेता है । जो एक बार भी उनके सम्पर्क में आ जाता है वह उनसे प्रभावित हुए बिना रह सकता । आज के जीवन में पाये जाने वाले दम्भ और कपट से वे सदैव दूर रहे हैं । न उनमें छल है और न छोटापन । वे निरभिमान और निष्कपट हैं । उनके विचारों में उदारता, स्वभाव में विनम्रता और व्यवहर में शालीनता है । वे लोगों के लिए त्याग करना और उन्हें स्नेह देना जानते हैं बिना किसी प्रत्युपकार की अपेक्षा किए । इसीलिए लोग उनका आदर करते हैं और उनकी मित्रता को अपना सौभाग्य समझते हैं।

श्रीवास्तव साहब के व्यक्तित्व की छाप उनकी लेखनशैली पर भी पड़ी है । उनके स्वभाव के अनुरूप उसमें भी स्वाभाविकता और सरलता है । श्रीवास्तव साहब ने अपने अथक परिश्रम से अपनी भाषा शैली को परिमार्जित किया है और उसे सरल प्रवाहमयी बनाया है । भाषा की चमत्कारिता का इन्द्रजाल वह नहीं फैलाते । वह अधिकांश आम जनता की बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं । उनकी भाषा में प्रसाद गुण सर्वत्र है और विषय की स्पषटता की सतर्कता भी । उनका शब्द चयन सशक्त होता है । प्रत्येक शब्द को शुद्ध रूप में ग्रहण करना, अपेक्षित अर्थ में उसका प्रयोग करना, भावों के अनुकूल भाषा को संवारना श्रीवास्तव साहब की विशेषता है । छोटे-छोटे वाक्यों में अर्थ की

गम्भीरता लाकर अपने भावों को सरलता से प्रकट करने में सफल और सिद्धहस्त हैं । उपयुक्त उपमाओं और व्यंजनीय बिंबों द्वारा वे अनेक स्थलों पर अपनी सरल भाषा को काव्यात्मक बना देते हैं । वायु के महत्व का वर्णन कहते हुए वे लिखते हैं :–

"अगर पृथ्वी हवा की अपनी यह झिलमिल ओढ़नी न ओढ़े रहती तो आश्चर्य नहीं कि वह भी केवल एक बड़ा सा 'चाँद' ही होती—एकदम वीरान, बाँझ और सुनसान । कह नहीं सकते तब उसका चेहरा कैसा होता और किस दर्जे तक वह दिन में तपा करती तथा रात को ठिठुर जाया करती । यह हवा की ही देन समझिए कि उस मुसीबत से वह बची हुई है और उसका आँगन आज इतना हरा-भरा और आबाद है. । कोई अचरज नहीं कि हवा का अपना यह कीमती दुपट्टा फहराए हुए जब पृथ्वी आसमान में सूरज के आसपास चक्कर लगाती हुई दूसरे ग्रहों के बीच में शान से गुजरती होगी तो उसके मन में एक तरह की डाह ही पैदा होती होगी, यदि वे डाह कर पाते हों ।"

श्रीवास्तव साहब का हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य की अभिवृद्धि में बहुत ही महत्वपूर्ण योग रहा है । उन्होंने वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में उस समय लिखना प्रारम्भ किया था जब श्री रामदास गौड़, डॉ० सम्पूर्णानन्द, डॉ० गोरखप्रसाद, डॉ० सत्यप्रकाश ऐसे गिने-चुने व्यक्ति ही हिन्दी में लिखने की प्रतिभा और क्षमता रखते थे । अधिकांश भारतीय वैज्ञानिकों और विज्ञान के अध्यापकों को न तो हिन्दी में लिखने की योग्यता ही थी और न रुचि ही । उस वक्त तक सामान्य जन को विज्ञान की प्रगति से अवगत कराने का प्रयत्न नहीं के बराबर किया गया था । सर्व प्रथम श्रीवास्तव साहब ने ही अपने लेखों के माध्यम से जनता में विज्ञान की रुचि एवं जिज्ञासा उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया । उन्होंने साहित्य को 'रोमांटिक' धारा से हटा कर यथार्थवादी बनाने और जनसाधारण के समीप लाने का सफल प्रयत्न किया है । अपने मित्र प्रसिद्ध आलोचक श्री शिवदान सिंह चौहान के साथ श्रीवास्तव साहब ने एक पत्रिका का संपादन भी किया था । उनका विश्वास है कि विज्ञान के प्रचार द्वारा ही देश की पिछड़ी हुई जनता को अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता के दलदल से बाहर निकाला जा सकता है । अपने उद्देश्य का प्रतिपादन करते हुए वे एक स्थल पर लिखते हैं :–

"जीवन के प्रत्येक पहलू पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करना कदाचित् हम अभी तक सीख नहीं पाये हैं । जन साधारण के बीच जब तक वैज्ञानिक तथ्यों का स्पष्टीकरण सरल और सुबोध ढंग से नहीं किया जाता तब तक हम उन्हें रूढ़िवादिता के कीचड़ से बाहर निकालने में समर्थ नहीं हो सकते ।"

कॉलेज जीवन में श्रीवास्तव साहब को डॉ० गोरखप्रसाद से लिखने की प्रेरणा मिली । उनका सर्व प्रथम लेख "विज्ञान के रास्ते में धर्म" 'विशाल भारत' में 1936 ई० में प्रकाशित हुआ था । 'विशाल भारत' के सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी इस लेख के विषय की मौलिकता तथा सरल सुबोध भाषा से बहुत प्रभावित हुए थे । बाद में इसका जिक्र उन्होंने 'विज्ञान के साहित्यकार' स्तम्भ के अन्तर्गत् अगस्त 1968 के 'आजकल' में श्रीवास्तव साहब पर प्रकाशित अपने लेख में भी किया । इसके पश्चात् श्रीवास्तव साहब के लेख हिन्दी की सभी प्रमुख पत्रिकाओं- 'विशाल भारत', 'विश्वमित्र', 'सरस्वती', 'विज्ञान' आदि में प्रकाशित होते रहे । सन् 1938 में वाराणसी से 'साप्ताहिक आज' का प्रकाशन आरम्भ हुआ जिससे श्रीवास्तव साहब के ही सुझाव पर 'विज्ञान जगत' स्तम्भ प्रति सप्ताह दिया जाने लगा । इस स्तम्भ के लिये श्रीवास्तव साहब ने कई वर्ष तक नियमित रूप से लेख लिखे । सन् 1939 में प्रसिद्ध हिन्दी कवि प्रदीप के अग्रज श्री कृष्णवल्लभ द्विवेदी ने लखनऊ से 'हिन्दी विश्व-भारती' निकालना शुरू किया । यह एक उच्चकोटि की प्रत्रिका थी और इसमें 'भौतिक विज्ञान', 'रसायन विज्ञान', 'ज्योतिर्विज्ञान', 'भूगर्भ विद्या', 'मनोविज्ञान' आदि विषयों पर एक सुसंगठित योजना के अनुसार लेख प्रकाशित किए जाते थे । श्रीवास्तव साहब इसके दो स्तम्भों, 'भौतिक विज्ञान' और 'प्रकृति पर विजय' के सम्पादक रहे ।

सन् 1940 में श्रीवास्तव साहब की पहली पुस्तक 'विज्ञान के चमत्कार' प्रकाशित हुई । यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई और कुछ वर्षों ही में इसके चार संस्करण प्रकाशित हुए । सन् 1947 में उनकी दूसरी पुस्तक

'परमाणु-शक्ति' प्रकाशित हुई । परमाणु-शक्ति के रहस्योद्घाटन की पूर्व भूमिका क्या थी, पदार्थजगत् के गठन-विघटन की पहेलियाँ कैसे सुलझायी गयीं, परमाणु-बम के निर्माण के लिए किन-किन साधनों की आवश्यकता होती है, क्या हिरोशिमावाले बम से अधिक शक्तिशाली परमाणु-बम तैयार किये जा सकते हैं, तथा परमाणु-शक्ति के रचनात्मक उपयोग की सम्भावनाएँ क्या हैं, आदि प्रश्नों का इस पुस्तक में विशद् विवेचन और समाधान है ।

'विज्ञान की प्रगति' पुस्तक 1951 में प्रकाशित हुई । इसमें साहित्य, राजनीति, संस्कृति, युद्ध आदि क्षेत्रों पर आधुनिक विज्ञान के व्यापक प्रभाव की विवेचना है । आपने सन् 1953 में श्री अम्बिका प्रसाद सक्सेना के साथ 'विज्ञान और जीवन' पुस्तक लिखी जिस पर मध्यप्रदेश सरकार ने 500 रु० का पुरस्कार प्रदान किया । सन् 1956 में 'वायु की कहानी' प्रकाशित हुई । लघु आकार की इस पुस्तक में 'हवा' क्या है, वह किन-किन अवयवों से बनी है, कितनी दूर तक आसमान में उसका आवरण फैला है, उसके दबाव, वजन और गतिरोध के क्या माने हैं और मनुष्य ने किस सीमा तक उस पर विजय प्राप्त करली है आदि आवश्यक बातों से सरल और लोकरंजकशैली में परिचय कराया गया है । इसी वर्ष उनकी अन्य पुस्तक 'प्रगति के पथ' पर प्रकाशित हुई । सन् 1958 में 'घरेलू बिजली' जिसमें बिजली सम्बन्धी अनेक उपयोगी और व्यावहारिक बातों पर प्रकाश डाला गया है और 1959 ई० में 'आविष्कार कथा' प्रकाशित हुई । दोनों पुस्तकों को उत्तर प्रदेश सरकार ने पुरस्कृत किया । जामिया मिलिया, नई दिल्ली ने यूनेस्को की आर्थिक सहायता से श्रीवास्तव साहब की छः पुस्तकें, 'सूर्य का परिवार' (1959), 'चाँद' (1959), 'यात्रा के साधन' (1959), 'जब कुछ भी न था' (1960), 'आकाश की बातें' (1961) और 'कुदरत का कारखाना' (1961), नव-शिक्षित प्रौढ़ों के लिये प्रकाशित कीं। 1962 में उनकी 'आविष्कार जगत' और 1964 में 'पृथ्वी और आकाश' पुस्तकें छपीं ।

1967 में भारत सरकार के नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के तत्वावधान में श्रीवास्तव साहब की प्रसिद्ध पुस्तक 'अंतरिक्ष यात्रा' प्रकाशित हुई । पौराणिक गाथाओं के युग से चलकर मानव आज राकेट तथा स्पूतनिक युग तक कैसे पहुँचा, चाँद-सितारों तक मनुष्य क्यों पहुँचना चाहता है, भू-उपग्रह अपनी कक्षा में एक अरसे तक कैसे टिके रहते हैं, इन सभी प्रश्नों का विशद विवेचन इस पुस्तक में हैं । यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई और इसके अनुवाद तेलुगु तथा मराठी भाषा में हुए हैं ।

आगरा से प्रकाशित 'विज्ञान लोक' मासिक का सम्पादन आपने कई वर्ष तक किया और बाद में इलाहाबाद की मासिक पत्रिका 'विज्ञान जगत' के आप संयुक्त संपादक रहे । अपने संपादन काल में आपने वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लिखने के लिए अनेक नवयुवकों को प्रोत्साहित किया।

हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की समृद्धि में श्रीवास्तव साहब ने महत्वपूर्ण योगदा दिया है । यही नहीं उन्होंने जन-साधारण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने और वैज्ञानिक शिक्षण द्वारा समाज की रूपरेखा में समुचित परिवर्तनों का समावेश करने की प्रेरणा भी दी । आज यदि हमे मानवजाति को नष्ट होने से बचाना है तो आवश्यक हो जाता है कि हम विज्ञान की प्रगति के अनुरूप अपनी मान्यताओं को बदलें और रूढ़िवादी परम्पराओं के दल-दल से निकल विज्ञान द्वारा उपलब्ध प्रसाधनों तथा उपकरणों के अनुकूल अपने विचारों और समाज की रूपरेखा में परिवर्तन करें । श्रीवास्तव साहब ने अपने लेखों द्वारा जन-साधारण को विज्ञान के न्यूनतम अनुसन्धानों से अवगत करा कर उन्हें यह समझ दी है कि वे इन आविष्कारों को संहारात्मक कार्यों में प्रयुक्त होने से रोक सकें । हमारे देशवासियों को श्रीवास्वतव साहब की यह सबसे बड़ी देन है ।

इस सत्र के अन्त में श्रीवास्तव साहब धर्मसमाज कॉलेज से अवकाश प्राप्त कर अपने नगर आजमगढ़ जा रहे हैं । मुझे लगता है कि मैं अपने उदार अभिभावक और सहृदय पथ-प्रदर्शक से बिछुड़ रहा हूँ । पर मुझे विस्वास है कि वे जहाँ भी रहें हमें उन्नतिशील होने की प्रेरणा देते रहेंगे और हमारा मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे ।

(धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़, 'प्रदीप' से साभार)

■■■

प्रोफेसर श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

डॉ० मनोहर लाल गौड़

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़

कॉलेज के भौतिक विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव इस सत्रान्त में अपनी सेवा से अवकाश ले रहे हैं । इस संस्था में आपकी सेवाओं का एक युग बनता है । सन् 1947 से जून 1974 तक 27 वर्ष, शताब्दी के एक चरण से अधिक आपने संस्था में कार्य किया है । अध्यापन के अतिरिक्त विभाग के प्रबन्ध का कार्य-भार प्रारम्भ से ही आप पर रहा है । इस अन्तराल में भौतिकी विभाग में जो परिवर्तन, परिवर्धन हुए हैं, श्रीवास्तव साहब का उसमें अभिनंदनीय कृतित्व रहा है । संस्था और विभाग के इतिहास में वह एक स्मरणीय अध्याय है । उसे न विभाग भुला सकेगा न संस्था ही ।

आपका जन्म आज़मगढ़ नगर में सन् 1911 में हुआ । पिता श्री जगपतलालजी नगर के गण्य-मान्य नागरिक थे । उन्होंने जो कौटुम्बिक शिष्टता की संस्कृति परिवार में बनाई होगी उसके चिन्ह श्रीवास्तव साहब के व्यवहार में लक्षित होते हैं । आपकी शिक्षा अधिकतर इलाहाबाद में हुई । इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् 1935 तक आपने बी० एस-सी० और एम० एस-सी० परीक्षाएँ उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण करलीं । वहीं से एल० एल० बी० की परीक्षा भी आपने पूरी की । अपने नगर में थोड़े समय तक वकालत भी करते रहे पर उसमें आपको मानसिक संतोष नहीं मिला । फलस्वरूप उसे छोड़कर सन् 1939 में आपने किशोरीरमण कॉलेज, मथुरा के भौतिकी विभाग में प्रवक्ता के रूप में नियुक्ति ले ली । वहाँ थोड़े समय ही कार्य किया और फिर दिल्ली चले गए । वहाँ लगभग तीन वर्ष तक कार्य करने के अनन्तर सन् 1947 में धर्म समाज कॉलेज के भौतिकी विभाग में प्रवक्ता पद पर चले आए । दिवंगत प्रोफेसर आर० एस० भार्गव के बाद आप विभाग के अध्यक्ष बने । 27 वर्ष की निरन्तर कर्तव्य परायण, उज्ज्वल सेवा के बाद सत्रान्त में आप स्नातकोत्तर भौतिकी विभाग के अध्यक्ष के रूप में सेवावकाश ले रहे हैं ।

प्रोफेसर श्रीवास्तव का अध्यापक जीवन सदा प्रशंसा का पात्र रहा । विभाग का स्नातकोत्तर उन्नयन आपके ही अध्यक्षता-काल में हुआ । उसे उच्च स्तर पर साधन संपन्न बनाने का कार्य आप ही के हाथों में हुआ । इसके अतिरिक्त कॉलेज के प्रबंध संबंधी अनेक कार्यों का भार आपने संभाला है । दीर्घकाल तक क्रीड़ा विभाग के प्रभारी प्रोफेसर रहे, छात्रावास के वार्डन एक लम्बी अवधि तक रहे, पिछले अनेक वर्षों से कॉलेज पत्रिका के प्रधान संपादक आज तक हैं ।

कार्य की नियमितता आपके स्वभाव का सहज गुण है । कार्य करते हुए न कभी आप घबड़ाते हैं और न उसमें शिथिलता आने देते हैं । व्यवस्था आपकी कार्य-पद्धति को सौन्दर्य प्रदान करती है । बौद्धिकता आपके स्वभाव का प्रमुख गुण है । इसलिए अध्यापन-लेखन जैसे बुद्धिजीवी व्यवसाय में आप सफल रहे हैं ।

श्रीवास्तव साहब के जीवन का एक और पक्ष है, जो पहले से अधिक प्रशस्य और महनीय है । यह विज्ञान के विविध पदों पर हिन्दी के लेखनकार्य का । यह आपकी जीवनव्यापी साधना है जो अध्ययनकाल से चल रही है । आपका जन्म ऐसे क्षेत्र में हुआ जिसकी वायु में हिन्दी सेवा

की प्रेरणा सुरभि बनकर समा गई है । आजमगढ़ ने हरिऔध, राहुलजी, कविवर श्यामनारायण पाण्डेय जैसी विभूतियों को जन्म दिया है । आपने उसी प्रेरणा से विज्ञान के छात्र होकर भी हिन्दी भारती की सेवा का व्रत लिया । विज्ञान के विविध विषयों पर निबंधलेखन, पुस्तक प्रणयन, की विज्ञान की प्रसिद्ध महत्वपूर्ण पुस्तकों के अनुवाद कार्य, रेडियो आदि पर वार्ताप्रसारण, विज्ञान की हिन्दी पत्रिकाओं के संपादन आदि अनेक कार्यों में आप सफलतापूर्वक व्यस्त रहे हैं । आपका यह कार्य विज्ञान के प्रचार-प्रसार, हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि और राष्ट्र की सेवा आदि विविध दृष्टियों से इतना महत्वपूर्ण है कि इस पर एक पृथक लेख लिखकर ही न्याय किया जा सकता है ।

हिन्दी के प्रसिद्ध चरित लेखक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'आजकल' पत्रिका के अपने एक लेख में श्रीवास्तव साहब को विज्ञान का साहित्यकार बताया है । उन्होंने लिखा है कि इस समय भारतीय राष्ट्र की यह बड़ी आवश्यकता है कि विज्ञान के बढ़ते हुए रूप से शिक्षित समाज अधिकाधिक परिचित हो । इससे समाज का न केवल लोकोपयोगी ज्ञान बढ़ेगा अपितु राष्ट्र की संस्कृतिमें परिवर्तन आएगा । रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से जो हमारा अन्तर्मन जड़ीभूत हो गया है उसे प्रकाश मिलेगा । जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण वैज्ञानिक बनेगा । यह तभी हो सकता है जबकि विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों को सरस और सरल शैली के माध्यम से सामान्य शिक्षित समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जाय । श्रीवास्तव साहब की लेखन साधना इस लक्ष्य की पूर्ति करती है ।

आपने जिन पुस्तकों का प्रणयन किया है उनके नाम प्रकाशकों के नामों के साथ इस प्रकार हैं :—

- विज्ञान के चमत्कार, ज्ञान मण्डल, वाराणसी ।
- विज्ञाग प्रगति, ज्ञान मण्डल, वाराणसी ।
- परमाणुशक्ति, ज्ञान मण्डल, वाराणसी ।
- घरेलू बिजली, ज्ञान मण्डल, वाराणसी ।
- आविष्कार कथा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- विज्ञान और जीवन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- आविष्कार जगत, बाल साहित्य मंदिर, कानपुर, अलीगढ़ ।
- वायु की कहानी, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ।
- पृथ्वी और आकाश, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़।
- अंतरिक्ष यात्रा, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
- यात्रा के साधन, जामिया मिलिया के तत्वावधान में यूनेस्को के सहयोग से प्रकाशित ।
- सूर्य परिवार

इनमें, घरेलू बिजली, और आविष्कार कथा पुस्तकों पर उत्तर प्रदेश सरकार के और विज्ञान और जीवन, पर मध्य प्रदेश सरकार के पुरस्कार लेखक को मिले हैं । आपकी पुस्तक 'अंतरिक्ष यात्रा' के मराठी एवं तेलुगु भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं, तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो रहे हैं । आपकी पुस्तक 'भौतिक विज्ञान' उत्तर प्रदेश बोर्ड की इन्टर कक्षाओं के लिए और 'प्रगति के पथ पर' हाई स्कूल के लिए स्वीकृत हैं, 'सरल भौतिक विज्ञान' मध्य प्रदेश बोर्ड द्वारा हाई स्कूल के लिए स्वीकृत है । आपकी लेखनशैली में विचारों की स्पष्टता और भाषा की स्वच्छ सरलता ऐसे गुण हैं कि ये पुस्तकें छात्रों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं ।

हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश के तत्वावधान में आपने 'लाइट एण्ड कलर' पुस्तक का 'प्रकाश और वर्ण' नाम से तथा 'इलैक्ट्रिसिटी एण्ड मैगनेटिज़म' का 'विद्युत एवं चुंबकत्व' नाम से अनुवाद किया है । केन्द्रीय निर्देशालय, नई दिल्ली के तत्वावधान में डॉ० दौलतसिंह कोठारी की पुस्तक ''न्यूक्लियर एक्सप्लोजन्स एण्ड देयर इफ़ैक्ट्स'' के हिन्दी अनुवाद का पुनरीक्षण भी आपने किया है ।

प्रोफेसर श्रीवास्तव के वैदुष्य का तीसरा पक्ष लेखों का

है जो आरम्भ से भी 'हिन्दी विश्वभारती, लखनऊ' 'विश्वकोश, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी', 'सरस्वती', 'हिन्दुस्तान साप्ताहिक', 'विश्वमित्र', 'नवभारत टाइम्स', 'विज्ञान प्रगति', 'आज', 'नवनीत' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं । 'विज्ञान लोक' (आगरा) और 'विज्ञान जगत', इलाहाबाद के आप संपादक भी रहे हैं । अभी पिछले वर्षों में आगरा विश्वविद्यालय ने विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकों की अनुवाद-योजना का आपको अवैतनिक विशेष अधिकारी नियुक्त किया था और उसका समस्त कार्य आपकी देख-रेख में चला ।

इस प्रकार श्रीयुत श्रीवास्तव की बौद्धिक साधना, व्यापक लोकोपकारी कार्य अपने क्षेत्र में पूर्ण सफल रही है। उनके लेखन से हिन्दी भाषा और उसके बोलने वालों का बड़ा उपकार हुआ है । साथ ही विज्ञान का, विशेषकर भौतिक विज्ञान का प्रचार-प्रसार हुआ है । आपके अध्यापन और लेखन ने उपकार्य-उपकारक होकर एक दूसरे को सफल बनाया है । श्रीवास्तव साहब यदि अपने विगत जीवन के उस मोड़ को मुड़कर देखें जब उन्होंने वकालत छोड़कर अध्यापक वृत्ति स्वीकार की थी तो मेरे विचार से, वे अपनी स्थिति से प्रसन्न ही होंगे ।

पारिवारिक जीवन में भी आप पूर्ण सफल हैं । उस ओर के आपके दायित्व लगभग पूरे हो चुके हैं । आपके दो पुत्र इन्जीनियर हैं और राजकीय सेवा के उच्चपदों पर कार्य कर रहे हैं । दोनों बड़े शिष्ट, विनीत और कर्तव्य-परायण हैं । बड़ी लड़की गृहस्थी में है, छोटी उच्च कक्षा की छात्रा है । धर्मपत्नी छाया की भाँति सदा आपके साथ रहकर जीवन का संबल बनी हैं । उनके संतुलित स्नेहपूर्ण व्यवहार ने आपने मार्ग को जहाँ सुविधापूर्ण बनाया है वहाँ परिवार में शिष्ट मर्यादा का वातावरण भी सृष्ट किया है ।

आपके व्यवहार में अकृत्रिम बौद्धिकता और स्निग्धता का ऐसा सामंजस्य है कि वह आपके व्यक्तित्व को प्रिय और आदरणीय बना देता है । हिन्दी की प्रगति में आपकी विशेष रुचि है । हिन्दी के अनेक गण्य-मान्य कवियों और लेखकों से आपके व्यक्तिगत मैत्री के संबंध हैं । आपके व्यक्तित्व का सबसे अधिक उल्लेखनीय गुण कार्यपरता है । देखने में कृशकल्प शरीर मशीन की भाँति संयमित और योजनाबद्ध होकर कार्य करता रहता है । अप्रासंगिक अनुपयोगी न आप चिन्तन करते हैं न कर्म, इससे एक ओर अनावश्यक झमेलों से बचे रहते हैं तो दूसरी ओर हाथ में लिया कार्य सहज रूप से पूर्ण हो जाता है । मनुष्य की सीमित क्षमता के लिये अभीष्ट सफलता पाने का संभवतः यही मार्ग सही है ।

अवकाश ग्रहण करने के बाद सारा समय आपका अपना होगा और वह लेखन कार्य में लगेगा । हमें पूर्ण आशा है कि भविष्य में आपकी लेखनी से और अधिक महत्वपूर्ण रचनाएँ सृष्ट होंगी । हिन्दी भारती का कोष उनसे समृद्ध बनेगा और विज्ञान शिक्षित समाज में प्रसार पायेगा ।

भगवान आपको स्वस्थ और चिरायु रखें । हमारा हार्दिक कृतज्ञतापूर्ण अभिनन्दन ।

[धर्मसमाज कॉलेज, अलीगढ़ की पत्रिका 'प्रदीप' से साभार।] (संभवतः 1974-75)

आज़मगढ़ की साहित्यिक विरासत

श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

आज़मगढ़ की साहित्यिक विरासत श्रृंखला के 19वें चरण में प्रसिद्ध विद्वान प्रो० भगवती प्रसात श्रीवास्तव का जीवन एवं साहित्यिक परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । श्रीवास्तव जी हिन्दी में प्रथम विज्ञान लेखक के रूप में अभिहित हैं । उन पर यह लेख पं० बनारसी दास चतुर्वेदी के 'आजकल' अंक अगस्त 1968 तथा डॉ० मनोहर लाल गौड़ एवं डॉ० हरीश रायजादा के 'प्रदीप' में प्रकाशित लेखों के आधार पर तैयार किया गया है । इन्हें उपलब्ध कराने के लिए श्री जगदीश प्रसाद बरनवाल 'कुन्दजी' का मैं अत्यन्त आभारी हूँ. । –एस० एस० यादव, सम्पादक "समीक्षा" एवं राजभाषा अधिकारी

हिन्दी में विज्ञान साहित्य के प्रथम प्रणेता प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव का जन्म आज़मगढ़ नगर के पाण्डेय बाजार मुहल्ले में 1 जुलाई 1911 को हुआ था । उनके पिता श्री जगपति लाल जी नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक थे । सन् 1928 में वेस्ली हाई स्कूल; आज़मगढ़, जिसकी गणना उस समय प्रदेश के बहुत अच्छे विद्यालयों में होती थी, से हाई स्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के बाद उच्च शिक्षा हेतु वे इलाहाबाद चले गये । बाल्यकाल में ही बंकिम चन्द्र के उपन्यास एवं भारत-भारती के माध्यम से हिन्दी के प्रति विशेष रूचि उनके हृदय में उत्पन्न हुई थी । सौभाग्यवश हाई स्कूल में योग्य विज्ञान-शिक्षक मिलने पर विज्ञान के प्रति रुचि जागृत हुई । इण्टरमीडिएट में विज्ञान के प्रवेश लेने के बाद उन्हें मानसिक संघर्ष के दौर से गुजरना पड़ा । कारण कि वे हिन्दी पढ़ना चाहते थे जबकि विज्ञान के विद्यार्थियों को उस समय हिन्दी नहीं पढ़ायी जाती थी । अन्ततः उन्होंने निर्णय लिया का कॉलेज में विज्ञान विषय ही लें तथा हिन्दी का अध्ययन घर पर करें । कॉलेज अमेरिकन मिशन द्वारा संचालित होता था; अतः पुस्तकालय में 'पापुलर साइन्स' 'सायन्टिफिक अमेरिकन' आदि वैज्ञानिक पत्रिकाओं के अध्ययन का अवसर उन्हें मिलता था । इसके अतिरिक्त विज्ञान विभाग के तत्वावधान में कॉलेज में ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० एस० दत्त आदि प्रोफेसरों के वैज्ञानिक विषयों पर सरल अंग्रेजी में व्याख्यान होते रहते थे । उन विद्वानों के विषय प्रतिपादन की शैली से भगवती प्रसाद जी बहुत प्रभावित हुए । तभी से उनके मस्तिष्क में ये विचार उत्पन्न होने लगे कि यदि हिन्दी में भी जन सुलभ शैली में 'अखिल ब्रह्माण्ड में जीवन की खोज' 'सापेक्षिकता के सिद्धान्त' आदि विषयों पर लेख लिखे जाते तो हिन्दी भाषियों को कितना लाभ होता ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० एस- सी० में प्रवेश लेने पर डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० सत्य प्रकाश तथा प्रो० शालीग्राम के निकट सम्पर्क में आये, जिसके फलस्वरूप लोक विज्ञान के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता गया । अतः विज्ञान परिषद् के कार्यकलापों में उनकी रुचि बढ़ी । उन्हीं दिनों प्रो० रामदास गौड़ का सान्निध्य उन्हें मिला, जिन्होंने इस दिशा

में विशेष मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन दिया । इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1933 में बी० एस-सी० आनर्स तथा 1935 में एम० एस-सी० करने के बाद वे इविंग-क्रिश्चियन कॉलेज में अध्यापक हो गये । लेकिन 1 वर्ष ही अध्यापन छोड़कर पुनः एल० एल० बी० में प्रवेश ले लिया तथा 1938 में एल० एल० बी० करके गृह नगर आज़मगढ़ में वकालत करने लगे । विज्ञान की शिक्षा के प्रति रुझान के कारण उन्हें वकालतके पेशे में मानसिक संतुष्टि नहीं मिली । अतः 1939 में वे किशोरी रमण इण्टर कॉलेज, मथुरा में भौतिक विभाग में प्रवक्ता हो गये । वहाँ लगभग 3 वर्ष तक पढ़ाने के बाद वे दिल्ली चले गये । पुनः 1947 में धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ में भौतिक विभाग में प्रवक्ता नियुक्त हो गये जहाँ 27 वर्षों तक निरन्तर सेवा करते हुए 1974 में विभागाध्यक्ष के पद से सेवावकाश लिये । तब से आज़मगढ़ (वर्तमान में लखनऊ) में रहते हुए अपना लेखन कार्य जारी रखे हुये हैं ।

बाल्यकाल से ही श्रीवास्तवजी के हृदय में हिन्दी के प्रति गहन रुचि पैदा हो गई थी । इविंग क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद में अध्यापन के दौरान डॉ० सत्यप्रकाश एवं डॉ० गोरख प्रसाद से हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के लेखन के सम्बन्ध में विचार-विमर्श का अवसर मिला तथा उन्हीं लोगों की प्रेरणा से उन्होंने हिन्दी में जनोपयोगी वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखना प्रारम्भ किया । विज्ञान के रास्ते में धर्म नाम से अपना पहला लेख उन्होंने सन् 1936 में सशंकित मन से 'विशाल भारत' को भेजा था । उसके तत्कालीन सम्पादक श्री बनारसी दास चतुर्वेदी द्वारा लेख की स्वीकृति का पत्र पाकर उनमें इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए काफी आत्मविश्वास पैदा हुआ । उक्त लेख विशाल भारत के अक्टूबर 1936 अंक में प्रकाशित हुआ । लेख प्रकाशित होते ही मित्रों तथा अन्य लोगों से उन्हें बधाई मिलने लगी जिसने लेखन कार्य जारी रखने की प्रेरणा तथा शक्ति दी । श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने 'आजकल' के अगस्त 1968 अंक में अपने लेख में लिखा है कि 6 अगस्त 1936 की एक शाम को 'विशाल भारत' कार्यालय में अपने सम्पादकीय कक्ष में डाक देख रहा था कि एक नये लेखक की रचना सर्वथा नवीन विषय पर मिली । विषय की मौलिकता तथा लेखक की सरल सुबोध भाषा से मैं विशेष रूप से प्रभावित हुआ । लेख था 'विज्ञान के रास्ते में धर्म' तथा लेखक थे 'श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव' । उक्त लेख प्रकाशित होने पर प्राप्त प्रोत्साहनों ने उन्हें इस विषय पर निरन्तर लिखने हेतु प्रेरित किया, परिणामतः भूगोल, विज्ञान (इलाहाबाद), विश्वमित्र (कलकत्ता), माधुरी, सुधा आदि में नियमित रूप से वैज्ञानिक विषयों पर उनके लेख छपने लगे । 1938 में वाराणसी से 'आज साप्ताहिक' का प्रकाशन शुरू हुआ तो उनके सुझाव पर उसमें 'विज्ञान जगत' नामक स्तम्भ प्रारम्भ हुआ । इस स्तम्भ के लिए कई वर्षों तक वे लेख लिखते रहे । इन्हीं दिनों पं० श्री 'नारायण चतुर्वेदी' के सम्पादन में अंग्रेजी के 'बुक आफ जनरल नालेज' के ढंग के ज्ञानकोश हिन्दी विश्व-भारती' का प्रकाशन शुरू हुआ तो उसके भौतिक विज्ञान तथा 'प्रकृति पर विजय' स्तम्भों के लिये लेख लिखने का भार उन्हें सौंपा गया । इस अभिनव प्रकाशन में उन्हें डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी, डॉ० एस० सी० वर्मा जैसे विद्वानों का सहयोग मिलता रहा । बाह्य रूप-रंग तथा अंतरंग सामग्री दोनों ही की कसौटी पर 'हिन्दी विश्वभारती' ऐसी खरी उतरी कि प्रकाशन शुरू होने के कुछ ही माहों में उसका नाम घर-घर में चर्चित हो गया । प्रकाण्ड शिक्षा-शास्त्रियों तथा विद्वानों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ।

1940 में ज्ञान मंडल वाराणसी से उनकी प्रथम पुस्तक 'विज्ञान के चमत्कार' प्रकाशित हुई, जिसमें साप्ताहिक आज में छपे उनके 42 लेखों का संकलन है । भगवती प्रसादजी ने इसके विषय में स्वयं लिखा है-- ''इस पुस्तक के प्रकाशन के पीछे उद्देश्य यह था कि हिन्दी भाषी जनता के अन्दर विज्ञान के प्रति अभिरुचि उत्पन्न की जा सके, क्योंकि विज्ञान सम्बन्धी जानकारी हासिल करना वांछनीय तो है ही, साथ ही आत्म संस्कृति के लिये उससे अधिक आवश्यक है कि इस अखिल ब्रह्माण्ड के प्रति एक कुतूहलपूर्ण दृष्टिकोण उत्पन्न करना ।''

हिन्दी जगत ने इस पुस्तक को भरपूर अपनाया । पंजाब, बिहार, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के विद्यालयों की हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए बनी हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में 'विज्ञान के चमत्कार' से अनेक निबन्ध संकलित किये गये । उत्तर प्रदेश की हाई स्कूल परीक्षा के हिन्दी प्रश्न-पत्र में कई बार उनकी जीवनी एवं कृतित्व पर प्रश्न पूछे गये ।

सन् 1947 में जब धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ में आ गये तो विज्ञान लेखन के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय उन्हें मिलने लगा । अतः 1948 में उनकी पुस्तक 'परमाणु-शक्ति' प्रकाशित हुई जो इस विषय पर हिन्दी की पहली पुस्तक है । परमाणु शक्ति के रहस्योद्घाटन की पूर्व भूमिका क्या थी, पदार्थ जगत के गठन-विघटन की पहेलियाँ कैसे सुलझायी गई, परमाणु बम के निर्माण के लिए किन-किन साधनों की आवश्यकता होती है, क्या हिरोशिमा वाले बम से अधिक शक्तिशाली बम तैयार किये जा सकते हैं तथा परमाणु शक्ति के रचनात्मक उपयोग की क्या सम्भावनायें हैं, आदि प्रश्नों का इस पुस्तक में विशद विवेचन व समाधान है । उस समय तक हिन्दी में तकनीकी शब्दावली उपलब्ध न थी । अतः अनेक तकनीकी शब्द उन्होंने स्वयं बनाये जो आज जनमानस में अपना स्थान बना चुके हैं । इसके बाद थोड़े-थोड़े अन्तराल पर 'विज्ञान-प्रगति' तथा 'घरेलू बिजली' नामक पुस्तकें प्रकाशित हुईं । 'घरेलू बिजली' नामक पुस्तक उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हुई । सन् 1959 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से 'आविष्कार कथा' प्रकाशित हुई । इस पुस्तक को भी उत्तर-प्रदेश सरकार ने पुरस्कृत किया । तदुपरान्त केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विभाग से प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ ''ज्ञान-सरोवर'' में प्राकृतिक विज्ञान के कई विषयों पर लेख लिखने का दायित्व उन्हें सौंपा गया तथा नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी से केन्द्र सरकार के अनुदान से प्रकाशित होने वाले संदर्भ ग्रन्थ - 'हिन्दी विश्व कोश' के लिए भी अनेक लेख उन्होंने लिखे । हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश के अनुरोध पर उन्होंने प्रो० एम० मिनर्ट द्वारा 'लाइट एण्ड कलर' नामक 500 पृष्ठों की भौतिकी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद किया, जो 'प्रकाश और वर्ण' नाम से प्रकाशित हुई ।

सन् 1967 में 'नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इंडिया' द्वारा उनकी 'अन्तरिक्ष-यात्रा' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई । इसमें अन्तरिक्ष विज्ञान के सभी पहलुओं का सरल एवं सुबोध शैली में विवेचन किया गया है । पौराणिक गाथाओं से चलकर मानव आज राकेट तथा स्पुतनिक युग तक कैसे पहुँचा ? चाँद-सितारों तक मनुष्य क्यों पहुँचना चाहता है ? भू-उपग्रह अपनी कक्षा में एक अरसे तक कैसे टिके रहते हैं ? इन सभी प्रश्नों का विशद विवेचन इस पुस्तक में है । यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि इसका मराठी, गुजराती, उर्दू, तेलुगु एवं पंजाबी में संस्करण भी प्रकाशित किये गये । आगरा से प्रकाशित मासिक प्रत्रिका 'विज्ञान-लोक' तथा इलाहाबाद से प्रकाशित 'विज्ञान जगत' के सम्पादक भी वे कई वर्षों तक रहे । उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के तत्वावधान में विश्वविद्यालय की अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकों के हिन्दी अनुवाद कार्य के प्रवर्तक के निमित्त आगरा विश्वविद्यालय के अवैतनिक विशेष अधिकारी के पद पर 3 वर्ष तक उन्होंने कार्य किया । 'इलेक्ट्रीसिटी एण्ड मैग्नेटिज्म' नामक भौतिक विज्ञान की पुस्तक का 'विद्युत और चुम्बकत्व' नाम से हिन्दी अनुवाद उन्होंने किया, जो हिन्दी संस्थान उ० प्र० से प्रकाशित हुई । उन्होंने डॉ० डी० एस० कोठारी की पुस्तक 'न्यूक्लीपर एक्सप्लोजेन्स एण्ड देयर इफेक्ट्स' के हिन्दी अनुवाद का पुनरीक्षण भी किया है । विश्वभारती लखनऊ द्वारा प्रकाशित पुस्तक श्रृंखला तथा नागरी प्रचारणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित विश्वकोश के विज्ञान विषयक लेखों के सहयोगी लेखक भी वे रहे हैं । उनकी 'विज्ञान और जीवन' नामक पुस्तक मध्य प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत की जा चुकी है । हिन्दी में विज्ञान लेखन के प्रति की गई उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए 23 जनवरी 1977 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन दिल्ली के तत्वावधान में आयोजित सम्मेलन में तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री एवं प्रसिद्ध विद्वान डॉ० कर्ण सिंह द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया । इसी तरह 'विज्ञान परिषद्' इलाहाबाद ने भी सितम्बर 1983 में उन्हें सम्मानित किया ।

हिन्दी के विज्ञान विषयक साहित्य की वृद्धि में श्रीवास्तवजी का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है । उन्होंने वैज्ञानिक विषयों पर उस समय लिखना प्रारम्भ किया जब श्री रामदास गौड़, डॉ० सम्पूर्णानन्द, डॉ० गोरखप्रसाद तथा डॉ० सत्यप्रकाश जैसे गिने चुने व्यक्ति ही हिन्दी में लिखने की प्रतिभा और क्षमता रखते थे । अधिकांश भारतीय वैज्ञानिकों तथा विज्ञान के अध्यापकों को न तो हिन्दी में लिखने की योग्यता थी और न रुचि ही । इस समय तक सामान्य जन को विज्ञान की प्रगति से अवगत कराने का प्रयास नहीं के बराबर किया गया था । सर्वप्रथम श्रीवास्तव जी ने ही अपने लेखों के माध्यम से जनता में विज्ञान के प्रति रुचि एवं जिज्ञासा उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया ।

उन्होंने साहित्य को रोमांटिक धारा से हटाकर यथार्थवादी बनाने और जन साधारण के समीप लाने का सफल प्रयास किया । प्रसिद्ध हिन्दी आलोचक श्री शिवदान सिंह चौहान के साथ मिलकर एक पत्रिका का सम्पादन भी किया । उनका विश्वास था कि विज्ञान के द्वारा ही देश की पिछड़ी हुई जनता को अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता के दल-दल से बाहर निकाला जा सकता है । अपने उद्देश्य का प्रतिपादन करते हुये वे लिखते हैं-- "जीवन के प्रत्येक पहलू पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करना कदाचित हम अभी तक सीख नहीं पाये हैं । जन साधारम के बीच जब तक वैज्ञानिक तथ्यों का स्पष्टीकरण तथ्यों का स्पष्टीकरण सरल और सुबोध ढंग से नहीं किया जाता, तब तक हम उन्हें रूढ़िवादिता के कीचड़ से बाहर निकालने में समर्थ नहीं हो सकते ।"

श्रीवास्तवजी के व्यक्तित्व एवं लेखन पर प्रकाश डालते हुए उनकें सहयोगी डॉ० हरीश रायजादा ने लिखा है —

"डॉ० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव के व्यक्तित्व में ऐसा आकर्षण है जो लोगों को बरबस अपनी ओर खींच लेता है । एक बार भी जो उनके सम्पर्क में आता है, प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता । वह हमेशा श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से ही उन्हें देखता है । आज के जीवन में पाये जाने वाले दम्भ व कपट से वे सदैव दूर रहे हैं । उनमें न छल है और न छोटापन । वे निरभिमान और निष्कपट हैं । उनके विचारों में उदारता, स्वभाव में विनम्रता तथा व्यवहार में शालीनता है । वे लोगों के लिये त्याग तथा उन्हें स्नेह देना जानते हैं बिना किसी प्रत्युपकार की अपेक्षा किए । उनके इस व्यक्तित्व की छाप उनकी लेखन शैली पर भी पड़ी है । उनकी लेखन शैली में स्वाभाविकता और सरलता है । अपने अथक परिश्रम से उन्होंने भाषा शैली को परिमार्जित किया तथा सरल व प्रवाहमय बनाया । भाषा की चमत्कारिकता का इन्द्रजाल वे नहीं बुनते, बल्कि आम जनता की बोल-चाल की भाषा का ही अधिकांशतः प्रयोग करते हैं । उनकी भाषा में प्रसाद गुण तथा विषय की स्पष्टता की सतर्कता सर्वत्र है । उपमाओं और व्यंजनाओं विम्बों द्वारा अनेक स्थलों पर वे अपनी सरल भाषा को काव्यात्मक बना देते हैं । वायु के महत्व का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं —

"अगर पृथ्वी हवा की अपनी यह झिलमिल ओढ़नी न ओढ़े रहती तो आश्चर्य नहीं कि वह भी केवल एक बड़ा सा चाँद ही होती -- एकदम वीरान, बांझ और सूनसान । कह नहीं सकते तब उसका चेहरा कैसा होता और किस दर्जे तक वह दिन में तपा करती तथा रात को ठिठुर जाया करती । यह हवा की ही देन समझिये कि उस मुसीबत से वह बची हुई है और उसका आंगन आज इतना हरा भरा और आबाद है । कोई अचरज नहीं कि हवा का अपना यह कीमती दुपट्टा फहराये हुये जब पृथ्वी आसमान में सूरज का चक्कर लगाती हुई दूसरे ग्रहों के बीच से शान से गुरजरती होगी तो उनके मन में एक तरह की डाह ही पैदा होती होगी, यदि वे डाह कर पाते हों ।"

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने आजकल के अगस्त 1968 में प्रकाशित अपने लेख में लिखा है -- "श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव की शैली ज़नता की शैली है । उन्होंने उसे टेक्निकल शब्दों और सूत्रों से बोझिल नहीं किया । हाइड्रोजन बम, राडार, कास्मिक रश्मियों सरीखे जटिल विषयों की व्याख्या सरल, सुबोध भाषा में की है । आवशयकतानुसार उर्दू, अरबी, फारसी के शब्दों का भी प्रयोग उन्होंने अपने लेखों में किया है । उनका चयन सशक्त होता है । प्रत्येक शब्द को शुद्ध रूप में ग्रहण करना, अपेक्षित अर्थ में उसे प्रयोग करना, भावों के अनुकूल भाषा को संवारना श्रीवास्तव जी की विशेषता है । छोटे-छोटे वाक्यों में अर्थ की गम्भीरता को लाकर अपने भावों को सरलता से प्रकट करने में वे सफल और सिद्ध-हस्त हैं ।"

श्रीवास्तवजी विज्ञान लेखन में हिन्दी के प्रति किस सीमा तक समर्पित रहे हैं इसकी झलक उनकी विज्ञान की प्रगति (वर्ष 1951) नामक पुस्तक में प्रस्तुत निबन्ध 'हमारा वैज्ञानिक साहित्य' में व्यक्त उनके विचार से स्पष्ट होता है -- 'उपन्यास, काव्य, राजनीति, कहानी, इतिहास, आदि विषयों पर प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की संख्या के सामने वैज्ञानिक पुस्तकों की संख्या लगभग नहीं के बराबर है । जिन लोगों को विज्ञान से दिलचस्पी है उन्हें अंग्रेजी की पुस्तकें आसानी से पढ़ने को मिल जाती हैं । कॉलेज और विश्वविद्यालयों में अब भी अंग्रेजी का ही बोलबाला है । अतः ऊँची कक्षाओं

के प्रयोग के लिए हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों के लिखने के लिए कॉलेज और विश्वविद्यालयों से समुचित प्रोत्साहन नहीं मिला। विश्वविद्यालयों में शोध करने वाले रिसर्च स्कालर भी अपने शोध सम्बन्धी निबन्ध अंग्रेजी में ही छपाते हैं। कितना अच्छा होता यदि हमारे देशवासी जापानियों से इस सम्बन्ध में शिक्षा ग्रहण करते। जापान में प्रत्येक अनुसंधान विषयक पत्रिका जापानी भाषा में छपती है। विदेशियों की सुविधा के ख्याल से इनका अनुवाद अंग्रेजी तथा फ्रेन्च में भी प्रायः कर दिया जाता है। विश्वविद्यालय और कॉलेज जिस दिन हिन्दी को पूर्णतया अपना सकेंगे, उस दिन अवश्य ही हिन्दी में ऊँचे धरातल की वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन के लिए जबर्दस्त प्रोत्साहन मिलेगा।''

श्रीवास्तव जी एक सफल विज्ञान लेखक ही नहीं कुशल अध्यापक एवं वक्ता भी थे। उनकी विषय की प्रस्तुति इतनी सहज, सरल व स्वाभाविक होती थी कि भौतिक विज्ञान जैसा क्लिष्ट एवं नीरस विषय भी श्रोताओं के लिए सहज बोधगम्य हो जाता था। किशोरी रमण कॉलेज के उनके एक छात्र तथा बाद में सहयोगी डॉ० हरीश रायजादा ने लिखा है – ''श्रीवास्तवजी ने जब भौतिकी विषय पर अपना पहला लेक्चर दिया तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दुरूह सिद्धान्तों और जटिल फार्मूलोंसे भरा शुष्क और नीरस भौतिकी विषय इतना सरस भी हो सकता है, इसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। उन्होंने विषय के सरल और सुबोध विवेचन के साथ प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के जीवन के अंतरंग प्रसंगों को जोड़कर लेक्चर को बहुत रोचक बना दिया था। उनके लेक्चर के दौरान हमें विज्ञान के निर्जीव तथ्यों और अनुसंधानों के पीछे आर्कमिडिज, न्यूटन, गैलीलियो, कापरनिकस, ब्रूनो, एडीसन, मैडम क्यूरी आदि वैज्ञानिकों के गम्भीर एवं संघर्षरत चेहरे उभरते हुये दिखाई पड़ने लगे। हमने उन्हें मन्त्रमुग्ध होकर सुना। इसके बाद तो भौतिकी का प्रत्येक घण्टा हमारे लिये नया अनुभव होता जिसकी हम उत्सुकता से प्रतीक्षा करते रहते।''

साहित्य और विज्ञान का समाज से बहुत गहरा सम्बन्ध है। साहित्य भीतरी संसार की चीज है तो विज्ञान बाहरी संसार की देन है। दोनों के सहारे ही समाज अपना सम्यक विकास कर सकता है। अतः जन साधारण में साहित्य की भाँति ही विज्ञान का भी प्रचार होना आवश्यक है। जिस प्रकार एक अनपढ़ आदमी ही कहानी, कविता सुनने के लिये लालायित रहता है, उसी प्रकार टेलीविजन, रेडियो, परमाणु शक्ति या विद्युत के प्रति भी उसके मन में जिज्ञासा रहती है। विज्ञान सम्बन्धी जानकारी दिलाकर ही समाज के बीच से अंध-विश्वास, रूढ़िवादिता जैसी सड़ी-गली चीजों को दूर किया जा सकता है। इसके लिये विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों को सरल और सरस शैली के माध्यम से साधारण जनता के सम्मुख प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी संकल्प और लक्ष्य की पूर्ति के लिये श्रीवास्तव जी सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होंने जनसाधारण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने और वैज्ञानिक शिक्षा द्वारा समाज की रूप रेखा में समुचित परिवर्तनों का समावेश करने की प्रेरणा दी है। अपने लेखों द्वारा जन साधारण को विज्ञान के नवीनतम अनुसंधानों से अवगत कराकर उन्हें यह समझ दी है कि वे आविष्कारों को संहारात्मक कार्यों में प्रयुक्त होने से रोक सकें। निस्संदेह हम लोगों के प्रति उनकी यह बहुत बड़ी देन है।

इस प्रकार हिन्दी के विज्ञान-साहित्य की समृद्धि में श्रीवास्तव जी ने अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके जीवन की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि उन्होंने वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लिखने के लिए अनेक नवयुवकों को प्रोत्साहित किया। समय-समय पर उनके लेखों का अनुवाद गुजराती, मराठी तेलुगु तथा तमिल भाषा की पत्रिकाओं में छपता रहा है। आज 84 वर्ष की अवस्था में भी अध्ययन एवं लेखन के प्रति उनकी ललक बनी हुई है तथा नित्य नई-नई जानकारियों से जुड़ते रहना उनकी दिनचर्या का अंग है। उनके लेखन से हिन्दी का विज्ञान-साहित्य समृद्ध हुआ है तथा हिन्दी के प्रति उनका प्रेम आज भी पूर्ववत् है। भारत-भारती के इस महान सपूत पर हमें गर्व है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु करें।

[यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, आज़मगढ़ क्षेत्रीय कार्यालय की त्रैमासिक पत्रिका 'समीक्षा' मार्च 1995 अंक से साभार]

■■■

भौतिकीविद् ही नहीं, कुशल विज्ञान लेखक भी थे प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

डॉ० दिनेश मणि

विज्ञान परिषद प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

पैनी दृष्टि एवं धारदार लेखनी के धनी प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी न केवल भौतिकी के विद्वान थे अपितु एक सिद्धहस्त विज्ञान लेखक भी थे । प्रो० श्रीवास्तव ने अन्तरिक्ष, परमाणु शक्ति तथा प्रकाश जैसे विषयों पर लेखन के साथ-साथ अन्य विषयों यथा-- जानवरों में सोचने की शक्ति, माँसाहारी पौधे, विटामिन इत्यादि विषयों पर भी लेख लिखे । विभिन्न क्षेत्रों नें हो रहे अनुसंधानों को विज्ञान के चमत्कारों के नाम से प्रो० श्रीवास्तव ने कई लेख लिखे । इन लेखों को बाद में "विज्ञान के चमत्कार" पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया । सरल एवं रोचक भाषा में जनसाधारण तक विज्ञान को पहुँचाने की दिशा में प्रो० श्रीवास्तव का योगदान अत्यन्त सराहनीय है । उनके अनुसार—

"विज्ञान की अपनी एक अलग भाषा-शैली हुआ करती है-- इस शैली का अवलम्ब लेकर टेक्निकल शब्द, सूत्र और फार्मूलों की मदद से वैज्ञानिक गूढ़ बातों को भी थोड़े में व्यक्त कर लेता है, किन्तु उन्हीं बातों को आम बोल-चाल की भाषा में समझाते समय अनेक अड़चनें सामने आ खड़ी होती हैं ।"

निःसन्देह, विज्ञान की गूढ़ चीजों को जनसामान्य तक पहुँचाना एक पुनीत तथा अतिमहत्वपूर्ण कार्य है । एक ज़माना था जब वैज्ञानिक अपनी विज्ञानशाला में बैठा हुआ विज्ञान की जटिल गुत्थियों को सुलझाने की कोशिश में दिन-रात संलग्न रहा करता था । साधारण जनता को उसके अनुसंधानों में विशेष दिलचस्पी न थी । वैज्ञानिक को लोग एक बाजीगर समझा करते थे । विज्ञान उन दिनों मुट्ठी भर वैज्ञानिकों की निज की चीज़ समझा जाता था । हमारे प्रतिदिन के जीवन और विज्ञान के बीच किसी प्रकार का सम्बन्ध नज़र नहीं आता था । किन्तु समय की प्रगति के साथ विज्ञान ने भी प्रयोगशाला की ऊँची दीवारों को लाँघकर जनसाधारण की दुनिया में प्रवेश करने का साहस किया ।

कहना ना होगा कि विश्व के इस चमत्कारपूर्ण रहस्य को देखकर आज का मानव कुछ चकित, हैरान-सा है । उसके मन में एक जिज्ञासा सी उठती है कि करोड़ों मील की दूरी पर यह टिमटिमाते हुये तारे किस शक्ति पर वहाँ टिके हुये हैं ? उनमें प्रकाश कहाँ से आता है ? विज्ञानशाला में बैठे-बैठे किस प्रकार वैज्ञानिक ने पता लगा लिया कि सूर्य हमसे साढ़े नौ करोड़ मील की दूरी पर है ? वैज्ञानिक ने कैसे मालूम कया कि अमुक नक्षत्र में ऑक्सीजन मौज़ूद है ? या अमुक नक्षत्र पृथ्वी से दूर भागा जा रहा है ? जिज्ञासु व्यक्ति मन ही मन पूछ बैठता है कि बटन दबाते ही रेडियो सेट में गाने की आवाज़ कहाँ से आ जाती है ? टेलीविज़न क्या चीज है ? पशु-पक्षियों में क्या सोचने की शक्ति मौज़ूद है ? पौधे क्या मांस-भक्षी भी हो सकते हैं ? जनसामान्य को मन में उठने

वाली ऐसी जिज्ञासाओं को शान्त करने के उद्देश्य से प्रो० श्रीवास्तव ने विज्ञान लेखन किया ।

सूचनाप्रद एवं सारगर्भित लेखन के अतिरिक्त प्रो० श्रीवास्तव ने चिन्तनपरक लेखन भी किया । उदाहरण के लिए ''परमाणु शक्ति'' नामक अपनी पुस्तक में प्रो० श्रीवास्तव लिखते हैं—

''शक्ति के प्रति मनुष्य आदिकाल से ही विशेष रूप से आकृष्ट रहा है । उस सुदूर अतीत के प्रागैतिहासिक युग में मानव नाम के प्राणी ने अन्य जीवों की तुलना में अपने को निरा असहाय पाया । प्रकृति ने उसे ऐसे साधन नहीं प्रदान किये थे जिनकी सहायता से वह शत्रुओं से अपनी रक्षा कर पाता । अवश्य उसके पास सोचने की शक्ति मौजूद थी, जो अन्य जीवों में नगण्य-सीथी; अतः अपनी रक्षा के लिये अपने मस्तिष्क की शक्ति का इस्तेमाल किया । परिस्थितियों ने उसे बरबस आविष्कारक बनाया । धीरे-धीरे उसने प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन किया और फिर उसने प्रकृति की शक्तियों को अपने वश में किया । आज की भौतिकी सभ्यता के विकास के पीछे मनुष्य के प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की एक लम्बी कहानी निहित है ।''

''मानव-समाज का विकास और उसकी विचार-धारायें उसकी भौगोलिक स्थिति और उसके बाह्य वातावरण द्वारा सदा से प्रभावित होती रही है । मनुष्य जीवन भर इसी बाह्य वातावरण के विरुद्ध संघर्ष करके अपना अस्तित्व कायम रखने का प्रयत्न करता रहता है और इस तरह अपनी जाति को एक पीढ़ी भविष्य में आगे बढ़ाता है । पाश्चात्य देशों की अपेक्षा भारत में जीवन की सुविधायें अधिक सुगमतापूर्वक प्राप्त हो सकती थीं, इसीलिये हमारे देश में जो ज्ञान वास्तव में अत्यन्त महत्वपूर्ण था उसे ही प्राप्त करने तथा उससे लाभ उठाने की चेष्टा की गयी । उस काल के भारतीय तथा अन्य देशों के उपलब्ध साहित्य को देखने से ज्ञात होता है उसमें कल्पना का बाहुल्य है । अतः स्थूल प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर भौतिक जगत् की विवेचना करके उसकी रूपरेखा निर्धारित की गयी थी । यूनान के दार्शनिकों ने कुल चार मूल पदार्थों से सम्पूर्ण सृष्टि के निर्माण की कल्पना की । हमारे ऋषि मुनियों ने भी ''छिति जल पावक गगन समीरा'' के विभिन्न संयोग-विगोय में जगत् के गठन-विगठन की जटिल पहेली को सुलझती हुई समझा । इस कल्पना के भीतर उन्हें कोई तार्किक दुर्बलता अनुभव न हुई । फलस्वरूप नवीन अनुभवों के लिये अनुसंधान की प्रवृत्ति भी न हुई । तथ्य और सिद्धान्त के बीच कार्य-कारण जैसे नियम भी इसीलिये स्थापित न हो पाये ।''

''इस प्रकार की दशा प्रत्येक जाति के जीवन में आती है । समय-समय पर जाति के अन्तर-बाहर बन्धन टूटते हैं, वह रूढ़ियों का संस्कार करके जीवन के ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ जाती है । ऐसे अक्सर विशेषतया उस समय आते हैं जब या तो जातीय जीवन एक लम्बे काल तक अवरूद्ध रहने के कारण स्वयं फूट पड़ता है जैसा कि भारत में भगवान बुद्ध के आविर्भाव में हुआ, अथवा जब एक दूसरी बलिष्ठ जीवित जाति उसके जीवन नीति को चूनौती देकर संघर्ष उत्पन्न करती है, जैसा कि इस देश में अंग्रेजों ने प्रभुत्व-स्थापन से हुआ । इन दोनों ऐतिहासिक घटनाओं के बीच लगभग पूरी दो सहस्राब्दियों का अन्तर है । बुद्ध ने जातीय जीवन में जो गति उत्पन्न की थी उसका वेग लगभग एक हज़ार वर्ष तक कायम रहा, इसके पश्चात् वह मन्द पड़ गई । मुसलमान बाहर देश से आये अवश्य, किन्तु अपने साथ वे ज्ञान-विज्ञान की ऐसी शक्ति नहीं ले आये जो इस देश के निवासियों को चमत्कृत कर देती । इस बीच के काल में काव्य और स्थापत्य के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भारत विशेष प्रगति न दिखा सका । भारतीयों ने विदेश यात्रा का निषेध करके अन्य बलिष्ठ जातियों के सम्पर्क की संभावना को और भी कम कर लिया था । इसीलिये यदि भारतीय अनेक विज्ञानों के प्रारम्भकर्ता होकर भी इन्हें और अधिक उन्नत न कर सके तो इसमें आश्चर्य की गुंजाइश नहीं । पश्चिम के जिन देशों में ज्ञान-विज्ञान

की विशेष उन्नति हुई उन्हें राजनीतिक तथा सांस्कृतिक संघर्ष से कभी एक शताब्दी के लिये भी अवकाश नहीं मिल सका । जीवन की समस्यायें उनके लिये अत्यन्त तीव्र थीं और इनके फलस्वरूप वे प्रत्येक ज्ञान का उपयोग अपनी जीवन समस्याओं के हल करने के निमित्त करना चाहते थे और उपयोग के लिये ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति जाग उठी ।''

वर्तमान में, जब परमाणु-अस्त्रों के निर्माण की होड़ लगी हुई है, प्रो० श्रीवास्तव का निम्न कथन (जो उन्होंने अपनी ''परमाणु-शक्ति'' नामक पुस्तक के प्राक्कथन में लिखे थे) अत्यन्त प्रासंगिक होगा—

''अनेक देशों में परमाणु-शक्ति का इस्तेमाल राजनीतिक सत्ता को दृढ़ बनाने के निमित्त अभी से किया जा रहा है–यह शुभ लक्षण नहीं है । अतः वैज्ञानिक ही नहीं प्रत्युत सभी नागरिकों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि प्राण-प्रण से इस बात का प्रयत्न करें कि परमाणु-शक्ति का इस्तेमाल केवल मानव-कल्याण के निमित्त ही किया जाय ।''

विज्ञान का साहित्यकार : श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

बनारसीदास चतुर्वेदी (प्रसिद्ध साहित्यकार)

फिरोज़ाबाद, आगरा

अगस्त सन् 1936 की एक शाम को विशाल भारत कार्यालय के अपने सम्पादकीय कक्ष में बैठा डाक देख रहा था कि एक नये लेखक की रचना सर्वथा नवीन विषय पर मिली । विषय की मौलिकता तथा लेखक का सरल सुबोध भाषा से मैं विशेष रूप से प्रभावित हुआ । लेख था–

- 'धर्म के रास्ते में विज्ञान' और लेखक थे श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी० ।

साहित्य भीतरी संसार की चीज है तो विज्ञान बाहरी संसार की देन है । दोनों के सहारे ही समाज सम्यक विकास कर सकता है । अतएव जन साधारण में साहित्य की भाँति ही विज्ञान का भी प्रचार होना आवश्यक है । जिस प्रकार एक अपढ़ आदमी कहानी कविता सुनने के लिए लालायित रहता है उसी प्रकार टेलीविज़न, रेडियो, परमाणु शक्ति तथा विद्युत के प्रति भी उसके मन में जिज्ञासा रहती है । विज्ञान संबंधी जानकारी दिला कर ही समाज के बीच से अन्ध विश्वास, रूढ़िवादिता जैसी सड़ी गली चीजों को दूर किया जा सकता है । इसके लिए विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों को सरस और सरल शैली के माध्यम से साधारण जनता के सम्मुख प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक है और वांछनीय भी। इसी संकल्प और लक्ष्य की पूर्ति के लिए भी श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं ।

उत्तर प्रदेश के जिस आजमगढ़ जिले में श्री हरिऔध, श्री राहुल सांकृत्यायन और सुकवि श्यामनारायण पाण्डेय जैसी साहित्यिक विभूतियों को जन्म दिया वहीं सन् 1911 में श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव का भी जन्म हुआ । आप के पिता श्री जगपत लाल की गणना आज़मगढ़ के प्रमुख नागरिकों में होती थी, और वे भारतीय संस्कृति के प्रबल

समर्थक थे ।

विद्यार्थी जीवन में जहां उनमें एक ओर विज्ञान के प्रति रुचि थी, वहीं दूसरी ओर हिन्दी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था । विज्ञान के विद्यार्थी को हिन्दी नहीं पढ़ाई जाती थी अतएव अपने विद्यार्थीकाल में उनका हिन्दी अध्ययन घर पर ही चलता रहा । सन् 1935 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में एम० एस-सी० (ऑनर्स) करने के उपरान्त एक वर्ष इविंग क्रिश्चियन कॉलेज में अध्यापक रहे और फिर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एल० एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की । इसी बीच वे कांग्रेस सोशलिल्ट पार्टी के सम्पर्क में आये और प्रगतिशील लेखक संघ के सक्रिय सदस्य भी रहे । वैसे अपने अध्ययन काल में उन्हें डॉ० गोरखप्रसाद से लिखने की प्रेरमा मिली थी और वे प्रयाग विज्ञान परिषद् की पत्रिका 'विज्ञान' में कुछ न कुछ लिखते भी रहते थे ।

एल० एल० बी० होने के उपरान्त कुछ महीने आपने आजमगढ़ में वकालत भी की किन्तु साहित्यिक प्रवृत्तियाँ इस सच-झूठ के गोरख धन्धे से उन्हें सदैव दूर खींचती रहीं और एक वह भी दिन आया, जबकि आप वकालत छोड़ कर पुनः अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में आ गए । 1939 में वे मथुरा के किशोरी रमण कॉलेज में भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक नियुक्त हुए । 'साप्ताहिक आज' के जन्म काल 1938 से वे विज्ञान जगत स्तम्भ में कई वर्षों तक नियमित रूप से लेख लिखते रहे । जब हिन्दी विश्व भारती का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, तो उसके दो भागों का आपने सफल सम्पादन किया। कुछ समय पश्चात् आप दिल्ली चले आए और लगभग तीन वर्ष तक यहाँ भौतिकी के अध्यापक रहे । सन् 1967 में दिल्ली छोड़ कर धर्म समाज कालेज में भौतिकी विभाग में अध्यापक रहे, और अब अवकाश प्राप्त कर आज़मगढ़ रह रहे हैं । दिल्ली के आकाशवाणी केन्द्र ने आप की प्रतिभा का समुचित मूल्यांकन किया और विज्ञान के लेखों, मौलिक और अनूदित पुस्तकों और रेडियो वार्ताओं का सिलसिला बहुत दिन चला । 'विज्ञान के चमत्कार' परमाणु शक्ति, विज्ञान प्रगति, घरेलू बिजली, आविष्कार कथा, विज्ञान और जीवन, चांद सूर्य का परिवार, यात्रा के साधन, आविष्कार जगत, तथा अनेक पाठ्य पुस्तकों के रूप में श्रीवास्तव जी पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके हैं । और इनमें से अनेक पुस्तकों पर आप को राजकीय पुरस्कार भी मिल चुका है । केन्द्रीय शासन के नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली ने आप की 'अंतरिक्ष यात्रा' पुस्तक प्रकाशित की है जो हिन्दी में अपने विषय की एक मात्र प्रामाणिक पुस्तक है । इस पुस्तक में अंतरिक्ष विज्ञान के सभी पहलुओं का सरल शैली में विश्लेषण किया गया है । पौराणिक गाथाओं के युग से चल कर मानव आज राकेट तथा स्पूतनिक युग तक कैसे पहुंचा, चाँद सितारों तक मनुष्य क्यों पहुँचना चाहता है, भू-उपग्रह उसी कक्षा में अरसे तक कैसे टिके रहते हैं, इन सभी प्रश्नों का विशद विवेचन इस पुस्तक में किया गया है ।

श्रीवास्तव जी की शैली जनता की शैली है । उन्होंने उसे टेक्निकल शब्दों और सूत्रों से बोझिल नहीं किया है । हाइड्रोजन बम, रैडर, कॉस्मिक रश्मियों सरीखे जटिल विषयों की व्याख्या सरल सुबोध भाषा में की है । आवश्यकतानुसार उर्दू, अरबी, फारसी के शब्दों का भी प्रयोग उन्होंने अपने लेखों में किया है । उनका शब्द चयन सशक्त होता है । प्रत्येक शब्द को शुद्ध रूप में ग्रहण करना अपेक्षित अर्थ में उसे प्रयोग करना, भावों के अनुकूल भाषा को संवारना श्रीवास्तव जी की विशेषता है । छोटे-छोटे वाक्यों में ग्रंथ की गम्भीरता लाकर अपने भावों को सरलता से प्रकट करने में वे सफल और सिद्धहस्त हैं । वे एक साथ अध्यापक, सम्पादक, निबन्धकार, अनुवादक आदि अनेक रूपों में हमारे समक्ष आते हैं ।

श्री भगवती प्रसाद जी के जीवन की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उन्होंने वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लिखने के लिए अनेक नवयुवकों को प्रोत्साहित किया है । समय समय पर प्रो० श्रीवास्तव के लेखों का अनुवाद गुजराती 'नवनीत' तथा तमिल पत्रिकाओं में छपता रहता है ।

जिस विज्ञान साहित्य-पौधे का बीजारोपण श्री रामदास गौड़, डॉ० सम्पूर्णानन्द, डॉ० गोरखप्रसाद आदि ने किया उसे अपनी प्रतिभा तथा क्षमता के द्वारा इस योग्य बनाना कि वह फलफूल सके, यह कार्य भी श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जैसे सुयोग्य व्यक्तियों का है । मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई थी कि श्रीवास्तवजी के साथ-साथ डॉ० सत्यप्रकाश, प्रो०

फूलदेव सहाय वर्मा, डॉ० अनंतगोपाल झिंगरन, डॉ० हरसरन सिंह बिश्नोई, श्रीराम चन्द्र तिवारी और नयी पीढ़ी के विज्ञान लेखक श्री हरीश अग्रवाल का दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सम्मान किया है । इसके आयोजकों को कोटिशः बधाइयां।

['आजकल' अगस्त 1968 अंक से साभार]

मेरे गुरुदेव : प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

रमेश प्रसाद शर्मा

बी० एस- सी०, एम० ए०
डी 58, सेक्टर IX, नया विजयनगर, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

भविष्य के सम्बन्धों का सूत्रपात जाने-अनजाने में कैसे हो जाता है यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है । आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व मेरे मित्र निर्मल जैन ने बतलाया था कि अपने विद्यालय के पुस्तकालय में "हिन्दी विश्व भारती" के चार खण्ड आये हैं । हम दोनों ग्रीष्मावकाश के उपरान्त अपने विद्यालय विद्या भवन, सासनी में मिले थे । पुस्तकालय के खुलने पर हम दोनों मित्र हिन्दी विश्व भारती के एक-एक खण्ड को लेकर बैठ जाते थे । सम्पादन-मण्डल में अपने जनपद अलीगढ़ के प्रोफेसर भगवती प्रसाद जी श्रीवास्तव के नाम से हम दोनों विशेष रूप से प्रभावित हुए थे । विशेषतः उनके प्रत्येक लेख में ज्ञान-विज्ञान की बातों को सहज और सरल भाषा में समझाने के ढंग से और दूसरे जो विशेष रूप से महत्वपूर्ण था वह उनका अलीगढ़ के धर्म समाज कॉलेज में प्रोफेसर होना । भौतिक विज्ञान का खण्ड पढ़ते-पढ़ते एक कल्पना उनके व्यक्तित्व की छाप मन में बैठ चुकी थी । न तो उन्हें ही कभी देखने का सौभाग्य तब तक मिला था और न धर्म समाज कॉलेज को ही कभी देखा था । ग्रामीण क्षेत्र से आये हुए छात्र के लिए ये दोनों बातें स्वयं में एक बहुत बड़ी बातें थीं। हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करके जब धर्म समाज कॉलिज की इण्टर साइंस में प्रवेश लिया तो किसी छात्र से मात्र उनके सम्बन्ध में थोड़ी-सी जानकारी पा सका था और उसने भी प्रोफेसर साहब को दूर से किसी व्यक्ति से भौतिक विभाग के बरामदे में बातचीत करते हुए इंगित ही किया था । बस इतनी-सी ही जान-पहचान हो सकी थी ।

उस छोटी उम्र में मुझे एक दिन भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में ऊंची मेज़ पर रखे बोर्ड पर प्रिज़्म और ऑलपिन से प्रकाश किरणों का प्रयोग करते समय कुछ असुविधा हो रही थी । एक तो ऐसा प्रयोग जो कक्षा में पढ़ाया न गया हो और दूसरे अपनी शारीरिक अक्षमता के कारण भली-भाँति न कर पाने के कारण इण्टर प्रभाग की भौतिकी प्रयोगशाला में प्रवेश करते हुए गुरुदेव की नज़र मुझ पर पड़ी थी । बस उन्होंने मुझसे प्रयोग से सम्बन्धित प्रश्न प्रारम्भ कर दिया था । कुछ प्रश्नों के उत्तर दे सका था तथा कुछ प्रश्नों को वे ही समझाते रहे । यहाँ तक कि प्रयोग से सम्बन्धित फार्मूला भी उन्होंने समझा दिया था । उन्हीं दिनों चर्चा थी कि भौतिकशास्त्र पर प्रोफेसर श्रीवास्तव जी की पुस्तक इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए आ रही है । मेरी सहज-सुलभ जिज्ञासा तथा उस पिछले दिनों के भौतिकी के

प्रयोग का थोड़ा-सा सम्पर्क ने मुझे पुस्तक पा जाने के लिए प्रेरित किया और एक दिन विद्यालय खुलने के कुछ समय पूर्व ही मैं धर्म समाज कॉलिज के छात्रावास के वार्डन-आवास में पुस्तक लेने पहुँच गया था । गुरुदेव ने बतलाया था कि पुस्तक प्रूफ-रीडिंग के लिए उनके पास आई है और उन्होंने मुझे चुम्बकत्व का भाग पढ़ने के लिए दे दिया था ।

समय व्यतीत होता गया । उन दिनों धर्म समाज कॉलेज के रसायन विभाग में फोटोग्राफी का क्लब तथा भौतिक विभाग में वायर लैस क्लब चलाये जाते थे । फोटोग्राफिक क्लब किसी कारण वश कुछ समय से बन्द था । मैं अपने दो मित्रों ललित किशोर ब्रजकौशली तथा ब्रज बल्लभ किशोर सक्सेना के साथ वायर लैस क्लब का सदस्य बन गया । क्लब के अध्यक्ष प्रोफेसर हरि कृष्ण जी कौशिक थे । बाद में पता चला कि प्रोफेसर कौशिक जी किशोरी रमण विद्यालय (मथुरा) में गुरुदेव प्रोफेसर भगवती प्रसाद जी श्रीवास्तव के शिष्य रह चुके थे । इन दोनों की प्रसिद्धि अपने विषय में पारंगत होने की थी। कक्षा में बिना किसी अवरोध के धारा प्रवाह अपने विषय को समझाते जाना, कुछ नोट्स बनाना, सिखाना तथा छात्रों की कठिनाइयों को सुलझाना, उनकी प्रतिभा को विकसित करना–इन दोनों का एक मात्र ध्येय था । वायर लैस क्लब में पावर सप्लाई से प्रारम्भ कर रेडियो रिसीवर, ट्रान्समीटर और टैपरिकॉर्डर तक बनाने तक का प्रशिक्षण मिला था । धर्म समाज कॉलेज के 'रजत जयन्ती समारोह' में कवि-सम्मेलन का प्रसारण भी छोटे से ट्रान्समीटर से सम्भव हो सका था । ललित, ब्रज बल्लभ और मैं जब कॉलेज बन्द हो जाता था, तब भौतिक शास्त्र की प्रयोगशाला में रात्रि के 10-11 बजे तक कुछ न कुछ बनाते-बिगाड़ते रहते थे । यह क्रम कई महीनों तक चला और इसका परिणाम साथ-साथ काम करने वालों का एक-सा ही रहा । वे दोनों तो अपनी पढ़ाई जारी रख सके और मैं अनचाहे मन से रेल विभाग में आ गया । कार्यालय तथा सुदूर क्षेत्र की यात्राएं ही अब अपना काम रह गया था । अलीगढ़ से दिल्ली रहना प्रारम्भ किया । इन्हीं दिनों में 'विज्ञान लोक' का प्रकाशन आगरा से आदरणीय गुरुदेव के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ था। एक दो अंक देखे तथा मैं एक दिन प्रकाशित होने वाले लेखों की सूची लेने गुरुदेव के निवास पर पहुँच गया था । गुरुदेव ने सूची देते हुए कहा था कि इन में से किसी पर लेख लिख सकते हो । मैंने ''पपीता'' पर लेख तैयार किया और अलीगढ़ जाकर दे आया था । लौटती डाक से उत्तर आया– ''लेख अच्छा बना है तथा मार्च के अंक में प्रकाशित होगा।'' इससे पूर्व मैं उद्योग तथा भारतीय ज्योतिष पत्रिकाओं में लेख लिख चुका था । अब सब से बड़ा सहारा गुरुदेव का था ।

विज्ञान लोक, विज्ञान जगत, विज्ञान प्रगति, मनोरमा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, समाज कल्याण, नवनीत आदि पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर लिखते रहने की कुछ ऐसी लगन लगी कि चमड़े के बैग में कुछ फाइलों के साथ कैमरा रखे मैं विभिन्न रेलवे स्टेशनों पर जाता रहा और वहाँ आस-पास के ऐतिहासिक स्थलों को कवर करता रहता । यह यात्रा पैदल, इक्का, ताँगा आदि से पूरी की जाती तथा फिर विषय का अध्ययन करके लेख पूरा किया जाता । प्रत्येक लेख के सम्बन्ध में पूज्य गुरुदेव का मार्ग-दर्शन मिलता रहता था । कार्यालय के काम का बोझ लगातार छोटी और लम्बी दूरी की यात्राएँ शनैः शनैः मेरे स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालती रहीं । सच में मैंने अपने शरीर के साथ बहुत अत्याचार किए थे । यही अत्याचार बाद में क्षय रोग के रूप में उभरे । रोग का निदान हो जाने के उपरान्त मैंने अपना पहला पत्र रोग के सम्बन्ध में पूज्य गुरुदेव को लिखा था । उत्तर लौटती डाक से आया । वे स्तब्ध रह गए थे । उत्तर विस्तार से लिखा था । उसमें उपचार खान-पान, रोग से सम्बन्धित सावधानियों तथा जिन परिचितों को पहले क्षय रोग हो चुका था उनका विववरण था साथ में यदि किसी सेनेटोरियम जाने की व्यवस्था हो जाये तो उसका भी सुझाव दिया था । रेल विभाग ने लेडी लिलियगो सेनेटोरियम, कसौली (शिमला) में मेरी चिकित्सा की व्यवस्था कर दी । मेरे वहाँ पहुँचते ही प्रति सप्ताह मेरी कुशलता तथा स्वास्थ्य की जानकारी पत्र द्वारा लेते रहते थे । मानसिक रूप से मुझे क्षय रोग से सामना करने के लिए गुरूदेव ने तैयार कर दिया था । सम्भवतः दूसरे या तीसरे पत्र में उन्होंने अपने मित्र लेफटीनेन्ट कर्नल झा के अनुज डॉ० वी० के० झा साहब को एक पत्र लिखा था । डॉ० झा साहब कसौली सेनेटोरियम में बहुत ही लोकप्रिय थे । फिर तो मैं अपने आप को बहुत ही उच्च मनोबव वाला महसूस करने लगा था । मैं मनोरंजन तथा

सेनेटोरियम की व्यवस्था में हाथ बँटाने लगा और ग्यारह महीने उपरान्त सकुशल लौट आया ।

एक दिन साहित्यिक सरकारी यात्रा में मैं फीरोज़ाबाद दादा जी पंडित बनारसीदास जी चतुर्वेदी की सेवा में उपस्थित हो गया था । दादा जी बनारसी दास जी चतुर्वेदी से भेंट का यह क्रम उनके जीवन भर चलता रहा । पहली भेंट में ही मेरी बात-चीत गुरुदेव के सम्बन्ध में हुई थी । उन्होंने तुरन्त कहा था कि प्रोफेसर श्रीवास्तव की तो उनके 'विशाल भारत' के सम्पादन काल में लिखते रहे थे । गुरुदेव का पहला लेख 'विशाल भारत' में 1936 में प्रकाशित हुआ था । ये वे दिन थे जब 'विशाल भारत' हिन्दी जगत् की नीति का निर्धारण करता था । चर्चा के दौरान मैंने दादा जी से निवेदन किया था कि गुरुदेव की शैली और रचनाओं के सम्बन्ध में जो विवरण विभिन्न सहायक पुस्तकों तथा कुंजियों में (जैसी कि उन दिनों परीक्षा में सफलता के लिए बाज़ार में बिकती थी) दिया था, वह हिन्दी के कई अन्य महान साहित्यकार जिनका नाम गुरूदेव के नाम से मिलता-जुलता था लिखा गया था । उल्लेखनीय है कि एक बार इण्टरमीडिएट के हिन्दी भाषा के प्रश्नपत्र में एक प्रश्न था श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव के कृतत्व एवं व्यक्तित्व के सम्बन्ध में और जिन विद्यार्थियों ने उन सहायक पुस्तकों की सहायता की थी वे इस प्रश्न का सही उत्तर नहीं दे सके थे । मेरी बात-चीत के उपरान्त दादा जी ने अपनी पुरानी स्मृतियों को ताज़ा करके मेरे गुरुदेव पर एक लेख प्रकाशन विभाग की पत्रिका ''आज कल'' में लिखा था ।

उन्होंने लिखा था कि उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ जनपद के वातावरण में हिन्दी सेवा की प्रेरणा सुरभि बन कर समा गई है । हिन्दी की महान विभूतियों में श्री अयोध्या प्रसाद जी हरिऔध, महापंडित राहुल सांकृत्यायन तथा कविवर श्याम नारायण पण्डित जैसी विभूतियों को जन्म दिया । उसी क्षेत्र में प्रोफेसर भगवती प्रसाद जी श्रीवास्तव ने उसी प्रेरणा से विज्ञान के विद्यार्थी, प्राध्यापक होते हुए भी विज्ञान के विविध विषयों को जन मानस तक अपने निबन्धों, पुस्तकों, अनुवाद कार्यों, रेडियो प्रसारणों आदि द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों तक पहुँचाने का कार्य किया, जिससे समाज का अधिकाधिक भाग परिचित हो सके ।

प्रोफेसर श्रीवास्तव जी हिन्दी में विज्ञान साहित्य के सुधी साहित्यकार, ओजस्वी वक्ता, सफल शिक्षक एवं उत्कृष्ट अनुवादक थे । उनके द्वारा प्रस्तुत विषय इतना सहज रूप से श्रोता अथवा पाठक तक पहुँचता था कि वह उसके लिए सहज और स्वाभाविक बन जाता था । विज्ञान का छात्र हो अथवा वह व्यक्ति विज्ञान के क्षेत्र से अलग हो, उसके लिए भी भौतिक विज्ञान जैसा क्लिष्ट एवं नीरस विषय सरल और रुचिकर बन जाता था । उनकी शैली जन साधारण की शैली थी उन्होंने उसे टेक्निकल शब्दों और सूत्रों से बोझिल नहीं किया था । जब उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया उन दिनों वैज्ञानिक शब्दावली सुलभ नहीं थी । उन्होंने स्वयं हिन्दी में विज्ञान के शब्दों का निर्माण किया जो जटिल विषयों की व्याख्या सरल, सुबोध भाषा में कर सकें । उनके लेखन की विशेषता थी कि वे शब्द को शुद्ध रूप में ग्रहण करके उसका प्रयोग अपेक्षित अर्थ में प्रस्तुत करते थे । उनकी भाषा में कृत्रिमता नहीं थी और न उनके जीवन में । जो उनके जीवन में आया वह उनका ही बन कर रह गया । उसके मन में उनके प्रति श्रद्धा और सम्मान बढ़ता ही गया ।

गुरुदेव ने मुझे अंतिम पत्र लखनऊ से 19.4.97 को लिखा था । उन्हें मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता सदैव रही । उन्होंने लिखा था– ''वय के बढ़ने के साथ अपने रहन-सहन खान-पान आदि में विशेष सावधानी बरतना आवश्यक हो जाता है । अक्टूबर 97 में मैंने अपनी आयु का 87वाँ वर्ष पूरा कर लिया है ....।'' उन्होंने आज़मगढ़ जाने के सम्बन्ध में लिखा था ''22/4 को आज़मगढ़ दो महीने के लिये जा रहे हैं । घर-गाँव के कुछ मामले पड़े हैं, जिन्हें निबटाना है । वहाँ पर बिजली-पानी की कठिनाई भी झेलनी पड़ेगी । यहाँ लखनऊ में इस मुसीबत से बचे रहे हैं ।''

वे शत आयु हों यही हम सबकी कामना थी । बार-बार अपनी आयु के सम्बन्ध में लिखते रहते थे, शंका रहती थी कि कहीं किसी की आह न लग जाए । उनका आज़मगढ़ जाना मुझे उचित नहीं लगा । आज़मगढ़ के पते पर मैंने असुविधाओं का वर्णन करते हुए लिखा था– ''आपका वहाँ जाना मुझे अच्छा नहीं लगा है ।'' आखिर विधि के विधान

को कौन टाल सकता है आज़मगढ़ की धरती-माँ उन्हें बुला रही थीं । बाद में पता चला कि मेरा पत्र पूज्य गुरुदेव की सेवा में पहुँच चुका था और उन्होंने उसे अपनी फाइल में लगा रखा था ।

मेरे लिए उनका अन्तिम आशीष था– "तुम्हारे स्वास्थ्य की कामना के साथ ।" अपने किशोरी रमण कॉलेज (मथुरा) के छात्र तथा धर्म समाज कॉलेज के सहयोगी गुरुदेव प्रोफेसर कौशिक जी के लिए लिखा था– "प्रो० कौशिक को मेरी शुभकामना देना ।"

कभी-कभी अब भी अपने घर के पोर्च में पोस्टमैन द्वारा छोड़े हुए पत्र की याद आती है । पोस्टमैन सदैव आवाज़ लगा कर पत्र छोड़ता था, किन्तु वह शोक संदेश 19 मई 97 को बिना आवाज़ लगाये छोड़ गया था । वह मेरे जीवन में एक ऐसा क्लेश छोड़ गया, जिसकी भरपाई जीवन भर सम्भव नहीं होगी । जो जितना सन्निकट होता है उसका विछोह उतना ही अधिक कष्टदायी होता है ।

मेरे जीवन में कई अति महत्वपूर्ण गुरुजन और मित्र आए, उनसे आशीष और प्यार मिला । शनैः शनैः कुछ गुरुजन और साथी इस नश्वर संसार से विदा हो गये और अश्रुपूरित नयनों से उनका वियोग सहना पड़ रहा है । कुछ साथी इस भीड़ भरी दुनिया में खो गये हैं या कुछ आज जान कर भी अनजान बने हुए हैं ।

■■■

[पृष्ठ 64 का शेषांश]

सम्मिलन की व्यवस्था नहीं करनी पड़ेगी। इस योजना को कार्यान्वित करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सीधी उड़ान के योग्य शक्ति प्राप्त करने के लिए 'नोवा' राकेट बहुत विशाल आकार का बनाना पड़ेगा तथा उसके प्रथम खण्डी राकेट को दागने पर विस्फोट का इतना जबर्दस्त धक्का लगेगा कि आसपास की इमारतें धराशायी हो सकती हैं।

अतः इन कठिनाइयों से बचने के लिए दो योजनाएं और भी विचाराधीन हैं। एक योजना के अनुसार अपेक्षाकृत छोटे 'सैटर्न-5' किस्म के कई राकेट पृथ्वी के गिर्द एक ही कक्षा में स्थापित किए जाएंगे ताकि उनका सम्मिलन हो सके। उन पर लगे कैप्सूलों के अन्दर बैठे इंजीनियर अपने यन्त्रों को चालू करके दोनों यानों को जोड़कर एक शक्तिशाली राकेट बना लेंगे और फिर 'नोवा' की भाँति चन्द्रमा की ओर वह सम्मिलित राकेट चल पड़ेगा।

दूसरी योजना के अनुसार पृथ्वी से भेजे गए कई राकेट पहले चन्द्रमा के गिर्द एक कक्षा में स्थापित किए जाएँगे, फिर वहीं उनका सम्मिलन कराया जाएगा। बाद में वे चन्द्रमा की सतह पर उतारे जाएँगे। वापसी यात्रा 'नोवा' की भाँति पूरी की जाएगी।

दूसरी योजनाके अनुसार 'नोवा' किस्म के राकेटयान का वजन 'नोवा' से कम होगा क्योंकि उसमें चन्द्रमा पर से उड़ान के लिए आवश्यक ईंधन नहीं लादना पड़ेगा। प्रस्तावित स्कीम इस प्रकार है- चन्द्रमा के निकट पहुँचकर वह यान उलटे मुँह से हलके राकेट दागकर अपनी रफ्तार उचित मात्रा में घटा लेगा और चन्द्रमा के गिर्द परिक्रमा करने लगेगा। स्पष्ट है कि उस दशा में उसके इंजन चालू नहीं रहेंगे। तत्पश्चात् अग्रभाग में रखे 'टैक्सी राकेट' को दागा जाएगा जो चन्द्रमा पर पहुँचेगा। 'टैक्सी-राकेट' पर लगे कैप्सूल में दो यात्री होंगे और तीसरा यात्री मुख्य यान में ही रह जाएगा। तीन चार दिनों तक निरीक्षण करने के बाद टैक्सी-राकेट पुनः दगेगा और लौटकर उसी कक्षा में पहुँच जाएगा जिसमें मुख्य यान बन्द इंजन की दशा में चन्द्रमा का चक्कर लगा रहा होगा। सम्मिलन के बाद ही मुख्य यान अपने इंजन को चालू करके उस कक्षा से बाहर निकलकर धरती की ओर चल पड़ेगा। अवश्य इन योजनाओं को कार्यान्वित करने में कुछ वर्षों की देर है, किन्तु ऐसी आशा है कि 8-10 वर्षों के अन्दर ही मनुष्य चन्द्रमा की वापसी -यात्रा पूरी कर लेगा।

['विज्ञान लोक' जनवरी 1963 से साभार]

प्रो० भगवती प्रसाद जी श्रीवास्तव
स्मरणांजलि

श्याम सरन अग्रवाल 'विक्रम'

68 असिस्टेण्ट लाइन, बिरला नगर,
ग्वालियर -474004

वो तो तुम्हारी याद दिलाकर अलग हुआ।

धो-धो कर पी रहा हूँ जाम तुम्हारी याद का।।

आज उलट पांव खुल पड़ी है यादों के टेप- यादें लम्बें-लम्बें बीते छत्तीस बरसों की, यादें सन् 1961 से मई 1997 तक की.....

वह मेरा अप्रतिम सौभाग्य था जो सन् 1961 की आँख खुलते ही विज्ञान-लेखन की आपकी चलती गाड़ी में मुझे सवार करा गया। संपर्ककर्ता थे आप के सम्पादन में चल रहे उन दिनों भारत प्रसिद्ध विज्ञान मासिक पत्र 'विज्ञान लोक' के अधिष्ठाता श्री शंकर मेहरा।

तब तक तो श्रद्धेय श्रीवास्तव जी लोकप्रिय विज्ञान-लेखन में अपनी प्रतिष्ठा-सम्पन्न पहिचान स्थापित कर चुके थे। उनके उस विजय अभियान के प्रमुख गवाह थे हिन्दी विश्व भारती विज्ञान कोष (लखनऊ) के अंक-दर-अंक जो पढ़े जाने से कहीं बढ़कर सुने भी जाते थे। इनके अनवरत विपुल विज्ञान-लेखन का यह आलम किसी भी प्रमुख हिन्दी पत्रिका का इनके लेख से वंचित रहना उस पत्रिका का दुर्भाग्य माना जाता था।

आपके चमत्कारिक संसर्ग से अभिभूत मेरी एक अठखेली टिप्पणी इन्होंने क्षम्य बाल-अपराध मानकर स्नेहपूरित क्षमा सहित अपनी स्मृति मंजूषा में सहेज कर रख ली। टिप्पणी थी-"छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटन को अपराध....." विज्ञान-लेखन के इस देव व्रत के चरनों में एक बार कर तो देखिए। आप त्रुटियाँ करते थक जायेंगे परन्तु प्रत्येक त्रुटि का स्नेहपूर्ण निर्देशन द्वारा संशोधन करते यह नहीं थकेंगे... गोया :

नशैमन पर नशैमन इस क़दर तामीर करता जा

कि जिस पर गिरते-गिरते बिजलियाँ बेज़ार हो जायें।

मेरे जैसे अनेकों को इन्होंने विज्ञान-लेखक बनाया है। हिन्दी द्वारा विज्ञान-लेखन प्रसारण में इनका अप्रतिम स्थान है। भारत भर में हिन्दी के विज्ञान-लेखक अंगुली पर गिनाये जा सकते हैं उनमें अग्र पंक्तिगत हैं प्रो० भगवती प्रसाद जी श्रीवास्तव । क्या भूलूं..... क्या याद करूँ?

अल्पजीवी 'विज्ञान लोक' (आगरा) से पृथक् होते ही इंडियन प्रेस इलाहाबाद की समानान्तर मासिक 'विज्ञान-जगत' को इन्होंने अपनी स्नेह-छाया में सहेजा, जिसकी स्नेहोष्मा दूर रहते हुए भी मुझ तक अनवरत पहुँचाते रहे। वह दौर था 1965 से 1975 तक के दशक का। आगरा नगर में मेरे नव-स्थापित लोकप्रिय विज्ञान-प्रसारक संस्थान 'विज्ञानमंडल' को सर-आँखों बिठा रखा था।

आगरा कॉलेज के तत्कालीन भौतिकी विभागाध्यक्ष डॉ० दया प्रसाद जी खंडेलवाल (आज तो वे भी स्व०) की अध्यक्षता में मेरे उस विज्ञान मंडल ने आगरे के विद्यालयों/महाविद्यालयों में धूम मचा दी। कहीं बेंगलौर से विश्वेश्वरैया म्यूजियम से विज्ञान प्रदर्शनी बस बुलाई जा रही है, तो कहीं कलकत्ता विड़ला म्यूज़ियम से। दूर-पास के विज्ञान वक्ताओं को बुलाकर साप्ताहिक विज्ञान-वार्ता उन दिनों आगरे में चर्चा का विषय था। उसी के अन्तर्गत सोवियत-अमेरिकी अन्तरिक्षयानों के- अन्तरिक्ष-मिलन पर विशेष वार्ता थी प्रो० श्रीवास्तव जी कीं । शीर्षक था "अन्तरिक्ष में सेज पिया की, किस विध मिलना होय"

आया सन् 1983 नयी सौगात लेकर:

इलाहाबाद की विज्ञान परिषद् ने डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी के अथक प्रयासान्तर्गत आयोजित किया एक अविस्मरणीय समारोह- दीर्घकालीन विज्ञान-लेखन के स्थापित लेखकों का सम्मान समारोह। उसमें सी एस आई आर, दिल्ली के मासिक 'विज्ञान-प्रगति' के प्रतिष्ठित संपादक श्री श्याम सुंदर शर्मा जी एवं अन्यान्य लेखक-मित्रों के बीच, विज्ञान परिषद् के प्राणाधार डॉ० सत्यप्रकाश जी सरस्वती की स्नेहाश्म फुहारों के बीच श्रीवास्तव जी को अपने से पूर्व सम्मानित देखे की यादें आज भी मेरी धड़कने तीव्रतर कर जाती हैं।

सन् 1996 तक मेरी प्रकाशित पुस्तकों पर श्रीवास्तव की साहसवर्द्धक स्नेह-सरभर समीक्षाएं मेरे प्रत्येक संकलन का शीर्ष श्रृंगार रही हैं। मेरी डायरी में जिस काले पन्ने पर श्रृद्धांजलियाँ अंकित हैं, उनके बीच 27 मई 1997 की ओर आज भी मैं आँख भर तो देख नहीं पाता। यादों के पृष्ठों के बीच समाधिस्थ इस तपस्वी विज्ञान-लेखन विभूति के लिए मुझे :

रंजोग़म उनका है, जा कर तो पलटते नहीं

दामने सब्ज़ा-ओ गुल, सुबह को नम होता है।

शत-सहस नमन-----

एक पिता : एक युग

गोपाल कृष्ण श्रीवास्तव

मुख्य अभियंता, उ०प्र०रा०वि०प०
4, शान्ति निकेतन, नया हैदराबाद, लखनऊ- 226007 (उ०प्र०)

कहाँ से लिखकर कहाँ समापन करूँ कुछ समझ में नहीं आता है। जबसे आँख खोली उनको सदैव अपने आस-पास ही पाया। उंगली पकड़ कर चलना सिखा कर एक कुशल तैराक की तरह जीवन के विस्तृत जल सागर में छोड़ दिया। हर लहर के थपेड़े को पार करते ही शाबाशी अवश्य देते। हम दोनों भाइयों के आराध्य व प्रेरणा-स्रोत वे ही थे।

यह उनका बड़प्पन ही था कि सीमित साधनों में भी हमरी इच्छाएं वह अवश्य पूरी करते। हम दोनों के क्रिकेट शौक को भी वह उतना ही ध्यान देते जितनी हमारी पढ़ाई पर। उस समय टी०वी० आदि तो था नहीं अतः हमारी बाल सुलभ जिज्ञासा वही पूरी करते। हम हर समय उनसे पूछते रहते घड़ी कैसे चलती है ? रेडियों में आवाज़ कैसे आती है ? ट्रेने कैसे चलती हैं ? चन्द्र व सूर्यग्रहण क्या होता है ? हजारों प्रश्नों की झड़ी लगाये रहते। वह सदैव एक धैर्यवान अध्यापक व एक समर्पित पिता की तरह हमारे हर प्रश्न का उत्तर देते। संभवतः यह उनके स्वभाव का प्रमुख गुण था।

कभी कटु वचन उन्होंने शायद ही किसी से कहे हों। सम्पत्ति व रुपये पैसे का लोभ उनको कभी नहीं रहा। हमारे घर न जाने कितने लोग रह कर पढ़े। वह सभी पर समान रूप से ध्यान देते। मेरा विवाह भी उसका उदाहरण है। लाखों का प्रलोभन उन्होंने अपने दिये वचन व मेरी इच्छा पर ठुकरा दिये। अलीगढ़ की प्रदर्शिनी हर वर्ष हमारे किसी त्योहार से कम न होती। जब हम चलते-चलते थक जाते तो वह बहलाते हुए पैदल ही ले जाते और परिश्रम के फलस्वरूप हमारी दोनों जेबें चिलगोजे व पिश्तों से भर देते। तब रास्ता कैसी आसानी से कट जाता, पता ही न चलता। अलीगढ़ से पहले हम लोग दिल्ली में रहते थे। तब टैक्सी व कारें तो थी नहीं। तब दिल्ली की शाही सवारी तांगा ही थी। हम उस पर बैठ कर सैर करते हुए ओखला पर पिकनिक मनाने हर महीने जाते। जहाँ वह बड़ी ही कुशलता से हलवा बनाते जिसकी मिठास आज भी हमारी जिह्वा पर धरी है।

हम हाई स्कूल की भौतिक शास्त्र की प्रायोगिक परीक्षा दे कर आये, घर पर बाबू जी ने पूरे ध्यान से हमारा प्रश्न पत्र पूछा और रात को हमारी परीक्षा लेने आये अध्यापक ही हमारे घर खाना खाने आये तो मुझे देखकर चकित रह गए और बाबू जी से पूछा- ''सर आपने बताया ही नहीं कि ये आपका बेटा है, मैंने तो इसे कम ही नम्बर दिये हैं'', तो वह बोले- ''जैसा इसने किया होगा आपने वैसे ही नम्बर दिये होंगे'' आज की शिक्षा के परिवेश पर यह एक प्रश्नचिन्ह ही है। यद्यपि हम उनसे बहुत दिन तक नाराज़ रहे।

कभी-कभी लगता है कि जितना ज्ञान का असीम भंडार उनके पास था उतना विस्तार उनको मिल नहीं पाया। कोई ऐसा पुरस्कार उनको नहीं मिला जो उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाता और जिसके वह सच्चे अधिकारी भी थे, कारण संभवतः वही था जोड़-तोड़ की राजनीति उनको आती ही नहीं थी। छलकपट के दूर विवादों से वह सदैव परे ही रहते। अपने कार्य में मौन तापसी से संलग्न वटवृक्ष की भाँति अपने प्रिय शिष्यों व पूरे परिवार को अपनी छाया में समेटे शीतलता प्रदान करते। उनकी छत्रछाया में न जाने कितने लोग पढ़े। यह सिलसिला निरन्तर आज़मगढ़ तक चलता रहा। अभी भी कितने बच्चे इन्जीनियरिंग व मेडिकल की परीक्षा देते व पढ़ते उनको शत शत नमन करते हैं। आज हम उस सुखद स्पर्श से वंचित हो गए हैं, यह हमारा दुर्भाग्य ही है परन्तु जो स्नेह-दीप हमारे मन में प्रज्वलित है वह जीवन पर्यन्त हमारे मार्ग को प्रशस्त करता रहेगा।

हमारा जीवन एक सुमिरिनी ही है जिसका हर मनका उनसे प्रारम्भ होकर उन पर ही समाप्त होता है। 86 वर्ष की आयु उन्होंने पूर्ण की, इतना समय एक युग ही होता है। 6 मई 1997 को एक युग का अस्तित्व अनन्त में विलीन हो गया।

लोकप्रिय विज्ञान-पत्रकारिता के पुरोधा
प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

डॉ० रमेश दत्त शर्मा

निदेशक, कृषि सूचना और प्रकाशन निदेशालय,
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि अनुसंधान भवन, पूसा,
नई दिल्ली - 110012

मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे हिन्दी के अनेक गणमान्य विज्ञान लेखकों का सानिध्य और आशीर्वाद मिला। श्रद्धेय प्रोफेसर भगवती प्रसाद श्रीवास्तव जी, जब अलीगढ़ में प्राध्यापक थे, तभी वैज्ञानिक शब्दावली आयोग की बैठकों में उनसे परिचय हुआ। जब 'धर्मयुग' में मेरी रचना 'ये हिन्दी के उपेक्षित विज्ञान साहित्यकार' छपी तो उसमें मैंने श्रीवास्तव जी का उल्लेख कुछ इस तरह किया था कि मैट्रिक के छात्रों को एक प्रश्न पूछा गया था प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में। और अलीगढ़ में बहुत से छात्रों को पता नहीं रहा होगा कि जो आदमी उनके कक्ष में प्रश्न-पत्र और उत्तर-पुस्तिका बांट रहा है, वही प्रोफेसर श्रीवास्तव हैं।

इसके बाद जब श्रीवास्तव जी ने लखनऊ से 'विज्ञान जगत' और आगरा से 'विज्ञान लोक' निकाला तब उनसे बहुत बार भेंट हुई और पत्र-व्यवहार तो आखिर तक चलता रहा। सन् 1977 में नई दिल्ली के सप्रू हाउस में दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में मैंने 'विज्ञान सम्मेलन' आयोजित किया था। इसमें आदरणीय श्रीवास्तव जी पधारे थे और अन्य वरिष्ठ विज्ञान लेखकों के साथ उन्हें 'विज्ञान सरस्वती' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। उस समय सभी अभिनंदित विज्ञान-साहित्यकारों ने अपने-अपने संस्मरण सुनाए थे। उस समय प्रोफेसर साहब अपनी पुरानी यादों में खो गये थे। हिन्दी में अभिरुचि बचपन से ही पैदा हो गई थी। बंकिमचंद्र के उपन्यासों और 'भारत-भारती' जैसे काव्यों से बचपन में ही हिन्दी-प्रेम के बीज पड़ गये थे फिर विज्ञान पढ़ाने वाले कुछ अंग्रेज शिक्षक भी ऐसे मिले, जिन्होंने विज्ञान में गहरी दिलचस्पी जगा दी। इण्टरमीडिएट में जब विज्ञान के साथ हिन्दी साहित्य पढ़ने का अवसर नहीं मिला, तो उन्हें बुरा लगा, फिर मन को समझाया कि कक्षा में साइंस पढ़ते रहेंगे और घर पर हिन्दी साहित्य का अध्ययन जारी रखेंगे। जब कॉलेज में आये तो पॉपुलर साइंस और साइंटीफिक अमेरिकन-जैसी पत्रिकाएं पढ़कर विज्ञान की जटिलताओं को सरल रूप में समझाने का तरीका पता चला। कॉलेज अमेरिकन मिशन द्वारा संचालित होता था, इसलिए वैज्ञानिक पुस्तकें और पत्रिकाएं आसानी से उपलब्ध थीं।

कॉलेज के दिनों में ही भारतीय वैज्ञानिकों के व्याख्यान सुनने को मिले, इनमें डॉ० गोरख प्रसाद और डॉ० एस० दत्त आदि के व्याख्यान 'जन सुलभ शैली' में हुआ करते थे। 'उनके विषय प्रतिपादन की रोचक शैली से मैं बहुत प्रभावित हुआ', श्रीवास्तव जी ने बताया था। तभी उनके मन में यह विचार कौंधा कि 'काश! हिन्दी में भी सरल भाषा में, 'ब्रह्माण्ड में जीवन की खोज', 'आपेक्षिकता के सिद्धान्त'

आदि विषयों पर लेख आदि लिखे जाते। इलाहाबाद में श्रीवास्तव जी को 'भूगोल' के सम्पादक प्रोफेसर रामनारायण मिश्र जी के सम्पर्क का सौभाग्य मिला। मिश्र जी ने उनके अन्दर हिन्दी प्रेम के बीज देखकर, उन्हें पल्लवित करने में सहायता की। 'मेरे कमरे में वे एक दिन आये', श्रीवास्तव जी ने बताया, 'तो मेज पर एक पत्र पड़ा था, जो मैंने अपने पिताजी को अंग्रेज़ी में लिखा था। उसे देखा तो प्रोफेसर मिश्र जी ने आधा घण्टे तक मुझे समझाया कि यह कितनी लज़्ज़ाजनक बात है कि एक भारतीय बालक अपने पिता को विदेशी भाषा में पत्र लिखे। तभी परिवार के लोगों को अंग्रेज़ी में पत्र न लिखने का मैंने उन्हें वचन दिया।'

श्रीवास्तव जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने पर डॉ० गोरख प्रसाद जी, डॉ० सत्यप्रकाश जी तथा डॉ० मेघनाद साहा और प्रोफेसर शालिग्राम भार्गव सरीखे राष्ट्रीय विचारधारा के प्रोफेसरों के निकट सम्पर्क में आये। फलतः हिन्दी के प्रति उनकी अभिरुचि बढ़ती गयी। वे म्योर होस्टल (अब अमरनाथ झा होस्टल) के छात्र थे। उन्होंने बताया, 'यहाँ अधिकांश विद्यार्थी आई सी एस तथा पी सी एस की परीक्षाओं में बैठने की तैयारी करते रहते थे तथा पाश्चात्य संस्कृति में पारंगत होने का दम भरते थे।' इस होस्टल में श्रीवास्तव जी ऐसे अकेले विद्यार्थी थे, जो उपस्थिति-रजिस्टर पर हिन्दी में हस्ताक्षर करते थे। उन्होंने बताया, 'एक बार प्रोफेसर अमरनाथ झा ने, जो हमारे वार्डन थे, मेरे हिन्दी के हस्ताक्षर को देखकर मुझसे पूछा था, "अरे भाई, हिन्दी में कुछ लिखते वगैरह भी हो?" उस समय मैंने उत्तर दिया, "अभी तो नहीं, किन्तु भविष्य में लिखने का इरादा अवश्य है।" सन् 1940 में जब प्रोफेसर श्रीवास्तव जी की प्रथम पुस्तक, 'विज्ञान के चमत्कार' प्रकाशित हुई तो उसकी प्रति वे प्रोफेसर झा को भेंट करने गए। उसे देखकर झा साहब ने अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त की।

सन् 1935 में एम० एस-सी० करने के बाद भगवती प्रसाद जी एक साल तक क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद में प्रवक्ता के पद पर भी रहे। इस बीच उन्हें जनोपयोगी विज्ञान साहित्य के अनुशीलन का पर्याप्त अवसर मिला। उन्होंने बताया, "डॉ० गोरख प्रसाद तथा डॉ० सत्यप्रकाश के साथ वैज्ञानिक साहित्य के सृजन के सिलसिले में प्रायः विचार-विमर्श होते रहते। इन्हीं से प्रेरणा पाकर मैंने भी जनोपयोगी विज्ञान संबंधी लेख लिखने शुरू किये। सशंकित मन से मैंने अपना पहला लेख 'धर्म के रास्ते में विज्ञान' 'विशाल भारत' में प्रकाशनार्थ भेजा। लेख अक्टूबर 1936 अंक में प्रकाशित हुआ। मित्र मण्डली में मेरी इस उपलब्धि की खूब चर्चा हुई- लेखन कार्य जारी करने के लिए मुझे बल मिला।"

फिर तो बस श्रीवास्तव जी के ललित विज्ञान लेखों की पत्र-पत्रिकाओं में झड़ी लग गयी। 'भूगोल', 'सरस्वती', 'माधुरी' और 'सुधा' आदि में उनके वैज्ञानिक लेख बराबर छपते रहे। इलाहाबाद में सन् 1937 में प्रगतिशील लेखक संघ का द्वितीय सम्मेलन आयोजित हुआ था। इसमें जैनेन्द्र जी पधारे थे। इस अवसर पर श्रीवास्तव जी ने 'विज्ञान और साहित्य' पर अपना एक निबन्ध पढ़ा था। जैनेन्द्र जी ने उनके इस लेख की विशेष रूप से प्रशंसा की थी। बाद में भी जैनेन्द्र जी उन्हें हिन्दी के विज्ञान साहित्य की सेवा के लिए प्रेरित करते रहे।

सन् 1938 में वाराणसी से 'आज साप्ताहिक' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसमें भगवती प्रसाद जी के सुझाव पर इसके संपादक श्री मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव ने 'विज्ञान जगत' स्तंभ का इसमें समावेश किया। इस स्तंभ के लिए कई वर्ष तक नियमित रूप से लिखते रहे। लगभग इन्हीं दिनों अंग्रेज़ी के विश्वकोश 'बुक ऑव नॉलेज' की तरह ज्ञान कोश का 'हिन्दी विश्व भारती' के नाम से चारबाग, लखनऊ से प्रकाशन शुरू हुआ। इसके 'भौतिक विज्ञान' एवं 'प्रकृति पर विजय' खण्डों के लिए लेख लिखने का दायित्व भगवती प्रसाद जी को सौंपा गया। डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी तथा डॉ० भगवत शरण उपाध्याय जैसे उद्भट विद्वानों का सहयोग भी इस प्रकाशन के लिए मिला।

उन दिनों की याद करते हुए उन्होंने बताया, 'इसके लिए एक निश्चित रूपरेखा के अन्तर्गत् लेख तैयार करने के सिलसिले में तकनीकी शब्दों की समस्या भी सामने आयी। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा एक तकनीकी शब्दावली बहुत पहले प्रकाशित हुई थी। उन दिनों केवल यही शब्दावली उपलब्ध थी। किन्तु थी यह प्रामाणिक, क्योंकि सभा के

तत्वावधान में यह बाबू श्याम सुन्दर दास तथा प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा जैसे विद्वानों द्वारा तैयार करायी गयी थी। अतः हमने इसकी भरपूर सहायता ली। साथ ही अनेक तकनीकी शब्द अपनी सूझबूझ से गढ़ लिये।'

सन् 1939 से 1943 तक भगवती प्रसाद जी दिल्ली के एक विद्यालय में भी कार्य कर चुके थे। यहाँ वे डॉ० डी० एस० कोठारी के निकट संपर्क में आये। उन दिनों की स्मृतियों के बारे में उन्होंने बताया था, 'मेरे विज्ञान लेखन के प्रति वे विशेष रूप से आकृष्ट हुए तथा उन्होंने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के उपयोग की मुझे सुविधा प्रदान की। इस अवधि में दिल्ली के 'शनिवार समाज' के क्रिया-कलापों में सक्रिय भाग लेता रहा, फलतः श्री जैनेन्द्र, श्री गोपाल प्रसाद व्यास, डॉ० नगेन्द्र आदि के सम्पर्क में आया। इन सभी मित्रों ने मुझे विज्ञान लेखन के लिए प्रोत्साहित किया। आकाशवाणी दिल्ली पर उन दिनों मेरी अनेक विज्ञान वार्ताएं प्रसारित हुई।'

प्रोफेसर साहब सन् 1947 में धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ में आये। उनका कहना था कि यहाँ विज्ञान लेखन के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुविधाएं उपलब्ध थीं। सन् 1948 में उनकी पुस्तक 'परमाणु शक्ति' प्रकाशित हुई, जो इस विषय पर हिन्दी की प्रथम प्रामाणिक पुस्तक है। इसके लेखन के बारे में उन्होंने बाताया था कि, 'परमाणु ऊर्जा' जैसे क्लिष्ट विषय पर लिखने में पारिभाषिक शब्दों की समस्या बहुत ही कठिन थी। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग का तब तक गठन नहीं हुआ था। अतः अनेक पारिभाषिक शब्द स्वयं गढ़ने पड़े थे। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की प्रति जब मैंने डॉ० मेघनाद साहा को भेंट की तो उन्होंने बहुत सराहना की। तुरन्त ही कुछ अंशों को पढ़ा और जब उन्होंने देखा कि प्रोटॉन के लिए मैंने 'वृहत धन विद्युत कण' शब्द का इस्तेमाल किया है, तो हंसकर बोले, 'सच ए माउथफुल ऑफ वर्ड वोण्ड डू' (इतने बड़े शब्द से तो काम नहीं चलेगा)।' द्वितीय संस्करण में इस तरह की 'त्रुटियों' को प्रोफेसर श्रीवास्तव जी ने सुधारा।

सन् 1960 में पूरी साज-सज्ञा के साथ आगरे से 'विज्ञान लोक' मासिक का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसका संपादन 1961-63 रूड़की में विज्ञान कांग्रेस के अवसर पर 'विज्ञान लोक' का 'विज्ञान कांग्रेस विशेषांक' प्रकाशित किया गया, जो बड़ा चर्चित हुआ। अगले वर्ष 1962 में इसका 'अन्तरिक्ष अंक' निकला जो इस विषय का एक संदर्भ ग्रंथ माना जा सकता है। 'विज्ञान लोक' में छपे अनेक लेख गुजराती 'नवनीत' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में साभार प्रकाशित हुए। लगभग 10 वर्ष के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया।

केंद्रीय सरकार के शिक्षा विभाग से प्रकाशित होने वाले ग्रंथ 'ज्ञान सरोवर' में प्राकृतिक विज्ञान के कई विषयों पर लिखने का कार्य प्रोफेसर भगवती प्रसाद जी को सौंपा गया था। इसी तरह नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से केंद्रीय सरकार के अनुदान से प्रकाशित होने वाले संदर्भ ग्रंथ 'हिन्दी विश्वकोश' के लिए भी उन्होंने कई लेख लिखे।

उत्तर प्रदेश की हिन्दी समिति के अनुरोध पर 'लाइट एण्ड कलर' अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद किया, जो 'प्रकाश और वर्ण' के नाम से प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद वैज्ञानिक शब्दावली आयोग के प्रथम अध्यक्ष डॉ० डी० एस० कोठारी के आग्रह पर किया गया।

सन् 1967 में श्रीवास्तव जी की 'अंतरिक्ष यात्रा' पुस्तक प्रकाशित हुई। इसका प्रकाशन 'वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद' तथा 'नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया' के संयुक्त तत्वावधान में किया गया था। इसमें अंतरिक्ष विज्ञान के सभी पहलुओं का सरल और सुबोध शैली में विवेचन प्रस्तुत किया गया था। इसका अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ।

प्रोफेसर भगवती प्रसाद जी ने उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के तत्वावधान में विश्वविद्यालय में अवैतनिक विशेष अधिकारी के पद पर कार्य किया। इस दौरान उन्होंने स्वयं 'इलैक्ट्रिसिटी एण्ड मैग्नेटिज्म' पुस्तक का 'विद्युत एवं चुम्बकत्व' शीर्षक से अनुवाद किया। हिन्दी ग्रंथ अकादमी के भौतिकी के पैनल के वे वर्षों तक सदस्य रहे। उन्होंने इसके

कार्य कलापों के बारे में बड़े दुखी मन से बताया था, 'यह देख कर मुझे खेद हुआ कि अनेक प्राध्यापकगण अपने अनुवाद कार्य के प्रति पूर्ण निष्ठा नहीं बरतते। नतीजा यह होता था कि पुनरीक्षण करने वाले व्यक्ति को पाण्डुलिपि के संशोधन में अत्यधिक श्रम करना पड़ता था। साथ ही इस कारण पुस्तक के प्रकाशन में अनायास का बिलम्ब भी होता था। इसी का परिणाम है कि हिन्दी ग्रंथ अकादमी के कार्य की प्रगति अत्यंत धीमी रही।'

उन्होंने आगे बताया, 'उदाहरण के लिए डॉ० डी० एस० कोठारी की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'न्यूक्लियर एक्सप्लोजन्स एण्ड देयर इफेक्ट्स' का अनुवाद केंद्रीय हिन्दी निदेशालय के किन्हीं सज्जन से कराया गया। अनुवाद इतने भ्रष्ट स्तर का था कि दिल्ली के कई विद्वानों ने इसका पुनरीक्षण करने से इंकार कर दिया। अन्ततः स्वयं डॉ० कोठारी के अनुरोध पर इसके पुनरीक्षण का दायित्व मैंने लिया, तो मुझे इसे ठीक करने में कई महीने लगे और लगभग 50 पृष्ठों का मुझे नये सिरे से अनुवाद करना पड़ा। इसके बाद भी आठ साल तक यह किताब नहीं छपी।'

इसी तरह के अनेक कटु अनुभव श्रीवास्तव जी सुनाया करते थे और कहते थे कि सिफारिशी टट्टुओं ने हिन्दी के विज्ञान साहित्य के पुनीत राष्ट्रीय कार्य का बेड़ा गर्क कर रखा है। एक बार उन्हें यूनेस्को के तत्वावधान में 'संचार विज्ञान' पर एक पुस्तक के अनुवाद का पुनरीक्षण करना पड़ा। उन्होंने बताया कि अनुवादक ने इतनी लापरवाही बरती थी कि कई पैराग्राफ अनुवाद में थे ही नहीं। 'फलतः इस पाण्डुलिपि के पुनरीक्षण में मुझे घोर परिश्रम करना पड़ा, ताकि यह पुस्तक 'अंतरिक्ष युग में संचार' निर्धारित अवधि में प्रकाशित हो सके।'

कुल मिलाकर उनका मन हिन्दी में किये गए वैज्ञानिक शब्दावली और साहित्य सृजन के सरकारी प्रयासों के आधे अधूरेपन से बड़ा दुखी था। उन्होंने अपने दिल्ली प्रवास के समय मुझे बताया था, 'हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर मौलिक रूप से लिखी गयी तथा अनुदित बहुत सी पुस्तकों को देखने का मुझे अवसर मिला है। इनमें से अनेक पुस्तकों की भाषा नितान्त बोझिल और दुरूह लगी। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वैज्ञानिक और तकनीकी ग्रंथों के लिए भी भाषा-सौष्ठव उतना ही आवश्यक है, जितना मानविकी के ग्रंथों के लिए। इस संदर्भ में यह स्मरण रखना होगा कि पारिभाषिक शब्द इस प्रकार प्रयुक्त किये जाएं कि अनुवाद की भाषा में वे पूर्णतः आत्मसात हो जाएं तथा प्रवाह में इस तरह घुलमिल जायें कि वे अलग से थोपे गए न जान पड़ें। यह भी ध्यान रखना वांछनीय होगा कि हिन्दी अनुवाद की व्यंजना शैली अंग्रेजीनिष्ठ न होने पाये। हिन्दी की व्याकरणानुमोदित व्यंजना शैली की स्वस्थ परम्परा का निर्वाह अवश्य होना चाहिए।'

उनका कहना था कि इन सावधानियों की उपेक्षा करने पर पुस्तक की भाषा का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। अतः दुरूह और भ्रष्ट वाक्य-रचना वाली कृतियों के प्रति पाठक की रुचि कदापि नहीं हो सकती। फलतः ऐसे ग्रंथ हिन्दी भाषी प्रदेशों में सर्वप्रिय नहीं हो सकते।

प्रोफेसर साहब ने पत्र-पत्रिकाओं में छप रहे वैज्ञानिक लेखों पर प्रसन्नता प्रकट की थी। उनका स्तर भी उनकी दृष्टि में 'सराहनीय' था। वे इसे हिन्दी साहित्य के सर्वांगीण विकास के लिए 'शुभलक्षण ' मानते थे। उनके ये शब्द तो मानो विज्ञान लेखकों की नयी पीढ़ी के लिए कलम के धनी उस महान साहित्यकार का एक प्रकार से मार्गदर्शक संदेश ही बन गये हैं, 'मैं आशा करता हूँ कि विज्ञान लेखन में रुचि लेने वाले आज के कर्मठ विद्वान अपने प्रयास में कदापि ढील न आने देंगे- तभी हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी हर तरह से समृद्ध बन पायेगी तथा कालान्तर में इसकी गणना संसार की अग्रणी भाषाओं में होने लगेगी।'

अंतिम बार उनका पत्र आया था कि वे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की हिन्दी पत्रिकाएं देखना चाहते हैं। मैंने उन्हें 'खेती', 'फलफूल' और 'कृषि चयनिका' की प्रतियाँ भेजना शुरू कर दिया। उन्होंने अपनी सकारात्मक प्रतिक्रिया भेजी, तो मुझे लगा कि मैं एक इम्तहान में पास हो गया। ये लोग जो हिन्दी विज्ञान लेखन के कंटकाकीर्णमार्ग को बाद की पीढ़ी के लिए सुगम बना गए, प्रणम्य हैं। मैं उनकी पुण्य स्मृति से गद्गद् हूँ कि उनका आशीर्वाद पा सका।

तीन दशकों के मेरे सारस्वत सहकर्मी पचास वर्षों के अभिन्न मित्र स्व० भगवती बाबू

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

प्रधान संपादक, हिन्दी "विश्वभारती" (ज्ञान विज्ञान-कोश)
मनु-निकुंज, सी-45(ए), निराला नगर, लखनऊ-226020

जब 1938 ई० में (आज से साठ वर्ष पूर्व) मैंने हिन्दी में, "बुक ऑफ नॉलेज" जैसे अंग्रेजी के प्रकाशनों से टक्कर लेने में सक्षम, एक बहुखण्डी लोकरंजक विश्वकोश- तैयार करने का बीड़ा उठाया, तो प्रदेश के तीन बड़े विश्वविद्यालयों - इलाहाबाद, बनारस और लखनऊ की युनिवर्सिटियों के द्वार उपयुक्त पठन सामग्री मुहैया करने की क्षमता रखने वाले प्रोफेसरों की टोह में खटखटाए।

मुझे सबसे अधिक चिन्ता विज्ञान के विषयों पर लिखने वालों को लेकर लगी थी। सौभाग्य से, खगोल विज्ञान (एस्ट्रोनॉमी) प्राणिशास्त्र और शरीर विज्ञान (बायलॉजी, जूलॉजी, एनाटॉमी, फीजियोलॉजी), रसायन-विज्ञान (कैमेस्ट्री), वनस्पति-विज्ञान (बॉटनी), आदि वैज्ञानिक विषयों पर सामग्री प्रस्तुत करने वाले प्रकाण्ड विशेषज्ञ तो पहले प्रयास ही में हाथ लग गए। डॉ० गोरख प्रसाद, प्रो० श्रीचरण वर्मा, पं० मदन गोपाल मिश्र, डॉ० शिवकंठ पाण्डेय उन्हीं में थे। परन्तु अभी तक भौतिक विज्ञान (फ़िज़िक्स) पर हिन्दी में लिखने का दम रखने वाला कोई भी लेखक मुझे नहीं मिला था। मैं इस नाते इहालाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर शालिग्राम भार्गव से भी मिला था। परन्तु वह भी तैयार नहीं हुए थे।

तब हताशा से कुलबुलाकर, मैंने उन दिनों के एक दैनिक अंग्रेजी समाचार पत्र में इस संबंध में एक विज्ञापन प्रकाशित करने की जुगाड़ की। तरकीब काम कर गई। दूसरे सप्ताह ही मेरे पास मथुरा से एक पत्र आया। प्रेषक थे- श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव। वह वहाँ के "किशोरी रमण इंटर कॉलेज" में फ़िज़िक्स के प्राध्यापक उन दिनों थे। उन्होंने इस विषय पर और सो भी हिन्दी में- लिखने की अपनी सहमति जाहिर की। मैं फूला नहीं समाया। पर न तो उनका नाम ही मैंने तब तक सुना था, न कोई उनकी कृति ही मुझे देखने को मिली थी। मात्र पत्र-व्यवहार से इस बारे में तसल्ली नहीं मिल सकती थी। अतः मैंने तत्काल मथुरा का रेल-टिकट कटाया और पहुँचा वहाँ, पत्र में दिये पते पर, "डैम्पियर नगर" नामक बस्ती में। इस प्रकार तीन दशकों तक बाँह से बाँह मिलाये हुए मेरे उन सारस्वत सहकर्मी के साथ जुड़ा मैं, जो बाद को तो इससे भी अधिक गहरे आत्मीय अभिन्न मित्र ही बन गये थे।

भगवती बाबू के साथ मेरा बौद्धिक तादात्म्य

देखने में मेरी तरह ही दुबले-पतले। आयु में भी समान (क्योंकि हम लोगों का जन्म एक ही वर्ष सन् 1910 ई० में

हुआ था, मेरा जनवरी में और उनका अक्टूबर में) परन्तु यह समानता कोई अधिक महत्व नहीं रखती थी। सबसे ज़्यादा मूल्य तो हमारे नवगठित संबंध का यह था कि दोनों का बौद्धिक रुझान एक ही ध्रुव दिशा में सधा हुआ था। इसी तादात्म्य की बदौलत ही पूरी अर्द्ध-शताब्दी की हमारी अटूट मैत्री में कभी एक सूक्ष्म दरार भी पड़ने नहीं पाई। यह सही है कि आरम्भ में इहालाबाद के "इविंग क्रिश्चियन कॉलेज" के शिक्षाकाल में श्री शिवदान सिंह चौहान आदि मित्रों के संपर्क ने, भगवती प्रसाद श्रीवास्तव को भी, उन दिनों की हवा के प्रगाढ़ प्रभाव से संपृक्त करके (कम से कम सारस्वत स्तर पर) साम्यवादी विचारधारा से अभिभूत कर दिया था। परन्तु वह उनके बर्ताव में कभी परिलक्षित नहीं हुई जैसा कि अन्य गहराई तक "कम्यूनिज्म" के रंग में रंगे हुए "कामरेडों" के व्यवहार में (विशेषतया बातचीत, बहस-मुबाहसे में) प्रायः देखने को मिला करती थी। जान पड़ता है, अपने घर ही चहारदीवारी में तो (कदाचित धर्मपत्नी के प्रगाढ़ धार्मिक रुझान के कारण) वह अपने अन्य धर्मबन्धुओं की तरह पक्के हिन्दू धर्मानुयायी गृहस्थ ही थे। वह फिर अधिक दिनों तक ब्रज के नाभिस्थल मथुरा में निवास करने के परिणामस्वरूप जान पड़ता है कि श्रीकृष्ण भक्त ही बन गये थे। इसकी साख उन्होंने अपनी सर्वप्रथम संतान का नाम "गोपाल" रखकर दी थी। उधर मैंने ठेठ अलीगढ़ के "धर्म समाज कॉलेज" में उनके आ जाने के दिनों में कॉलेज के प्रांगण में उनके निवास स्थान में (जहाँ हास्टल के वार्डन होने के नाते वह रहते थे) भीतरी आंगन में एक तुलसी का ईंटों से बना पक्का गमला बना देखा था। वहाँ उनकी सहधर्मिणी पूजा करके वृंदा को जल चढ़ाती थीं।

भगवती बाबू ऐसी सौम्य शान्त प्रकृति के थे कि मुझे तो लगता था कि मानों क्रोध का दानव उन्हें कदाचित छूने का साहस ही नहीं कर पाता था। बोलते भी थे बहुत धीमे स्वरसप्तक पर अपनी वाणी को संधानते हुए। मथुरा में उन्हें जैसा पहले साक्षात्कार में पाया, वैसे ही हूबहू नयन गोचर करता रहा बाद में तमाम वर्षों में जब कि वह लखनऊ में आ जाकर मुझसे निरन्तर मिलते रहे और अधिकतर मेरे ही आवास-स्थान पर टिकते भी रहे। मेरा उनका घना संपर्क पूरे पचास वर्षों के कालवर्णपट पर विकीरित हुआ, पर मुझे याद नहीं कि एक बार भी कभी किसी मसले पर उनसे वाद विवाद या ऊँचे स्वर की कहा-सुनी हुई हो।

जो आत्मीयता उभरी, वह गहराती ही चली गयी

ऐसी आत्मीयता एक बार विकास की ओर उन्मुख होकर, भला जहाँ की तहाँ एक ही स्तर पर थमी क्यों कर रह सकती थी? वह अनवरत बल पाते हुए अधिकाधिक प्रगाढ़, अधिकाधिक गहरी, अधिकाधिक स्नेह संपृक्त होती चली गई। मैं मथुरा तो शायद दो एक बार ही गया होऊँगा, पर अलीगढ़ तो इतनी दफ़ा गया और उनके साथ ही ठहरा कि मुझे आज उसकी गिनती याद नहीं हो पा रही है। मथुरा की उनकी मेहमानी की स्मृति स्वामीघाट की एक विशिष्ट दुकान से उनके द्वारा खरीदे गए "पेड़े" थे तो अलीगढ़ की याद महावीर गंज की एक दूध रबड़ी वाले की वह मलाई के पापड़ जैसी खुरचन जो आज भी मुझे विभोर कर दिये दे रही है। मैं एक दिन के लिए आज़मगढ़ भी एक भी एक बार गया था। तब वह नगर इतना विकसित नहीं हो पाया था। इक्के में बैठकर खड़खड़ाता हुआ "पाण्डे की बाज़ार" के उनके पुराने तर्ज़ के विशाल हाते वाले घर पर पहुँचा था। उन्होंने बाज़ार में घुमा-फिराकर मुझे वह स्थान दिखाया था, जहाँ "प्रियप्रवास" और "चुभते हुए चौपदे" के प्रणेता महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय रहे थे। साथ ही, उर्दू का वह अदबी केंद्र भी जहाँ, स्थित उर्दू, फारसी, अरबी ग्रंथ संग्रह की एक अद्‌भुत लायब्रेरी की ख्याति मैंने पहले ही सुन रखी थी, मुझे बाहर से जा दिखाया।

इस तरह भगवती बाबू के साथ मेरी आत्मीयता- जो अंकुरित तो हुई थी "हिन्दी विश्व भारती" के लिए भौतिक विज्ञान विषय पर एक सक्षम लेखक की खोज के क्रम में- दिन प्रति दिन पल्लवित पुष्पित होती चली गई। और, तब उसने अपना चरम चमत्कार दर्शाया उस समय, जब कि मैं कुछ अस्वस्थ रहने लगा तथा डॉक्टरों की राय पर मुझे कुछ समय तक मालवा की समशीतोष्ण जलवायु में विश्राम करने को अपने जन्मस्थल बड़नगर जाकर रहना पड़ा। तब एक अभिन्न मित्र की भूमिका का वहन करते हुए, भगवती प्रसाद श्रीवास्तव ने स्वेच्छा से अपना मदद का हाथ बढ़ाया। सो इस प्रकार कि मेरी अनुपस्थिति में, लखनऊ आकर "हिन्दी

विश्व भारती" के संपादन का दायित्व (एवजी के बतौर) ग्रहण करने का बड़प्पन उन्होंने विकीरित किया। मैं फूला नहीं समाया और तत्काल आगे के अंक की सारी सामाग्री उन्हें थमा दी। फलतः लगभग दो-तीन महीने तक, लखनऊ से दूर रहने की मेरी निवर्तमान स्थिति में, भगवती बाबू ने यहाँ टिककर तथा उस दौरान छपाई चित्र सज्ञा आदि का सारा भार ग्रहण करके अंक निकाला। इस तरह मेरा संकट निवारण कर भूरि-भूरि "हिन्दी विश्व-भारती" के विविध भागों की उन दिनों की प्रकाशन लड़ी को उन्होंने बरकरार बनाये रखा।

बाद को अलीगढ़ से अवकाश ग्रहण करके वह वापस आज़मगढ़ आकर रहने लगे, तो उन्हें भी स्वयं अस्वस्थता की विभीषिका ने धर दबोचा। तब तक उनके पुत्र गोपाल ने लखनऊ में ही अपना निजी आवासस्थल निर्मित करा लिया था। मैंने भगवती बाबू पर ज़ोर डाला कि अपनी इस वृद्धावस्था के महौल में आज़मगढ़ में पत्नी सहित अकेले रहना उचित नहीं। उन्हें अब अपने सुपुत्र के साथ ही रहकर शेष जीवन निश्चिन्त होकर बिताना चाहिए। उन्होंने मेरी बात मान ली और आज़मगढ़ छोड़ लखनऊ ही में अपना डेरा डाल दिया। तब नियमित रूप से आ-आकर मुझसे मिलते भी रहे और मैं भी कभी-कभी उनसे जाकर मिलता रहा।

हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के अग्रदूतों में उनका स्थान प्रथम पंक्ति में है

परन्तु यह सब कुछ इस संस्मरणात्मक श्रद्धांजलि की अपनी प्रस्तुति में जो लिखा गया हूँ, उससे कदाचित 'विज्ञान' के इस विशेषांक के पाठकों की जिज्ञासा-पूर्ति क्यों कर हो सकेगी? वे तो चाहेंगे श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव का हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य में योगदान का मूल्यांकन उनके कृतित्व की समीक्षा। इसका दो टूक समाधान मेरी ओर से यही है कि इस हेतु जाकर देखें किसी पुस्तकालय में संजोये गये 1939ई० से 1964 ई० तक के "हिन्दी विश्व-भारती" (ज्ञान-विज्ञान-कोश) के विविध संस्करणों के लगभग आठ-नौ हज़ार पृष्ठों की मेरे द्वारा संपादित विविध विषयों की वृहत् सामग्री। तब इस बात पर भी गौर करें कि इस विराट हिन्दी-अनुष्ठान के अंबार में सैकड़ों पृष्ठों की "भौतिक विज्ञान" एवं "प्रकृति पर विजय" विभागों की समूची पठन-सामग्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव की ही प्रस्तुति है- यद्यपि उसकी क्रमबद्ध योजंना, शीर्षक, चित्र-सज्ञा, टिप्पणियाँ एवं भाषा की एकरसता (संपादक और ग्रंथ-योजना नियोजक होने के नाते) अवश्य मेरी जुगाड़ है।

श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव एक मंजे हुए सिद्धहस्त गद्य लेखक थे। उनकी विधा तो अवश्य ही वैज्ञानिक थी परन्तु उस विधा को उन्होंने अपने अगाध विषय ज्ञान, अतुलित शब्द भण्डार, सरल सुबोध लोकरंजक लेखन-शैली द्वारा भूरि-भूरि चमत्कृत कर दिया। वह जिस लाघवता के साथ भौतिक विज्ञान के प्रारम्भिक मुद्दों (यथा मूलभूत शक्तियाँ, घनत्व, भार, गुरुत्वाकर्षण, ऊष्मा, प्रकाश, चुंबक और विद्युत्-शक्ति आदि-आदि पर अत्यन्त आसान तरीके से जानकारी कराने की क्षमता रखते थे, उतनी ही अशुता से आइन्स्टाइन के "आपेक्षिकता-सिद्धान्त", "क्वांटम-सिद्धान्त" एवं "तरंग-यांत्रिकी" जैसे गहन विषयों को भी सामान्य जनों को अवगत कराने का सामर्थ्य उनमें था। फिर, जिसे "पापुलर सायन्स" (लोकरंजक विज्ञान) कहा जाता है, उसकी प्रस्तुति की तो कमाल की प्रतिभा उनमें थी। वह भूरि-भूरि हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के पुरोधाओं में अग्रिम पंक्ति में विराजमान होने वाले मनीषी थे। हिन्दी विश्व-भारती के लेखों के अलावा, "परमाणु शक्ति", "विज्ञान के चमत्कार", "विज्ञान की प्रगति" शीर्षक उनकी अनन्य पुस्तकें भी पठनीय हैं।

भगवती प्रसाद श्रीवास्तव की कुछेक पुस्तकों का परिचय

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

शोध सहयोगी, विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

(1) परमाणु शक्ति

प्रकाशक-- ज्ञान मण्डल, वाराणसी
प्रथम संस्करण - 1948
मूल्य-- 2.00 रुपये
पृष्ठ- 2 (प्राक्कथन) + 91 + 11 (परिशिष्ट)
चित्र-14 (सादे)

विषय सूची : 1. शक्ति की खोज में, 2. पदार्थ जगत्-अणु परमाणुओं की दुनिया, 3. परमाणुओं के भीतर क्या हैं? 4. परमाणु का स्वरूप, 5. केन्द्र पिण्ड की रचना, 6. परमाणु विभंजन, 7. आइन्स्टाइन की भविष्यवाणी शक्ति सृजन का रहस्योद्घाटन, 8. यूरैनियम परमाणु का विघटन, 9. प्रथम परमाणु बम का निर्माण तथा उसका परीक्षण, 10. प्रथम परमाणु बम का परीक्षण, 11. हिरोशिमा और नागासाकी 12. परमाणु-शक्ति का भविष्य, 13. और अब।

कदाचित् परमाणु-शक्ति की खोज मानव-समाज के विकास की दृष्टि से उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी अतीत के मानव द्वारा अग्नि उत्पन्न करने की घटना। आज का मानव यदि शक्ति के इस स्रोत को पाकर गर्वोन्मत्त हो गया, तब तो विज्ञान की यह महत्वपूर्ण खोज मानव समाज के लिए वरदान न होकर घोर अभिशाप ही सिद्ध होगी। अतः वैज्ञानिक ही नहीं अपितु सभी नागरिकों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि प्राण-पण से इस बात का प्रयत्न करें कि परमाणु-शक्ति का प्रयोग केवल मानव-कल्याण के निमित्त ही किया जाय।

परमाणु-शक्ति के रहस्योद्घाटन की पूर्व भूमिका क्या थी, परमाणु के निर्माण के लिए किन-किन साधनों की आवश्यकता होती है तथा परमाणु शक्ति के रचनात्मक प्रयोग की सम्भावनायें क्या हैं- इन सभी प्रश्नों का समाधान इस पुस्तक में दिया गया है। पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत् तकनीकी शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या भी दी गयी है, जिससे विषय-वस्तु की बोधगम्यता बढ़ी है।

(2) विज्ञान की प्रगति (सचित्र)

प्रकाशक- ज्ञान मण्डल, वाराणसी
प्रथम संस्करण-- 1951
मूल्य- 3.50 रुपये
पृष्ठ- 7 + 218, चित्र-15 (सादे)

विषय सूची : 1. हमारा वैज्ञानिक साहित्य, 2. भारतीय विज्ञान के गत पच्चीस वर्ष, 3. स्वाधीन भारत में विज्ञान साधना, 4. विज्ञान तथा राजनीतिक सत्ता, 5. परमाणु-शक्ति की राजनीति, 6. विश्व की आयु, 7. ग्रहों पर जीवधारी, 8. कॉस्मिक रश्मियाँ, 9. कृत्रिम वर्षा के प्रयोग, 10. युद्ध के कुछ न्यूनतम अस्त्र, 11. टैंक, 12. परमाणु बम, 13. रैडर, 14. युद्ध में कीटाणुओं का प्रयोग, 15. जेट-वायुयान, 16. हाइड्रोजन बम, 17. समुद्र के गर्भ में 18. ध्वनि तरंगों की उपयोगिता, 19. चिकित्सा-विज्ञान की प्रकृति, 20. नेत्र

चिकित्सा की नवीन प्रणाली, 21. सूक्ष्म फोटोग्राफी, 22. मधुमक्खी, 23. इच्छा शक्ति, 24. व्यक्तित्व का निर्माण, 25. आचरण की कृपणता, 26. प्लैस्टिक, 27. बाह्य जगत- अन्य जीवधारियों की दृष्टि में, 28. मलेरिया-मानव जाति का शत्रु, 29. सर्प सम्बन्धी कुछ निर्मूल धारणाएं, 30. वैज्ञानिक जब स्वयं अपने ऊपर प्रयोग करता है, 31. विज्ञान के पक्ष में।

मानव को इस स्तर तक पहुँचाने में विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है और उसने एक लम्बा मार्ग तय किया है। यही कारण है कि आज सभ्यता विज्ञान के प्रभाव से ओत-प्रोत है। मानव समाज निरन्तर गतिशील है और वह उपलब्ध साधनों का भरपूर लाभ उठाने के लिए कृतसंकल्प दिखाई पड़ रहा है। ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश में उसे क़दम आगे बढ़ाना ही पड़ता है। यदि इस नियम के विपरीत कोई रूढ़ियों में फँसकर आगे बढ़ने से इन्कार कर रहा है तो वह विकास से अपने आप को दूर रखना चाह रहे हैं।

आधुनिक विज्ञान हमारे जीवन पर कितना प्रभाव डालता है, इसका आभास इस पुस्तक से मिल जायेगा। इससे जनसाधारण को समाज में वैज्ञानिक उत्थान के समावेश करने की प्रेरणा मिलती है। जनसाधारण के लिए तकनीकी शब्दों तथा सूत्रों का समावेश कोई महत्व नहीं रखता। अतः पुस्तक को जनसाधारण के रुचिकर बनाने के लिए पुस्तक में हाइड्रोजन बम, रैडर तथा कॉस्मिक रश्मि जैसे जटिल विषय की भी विवेचना साधारण बोल-चाल की भाषा में की गयी है। यह पुस्तक सामान्य लोगों के लिए भी उपयोगी बन गयी है।

(3) विज्ञान और जीवन (सचित्र)

लेखक-अम्बिका प्रसाद सक्सेना तथा भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

प्रकाशक-विनय पुस्तक भण्डार, शीतलामाता बाजार, इन्दौर

द्वितीय संस्करण-1953

मूल्य- 1.00 रुपये, पृष्ठ- 5 + 66, चित्र-10 (सादे)

हमारे दैनिक जीवन में विज्ञान का गहरा प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आदिकाल से मानव ने प्रकृति के रहस्यों को जानने व समझने का प्रयत्न किया है। इस रहस्योद्घाटन के साथ ही प्रकृति पर विजय पाने का भी प्रयत्न किया है तथा सफलता भी प्राप्त की है।

मानव मस्तिष्क की जिज्ञासा पूर्ण प्रश्नों क्यों और कैसे का समाधान ढूँढने के लिए वह ज्यों-ज्यों सत्यान्वेषण में आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों विज्ञान की गुत्थियाँ भी सुलझती गयीं। फलस्वरूप आज से विज्ञान ने मानव को अपरिमित शक्ति प्रदान कर दी है, जिसे मानव कल्याण के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है और अहित के लिए भी। पुस्तक में इसी बात को ध्यान में रखकर विज्ञान की गतिविधि तथा सम्भावनाओं से परिचित कराने का प्रयत्न किया गया है। इसका सुफल यह होगा कि जनसमुदाय विज्ञान के दुरुपयोग को रोकने के लिए सचेष्ट हो सकेगा। लेखक द्वय ने अत्यन्त सरल व सुबोध भाषा में विज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात किया है। सृष्टि के सूक्ष्मतम परमाणु से लेकर अनन्त आकाश के ग्रह नक्षत्रों तक का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। इससे पाठकगण जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना कर जीवन को सफल बना सकेंगे।

(4) प्रगति के पथ पर (सचित्र)

प्रकाशक- सरन ब्रदर्स, पुस्तक प्रकाशक, आगरा

मूल्य- 1.24 रुपये, चित्र-11 (सादे), पृष्ठ- 7 + 218,

प्रथम संस्करण- 1956

विषय-सूची : 1. प्रयत्नशील मानव, 2. एवरेस्ट पर विजय, 3. अर्ध्वाकाश का रहस्योद्घाटन,- 4. अतुल जलराशि के नीचे, 5. चिकित्सा के क्षेत्र में, 6. तेजी की हद, 7. मीलों लम्बी सुरंगे, 8. धरती की प्यास वैज्ञानिक बुझायेगा,9. सूर्य रश्मियों से शक्ति, 10. परमाणु शक्ति पर विजय, 11. स्वयं अपने ऊपर परीक्षण, 12. विशालकाय पुलों का निर्माण, 13. बाढ़ के जल पर नियंत्रण, 14. वैज्ञानिक की आँखें - रैडर चक्षु, 15. कृषि में विज्ञान, 16. उत्तरी ध्रुव पर विजय।

विज्ञान के प्रत्येक आविष्कार और शोध के साथ कष्ट-सहन, त्याग और आत्मबलिदान की अमरगाथा छिपी हुई है और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के प्रयत्न अनवरत जारी

हैं। परन्तु मानव की ज्ञान पिपासा शान्त होने वाली नहीं है। वह तो इस अखिल ब्रह्माण्ड के जर्रे-जर्रे का रहस्योद्घाटन करने के लिए कटिबद्ध है। अपने इस रहस्योद्घाटन के अभियान में मानव ने प्रकृति की शक्तियों को अपने वश में कर लिया है। वह आज इस स्थिति में है कि जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के निमित्त विज्ञान के वरदानों का भरपूर उपभोग कर सके।

वास्तव में जितने भी आविष्कार हुए हैं उनका निर्माण वैज्ञानिकों ने अकस्मात् ही नहीं कर डाला है। अपितु आविष्कार और नई खोज के पीछे परिश्रम व निष्ठा तथा लगन है। प्रस्तुत पुस्तक में मानव के प्रकृति से संघर्ष की इसी कहानी को रोचक ढंग से बताने का प्रयत्न किया गया है। चित्रों के समावेश से पुस्तक और रोचक हो गयी है।

(5) वायु की कहानी (सचित्र)

प्रकाशक- भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़

प्रथम संस्करण- 1956

मूल्य- 0.75 रुपये

चित्र- 43 (सादे), पृष्ठ- 38 + 4

विषय सूची : 1. वायु मण्डल, 2. हवा का दबाव नापना- बैरोमीटर, 3. हवा के दबाव से लाभ, 4. ऊँचे आकाश की हवा, 5. गुब्बारे और हवाई जहाज 6. हवा की बनावट, 7. हवा स्वास्थ्य के लिए।

हवा इस धरती पर सबसे महत्वपूर्ण व मूल्यवान वस्तु है। वास्तविकता यह है कि अन्य वस्तुओं के मुकाबले हवा सबसे मूल्यवान है, परन्तु इन अनमोल वस्तुओं के बारे में हमारी जानकारी अत्यल्प है। मानव ने किस सीमा तक वायु पर विजय पायी है और उसका कौन सा इलाका अब भी हमारी जानकारी से बाहर है? निःसन्देह विज्ञान के इस युग में इस जरूरी विषय के बारे में इस तरह की बातों की जानकारी हासिल करना नितान्त आवश्यक है। यह छोटी सी पुस्तक इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर लिखी गयी है। विषयवस्तु को सरल और रोचक शैली में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे पाठक उसमें रस पा सकें, कही हुई बातों को समझकर हृदयंगम कर सकें और इस तरह की बातें जानने की उनके मन में उत्कंठा जग सके। बच्चों के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। पुस्तक के अन्त में क्या तुम जानते हो? शीर्षक के अन्तर्गत परिशिष्ट दिये जाने से पुस्तक और भी उपयोगी बन गयी है।

(6) घरेलू बिजली (सचित्र)

प्रकाशक- ज्ञान मण्डल, वाराणसी

प्रथम संस्करण- 1957

मूल्य- 4.00 रुपये, चित्र- 80 (सादे)

पृष्ठ- 2 (भूमिका) + 1 (विषय सूची) + 105

विषय सूची : 1. बिजली के बारे में साधारण बातें, 2. बिजली के प्रभाव, 3. आपके घर बिजली के तार की लाइन, 4. बिजली का टेस्टर स्वयं बनाइये, 5. डी सी तथा ए सी बिजली, 6. तार के टाँके लगाकर जोड़ना, 7. कनेक्शन, तार और प्लग के बारे में, 8. होल्डर (साकेट), स्विच और आउटलेट, 9. फ्यूज के बारे में, 10. बिजली की घण्टी, 11. बिजली के स्टोव, रैडिएटर आदि, 12. बिजली के टार्च के बारे में, 13. सूखी सेलों के बारे में, 14. विभिन्न किस्म के बल्ब, 15. बिजली के छोटे मोटर, बिजली से खतरा।

इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने बिजली के सम्बन्ध में काम की बातें ही दी हैं।

घर या फैक्ट्री के अन्दर पावर हाउस के तार की लाइन किस प्रकार लगायी जाती है, स्विच कैसे लगाये जाते हैं, फ्यूज क्यों लगाये जाते हैं तथा प्लग आदि को डोली में कैसे जोड़ते हैं, इस तरह के आवश्यक प्रश्नों का समाधान आपको इस पुस्तक में मिलेगा। चित्रों द्वारा बिजली संबंधी अनेक व्यवहारिक बातों को अत्यन्त सरल तरीके से समझाने का प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक की भाषा सरल तथा शैली रोचक है। इसमें कठिन टेक्निकल शब्दों का उपयोग नहीं किया गया है। प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा में ही विषय को समझाने की कोशिश की गयी है। लेखक 1940 से ही लोकोपयोगी विज्ञान लेखन करते रहे हैं।

(7) विज्ञान के चमत्कार (सचित्र)

प्रकाशक- ज्ञान मण्डल, वाराणसी

चतुर्थ संस्करण- 1957,

पृष्ठ - 11 + 279, चित्र- 32 (सादे)

विषय सूची : 1. विज्ञान के कटीले पथ पर, 2. चन्द्रमा-हमारा निकटतम पड़ोसी, 3. उल्कापात, 4. पुच्छल तारे क्या हैं? 5. आसमान से बिजली क्यों गिरती है? 6. दुनिया की सबसे बड़ी दूरबीन, 7. फोटोग्राफी के चमत्कार, 8. रेडियो समाचार-पत्र, 9. टेलीविजन या दूरदर्शन, 10. रेडियम, 11. विज्ञान का नोबेल पुरस्कार, 12. परमाणु शक्ति का भविष्य, 13. अतुल जलराशि के नीचे, 14. सबमैरीन, 15. भूकम्प, 16. वैज्ञानिक पृथ्वी के भीतर कैसे देखता है, 17. भविष्य के वायुयान, 18. पैराशूट, 19. जानवरों में सोचने की शक्ति, 20. साँप का जहर कैसे दुहते हैं? 21. अपराधियों के पकड़ने में विज्ञान की सहायता, 22. मनुष्य के शरीर की विचित्रताएं, 23. भविष्य के मनुष्य, 24. मस्तिष्क के अन्दर विद्युत तरंगें, 25. बुद्धि की नाप-जोख, जीवधारियों के आकार की उपयुक्तता, 27. प्रकृति की भयंकर भूलें, 28. शारीरिक पीड़ा की नाप-जोख, 29. विद्युत-तरंगों के चमत्कार, 30. चमत्कारी चिकित्सा विज्ञान, 31. रक्तदान-चिकित्सा, 32. पेनिसिलिन, 33. डी०डी०टी०, 34. वनस्पति संसार, 35. कृषि में नवीन युग का आविर्भाव, 36. मांसाहारी पौधे, 37. विटामिन क्या है? 38. दूध और लकड़ी के बने वस्त्र, 39. कांच-एक अद्भुत पदार्थ, 40. गोल सुराख में चौकोर खूंटा, 41. विज्ञान को दोषी मत ठहराइये, 42. अन्तरिक्ष में प्रवेश का साधन स्पुतनिक।

यह पुस्तक लेखक द्वारा लिखे लेखों का संग्रह है, जो साप्ताहिक 'आज' में प्रकाशित होते रहे। पुस्तक के रूप में इन निबन्धों को जनता के सामने रखने का एकमात्र उद्देश्य है-- जनता के अन्दर विज्ञान के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना, क्योंकि विज्ञान के इस युग के जीवन के हर एक क्षेत्र में हम विज्ञान के आविष्कारों से फायदा उठाते हैं।

विज्ञान के नूतनतम आविष्कारों ने मनुष्य के हाथों में अपार शक्ति सौंप दी है। दूरी और समय-दोनों पर उसने विजय हासिल कर ली है। आज का मानव पहले जैसा कूप-मण्डूक न रहा। तीन सौ वर्ष पहले गेलीलियो ने दूरबीन की ईजाद करके बताया था कि हमारी पृथ्वी अखिल ब्रह्माण्ड का केंद्र नहीं है, बल्कि यह सौर परिवार का एक अदना सा सदस्य है।

विश्व के इस चमत्कारपूर्ण रहस्य को देखकर आज का मानव कुछ चकित हैरान-सा है। उसके मन में एक जिज्ञासा भी उठती है कि करोड़ों मील की दूरी पर यह टिमटमाते हुए तारे जिस शक्ति पर वहां टिके हुए हैं उनमें प्रकाश कहाँ से आता है? विज्ञानशाला में बैठे-बैठे किस प्रकार वैज्ञानिक ने पता लगा लिया कि सूर्य हमसे साढ़े नौ करोड़ मील की दूरी पर है? वैज्ञानिक ने कैसे मालूम किया कि छोटे नक्षत्रों में ऑक्सीजन मौजूद है आदि, आदि।

इस पुस्तक में इसी ढंग के अनेक प्रश्नों पर प्रकाश डालने की कोशिश की गयी है। विज्ञान संबन्धी जानकारी हासिल करना वांछनीय तो है ही, किन्तु आत्म संस्कृति के लिए उससे अधिक जरूरी है इस अखिल ब्रह्माण्ड के प्रति अपने अन्दर एक कुतूहल पूर्ण दृष्टि उत्पन्न करना। लेखक ने चित्रों के माध्यम से विषय को समझाने का प्रयास किया है जिससे विषय बोधगम्य हो गया है। लेखक का यह प्रयास सराहनीय है, क्योंकि उसने इतनी सारी सामग्री एक जगह संग्रहीत कर पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। चतुर्थ संस्करण में उस समय तक के नवीनतम आविष्कारों को सम्मिलित करने का प्रयत्न किया गया है। चित्रों की संख्या भी 17 से बढ़कर 32 हो गयी है।

(8) पृथ्वी और आकाश (सचित्र)

प्रकाशक- भारती भवन, अलीगढ़

प्रथम संस्करण- 1964, मूल्य- 1.25 रुपये

चित्र- 21 (सादे), पृष्ठ- 4 + 61

विषय सूची : 1. अखिल विश्व की रूपरेखा, 2. परम तेजस्वी सूर्य, 3. बुध, शुक्र और पृथ्वी, 5. रहस्यपूर्ण ग्रह मंगल, 6. अवान्तर ग्रह, वृहस्पति और शनि, 7. यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो, 8. पुच्छल तारे और उल्काएं, 9.

सूर्य-परिवार से भी आगे, 10. ग्रह-नक्षत्रों पर जीवधारी।

सूर्य, चन्द्रमा और आकाश के तारे आदि काल से मानव के लिए कौतूहल के विषय रहे हैं। काफी लम्बे समय तक वह अन्धविश्वासों और किम्वदन्तियों के सहारे आकाश के कौतुक का रहस्योद्‌घाटन करने का प्रयास करता रहा। 16वीं शताब्दी के शुरू से विज्ञान की प्रगति के साथ गगन-मण्डल की पलेहियों को सुलझाने में उसे सफलता मिलनी शुरू हो गयी, किन्तु बावजूद इसके आज भी अनेक प्रश्न हल करने के लिए शेष हैं और वैज्ञानिकगण इन प्रश्नों के समाधान में तत्परता से लगे हुए हैं। पुस्तक में ब्रह्माण्ड के विशालता की एक झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। धरती का मानव अपने मस्तिष्क के बलबूते पर दृश्य नन्हें ज़र्रों से लेकर विशाल नीहारिकाओं तक का भेद ज्ञात कर लेने में समर्थ हुआ है। पुस्तक के अन्त में ग्रहों की सारणी भी दी गयी है, जिससे उनके बारे में काफी महत्वपूर्ण जानकारी मिल जाती है।

■■■

[पृष्ठ 60 का शेषांश]

समझता है-वह उनके साथ गहरी आत्मीयता का अनुभव करता है, अतः वेल्स की कहानियों में उसे दिलचस्पी भी अपेक्षाकृत अधिक मिलती है।

हिन्दी में इस ढंग की एक भी कहानी नहीं लिखी गई है-बंगला में श्री जगदानन्दराय ने 'शुक्रभ्रमण' नाम की कहानी लिखी थी। यह कहानी बहुत कुछ जूल्स वर्न की शैली पर है, किन्तु इसमें सुधार की अभी बहुत गुंजाइश बाकी रह गई है। वेल्स के वैज्ञानिक रोमान्स में से 'अदृश्य व्यक्ति', 'चन्द्रमा निवासी', 'टाइम मशीन' आदि का अनुवाद हिन्दी में यदि किया जा सके तो हमारे हिन्दी लेखकों को भी नई टेकनीक को परखने का अवसर मिल सकेगा।

अन्त में इतना कहूँगा कि पाश्चात्य कहानी-साहित्य पर विज्ञान का व्यापक प्रभाव पड़ा है-और मनोविज्ञान तो कहानी के टेकनीक में बहुत दूर तक प्रवेश कर गया है। हमारे देश में विज्ञान की प्रगति भी अपेक्षाकृत पिछड़ी हुई है, अतः विज्ञान और हमारे साहित्य का पारस्परिक सम्बन्ध अभी उतना घनिष्ट नहीं हो पाया है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम पाश्चात्य साहित्य-निर्माताओं के प्रयोग से पूरा फ़ायदा उठायें और अपने साहित्य के इस अंग को भी शीघ्र ही पूर्ण बना लें।

[''कहानी'' 1940 से साभार, पृष्ठ 89-96]

विज्ञान और कहानी-साहित्य

भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

कहानी-निर्माता का वजूद उस आदि युग में भी था जब मनुष्य लिखने की क्रिया से सर्वथा अनभिज्ञ था, क्योंकि बच्चे, बूढ़े, नवयुवक हर श्रेणी के लोग कहानी के प्रति सहस्रों लाखों वर्ष पूर्व से ही आकृष्ट होते आये हैं। उस सुदूर अतीत काल में कहानियाँ सुनाई जाती थीं। श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करने के लिए यह भी आवश्यक प्रतीत हुआ कि कहानियों का आरम्भ अत्यन्त रोचक ढंग से किया जाय, ताकि सुननेवालों के मन में बरबस यह उत्सुकता पैदा हो जाय कि अब इसके आगे क्या हुआ ? श्रोताओं की उत्सुकता कहानी में किसी स्थल पर भी कम न हो जाय, इस बात की चौकसी कहानी सुनाने वालों को रखनी पड़ती थी। इसी कारण कहानी में आये पात्रों के विशेष गुणों का दिग्दर्शन कराने में उसे हद दर्जे की सतर्कता और फुर्ती से काम लेना पड़ता था-वर्णनात्मक तरीके की तो यहाँ कतई गुंजाइश न थी। कहानी को नाटक की भाँति जागरूक बनाना जरूरी था।

लिखने का साधन न होने के कारण कहानी का रूप भी ऐसा बनाना पड़ा कि वह स्मरण-शक्ति के लिये आसानी से ग्राह्य बन सके। अतएव आदि काल की सभी कहानियों ने पद्य का रूप धारण किया। तुक में बँधी हुई कहानियों को कण्ठाग्र करने में किसी प्रकार की दिक्कत न होती। 'कथा सरित्सागर' भी संस्कृत में पद्य-रूप में ही लिखा गया था।

लिखने की कला जब विकसित हुई तो धर्म के बोझ से लदी हुई सामन्तवादी समाज-व्यवस्था ने सबसे पहले धर्म-ग्रन्थों को लिपिबद्ध करने का आयोजन किया, तदुपरान्त अन्य वृहत् ग्रन्थों के लिखे जाने की बारी आई। कितनी मेहनत, कितनी जाँफ़िशानी और कितनी श्रद्धा के साथ ये महान् ग्रन्थ उन दिनों लिखे जाते थे! अवश्य ही हर किसी की पहुँच यहाँ तक हो नहीं पाती थी-आसन पर बैठ कर मन और शरीर से शुद्ध होकर, काठ के टिकठे पर ग्रन्थों का अध्ययन करना होता था। ग्रन्थ का अवलोकन कला के लिए नहीं, बल्कि धर्म-सम्बन्धी कर्त्तव्य के लिए किया जाता था। इस युग में कहानियों के लिखे जाने के लिए उपयुक्त वातावरण न मिल सका। फिर भी कुछ कलाकारों ने ऐसी कहानियों का निर्माण किया जिसमें धार्मिक भावनाओं का गहरा पुट दिया गया-प्रत्येक कहानी किसी धार्मिक सीख के प्रतिपादन के उद्देश्य से लिखी गई। पौराणिक कहानियाँ तथा हितोपदेश की कहानियाँ इसी श्रेणी में रखी जा सकती हैं। एकाध लेखकों ने इस युग में कला के उद्देश्य से कहानियाँ लिखीं। 'कथा सरित्सागर' की कहानियों में सीख की बू नहीं आती।

मुद्रण-कला के आविष्कार ने कहानियों के विकास में बड़ी सहायता पहुँचाई। किन्तु प्रारम्भिक दिनों में यहाँ पर भी कहानी के प्रकाशन के रास्ते में भारी अड़चनें आईं। उपन्यास की पूरी पुस्तक छप सकती थी, लोग उसे खरदीकर पढ़ते भी थे। किन्तु कहानी, अकेली कहानी को कौन खरीदेगा ? अतः कहानी को अपने पूर्ण विकास के लिए उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी जब तक पत्रिकाओं की प्रथा जारी न हो गई। पत्रिकाओं में कहानियों की गुज़र-बसर आसानी से हो जाती। अँग्रेजी और फ्रेंच के विकास का सारा श्रेय उस अनगिनत पत्र-पत्रिकाओं को प्राप्त है जिन्होंने प्रचुर मात्रा में कहानियों को प्रकाशित किया। अमेरिका में पत्रिकाओं की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा कहीं ज्यादा है, फलस्वरूप कहानियों के निर्माम में अमेरिका का स्थान आज सबसे ऊँचा है। ओ०

हेनरी, एडगर एलेन पो और वाशिंगटन अर्विन के टक्कर के कहानी लेखक इंगलैण्ड या फ्रांस में कम मिलते हैं।

अन्य कलाकारों की भाँति कहानी लेखक भी वास्तविकता की अपनी अनुभूति की, एक कलापूर्ण तरीक़े से अभिव्यक्ति करता है। किन्तु इस अनुभूति को ग्रहण करने तथा उसे व्यक्त करने में कलाकार को एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह निष्पक्ष और तटस्थ रहना पड़ता है। कलाकार तथा वैज्ञानिक दोनों की महत्ता उसके दृष्टिकोण की तटस्थता (objectivity) की मात्रा के अनुपात से ही आँकी जा सकती है। दृष्टिकोण की तटस्थता हासिल करना आसान नहीं है। इसके लिए अध्यवसाय, लग्न, आत्मबल और एक संयम-पूर्ण ट्रेनिंग की आवश्यकता होती है। दृष्टिकोण की तटस्थता हासिल करने के लिए यह जरूरी है कि कलाकर सामाजिक वातावरण, रूढ़िगत भावनाओं और तअस्सुबों के बोझ को अपने सिर से उतारकर दूर फेंक दे, अन्यथा उसका अनुभूति-निरूपण परम्परा की गहरी लीक में धंसा-धंसा-सा ही रहेगा-उसकी कला कभी स्वतन्त्र, तटस्थ और निष्पक्ष न हो पायेगी। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण अनेक साहित्यकार बाज़ारी साँचे में ढँली हुई सजावट से अपनी कृतियों को सजाते हैं- कुछ गढ़े-गढ़ाये शब्द उनकी कृतियों में दाहिने-बायें आगे-पीछे सर्वत्र दिखलाई पड़ते हैं। कविता में 'वासना', 'काम' तथा पात्रों के चरित्र-चिमण में 'पवित्रता', 'चरित्रहीन', 'आदर्श', 'मित्र-भक्ति' आदि शब्द ज़बर्दस्ती ठूँसे जाते हैं। इन्हीं इनी-गिनी खूँटियों के आधार पर ऐसे लेखक और कलाकार को आगे बढ़ना होता है, फलस्वरूप उसकी रचना में स्वाभाविकता, मौलिकता और प्राणशक्ति का समावेश नहीं हो पाता।

आधुनिक विज्ञान की प्रगति ने कलाकारों तथा दार्शनिकों दोनों ही के लिए निरीक्षण और अनुभूति के निमित्त तटस्थता का दृष्टिकोण प्राप्त करना बेहद आसान बना दिया है। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान की नूतनतम जानकारियों ने स्वयं मानव-चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अब तक मानव-जीवन का चित्रण करनेवाला कलाकार जन-साधारण की आँखों से अपने आस-पास की चीज़ों को, घटनाओं को, देखता था। किन्तु अब मनोविज्ञान का सूक्ष्मदर्शकयंत्र उसे मिल गया है। मानव-चरित्र की बारीकियों का यह अब भली-भाँति निरीक्षण कर सकता है- इस प्रकार मानव-चरित्र की भीतरी तह तक वह पैठ सकता है: पुराने जमाने का लेखक अपने नायक को 'आदर्श' का चोग़ा पहनाकर हमारे सामने ले आता था। अपने आदर्श पात्र के चरित्र में वह किसी प्रकार खामी दिखाने का साहस नहीं कर सकता था। किन्तु अब उसे असलियत का पता मालूम हो गया है, साथ ही विज्ञान ने अपनी सच्चाई (accuracy) वाली मनोवृत्ति की छाप भी साहित्य पर लगा रखी है, इसलिए आज का साहित्यकार संश्लिष्ट चरित्र के निरूपण से घबराता नहीं-उसे इस बात की पग-पग पर सावधानी नहीं रखनी पड़ती कि उसका आदर्श पात्र किसी स्थल पर अपने चरित्र की कमज़ोरी न प्रकट कर दे। कृत्रिमता का यह ढोंग अब दूर होता जा रहा है।

आधुनिक युग के सभी साहित्यकारों ने, जिन्हें प्रथम श्रेणी में स्थान मिल चुका है, मनोविज्ञान का अच्छी तरह अध्ययन किया। मस्तिष्कविज्ञान, व्यक्तित्त्व की जटिलता, वासना तथा काम-विज्ञान, सम्बन्धी नूतनतम अनुसन्धानों तक उनकी पहुँच है। जेम्स ज्वाएस, डी० एच० लारेन्स तथा आल्डस हक्सले आदि ने मनोवैज्ञानिक तथ्यों का गहरा अध्ययन किया है-इसी कारण मनुष्य के पारम्परिक सम्बन्ध की सूक्ष्म विवेचना कर संकेत में इन लोगों ने हद दर्जे का कमाल हासिल कर लिया है।

मनोविश्लेषण शास्त्र ने मनुष्य की अचेतन कृतियों के रहस्य का उद्घाटन कर के साहित्यकारों के लिए सर्वथा नवीन क्षेत्र प्रदान किया है। पाश्चात्य साहित्यकारों ने इस नवीन क्षेत्र में भी काफी अच्छी प्रगति हासिल कर ली है। सबसे पहले सिगमण्ड फ्रायड और कार्ल जंग आदि मनोविश्लेषण के विशेषज्ञों ने यह बात हमारे सामने रखी कि इस बाह्य जगत के अतिरिक्त एक दूसरी दुनिया भी अपना अस्तित्व रखती है और कदाचित इस दुनिया का अस्तित्व बाह्य जगत के अस्तित्व से ज्यादा वास्तविक है-यह दुनिया हमारे अचेतन मन की दुनिया है। इस प्रकार मनोविश्लेषण के साधनों से सुसज्जित साहित्यकार यथार्थवाद से भी एक सीढ़ी ऊँचे पहुँच गया है- इस नई कला को हम अतियथार्थवाद का नाम दे सकते हैं। चेतन-मन-अहम् की व्याख्या अब तक यथार्थवादी

करते आयें हैं। किन्तु फ्रायड बताता है कि यथार्थता का यह चित्रण जो चेतन मन के आधार पर किया गया है, नितान्त अपूर्ण है ! यदि आपको पूर्ण वास्तविकता की तह तक पहुँचना है, तो आप अचेतन मन को टटोलिये-क्योंकि हमारे जज्बात, हमारी भावनाओं, हमारे भावोन्माद का उद्‌गम स्थान अचेतन मन ही है। मानव-चरित्र की जटिल समस्याओं को पूर्ण रूप से समझने के लिए अचेतन मन तक पहुँचना एक अनिवार्य शर्त है। चेतन मन द्वारा दमन की गई अचेतन वृत्तियों, का भलीभाँति विश्लेषण किये बिना हम किसी व्यक्ति के आचरण की बारीकियों को ठीक-ठीक समझ नहीं सकते।

पाश्चात्य साहित्य-निर्माताओं की कृतियों में इसके निरालोक अन्तर्जगत् की गोताखोरी, पात्रों के चरित्र-चित्रण की अभूतपूर्व बारीकियाँ तथा काम-वासना मूलक वृत्तियों की निर्भीक स्वीकृति आज दिन जो हमें दिखालाई पड़ रही है वह मनोविश्लेषण की ही देन है।

मनुष्य मात्र को मनोवैज्ञानिक दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं-एक अन्तर्मुख और दूसरा बहिर्मुख-प्रत्येक श्रेणी के व्यक्ति चार विभिन्न प्रकृतियाँ रख सकते हैं-अन्तरसंज्ञ (Intiutive), विचार-प्रधान, भावशील तथा प्रवृत्ति-प्रधान (Instinctive)। डॉक्टर कार्लजंग ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये हैं। उपर्युक्त श्रेणी-विभाजन का श्रेय डॉक्टर जंग को ही प्राप्त है। मानव-स्वभाव के इस विस्तृत विश्लेषण ने कहानी-लेखक तथा उपन्यासकारों के दृष्टि-क्षेत्र को बृहत्तर बना दिया है।

मनोविज्ञान की असीम प्रगति ने कहानी की 'टेकनीक' में भी क्रान्तिकारी उथल-पुथल मचा दी। पुराने ज़माने की कहानियाँ विशेषतया घटना-प्रधान हुआ करती थीं-प्लॉट उन कहानियों की जान हुआ करती थी। किन्तु मनोविज्ञान ने मस्तिष्क की दुनिया की बाहरी तह से इतना अधिक मसाला ढूँढ़ निकाला है कि पूरी कहानी की कहानी इसी मसाले से गढ़ी जा सकती है। मानव-हृदय में स्वर्ग और नरक के समान विरोधी भावनाओं के संघर्ष का चित्रण ही इन कहानियों में प्रधान होता है। कैथरीन मैन्सफील्ड ने इस नई 'टेकनीक' का इस्तेमाल बड़ी दक्षता के साथ किया है। विभिन्न प्रकार के मानव-चरित्र में आप की गहरी पैठ है। इसीलिए घटना और प्लॉट के विकास के झंझट में न पड़कर आप मानसिक भावनाओं की दशा का चित्रणं करने पर ज्यादा ध्यान देती हैं। 'पिक्चर्स' में एक ऐसी सिनेमा-एक्ट्रेस के मनोभावों का चित्रण किया गया है जो बहुत दिनों से बेकार है-एक दूसरी कहानी में एक अविवाहिता स्त्री के मन में उठनेवाले विचारों का निरूपण किया गया है। मैन्सफील्ड ने कई एक कहानियों में नन्हें-नन्हें बच्चों के मन में उठनेवाली भावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है- तर्क तथा साधारण मानदंड के बन्धन से मुक्त बच्चे जब अपने आस-पास की चीज़ों तथा घटनाओं को देखते हैं तो उनके अन्दर किस तरह के अनोखे और मौलिक खयालात उठते हैं, इनका सही फोटो मैन्सफील्ड की कहानियों में आपको देखने को मिलेगा। मैन्सफील्ड की कहानियाँ जब हम पढ़ते हैं, तो उतनी देर के लिए ऐसा लगता है जैसे स्वयं हमी वह पात्र हैं जिसके मस्तिष्क में ये विचार उठ रहे हैं-कभी-कभी तो यह कल्पना इतनी प्रबल हो उठती है कि हम उन्हीं मानसिक घात-प्रतिघातों तथा पीड़ा का अनुभव करने लग जाते हैं जिनका अनुभव कहानी का पात्र स्वयं कर रहा है। इस नई टेकनीक ने पाठकों को विभिन्न श्रेणी के व्यक्तियों की मानसिक दुनिया के अन्दर झाँकने का मौका दिया है।

मनोविज्ञान तथा शरीर-विज्ञान ने काम-शास्त्र पर भी समुचित प्रकाश डाला। और काम-सम्बन्धी, प्रश्नों पर विचार करने के निमित्त हमें एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। हैवलाक एलिस तथा डॉ० फ्रायड और उनके अनुयायिओं ने हमारी काम-वृत्तियों की विवेचना करके सभ्य जगत् के पाखण्डपूर्ण चेतन 'अहम्' की प्रतिष्ठा को एक ज़बर्दस्त धक्का पहुँचाया-एकाएक लोगों की जैसे आँखें खुल गईं।

काम-वासना सम्बन्धी प्रश्नों पर पर्दा डालने के बजाय अब उपन्यासों, नाटकों और कहानियों में इस विषय की खुल्लमखुल्ला चर्चा होने लगी। चुपचुप की नीति की जगह स्पष्टवादिता ने ली। दक़ियानूसी खयालात के लोगों ने इस खुल्लखुल्ला काम-चर्चा पर नाक-भौं खूब सिकोड़ा, किन्तु विज्ञान की प्रगति की धारा को उल्टी दिशा में बहा सकना उनके इमकान से बाहर था। डी० एच० लारेन्स, बक्सले और मोपाँसा ने इस ढँग की अनेक कहानियाँ लिखी हैं। किन्तु इन

कहानियों में अश्लीलता कहीं पर भी आपको न मिलेगी-कहानी-लेखक ने सर्वत्र अपना दृष्टिकोण पूर्ण रूप से वैज्ञानिक रक्खा है। सस्ती सिनेमा-मैगज़ीनों में प्रकाशित होने वाली काम वासना को उत्तेजित करनेवाली सामग्री इन कहानियों में नहीं है और न 'उग्र' का चाकलेट ही इनमें कहीं आप को नज़र आयेगा। मोपासाँ की कहानी 'आग से खेलना' (Playing with Fire) में एक सम्भ्रांत कुल की महिला के मन में उठी हुई काम वासना का अत्यन्त ही मनोरंजक चित्र-निरूपण किया गया है। सामने की गली की दूसरी ओर के मकान में रहनेवाली वेश्या के हाव-भाव को देखकर इस महिला के मन में भी लालच उठता है ; वह भी एक दिन अपनी खिड़की पर बैठकर ठीक उसी वेश्या की तरह राह चलतों को सिर के झटके के इशारा करती है। एक नवयुवक धड़ल्ले के साथ हवेली में घुस आता है। यह महिला बड़ी मुश्किल से नजात पाती है।

टामस मान, जेम्स ज्वाएस आदि की काम-विषयक कहानियों का धरातल इतना ऊँचा है कि बरबस इन कहानियों को पढ़कर हमारे मन में प्रश्न उठता है । क्या हिन्दी के कहानी लेखक भी इस क्षेत्र में इतनी उत्कृष्ट रचना निकट भविष्य में कर पायेंगे ? यहाँ तो यह हाल है कि जिस किसी ने इस ढंग की कहानियों पर क़लम उठाई वही घुटनों तक गन्दे कीचड़ में धँस गया, चाहे वह श्री ऋषभचरण रहे हों या श्री चतुरसेन शास्त्री।

पिछले तीस-चालीस वर्षों के अरसे में असाधारण तथा विकृत काम-वृत्तियों पर भी पर्य्याप्त मात्रा में प्रकाश डाला गया है-साहित्य-निर्माताओं को अपनी कृतियों के लिए इस क्षेत्र से भी प्रचुर मात्रा में सामग्री मिली। यह एकदम मौलिक क्षेत्र था, अतः इस क्षेत्र से प्राप्त सामग्री ने कहानियों को नूतनता का पुट भी दिया। टामस मान तथा हेनरी जेम्स की कतिपय कहानियाँ मनुष्य की असाधारण काम-वृत्तियों पर ही अवलम्बित है- बरबस दमन की गई वृत्तियाँ मनुष्य के अस्तित्व में असाधारण विकार उत्पन्न कर देती हैं। इन मनोवैज्ञानिक कहानियों में इन्हीं विकारों की विस्तृत व्याख्या कलात्मक ढंग से की गई है। टामस मान की कहानी 'भाई-बहिन' में असाधारण काम वृत्ति पर प्रकाश डाला गया है-भाई और सगी बहिन के बीच काम-वासना कैसे पनपी ? निरन्तर चेतन मन की डाँट फटकार से भी यह वासना कैसे अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। इस प्रकार का विषय लेकर कहानी का निर्माण करना निस्सन्देह बड़े साहस और योग्यता का काम है। आरम्भ से अन्त तक ऐसी कहानी का धरातल ऊँचा बनाये रखना कुछ कम दुस्तर कार्य्य नहीं है।

डी० एस० लारेन्स की एक कहानी में मां-बेटे का चित्रण किया गया है-मां इस बात को गवारा नहीं कर सकती कि बेटे का स्नेह उस पर से उठकर किसी अन्य स्त्री पर चला जाय-चाहे वह स्त्री उसकी पत्नी ही क्यों न हो। दबी हुई वासनाओं की घोर प्रतिक्रिया का चित्रण हेनरी जेम्स ने भी अपनी कहानी 'हर्न आफ दी स्क्रू' में किया है। यह कहानी एक अविवाहिता किन्तु युवती स्त्री के मनोभावों का निरूपण है। इस युवती ने विवाह न करने का प्रण कर रखा था। काम-वासना के खिलाफ जैसे उसका रोम-रोम प्रयत्नशील था। उसके अन्दर यह संघर्ष इतना बढ़ा कि कुछ दिनों बाद उसे प्रतीत होने लगा कि प्रत्येक पुरुष उसकी ओर काम-चेष्टा की निगाहों से देखता है। पुरुष की छाया मात्र से उसे घृणा हो गई।

दबी हुई वासनाओं की ओर प्रतिक्रिया का अत्यन्त ही सुन्दर निरूपण मोपांसा ने अपनी कहानी 'मैडम हमॉन्स रोज़ किंग' में किया है। इस कहानी में एक अत्यन्त साधु स्वभाव के नवयुवक का उल्लेख है। यह नवयुवक स्त्री मात्र की ओर आँख उठाकर देखना भी पाप समझता था-मद्यपान उसने स्वप्न में भी न सीखा था। उसके पवित्र और निष्कलंक आचरण के उपलक्ष में उसे नगर-निवासियों की ओर से 500 फ्रांक का पारितोषिक प्रदान किया गया, तथा इस सम्मान प्रदान के अवसर पर भारी समारोह के साथ दावत भी दी गई। इस दावत में उस नवयुवक ने भी अँगूरी शराब का मज़ा चखा। फिर तो उसी दिन शाम से उसके संयम का बाँध जैसे टूट गया। एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर वही नवयुवक शहर का सबसे पक्का जुआरी, शराबी तथा व्याभिचारी बन गया। सामन्तवादी युग में इस प्रकार के यथार्थ चरित्र-चित्रण करने का साहस भला कौन-सा लेखक कर सकता था ?

हिन्दी जगत् में काम-वृत्ति तथा असाधरण वृत्ति से

सम्बन्ध रखनेवाली उच्च कोटि की कहानियाँ अभी लिखी ही नहीं गयी हैं-कदाचित इस प्रकार की कहानियों के लिये हमारे देश में उचित वातावरण भी नहीं मिल सका है। रूढ़ि, परम्परा, पाप-पुण्य का सेन्सर- ये सब चीज़ें जब तक नहीं हटती हैं, तब तक इस कोटि की कहानियाँ पनप नहीं सकतीं।

जासूसी तथा रोचक प्लाटवाली कहानियों ने भी विज्ञान की देन से खूब लाभ उठाया है। इस क्षेत्र में सबसे पहले फ्रेंच लेखक एलेक्जण्डर ड्यूमा ने तत्कालीन मनोविज्ञान के तथ्यों का प्रयोग किया। प्रत्येक रहस्यपूर्ण घटना के उद्घाटन के लिए उसने अपनी जासूसी कहानियों में उद्देश्य ढूँढ़ा है-ड्यूमा ने तो लगभग अपनी सभी जासूसी कहानियों में प्रत्येक जुर्म के पीछे किसी नारी का प्रेम बताया है-उसका मन्तव्य था कि प्रत्येक जुर्म के पीछे किसी नारी की तलाश करो-(Cherchez la femme)।

एडगर एलेन पो ने जासूसी कहानियों की टेकनीक में मौलिक दृष्टिकोण का समावेश किया। अभी तक रूढ़िपन्थी लेखक जासूसी कहानियों के रहस्योद्घाटन में क्रमबद्ध घटनाओं को पकड़कर आगे बढ़ते थे, किन्तु एलेन पो ने इस रूढ़िपन्थी तरीके को छोड़कर मनोवैज्ञानिक तरीका अख्तियार किया। उसी ने सबसे पहले इस बात पर जोर दिया कि जुर्म करने वाले के दृष्टिकोण से जुर्म के रहस्य का निरीक्षण करना चाहिये। 'दी परलवाइण्ड लेटर' में अपनी इस थ्योरी का एलेन पो ने भलीभाँति प्रतिपादन किया है। इसी कहानी में एलेन पो ने इस बात पर भी जोर दिया है कि किसी रहस्य के उद्घाटन में हम जटिल से जटिल तरीके का प्रयोग पहले ही करने लगते हैं ; फल यह होता है कि एकदम स्पष्ट, नाक के सामने की बात नहीं सूझती। अतः एलेन पो ने जासूसी कहानियों के लेखकों के सामने यह सिद्धान्त रक्खा कि 'जाहिरा और स्पष्ट बातों का निरीक्षण सबसे पहले करो' -Search in the obvious. यदि किसी व्यक्ति के घर तलाशी लेनी है, तो छिपी हुई वस्तु को ढूँढ़ने के पहले यह सोचकर आगे मत बढ़ो कि उस व्यक्ति ने उस वस्तु-विशेष को छिपाने के लिए उन्हीं तरीकों का इस्तेमाल किया होगा जो तुम्हारे मस्तिष्क में मौजूद है। वरन् तुम अपने को उस व्यक्ति के स्थान पर रखकर सोचो कि यदि तुम उसकी जगह मुजरिम होते तो पुलिस और जासूस को धोखा देने के लिए तुम कौन सी नई तरकीब काम में लाते ? छिपी हुई वस्तु के ढूँढ़ने में मुजरिम के दृष्टिकोण की यदि सहायता न ली गई तो कदाचित् तुम्हें अपने काम में सफलता न मिल सकेगी।

एडगर एलेन पो की एक दूसरी कहानी 'मिस्ट्री आवमेरी रोज़े' में एक हत्या-रहस्य के उद्घाटन के प्रयत्न में भिन्न-भिन्न थ्योरियों की सम्भावनाओं पर विद्वत्तापूर्ण तर्क किया गया है। एलेन पो की इस कहानी में संकेत (suggestion) की शक्ति विशेष प्रबल है। इस कहानी को पढ़ते हुए फ़िलासफी जैसा आनन्द आता है।

एलेन पो ने कहानी-क्षेत्र में शारीरिक पीड़ा-संबंधी (sadistic) वृत्तियों का भी समावेश प्रचुरता से किया है। अपनी कहानी 'पिट एण्ड दी पेन्डुलम' में उसने सैडिस्टिक वृत्तियों का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन दिया है। एलेन पो अमेरिकन लेखक था-उसकी कहानियों का अनुवाद फ्रेंच लेखकों ने प्रचुर मात्रा में किया। फलस्वरूप फ्रेंच कहानी लेखकों पर भी एलेन पो की सैडिस्टिक टेकनिक का काफी अधिक मात्रा में प्रभाव पड़ा। फ्रेंच साहित्य में अन्तर्मुखी सैडिस्टिक कहानियों की भरमार-सी है।

जासूसी कहानियों में एकाध लेखकों ने अपराधी का पता लगाने के लिए मनोविश्लेषण के अनेक सिद्धान्तों और प्रयोगों का भी इस्तेमाल किया है। ब्रिटेन आस्टिन ने अपनी कहानी 'दी फोर्थ डिग्री' में 'बर्ड-एसोशियेशन टेस्ट' का प्रयोग किया है। एक आफिस में हत्या हो गई थी। आफिस के क्लर्कों पर ही सन्देह था। एक-एक करके सभी क्लर्क जासूस के सामने लाये जाते हैं-जासूस हाथ में 'स्टॉपवाच' (एक घड़ी जिसमें 1/10 सेकण्ड तक समय नाप सकते हैं) लेकर बैठता है और क्लर्क के सामने एक-एक करके कुछ शब्दों का उच्चारण करता है-क्लर्क को प्रत्येक शब्द के बाद ही कम से कम समय में उस शब्द द्वारा उत्पन्न हुए ऐसे शब्द का नाम लेना होता है जो उसके दिमाग में फौरन ही आते हैं। जासूस अपनी स्टॉपवाच की सहायता से नापता है कि प्रत्येक शब्द के बाद कितनी देर में क्लर्क उत्तर देता है। अपनी शब्दावली में दो-चार शब्द जासूस ने ऐसे भी रख छोड़े हैं जिनका सम्बन्ध उस हत्या से है जैसे 'क़त्ल', 'पिस्तौल', 'संकेत भाषा'

इत्यादि। जिस शब्द के बाद अभियोगी देर तक अटका रह गया, अवश्य उस शब्द ने उसके मस्तिष्क में कुछ उथल-पुथल मचा दी है। इस प्रकार इस मनोवैज्ञानिक जासूस ने असल अपराधी को गिरफ्तार कर लिया, तथा उससे जुर्म स्वीकार भी करा लिया।

अँग्रेजी साहित्य में आविष्कारों और सम्भावनाओं के आधार पर 'रोमान्स' की कहानियाँ भी लिखी गई हैं। इस क्षेत्र में सबसे पहले फ्रेंच लेखक जूल्स वर्न ने कदम उठाया था। उसकी आख्यायिकाओं में सदैव ही अनिवार्य रूप से भविष्य में होने वाले वैज्ञानिक आविष्कारों की झाँकी मिलती है। वास्तविक सम्भावनाओं की ही उसने अपनी कहानियों में गुंज़ाइश रक्खी है। उसने जिन-जिन आविष्कारों के बल पर अपनी कहानी की रूपरेखा का निर्माण किया है, उनकी सम्भावना में उसे पूर्ण विश्वास था-वह इस बात का दावा रखता था कि ये आविष्कार कल नहीं तो वह परसों सच होकर ही रहेंगे। जूल्स वर्न ने अपने पाठकों को दिलचस्पी के साथ इस बात का दिग्दर्शन कराया है कि जब ये आविष्कार सच हो जायेंगे तब हम अपनी रोज़मर्रा की जिन्दगी में किस तरह के परिवर्त्तन पायेंगे। जिन दिनों उसने अपनी पुस्तक ' 80 दिन में संसार-भ्रमण' लिखी थी बहुत कम लोग उसे शेखचिल्ली के खयाली पुलाव से अधिक महत्त्व देने को तैयार थे। किन्तु अब तो आठ दिन के अन्दर-अन्दर आप समस्त भूमण्डल का चक्कर लगा सकते हैं। जूल्स वर्न ने अपनी कहानियों में वायुयान, सब-मैरीन और राकेट के आविष्कारों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी कर दी थी।

आधुनिक ज़माने में वैज्ञानिक रोमांस की कहानियाँ एच० जी० वेल्स ने खूब लिखी है। किन्तु वेल्स की कहानियाँ जूल्स वर्न की कहानियों से एक बात में सर्वथा भिन्न हैं-वेल्स की कहानियों में वास्तविक वैज्ञानिक आविष्कारों के बारे में भविष्यवाणी नहीं मिलती। वेल्स की कहानियों में स्वप्न की घटनाओं की भाँति प्लाट रचे गये हैं। कला और माया के बल पर वेल्स अपने पाठकों का ध्यान कहानी में उलझाये रहते हैं-तर्क और प्रमाण इन कहानियों में नहीं मिलते। कहानी ज्यों ही खत्म हुई, पाठक अचानक स्वप्न से जाग उठता है और फिर अनायास ही वह बोल उठता है 'अरे यह तो एक असम्भव घटना है, ऐसा कभी ही थोड़े ही सकता है!' जूल्स वर्न की कहानियों में यह बात न थी-उन कहानियों में कहीं भी वास्तविकता ने नाता नहीं टूटता। वेल्स की कहानियों में पात्र के संग पाठक की सहानुभूति ठीक उसी प्रकार बनी रहती है जिस प्रकार किसी सामाजिक उपन्यास में। वेल्स की कहानियों में किसी विचित्र वैज्ञानिक आविष्कार के अस्तित्व को स्वीकार करके कल्पना-शक्ति विज्ञान का सहारा लेकर आगे बढ़ती है। इन कहानियों की विशेषता यह है कि उस विचित्र आविष्कार को छोड़कर अन्य सभी चीज़ें एकदम अपने वास्तविक रूप और गुण में रहती हैं। पुराने युग की पौराणिक कहानियों में कुछ भी असम्भव न था-कहीं पर पेड़ बोल उठते, तो शिला मानवरूप में परिणित हो जाती, इत्यादि। इस ढंग की कहानियों में पाठक पात्र के साथ सच्ची सहानुभूति नहीं रख सकता। क्योंकि उसे मालूम नहीं लेखक कब जादू द्वारा पात्र की परीशानियों को छू-मंतर से हल कर दे। वेल्स की कहानियों में पाठक अपने को खोया हुआ महसूस नहीं करता। 'दी इनविज़िबुल मैन' में एक वैज्ञानिक ने वैज्ञानिक रीतियों में अपने को अदृश्य बना लिया है-बस इस एक अनोखी बात की कल्पना नहीं की गई है। अतः पाठक इत्मीनान के साथ इस 'अदृश्य व्यक्ति' के साथ-साथ आगे बढ़ सकता है। वह जानता है कि यह अदृश्य व्यक्ति ऐसी दुनिया में घूम-फिर रहा है जो वास्तविकता की दुनिया है, जादू या चमत्कार प्रगट होकर कहानी के नीचे से यथार्थता की कड़ी ज़मीन को हटा न लेगा। वेल्स ने रोमान्स की इन कहानियों को लिखकर साहित्य को सर्वथा एक नई टेकनीक प्रदान की है। अब तक चमत्कार और कल्पना की उड़ान से सम्बन्ध रखनेवाली तमाम कहानियों में चमत्कार का पुट जादू या किसी दैवी शक्ति द्वारा हासिल करते थे। वेल्स ने जादू और दैवी-शक्ति के बजाय विज्ञान का सहारा लिया तथा इन कहानियों को बहुत हद तक वास्तविकता की कड़ी जमीन पर खड़ा किया। पुराने युग की पौराणिक कहानियों में पाठक को अलग दूर हटकर खड़ा होना पड़ता था, वह कहानी के दामों के संग आत्मीयता का नाता जोड़ नहीं पाता था-वह समझता था कि ये पात्र तो देव, दानवों, किन्नरों और जिन्नों की दुनिया की हस्ती हैं, इनसे हमारी घनिष्ठता कैसी ? किन्तु वेल्स के रोमान्स में पाठक कहानी के पात्र को अपनी दुनिया की हस्ती

[शेष पृष्ठ 54 पर]

रेडियो समस्थानिक कृषि क्षेत्र में

भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

कृषि के क्षेत्र में किये गये अनुसन्धानों से यह बात निर्विवादरूप से सिद्ध हो चुकी है कि रेडियो समस्थानिकों से विकसित होने वाली रेडियोसक्रिय किरणों की नपी तुली मात्रा यदि उगते हुए पौधे पर डाली जाय तो पौधे की बाढ़ में तथा उसके फूलने फलने आदि में विशेष उन्नति होती है। इस सम्बन्ध में स्वयं हमारे देश में भी महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये जा रहे हैं। दिल्ली में स्थित गामाबाग में रेडियो समस्थानिकों से विकीरित होने वाली गामा किरणों का प्रभाव पौधों की बाढ़ और उनकी उपज आदि पर देखा जाता है।

उपज में वृद्धि

प्रायः खेत में बोने के पहले ही बीज को रेडियोसक्रिय किरणों की बौछार में निश्चित अवधि तक रखते हैं। ऐसा करने से खेत की फसल में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। रूस में किये गये परीक्षणों के अनुसार इस विधि से चुकन्दर की फसल में लगभग 25 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकी है। रेडियो समस्थानिक के घोल में थोड़ी देर तक बीज को डाल रखने से भी वे इसी प्रकार प्रभावित हो जाते हैं।

अनाज की सुरक्षा

अनाज के दानों को कीड़ों तथा नन्हें कीटाणुओं से बचाने के लिए इन रेडियोसक्रिय किरणों की मदद ली जाती है। ये किरणें कीटाणुओं का नाश करती हैं, साथ ही उनके अण्डों को निष्प्राण भी बना देती हैं। अतः अब यह सम्भव हो सका है कि भण्डार में अनाज को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखा जाय। माँस, अण्डे, मछली आदि को भी इन किरणों की बदौलत अपेक्षाकृत अधिक दिनों तक ताजा बनाये रख सकते हैं। गर्म और तर जलवायु में आलू में से अंकुए निकलने लग जाते हैं अतः वे खाने योग्य नहीं रहते। यदि आलुओं पर रेडियोसक्रिय किरणों की बौछार कुछ देर तक पड़ने दी जाय तो गर्म जलवायु में भी इनमें अंकुए फूटने नहीं पाते, और इन्हें कई वर्ष तक सुरक्षित रख सकते हैं तथा दूर-दूर देशों तक इनका निर्यात किया जा सकता है।

इस सिलसिले में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि रेडियोसक्रिय किरणों से प्रभावित खाद्य पदार्थों के खाने से स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव तो नहीं पड़ेगा ? वैज्ञानिक इस प्रश्न के प्रति भी पूर्णरूप से सचेत हैं। अतः इन वैज्ञानिकों ने ऐसे फार्म बनाये हैं जहाँ चूहे, बन्दर, मवेशी आदि रखे गये हैं। उन्हें रेडियोसक्रिय किरणों से प्रभावित खाद्य पदार्थ भोजन के लिए दिये जाते हैं तथा उनके स्वास्थ्य की निरन्तर जाँच की जाती है। कुछ अनुसन्धानकर्ताओं ने सहर्ष अपने ऊपर प्रयोग करने की अनुमति दी है ताकि यह ज्ञात किया जा सके कि ऐसे खाद्य पदार्थों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ता है। इन प्रयोगों में अभी तक कोई अनिष्टकारी प्रभाव नहीं पाया जा सका है।

नयी नस्ल के पौधे

पौधों की नयी नस्लें तैयार करने के निमित्त भी इन समस्थानिकों का उपयोग किया जा सकता है। जीव तथा वनस्पति विज्ञान के नूतनतम अनुसन्धान यह बतलाते हैं कि कॉस्मिक किरण, एक्स किरण अथवा गामा किरणें कोषतन्तुओं में परिवर्तनों का समावेश करके नई नस्ल का प्रादुर्भाव कर सकती हैं। वास्तव में सृष्टि के आरम्भ से ही यह क्रम चला आ रहा है। अनन्त अन्तरिक्ष से आने-वाली

कॉस्मिक किरणें निरन्तर वंश परम्परा में परिवर्तनों का समावेश करती रही हैं। किन्तु ये परिवर्तन अत्यन्त धीमी गति से होते रहे हैं। प्रकृति की इस क्रिया की पुनरावृत्ति अब वैज्ञानिक प्रयोगशाला में रेडियो समस्थानिकों से विकीरित होने वाली किरणों की मदद से की जा सकती है। अतः पौधों की नयी नस्लों के निर्माण का कार्य जो प्रकृति द्वारा सदियों में पूरा होता है वह अब प्रयोगशाला में कुछ ही महीनों में पूरा किया जा सकता है। इस दिशा में आशातीत सफलता प्राप्त हुयी है। उदाहरण के लिये अमेरिका में सेम के पौधों की ऐसी नस्ल तैयार की गयी है जो अत्यधिक वर्षा सह लेती है तथा रोग के कीटाणुओं का उस पर असर नहीं होने पाता।

रेडियोसक्रिय किरणों में नयी नस्लों के निर्माण तथा उनके चुनाव द्वारा पौधों की पत्तियों, रेशों आदि की बनावट में सुधार कर सकते हैं या रोग के कीटाणुओं अथवा ऋतुओं का सामना करने की उनकी क्षमता बढ़ा सकते हैं। इस दिशा में निस्सन्देह अनेक क्रान्तिकारी उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।

रेडियो समस्थानिक : अनुरेखक के रूप में

अनुरेखक के रूप में रेडियो-सस्थानिक कृषि विज्ञान के लिए महत्त्वपूर्ण साधन साबित हुए हैं। मान लीजिए, यह पता लगाना है कि पौधे की वृद्धि के लिए खाद कब देनी चाहिए तथा किस प्रकार-जड़ों में या पत्तियों पर छिड़काव के रूप में। इसके लिये ऐसी सुपर-फास्फेट खाद तैयार की जाती है जिसमें फास्फोरस का रेडियो समस्थानिक मौजूद हो। इस खाद को पौधों की जड़ के निकट भूमि में विभिन्न गहराइयों पर डाल कर जाइगर गणक को पत्तियों के निकट ले जाकर देखते हैं कि कब यह रेडियोसक्रिय किरणों द्वारा अधिक प्रभावित होता है। इस प्रकार यह मालूम कर सकते हैं कि खेत में कितनी गहराई पर खाद डालना पौधों के लिए अधिक लाभकारी होगा।

गेहूँ के लिए इस प्रयोगों से पता चला है कि पौधे के उगने के प्रथम दो तीन सप्ताह में ही खाद की फास्फोरस पौधे में जज्ब होती है, तत्पश्चात खेत की मिट्टी से ही पोषक तत्व पौधे में पहुँचते है, खाद से नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि गेहूँ के लिए खाद आरम्भ से ही डालनी चाहिए। पौधे जब बड़े हो जायँ तो खाद डालने से कोई फायदा नहीं। इसके प्रतिकूल आलू के पौधे आरम्भ में खाद से पोषक तत्व ग्रहण करते हैं और बाद में भी। अतः आलू के खेत में खाद शुरू में भी डालनी चाहिए तथा बाद में भी। इसी प्रकार कपास के लिए प्रयोगों द्वारा यह मालूम किया गया है कि जिन दिनों कलियों का निर्माण होता है उन दिनों जड़ में खाद देने की अपेक्षा अधिक अच्छा होगा कि पत्तियों पर खाद के घोल का छिड़काव किया जाय। क्योंकि इस अवस्था पर पत्तियाँ खाद से पोषक तत्व अधिक आसानी के साथ जज्ब कर लेती हैं।

निस्सन्देह रेडियो समस्थानिक पदार्थ कृषि तथा वनस्पति विज्ञान की अनेक गुत्थियों को सुलझाने में महत्त्वपूर्ण सहायता कर सकते हैं और आशा की जाती है कि अपने नवीन ज्ञान की बदौलत कृषि-वैज्ञानिक निकट भविष्य में संसार की खाद्य समस्या का हल भी ढूंढ ही लेंगे।

['विज्ञान लोक, अक्टूबर 1961 अंक, 23-26 से साभार]
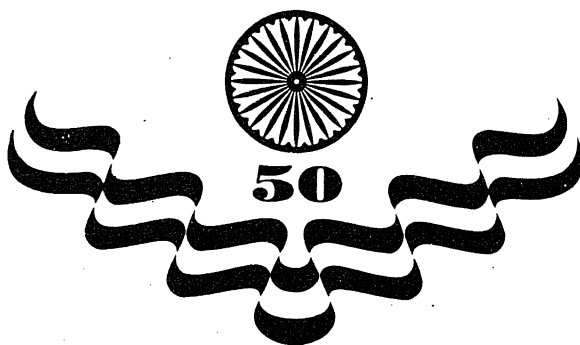
चन्द्रमा पर मानव के चरण

भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

रूस के मेजर निकोलोयेब तथा कर्नल पोपोविच के अन्तरिक्ष-अभियान की रोमांचकारी सफलता ने रूसी वैज्ञानिकों के अन्तरिक्ष-यान नियंत्रण की व्यवस्था और उसकी श्रेष्ठता को निर्विवाद रूप से स्थापित कर दिया है। रूसी अतरिक्ष-इंजीनियरों की कार्य-कुशलता का अनुमान आप अकेले इस बात से लगा सकते हैं कि वोस्तोक-3 तथा वोस्तोक-4 लगभग एक ही कक्षा में स्थापित किए गए ते और उनके कक्षातल में केवल एक डिग्री के 60 वें भाग का अन्तर था! दोनों यानों के बीच अधिकतंम दूरी केवल 13 मील थी और दोनों के परिभ्रमण काल में अन्तर भी केवल बारह सैकण्ड था! स्पष्ट है कि दोनों यानों को अन्तरिक्ष में दागने की व्यवस्था तथा उनके नियंत्रण के आयोजन सर्वथा त्रुटिहीन थे, वर्ना यानों के दागने में एक सैकण्ड के शतांश की देर इस बात के लिए काफी थी कि उन दोनों के बीच सैकड़ों मील का फासला पड़ जाता है। दरअसल वोस्तोक-4 का दागने का जो समय विशेषज्ञों ने निश्चित कर रखा था उसमें इंजीनियरों को कुछ त्रुटि नजर आयी और तुरन्त यह तय पाया कि नियत समय से 15 सैकण्ड पहले ही इस यान को दागा जाय! फलस्वरूप यह यान वोस्तोक-3 के उतने निकट अपने भ्रमणपथ से स्थापित हो सका वर्ना यह उससे सैकड़ों मील के फासले पर रह जाता।

इस सर्वथा नये ढंग के अभियान द्वारा रूसी इंजीनियरों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि अन्तरिक्ष की एक ही कक्षा में दो या दो से अधिक यान एक दूसरे के अत्यन्त निकट स्थापित किए जा सकते हैं तथा उन यानों के यात्रियों के लिए यह भी सम्भव हो सकता है कि वे परस्पर बातचीत करके एक दूसरे को परामर्श तथा आदेश दे सकें। और आवश्यकता पड़ने पर अपने यान का समुचित नियंत्रण करके यानों को परस्पर और भी सटा सकें। तब उन यानों के बीच, यात्रियों तथा ईंधन आदि का आदान-प्रदान भी हो सकेगा। इस अभियान द्वारा यह बात भी एक तरह से पक्की हो गयी कि चन्द्रयात्रा को जाने वाले राकेटों के लिए यह जरूरी न होगा कि वे सीधे ही धरती से रवाना होकर चन्द्रमा तक चले जाएँ। ऐसा करने के लिये उन्हें ईधन की बहुत अधिक मात्रा साथ में ले जानी होगी। इस दिक्कत से बचने के लिए ऐसा किया जा सकता है कि छोटे-छोटे कई राकेट, वोस्तोक-3 तथा वोस्तोक-4 की भाँति, धरती के गिर्द एक ही कक्षा में स्थापित किए जाएँ और फिर उन्हें परस्पर जोड़कर एक अन्तरिक्ष प्लेटफार्म बना लिया जाय। उसी प्लेटफार्म पर इंजीनियर धरती से भेजे गये पुर्जों को जोड़कर चन्द्र यात्रा पर जाने वाला राकेट तैयार कर लें और आगे के लिये उड़ान भरें।

उस ऊँचाई पर स्थित प्लेटफार्म स्वयं भी लगभग 18000 मील प्रति घण्टे की रफ्तार से घूम रहा होगा तथा पृथ्वी से काफी फासले पर उसकी कक्षा स्थित होगी। अतः उस प्लेटफार्म से रवाना होने वाले राकेट के इंजन को थोड़ी ही शक्ति लगाने से इतना बल मिल जाएगा कि वह पृथ्वी के रहे-सहे आकर्षण से छूटकर चन्द्रमा की ओर आसानी से अग्रसर हो सके।

रूस के अन्तरिक्ष-इंजीनियर इस योजना में भी लगे हुए हैं कि अगली बार वोस्तोक से अधिक शक्ति वाले बड़े यान पृथ्वी के गिर्द एक ही कक्षा में स्थापित किये जाएं, ताकि प्रत्येक यान में कम से कम दो अन्तरिक्ष यात्री रह सकें। तदुपरान्त इंजीनियर अन्तरिक्ष-स्टेशन स्थापित करके वहाँ पर तैयार किए गए राकेट यान को चन्द्रमा पर भेजने का भी प्रयोग

करेंगे। उस यान में मानव-यात्री के बैठने का भी प्रबन्ध रहेगा।

अन्तरिक्ष-कक्षा में एक यान को दूसरे यान के निकट स्थापित करना निस्सन्देह एक दुस्तर कार्य है। कल्पना कीजिए कि मील आध-मील की ऊँचाई पर उड़ते हुए वायुयान पर पृथ्वी से एण्टी-एयरक्रैफ्ट-गन दागनी है। इसके लिये आवश्यक होगा कि ऊँचे आकाश में एक ही बिन्दु पर तथा एक ही क्षण पर वायुयान तथा गोला दोनों पहुँचे। इसके लिए तरह-तरह के यन्त्रों की सहायता लेनी पड़ेगी ताकि गोला सही दिशा में तथा बिल्कुल सही वेग से दागा जाए, अन्यथा हो सकता है कि गोला जिस क्षण वायुयान के मार्ग पर पहुँचे उस वक्त तक वायुयान आगे जा चुका हो या वहाँ पहुँचा ही न हो!

अन्तरिक्ष-यानों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में लाने का कार्य तो ऊपर दिए गए उदाहरण से भी अधिक मुश्किल है। द्वितीय राकेटयान जिस क्षण प्रथम यान के भ्रमण पथ पर पहुँचे, ठीक उसी वक्त प्रथम यान को भी वहीं पहुँच जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उस क्षण द्वितीय यान की रफ्तार तथा उसकी दिशा भी वही होनी चाहिए जो प्रथम यान की है। इसका अर्थ यह है कि मिलन के ठीक पूर्व, द्वितीय यान की दिशा तथा उसके वेग के नियंत्रण के लिए सर्वथा सही किस्म के एलेक्ट्रानिक यन्त्र काम में लाए जाएँ। स्मरण रहे कि जिस क्षण द्वितीय यान प्रथम यान के निकट पहुँचे उस समय दोनों यानों की रफ्तार में रंचमात्र भी अन्तर नहीं होना चाहिए और न उनकी दिशा में ही विभिन्नता होनी चाहिए, अन्यथा वे यान अपनी कक्षा से पथभ्रष्ट हो जाएँगे और सारी योजना असफल हो जाएगी। अन्तिम क्षणों में रफ्तार और दिशा के सूक्ष्म नियन्त्रण की व्यवस्था राकेट पर लगे नन्हे गैस-जेटों द्वारा सम्पन्न की जाती है।

चन्द्रयात्रा के सिलसिले में अमरीकन अन्तरिक्ष-विशेषज्ञों की योजनाओं का भी उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। अमरीकी अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों की योजनानुसार चन्द्रयात्रा एक ही स्टेज में पूरी की जाएगी। इसके लिए अन्यन्त शक्तिशाली राकेटयान की जरूरत पड़ेगी। इस योजना को कार्यरूप देने के निमित्त एक विशालकाय राकेटयान का निर्माण किया जा रहा है जिसे 'नोवा' नाम दिया गया है। यह एक छः खण्डी राकेट होगा और इसका वजन अनुमानतः 1 करोड़ 20 लाख पौण्ड होगा तथा पेंदे का व्यास 50 फुट। राकेट की ऊँचाई लगभग 400 फुट होगी।

प्रथम खण्ड के दगने पर राकेट कुछ सौ मील की ऊँचाई तक आकाश में चढ़ जाएगा और तब मुख्य राकेट से अलग होकर नीचे गिर जायेगा। ठीक उसी वक्त द्वितीय खण्ड दगेगा जो राकेट को पृथ्वी के गिर्द परिभ्रमण-कक्षा में स्थापित कर देगा। तदुपरान्त ठीक दिशा और स्थिति में आते ही तृतीय खण्ड का राकेट दगेगा ताकि मुख्य राकेट कक्षा पथ को छोड़कर चन्द्रमा की ओर चल निकले। अपने मार्ग पर अन्तरिक्षयात्रा में यह राकेट लगभग 2-1/2 दिन तक चलता रहेगा। चन्द्रमा के निकट पहुँचने पर चतुर्थ खण्ड दगेगा जो रफ्तार कम करके राकेट को चन्द्रमा के गिर्द परिक्रमा-पथ में स्थापित कर देगा और तत्काल ही चन्द्रमा पर यान को सकुशल उतार लेगा।

वापसी यात्रा आरम्भ करने के लिए पाँचवां खण्ड दागा जाएगा जो राकेट को ऊपर उठाकर पृथ्वी की दिशा में उसे वेग प्रदान करेगा और स्वयं अलग होकर वहीं चन्द्रमा की सतह पर गिर जाएगा। छठवें खण्ड के राकेट के अग्रभाग पर लगे कैप्सूल में ही तीन अन्तरिक्ष-यात्रियों के आवास की समुचित व्यवस्था रहेगी। उनके लिए कोच लगे होंगे जिन पर आधी लेटी अवस्था में वे आराम कर सकेंगे। लेटी अवस्था में रहने से लाभ यह होगा कि अतिरिक्त-गुरुत्वाकर्षण को वे सहज ही संभाल सकेंगे तथा भारहीनता की दशा का भी सामना कर सकेंगे।

छठवें खण्ड में लगे नन्हें जेट आदि की मदद से इसकी रफ्तार कम की जा सकेगी ताकि पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करने पर घर्षण की वजह से कैप्सूल के जल जाने का खतरा उत्पन्न न हो जाय। धरती के निकट पहुँचने पर स्वचालित यन्त्रों की मदद से कैप्सूल मुख्य राकेट से अलग हो जाएगा और पैराशूट की सहायता से सकुशल धरती पर उतर आएगा।

इस सीधी यात्रा की अमरीकन योजना में खूबी यह है कि पृथ्वी के गिर्द, कक्षा-पथ में दो या दो से अधिक यानों के

[शेष पृष्ठ 39 पर]

पुस्तकायन की पुस्तकें

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वाधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान-वर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बाल-ज्ञान विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें		Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेताः	आशुतोष मिश्र	50
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	35
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	35
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जीव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया		Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें		Rs.
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	60
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारा पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध		Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा

आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हज़ार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 1 मार्च 1999 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

लेख निम्न पते पर भेजें :

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक, विज्ञान

विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

सिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च,
नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

अंक : जुलाई-अगस्त 1998

अप्रैल 1915 से प्रकाशित

हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका
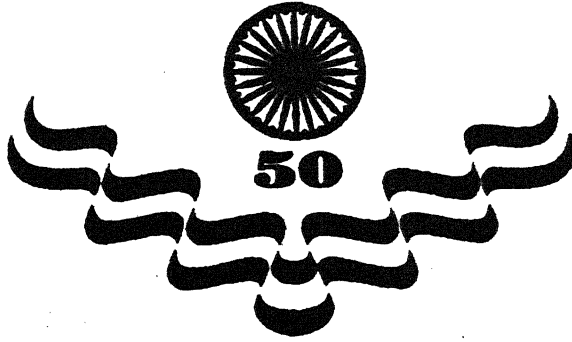
विज्ञान परिषद् प्रयाग

ISSN : 0373 - 1200

यह अंक 10 रु०

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 84 अंक 4–5

जुलाई–अगस्त 1998

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

एक प्रति : 5 रु०

यह अंक : 10 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सहायक सम्पादक

डॉ० दिनेश मणि

मुद्रक

सुधीर श्रीवास्तव
ट्रोजन कम्प्यूटर्स, इलाहाबाद

❋

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

इस अंक में

1. विज्ञान वक्तव्य — 1
2. धर्म के रास्ते में विज्ञान (श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव) — 2-6
3. विज्ञान में धोखाधड़ी रोकना आवश्यक (डॉ० रमेश चन्द्र कपूर) — 7-8
4. बिग–बैंग पर विहंगम–दृष्टि (डॉ० श्रवण कुमार तिवारी) — 9-10
5. टीकाकरण उद्‌भव (प्रो० देवेन्द्र कुमार राय) — 11-13
6. क्यों जा बसे हैं बुद्धिजीवी सुदूर देशों में (दीप्ति भटनागर) — 14-16
7. मौत की छाया : आर० डी० एक्स० (डॉ० अनिल वशिष्ठ) — 17-18
8. मागुर : परिचय, पालन एवं प्रजनन (डॉ० अमरेश चन्द्र पाण्डेय) — 19-20
9. वाहन–प्रदूषण से उत्पन्न स्वास्थ्य समस्या (डॉ० बृजमोहन कुमार प्रसाद) — 21-23
10. प्राण ऊर्जा का संतुलन स्वास्थ्य के लिए आवश्यक (चंचलमल चौरड़िया) — 24-27
11. शुष्क वनों के नाशीकीटों के नियंत्रण में वानस्पतिक कीटनाशकों की भूमिका (श्री सहदेव चौहान व डॉ० एस० आई० अहमद) — 28-30
12. खनिजों से खनन से पैदा होने वाले रोग (डॉ० विजय कुमार उपाध्याय) — 31-32
13. जब आँखों से कटेगा टिकट (इरफान ह्यूमन) — 33
14. विज्ञान समाचार (श्रीमती अर्पिता मोहन) — 34-35
15. विज्ञान पहेलियाँ (डॉ० अरुण आर्य) — 35
16. राष्ट्रीय विज्ञान संगोष्ठी (डॉ० जयराज बिहारी) — 36-38
17. पुस्तक समीक्षा (डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय) — 39-40

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

बार-बार अपनी सीमाओं और कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए हमें पीड़ा भी होती है और शर्म भी आती है। पिछले 2 अंक आपके पास विलम्ब से पहुँचे, हमें खेद है। यह जुलाई-अगस्त संयुक्तांक भी समय से नहीं पहुँच सका, कैसे क्षमा याचना करूँ। विवश होकर हमें प्रेस वदलना पड़ा है और कम समय में नये प्रेस ने जो भी कार्य किया है, सराहनीय है। आशा है अब पत्रिका नियमित हो जायेगी।

मैं पिछले तीन-चार वर्षों से सम्पादक के पद से मुक्त किये जाने का अनुरोध कर रहा था। नये सम्पादक डॉ० दिनेश मणि होंगे। इस प्रकार बूढ़े कंधे से युवा कंधे पर सम्पादन का कार्य चला जायेगा। डॉ० दिनेश मणि पिछले कई वर्षों से परिषद् से जुड़े रहे हैं। मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि डॉ० दिनेश मणि पत्रिका को सर्वथा नया रूप देंगे। सौभाग्यवश पत्रिका को सी एस आई आर से मिलने वाली सहायता राशि अब 50,000 रुपये से बढ़कर एक लाख रुपये हो गयी है।

मुझे अपने कार्यकाल के दौरान बहुत कुछ सीखने को मिला। देश के शीर्ष लेखकों, सम्पादकों आदि के सम्पर्क में आया और उनका भरपूर सहयोग और स्नेह मिला। यही कारण था कि लगभग 12 वर्षों तक मैं निष्ठापूर्वक विज्ञान का सम्पादन करता रहा। इससे मुझे आत्मसंतोष मिला है।

मैं सुहृदय लेखकों एवं पाठकों से यह अपेक्षा करता हूँ कि वे डॉ० मणि को भी वही स्नेह देते रहेंगे, जो मुझे दिया है। मुझे अपने कार्यकाल में परिषद् के कई प्रधानमंत्रियों के निर्देशन में कार्य करने का सौभाग्य मिला। पहले प्रो० शिवगोपाल मिश्र, फिर प्रो० पूर्णचन्द्र गुप्त, प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी, प्रो० देवेन्द्र दत्त नौटियाल और पुनः प्रो० शिवगोपाल मिश्र। मैं इन सबके प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इनके अतिरिक्त परिषद् के समस्त पदाधिकारियों और कर्मचारियों का भी भरपूर सहयोग और स्नेह मिला है। बिना इन के सहयोग के मैं कुछ भी नहीं कर पाता। मैं उपरोक्त सभी का आभारी हूँ।

अब कुछ और बातें। पिछले दिनों प्रो० शिवगोपाल मिश्र जी अपनी छोटी पुत्री के पास पुणे गये थे। वहाँ हम सभी के लिए एक सुखद संयोग रहा। देश के चोटी के गणितज्ञ, अंतरिक्ष विज्ञानी, विज्ञान गल्पलेखक और दूरदर्शन पर चिरपरिचित मुस्कान बिखेरकर सभी का दिल जीत लेने वाले अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक डॉ० जयंत विष्णु नार्लीकर से डॉ० शिवगोपाल मिश्र की मुलाकात डॉ० नार्लीकर के ऑफिस में हुई। उन्होने बड़े ही सहज ढंग से बात किया और विज्ञान परिषद् (इलाहाबाद) में किसी अवसर पर आने का वादा भी किया।

वाराणसी में डॉ० श्रवण कुमार तिवारी के सहयोग से 'नन्दलाल सिंह स्मृतिख्यान' सम्पन्न हो गया। विषय को डॉ० ब्रह्मदेव मिश्र ने बड़े ही सरल और रोचक ढंग से समझाया। व्याख्यान का विषय था, 'सूक्ष्मतम का जीवन'। इस अवसर पर डॉ० शिवगोपाल मिश्र और डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय वाराणसी गए थे।

एक शुभ समाचार। श्याम नारायण कपूर को 'विज्ञान भूषण' पुरस्कार, श्री सुकदेव प्रसाद को उनकी पुस्तक पर 'भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी' पर 'सम्पूर्णानन्द पुरस्कार' मिला है। दोनों विज्ञान लेखकों को बधाई।

एक और शुभ समाचार। पिछले दिनों सभापति डॉ० दिव्यदर्शन पन्त के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल मानव संसाधन विकास और विज्ञान एवं तकनीकी मंत्री, डॉ० मुरली मनोहर जोशी जी के इलाहाबाद निवास पर मिला। प्रो० पंत के अतिरिक्त प्रयाग विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी, प्रो० शिवगोपाल मिश्र और प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव भी शिष्टमंडल के सदस्य थे। प्रो० जोशी ने शिष्टमण्डल के निवेदन को ध्यान से सुना। हमें सुखद समाचार प्राप्त हुआ कि अब 'विज्ञान' पत्रिका को सी एस आई आर द्वारा दी जाने वाली वार्षिक सहायता राशि 50,000 रुपयों से बढ़ाकर 1,00,000 रुपये कर दी गयी है। इसी प्रकार 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' की वार्षिक सहायता राशि 37,500 रुपयों से बढ़ाकर 50,000 रुपये कर दी गयी है। हम माननीय मंत्री जी के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। कुछ और आर्थिक सहायता के हमारे निवेदन पर सी एस आई आर की विशेषज्ञ समिति विचार करेगी। हमें विश्वास है कि माननीय डॉ० जोशी जी की अनुकम्पा से हमारी डगमगाती नैय्या पार लग जायेगी।

इस आशा और विश्वास के साथ कि परिषद् के अब अच्छे दिन आयेंगे और "विज्ञान" पत्रिका में निखार आयेगा।

आपका

प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव

चिंतनपरक लेख

धर्म के रास्ते में विज्ञान

श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

[स्वर्गीय प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव के इस लेख की हमें तलाश थी क्योंकि यह लेख उनका प्रथम लेख है। किन्तु यह लेख हमें तब प्राप्त हुआ जब 'प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव स्मृति अंक' छप चुका था। अतएव अब प्रकाशित हो रहा है।

—सम्पादक]

कुछ वर्ष पूर्व विज्ञान थोड़े से इने गिने विद्वानों के काम की चीज समझी जाती थी। अपने अनुसंधान में लगा हुआ वैज्ञानिक समाज की ओर से बिल्कुल बेखबर था, और समाज को भी उसकी कुछ विशेष परवाह न थी; किन्तु आज तो सारा संसार विज्ञान के प्रभाव से ओत प्रोत है। समाज पर इस वैज्ञानिक जीवन की एक गहरी छाप लग चुकी है और धर्म भी अपने को इसके प्रभाव से अछूता नहीं रख सका है। इस प्रश्न पर विचार करने के पहले हमें यह देखना है कि धर्म और विज्ञान में किस प्रकार का सम्बन्ध हो सकता है।

पिछले पाँच वर्षों में विज्ञान ने आश्चर्यजनक उन्नति की है। आये दिन हमें ऐसी बातें बताई जाती हैं, जो धर्म के प्रचलित सिद्धान्तों के बिलकुल खिलाफ है। क्रमशः धर्म और विज्ञान की यह खींचातानी इस सीमा तक आ पहुँची है कि ऐसा जान पड़ता है कि या तो हमें "धर्म" शब्द के अर्थ बदलने पड़ेंगे, या विज्ञान को ही रद्दी की टोकरी में फेंकना पड़ेगा। धर्म और विज्ञान दोनों ही समाज के महत्वपूर्ण अंग हैं, अतएव किसके पक्ष में फैसला होना चाहिए, इस प्रश्न के उत्तर पर समाज के भविष्य की रूप-रेखा निर्भर है। इतिहास के पन्ने उलटने पर हम देखते हैं कि धर्म और विज्ञान में सदैव से ही युद्ध होता आया है। सत्रहवीं शताब्दी में इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियो ने अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी तथा दूसरे ग्रह उसके चारों ओर वृत्ताकार परिधि में घूमते हैं। उस समय सारे यूरोप में पोप का बोलबाला था। बाइबिल की बातों का खण्डन करना बड़े हिम्मत का काम था। गैलीलियो बचपन से ही निर्भीक प्रकृति का था, अतएव सत्य के लिए उसने पोप की परवाह न की। फलस्वरूप वह धर्म के आचार्यों का कोपभाजन बनने से बच न सका।

गैलीलियो पर जो दोषारोपण किये गये थे उसके निम्नांकित अंश उल्लेखनीय हैं:--

1. यह ख्याल कि सूर्य विश्व के केन्द्र पर है और अपने स्थान पर स्थिर है, असम्भव है तथा दर्शन की दृष्टि में असत्य और नास्तिकता का द्योतक है, क्योंकि यह धर्म-पुस्तक में लिखी बातों के बिलकुल खिलाफ है।
2. पृथ्वी विश्व के केन्द्र में नहीं है तथा वह घूमती है, जिसके कारण दिन और रात होते हैं, यह मत भी असम्भव और दर्शन के अनुसार असत्य है तथा धार्मिक दृष्टि बिन्दु से त्रुटिपूर्ण भी है।

अतः गैलीलियो को जेल की सजा हुई, और प्रति सप्ताह उसे एक बार एक लम्बा बयान उच्च स्वर से पढ़ना पड़ता था, जिसमें उसे यह कहना पड़ता था कि मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि उन सारी बातों में, जिसे पोप और रोम के गिरिजाघर मानते हैं, मेरा पूर्ण विश्वास है। जिन बातों को मैंने पहले सत्य समझा था, वह मेरा भ्रम था। भविष्य में अब मैं ऐसी बातों का कभी प्रचार न करूँगा तथा धर्म-पुस्तक के एक-एक शब्द में मेरा पूर्ण विश्वास है।

गैलीलियो को दंड देते समय पोप ने कहा था कि हम यह बता देना चाहते हैं कि धर्म पुस्तक के खिलाफ प्रचार करने वाले के संग हम ऐसा ही सलूक करेंगे। बहुत-कुछ अंशों में पोप की यह धमकी काम भी कर गई। उस समय से आज तक इटली में गैलीलियो की श्रेणी का दूसरा वैज्ञानिक पैदा नहीं हुआ।

धर्म मुख्यतया श्रद्धा और अन्ध-विश्वास पर अवलम्बित है, इसी से बुद्धि की कसौटी पर कसा जाना इसे रुचिकर नहीं है। गैलीलियो के पहले लोगों का ख्याल था कि विश्व की रचना किस प्रकार हुई, कैसे प्रतिदिन सूर्य पूर्व से पश्चिम जाता है आदि प्रश्नों का सही उत्तर ये जानते हैं। वे समझते थे कि उनकी धर्म-पुस्तक ने इन सब प्रश्नों का सही और सन्तोषजनक उत्तर दे दिया है और धर्म-पुस्तक से बाहर सत्य ढूँढ़ना निरर्थक ही नहीं, अधर्म-सा समझा जाता था। गैलीलियो ने उनकी धर्म-पुस्तक को झूठा ठहराकर तत्कालीन पोप की प्रतिष्ठा को बड़ी हानि पहुँचाई। इसी कारण धर्म के आचार्यों ने अपने सोने के महल ढहते देख इतना तूफान खड़ा कर दिया।

1932 की बात है। मैं एक ग्रामीण पाठशाला में पढ़ता था। भूगोल के अध्यापक महोदय ब्राह्मण थे। दिन और रात के होने का कारण समझा रहे थे। यह बता चुकने के बाद कि पृथ्वी लट्टू की भाँति 24 घंटे में एक बार घूम जाती है और सूर्य अपने स्थान पर स्थिर रहता है, आपने यह बता देना भी अपना कर्तव्य समझा कि सच्ची बात कुछ और ही है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करता है और पृथ्वी स्थिर रहती है। अतएव परीक्षा के लिए हम सूर्य को भले ही स्थिर मान लें, किन्तु सच्ची बात हमें सदैव ध्यान में रखनी चाहिए। मालूम नहीं, यह महोदय अपने विद्यार्थियों को अब भी इसी प्रकार सत्य का अनुसंधान कराते हैं या नहीं।

चन्द्र ग्रहण को लीजिए। इसका ठीक रहस्य हमारे पुराणकारों को मालूम न था। उन्होंने कल्पना के आधार पर रोचक कहानियों का निर्माण किया। तदनुसार लोगों में विश्वास जम गया है कि राहु चन्द्रदेव को ग्रसता है और गंगा-स्नान तथा दान-यज्ञ द्वारा राहु को प्रसन्न कर हम चन्द्रदेव की रक्षा कर सकते हैं। विज्ञान की कसौटी पर यह कहानी झूठी ठहरती है। इसी प्रकार की अन्य बहुत-सी ऊल-जुलूल बातें धर्म का अंग समझी जाती हैं। भला, ऐसे धर्म के प्रति विज्ञान की क्या सहानुभूति हो सकती है?

अतएव विज्ञान की प्रगति के साथ समाज पर से धर्म का बन्धन ठीला होता जा रहा है। हर एक पीढ़ी के साथ धर्म के रूप में भी परिवर्तन हो रहा है। कुछ देशों में (उदाहरणार्थ रूस) अब सामाजिक जीवन को सुखमय बनाना ही सबसे बड़ा धर्म समझा जाने लगा है। ऐसा जान पड़ता है कि विज्ञान का प्रत्येक नया आविष्कार धर्म को पीछे हटने की मजबूर करता है। सम्भव है, विज्ञान द्वारा वाह्य आडम्बरों को दूर कर हम धर्म के इस अंश तक पहुँच सकें, जो शुद्ध और सत्य है। ऐसा होना धर्म के लिए बड़ा ही हितकर होगा। पिछली दो-तीन शताब्दियों तक धर्म का रूप एक हठी लड़के का था। वह सदैव विज्ञान से लड़कर अपनी रक्षा करने का उद्योग करता रहा। यही कारण है कि गैलीलियो जैसे सत्य के अनन्य भक्तों को नाहक कष्ट दिया गया। वैज्ञानिक स्वभावतः क्रान्तिकारी होता है। रूढ़ियों का वह दास नहीं है। बिना परीक्षा किये हुए, विना भलीभाँति जाँचे हुए, वह किसी भी बात को स्वीकार करने के तैयार नहीं। वह अगर किसी का लोहा मानता है, तो वह बुद्धि की कसौटी का। सत्य के अनुसंधानमात्र से समाज उतना विचलित नहीं होता, जितना इस खयाल से कि इस नये सत्य को स्वीकार करने से समाज के किसी विशेष अंग को हानि पहुँचने की सम्भावना है। गैलीलियो के अनुसंधान ने पोप की प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। इसी कारण धर्म के आचार्यों ने गैलीलियो के विचारों को दबाने का प्रयत्न किया। विज्ञान को सत्य के अनुशीलन में सबसे अधिक बाधा उन लोगों ने पहुँचाई है, जिनको यह डर था कि सत्य के प्रकट होने से अनेक विशेष अधिकार उनसे छीन लिये जायेंगे। विज्ञान के इतिहास पर ध्यान देने से यह बात भलीभाँति समझ में आ जायगी कि यह कोरी कल्पना नहीं, वरन् सत्य का नग्न रूप है।

धर्म को जीवित रहने के लिए परम आवश्यक है कि वह विज्ञान की सहायता से अपनी तमाम त्रुटियों को दूर करने में जरा भी न हिचके। ऐसा करने से इसकी काया क्षीण अवश्य हो जायगी, किन्तु खरे स्वर्ण की भाँति वह शोभा भी पावेगा।

धर्म वास्तव में है क्या चीज? प्राचीन काल से प्रकृति को समझने में असमर्थ होने के कारण मनुष्य स्वभावतः उससे डरने लगा। उसने प्रकृति के पीछे एक

महान शक्ति की कल्पना की, जो रुष्ट होने पर भाँति-भाँति के कष्ट पहुँचा सकती थी। इस भय की भावना ने धर्म की सृष्टि की, किन्तु अब विज्ञान ने प्रकृति से डरने के बजाय उसके रहस्योद्घाटन के लिए हमें उपयुक्त साधन प्रदान किये हैं। भय का अंश दूर हो जाने से साधारण जनता पर धर्म का बन्धन अब उतना कड़ा नहीं रह गया। बिजली चमकती है इसलिए नहीं कि इन्द्रदेव हमसे रुष्ट हैं, वरन् इसलिए कि बादल आपस में रगड़ खाते हैं। अतः आतंक के भरोसे अब धर्म टिक नहीं सकता। विज्ञान के प्रकाश में धर्म का रूप बदल गया है। संसार में जीवन को सुखमय बनाने के लिए कुछ नियम आवश्यक हैं। धर्म इसी नियमावली की ओर अग्रसर हो रहा है। रूस में समाज की उन्नति ही सबसे बड़ी धार्मिकता मानी गई है। इसके आगे धर्म की उपयोगिता नहीं है। इस स्थल पर स्वभावतः अनेक शंकाएँ उठती हैं। धर्म से समाज की उन्नति ही सबसे बड़ी धार्मिकता मानी गयी है। इसके आगे धर्म की उपयोगिता नहीं है। इस स्थल पर स्वभावतः अनेक शंकाएँ उठती हैं। धर्म से समाज की उन्नति अवश्य होती है, किन्तु क्या धर्म का काम यहीं समाप्त हो जाता है? समाज की उन्नति किस प्रकार हो, क्या इस समस्या का हल करना ही धर्म की वास्तविक मीमांसा है? निकट भविष्य में क्या धर्म में ईश्वर के लिए कोई स्थान न रह जायेगा? विज्ञान के दृष्टि बिन्दु से इन प्रश्नों पर हम थोड़ा विचार करेंगे।

हाल में इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्स जीन्स और एडिंगटन तथा दूसरे विद्वानों ने विज्ञान की कुछ विशेषताओं पर ऐसे विचार प्रकट किये हैं, जिनके आधार पर धार्मिक विचार के लोगों ने यह निष्कर्ष निकालने की कोशिश की है कि विज्ञान ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता है।

अभी तक विज्ञान में कार्य-कारण के नियम का अपवाद नहीं मिला था। प्रकृति पूर्णरूप से नियमबद्ध है। हमारा प्रतिदिन का जीवन उपर्युक्तनियम द्वारा संचालित है। हम जानते हैं कि हमारी मोटर यदि एक गैलन पेट्रोल में आज 20 मील जाती है, तो कल भी उतने ही पेट्रोल में वह बीस ही जायेगी, यदि मोटर के इंजन में कोई खराबी नहीं आ गई है। यह नियम सब जगह लागू होता दिखाई देता है। एक दी हुई परिस्थिति में यदि एक घटना होती है, तो उसी परिस्थिति के फिर मौजूद होने पर उस घटना का फिर से होना अनिवार्य है। वर्तमान समय की घटना का भूतकाल की किसी विशेष घटना से एक अटूट और अनन्य सम्बन्ध है। इस प्रकार विश्व की सभी घटनाओं के क्रम का अनुसन्धान करने पर हम विश्व के जन्मकाल तक पहुँचाते हैं। उपर्युक्त नियम के अनुसार हमें यह मानना पड़ता है कि जिस परिस्थिति में विश्व की उत्पत्ति हुई, उसके अनुसार विश्व की प्रगति केवल एक रास्ते पर हो सकती थी, और यह सही रास्ता है, जो इसने अख्तयार किया है। दूसरे रास्ते पर जाना इसके लिए सम्भव ही न था। इस प्रकार संसार की तुलना एक मशीन से की जाने लगी।

इस स्थल पर यह आवश्यक है कि हम समय क्या चीज है, इस प्रश्न का उत्तर जान लें। कार्यकारण नियम घटने के लिए समय का समान रूप से प्रवाहित होना जरूरी है। कारण हो ले, तब उसके उपरान्त फलस्वरूप दूसरी घटना होगी। किन्तु आइन्सटाइन का सापेक्षवाद हमें बताता है कि समय भी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई की भाँति एक चौथी राशि है। चींटी एक समतल धरातल पर केवल लम्बाई और चौड़ाई का ही अनुभव कर सकती है, यदि वह किसी लट्ठे पर चढ़ना आरम्भ करे, तो एक बार वह लट्ठे के थोड़े से अंश का ही अनुभव कर सकती है। वह समझेगी, ऊँचाई एक ऐसी राशि है, जो लम्बाई और चौड़ाई से भिन्न है। ऊँचाई का केवल थोड़ा-सा अंश ही एक बार अनुभव किया जा सकता है। जब वह बीच खम्भे पर पहुँचती है, तो वह समझती है कि खम्भे के नीचे का भाग भूतकाल में था, अब नहीं है और ऊपर का भाग भी भविष्य में होगा, वर्तमान में नहीं है। यद्यपि हम भलीभाँति जानते हैं कि पूरा लट्ठा वर्तमान है, चाहे चींटी लट्ठे के बीच में हो या चोटी पर।

मनुष्य चींटी से केवल इसी बात में भिन्न है कि वह लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई तीनों का एक ही साथ अनुभव कर सकता है, किन्तु समय का अनुभव वह केवल टुकड़ों में कर सकता है। चींटी की भाँति हम 'समय' रूपी लट्ठे पर चढ़कर भविष्य की घटनाओं का अनुभव करते हैं। हम सोचते हैं कि आज यह घटना हो रही है, अमुक घटना कल होगी। इस तरह हम समझते हैं कि कार्य-कारण का नियम लागू होता है; किन्तु उपर्युक्त दृष्टान्त द्वारा हम देखते हैं कि घटनाएँ एक दूसरे के बाद नहीं होती हैं। वे सबकी सब वर्तमान हैं। अतएव 'क' के कारण एक दूसरी घटना 'ख' होती है, यह कहना ठीक नहीं है। आदि से अन्त तक पूरा समय नक्शे की भाँति हमारे सामने फैला हुआ है। सारी घटनाएँ भूत,

भविष्य तथा वर्तमान की सभी उस पर अंकित हैं। हम एक बार में समय के केवल एक बिन्दु से परिचित हो सकते हैं। अतएव आगे के बिन्दु पर कौन-सी घटना अंकित है, हम तत्काल नहीं जान सकते। फिर तो हम यह भी कह सकते हैं कि घटनाएँ होती नहीं, वरन स्वयं हमीं उनके पास समय के लट्ठे पर चढ़ते हुए पहुँचते हैं। इस तरह सापेक्षवाद को घटनाओं के लिए कार्य-कारण-नियम की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु इच्छा शक्ति के बारे में सापेक्षवाद भी चुप है।

अब प्रश्न उठता है, क्या चेतन पदार्थ भी किसी विशेष नियम से आबद्ध हैं? उन्नीसवीं शताब्दी तक चेतन और जड़ पदार्थ दो भिन्न-भिन्न चीज समझे जाते थे; किन्तु अब अनुसन्धान द्वारा यह पता चला है कि चेतन पदार्थ के छोटे अंश सेल (cell) भी जड़ पदार्थ वाली वस्तुओं से ही बने होते हैं। इस तरह जड़ तथा चेतन पदार्थों के बीच की रेखा मिटती जा रही है। अतएव चेतन पदार्थ को भी जड़ की भाँति कार्य-कारण का नियम पालन करना चाहिए।

लेकिन कार्य-कारण नियम से आबद्ध होने पर इच्छाशक्ति का प्रयोग नहीं हो सकता। और सभी जीवों में हम न्यूनाधिक मात्रा में इच्छाशक्ति मौजूद पाते हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहँचते हैं कि जड़ पदार्थ कार्य-कारण का नियम बिना किसी अपवाद के पालन करते हैं; किन्तु चेतन प्राणियों में यह नियम लागू नहीं होता। इस प्रश्न पर हम जरा ध्यानपूर्वक विचार करेंगे।

बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक अनुसंधान के साधनों की जब काफी उन्नति हो चुकी, तो हम अकेले अणुओं (molecule) और परमाणुओं (atom) पर प्रयोग करने में सफल हुए और हमें अनेक नई-नई बातों का आभास मिला। भौतिक -शास्त्र के विद्वानों ने यह देखा कि कार्य-कारण का नियम केवल बड़े पैमाने पर होने वाली घटनाओं के लिए लागू है। अणु और परमाणुओं की दुनिया में प्रकृति का यह अटूट नियम लागू नहीं होता। इस प्रकार की अनेक क्रियाएँ हैं, पर मैं केवल एक के बारे में यहाँ पर कुछ कहूँगा।

रेडियम का नाम पाठकों ने सुना होगा। इसके अणु निरन्तर सीसे के अणुओं में परिवर्तित होते रहते हैं। यहाँ पर एक विचित्र बात यह देखने में आती है कि यदि 2000 अणु रेडियम के हैं, तो एक वर्ष के ऊपरान्त उनमें से केवल एक अणु सीसे का अणु बन सकेगा, शेष 1999 रेडियम ही रहेंगे। कोई भी रासायनिक या भौतिक क्रिया इस व्यापार में बाधा नहीं पहुँचा सकती। हमें नहीं मालूम, इन 2000 अणुओं में से कौन-सा अणु इस परिवर्तन के चक्कर में आता है। सारे अणु एक से हैं, अतएव उनके गुण भी एक हैं। फिर ऐसा क्यों है कि केवल एक की मृत्यु वर्ष-भर में होती है? पूरे साल-भर में मानो यमराज एक बार आता है और किसी एक अणु पर अपना प्रहार करता है, शेष 1999 अणु, जो ठीक उसी की भाँति हैं, साफ बच जाते हैं। किस अणु की मृत्यु होने वाली है, इस प्रश्न का उत्तर वैज्ञानिक नहीं दे सकता। मानो अणुओं में भी इच्छाशक्ति है, और जब इच्छा हुई, अपना शरीर त्याग दिया। एडिंगटन ने इस बात को लेकर यह दिखाने की कोशिश की है कि प्रकृति के पीछे इच्छाशक्ति है, जो नियमों से परे हैं। इस प्रकार उसने ईश्वर की सत्ता की रक्षा करने में विज्ञान की सहायता ली है, लेकिन इस तरह सोचना क्या ठीक है? जितने नियम हम जानते हैं, वे लागू नहीं होते। इसके मानी क्या यही हैं कि इस क्रिया पर कोई नियम लागू हो ही नहीं सकता? सम्भव है, कुछ दिनों उपरान्त हमें ऐसे नियमों का पता चले, जो उपर्युक्त प्रश्न का सन्तोषप्रद उत्तर दें सकें, तब तो अणुओं को इच्छाशक्ति प्रदान करने की कोई आवश्यकता न होगी। सारांश यह कि जब तक हम यह साबित करके न दिखा दें कि अणु किसी भी प्रकार के नियमों से आबद्ध नहीं है, हम उन्हें इच्छाशक्ति प्रदान नहीं कर सकते।

सर जेम्स जीन्स ने यह साबित किया है कि सृष्टि के सबसे छोटे अंश अणु तथा परमाणु आदि वास्तव में लहरें हैं। उनकी क्रियाएँ और उनके गुण गणित के सूक्ष्म सूत्रों द्वारा भलीभाँति समझाये जा सकते हैं, अतएव उसने सृष्टिकर्ता की कल्पना एक शुद्ध गणितज्ञ के रूप में की है। 2300 वर्ष पूर्व प्लेटो ने भी ईश्वर की कल्पना एक रेखागणित के पंडित के रूप में की थी; लेकिन यह कहना कि सृष्टि की रचना रेखागणित के सिद्धान्तों के अनुसार हुई है, कहाँ तक ठीक है? क्या शुद्ध गणित के सिद्धान्त भी प्रकृति से प्राप्त किये गये ज्ञान पर अवलम्बित नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश जीन्स ने अपनी पुस्तक 'मिस्टिरियस यूनिवर्स' (The Mysterious Universe) में की है; पर उसके तर्क में

स्पष्टीकरण की मात्रा कम दीखती है तथा उसकी दलीलें सन्तोषप्रद नहीं हैं।

अब हम विकासवाद की ओर आते हैं। प्रायः सभी धर्मों में मनुष्य को सृष्टि में सर्वोपरि स्थान मिला है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि सृष्टि की रचना में मनुष्य-जाति के हित का उद्देश्य छिपा है। उस भ्रम को दूर करने की ज्योतिष शास्त्र ने भरसक कोशिश की है। हम जानते हैं कि इस विशाल ब्रह्माण्ड में पृथ्वी रेगिस्तान में पड़े बालू के एक कण के के समान है- आकाश-मण्डल में पृथ्वी का महत्व इससे अधिक नहीं है। इतने बड़े विश्व में पृथ्वी ऐसे तथा इससे कई गुने बड़े करोड़ों ग्रह पिण्ड हैं; किन्तु ऐसे ग्रह पिण्ड, जिनकी जलवायु जीवधारियों के अनुकूल हो; प्रायः नगण्य से हैं, शेष या तो बहुत गर्म या बहुत ही ठंडे हैं। स्वयं हमारी पृथ्वी भी कुछ दिनों पहले जीवधारियों के रहने के काबिल न थी, और इसका भविष्य भी अधिक उज्वल नहीं है-- यह धीरे-धीरे ठंडी हो ही है, और एक दिन यह इतनी ठंडी हो जायेगी कि किसी भी जीवधारी का यहाँ रहना सम्भव न होगा। प्रकृति को जीवधारियों की कोई विशेष परवा नहीं है।

जीवतत्ववेत्ता हमें यह भी बताते हैं कि संसार के समस्त प्राणी अमीबा नामक एक-कोशीय जीव से उत्पन्न हुए हैं। फिर तो मनुष्य को जीव-शिरोमणि कहलाने का कोई हक नहीं है। जलचर, उभयचर, खेचर आदि अनेक पर्यायों में होकर मनुष्य की अभिव्यक्ति हुई है। यह मत धर्म पुस्तकों की शिक्षा के खिलाफ है। मनुष्य-देह की स्वतन्त्र रचना ईश्वर द्वारा नहीं हुई है, इस विचार ने भी धर्म को काफी छति पहुँचाई है। जीवधारियों के शरीर की क्रियाओं को हम विज्ञान द्वारा समझा सकते हैं। भोजन से रुधिर बनने में कौन-कौन सी रासायनिक क्रियाएँ होती हैं, इसका पता विज्ञान को है। रही मस्तिष्क या इच्छाशक्ति की बात, सो इस ओर भी विज्ञान को काफी सफलता मिल चुकी है। इसके सम्बन्ध में बड़े महत्वपूर्ण प्रयोग किये गये हैं, और इनके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हमारे बहुत से काम मस्तिष्क की सहायता के बिना ही किये जाते हैं। ऐसे कार्य, जिनके लिए हमें सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ती, स्वतन्त्र क्रिया (Reflection action) कहलाते हैं। हमारी कुछ आदतें- विशेषकर क्षोभ (emotions) मस्तिष्क द्वारा संचालित नहीं होतीं, वरन शरीर में कुछ ऐसी गिल्टियाँ (glands) होती हैं, जो उनका संचालन करती हैं। इन्हीं गिल्टियों से एक प्रकार का रासायनिक पदार्थ निकलकर जब हमारे रुधिर में मिलता है, तो हम किसी विशेष प्रकार के क्षोभ का अनुभव करते हैं। भिन्न प्रकार के क्षोभों के लिए भिन्न-भिन्न गिल्टियाँ होती हैं। एक युवती स्त्री प्रजनन क्रिया-सम्बन्धी गिल्टी से रासायनिक पदार्थ निकालकर एक बूढ़े मादा खरगोश के शरीर में प्रवेश कराने पर उसमें कामोद्दीपन के सारे चिन्ह प्रकट हो आये। इस प्रकार रोज ही अनगिनत प्रयोग किये जा रहे हैं। गिल्टियों के फेर-बदल से नर को मादा तथा मादा को नर बना लेना अब कपोल कल्पित बात नहीं रही।

इस तरह मस्तिष्क का कार्य गिल्टियों के रासायनिक पदार्थ ने ले लिया है। सम्भव है, निकट भविष्य में हम मस्तिष्क की सभी क्रियाओं को भौतिक तथा रसायनशास्त्र द्वारा व्यक्त कर सकें, और तब जड़ और चेतन पदार्थ में विज्ञान की दृष्टि से कोई अन्तर न रह जायगा। अतएव प्राणिमात्र धीरे-धीरे नास्तिकवाद की ओर अग्रसर हो रहा है।

कुछ लोग विकासवाद में सृष्टिकर्ता के किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति देखते हैं, लेकिन यह बात समझ में नहीं आती कि ईश्वर का उद्देश्य ऐसी सृष्टि के रचने में क्या हो सकता है, जहाँ हम इतना दुःख और सन्ताप देखते हैं? कहा जाता है कि यन्त्रणाएँ हमारे दुष्कर्मों के फल हैं। यदि इस खयाल को सही भी मान लें, तो छोटे-छोटे बच्चों के कष्ट का क्या कारण हो सकता है? शायद अपने माता-पिता के पापों का फल उन्हें भोगना पड़ता है। किन्तु एक के पाप के लिए दूसरा कष्ट पाये, इंसाफ की ऐसी व्याख्या करने वाले परमेश्वर के प्रति हमारी कहाँ तक श्रद्धा हो सकती है? और पुनर्जन्म द्वारा समस्या के सुलझाने का प्रयत्न करना समस्या को एक प्रकार से टालना है। सच तो यह है कि यह कहना कि सृष्टि ईश्वर की इच्छा से एक निश्चित व्यवस्था के अनुसार चल रही है, ईश्वर को निष्ठुर और अन्यायी की उपाधि देना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान को ईश्वर की आवश्यकता नहीं है, फिर भी सत्य के अनुसंधान में लीन विज्ञान, ईश्वर के प्रति उदासीन होते हुए भी, हमारे सम्मान का पात्र है, क्योंकि सत्य की खोज ही मनुष्य जाति की सबसे बड़ी विभूति है।

[विशाल भारत, अक्टूबर 1936 पृष्ठ 483-488 से साभार]

❑

विज्ञान में धोखाधड़ी रोकना आवश्यक

डॉ० रमेश चन्द्र कपूर

8, रेजिडेन्सी रोड, जोधपुर (राजस्थान)

हमारे देश तथा अन्य देशों से भी आर्थिक घोटालों के समाचार तो प्रायः आया ही करते हैं। परन्तु वैज्ञानिक अनुसंधानों में घोटालों के बारे में हम बिरले ही सुनते हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वैज्ञानिक कोई अनोखे जीव नहीं हैं। वे भी सामान्य मनुष्यों की तरह व्यवहार करेंगे और यह स्वाभाविक है कि उनमें भी भ्रष्टाचार का प्रतिशत लगभग उतनी ही हो सकता है जितना समाज के अन्य वर्गों में मिलता है। इस कारण शोधकर्ता का परम कर्तव्य हो जाता है कि वह इससे संबंधित समस्याओं पर मनन करे और देखे कि उसकी प्रयोगशाला में किस प्रकार की मनोवृत्ति होती है। यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि प्रयोगशाला अथवा संस्थान में मुक्त वातावरण रहे और शोधकार्यों में ईमानदारी बरती जाये।

प्रायः वैज्ञानिक देश के शिक्षा संस्थानों में ही पठन-पाठन करते हैं। वे यह भी जान सकते हैं कि उनके प्रयोगों के आधार क्या हैं। उनसे निकलने वाले निष्कर्षों की भी सीमाएँ रहती हैं। कोई भी वैज्ञानिक प्रयोग एक विचार से आरम्भ होता है और इन प्रयोगों की आचार-संहिता रहती है। इनसे निकले निष्कर्षों से नया सिद्धांत भी प्रस्तुत हो सकता है। प्रयोग में प्राप्त आँकड़े तथा निष्कर्ष प्रायः खुले विज्ञान सम्मेलनों (कांग्रेसों) में पढ़े जाते हैं और वैज्ञानिक पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होते रहते हैं। दूसरे शोधकर्ताओं की समालोचना से उनमें दबाव भी आ सकते हैं। अनेक शोधकार्य सरकारी और गैर सरकारी स्रोतों द्वारा प्राप्त अनुदानों पर निर्भर रहते हैं और उनका पुनरावलोकन भी होता है।

वैज्ञानिक आँकड़ों व परिणामों में गलतियाँ होना संभव है, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है। गलतियाँ प्रयोग काल तथा व्याख्या दोनों में हो सकती हैं, परन्तु विश्वास किया जाता है कि शोधकर्ता अपना कार्य सूक्ष्मता तथा ईमानदारी से करता है और वह अपनी गलती की पहचान कर आगे सुधार कर लेगा। यह भी समझा जाता है कि शोधकर्ता अपने फलों को सही ढंग से प्रस्तुत करेगा। ऐसे कुछ इने-गिने वैज्ञानिक ही होंगे जिनके परिणामों में धोखा हो किन्तु यह सच नहीं है। वास्तविकता कुछ और ही है। अनेक वैज्ञानिक जानबूझ कर अपने कार्य में फ्रॉड या धोखाधड़ी करते हैं। कई बार अपनी मान्यताओं की खातिर वे अपने आँकड़ों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर देते हैं। अनेक बार हवा से ही आंकड़े बना लिये जाते हैं और ऐसे फ्रॉड लम्बे समय तक चलते रहते हैं। इनमें से अधिकांश तो हो सकता है कि कभी भी पकड़े न जायें।

विज्ञान का इतिहास साक्षी है कि कई तथाकथित महान वैज्ञानिकों ने भी फ्रॉड किये हैं। प्राचीन मिस्र के महापुरुष **टॉलमी** ने यूनान के एक खगोलशास्त्री के कार्यों का स्वयं श्रेय ले लिया था। आश्चर्य है कि **न्यूटन** ने भी अपने सिद्धांतों से आंकड़ों के सूक्ष्म मिलान के लिए कुछ कारगुजारी की थी। **डाल्टन** ने भी अपने परमाणु सिद्धांत से मिलान रखने वाले चुनिन्दा आंकड़े ही प्रस्तुत किये थे। वर्तमान युग के विख्यात भौतिक-विज्ञानी **मिलिकन** ने अपने प्रयोगों में से इलेक्ट्रॉन आवेश के सिद्धान्त से मेल खाते हुए ही आंकड़े चुने थे, जो उसके सारे आंकड़ों के आधे से भी कम थे। कुछ वर्ष पहले चंडीगढ़ स्थित विश्वविद्यालय से भी ऐसे समाचार प्राप्त हुए थे। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के लम्बे समय तक निदेशक रहे शोधकर्ता के गेहूँ पर किये गए अनुसंधान के आंकड़ों पर भी प्रश्न-चिन्ह लगे हुए हैं। फिर भी वे लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक हैं और उन्हें अंतर्राष्ट्रीय सम्मान तथा पद भी मिलते रहे हैं।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ''नोबेल पुरस्कार विजेता'' **अंतनी हेविरा** पर आरोप लगा था कि उन्होंने अपने निर्देशन में कार्य करने वाले शोध-छात्र के 1967 में किये गये पल्सर अनुसंधानों का पूरा श्रेय स्वयं ले लिया था। अमेरिका के मेसाचुसेट् अस्पताल के प्रोफेसर **जॉन लांग** के पोस्ट डॉक्टरल विद्यार्थी ने ही 1979 में उनके अनुसंधानों के फ्रॉड का पर्दाफाश किया। उसने बताया कि लांग ने बंदरों की कोशिकाओं को मानव हाजकिन व्याधिग्रसित कोशिकाएँ बता दिया। अमेरिका ही के येल विश्विविद्यालय में कार्यरत **विजय सोमन** को विश्वविद्यालय से तब निष्काषित कर दिया गया जब यह पता चला कि उन्होंने शोध में झूठे आंकड़े बनाये और समीक्षा हेतु आये एक शोधपत्र से सामग्री चोरी कर ली थी।

आरम्भिक काल से ही मानव दो उद्देश्यों के लिए अनुसंधान करता आया है। जहाँ अपने चारों ओर के विश्व की जानकारी प्राप्त करना उसका एक उद्देश्य रहा है, वहाँ सम्मान प्राप्त करना उसका दूसरा ध्येय रहा है। इसी के फलस्वरूप सृजन, मौलिकता, अंतर्बोध आदि जैसे गुणों के साथ-साथ अभिलाषा, ईर्ष्या, छल-कपट जैसे दुर्गुण भी जुड़ गए। इन सबके रहते हुए विज्ञान में फ्रॉड के मुद्दे को झुठलाया नहीं जा सकता। ऐसे उदाहरणों के कारण अनुसंधानों की गुणवत्ता पर आँच आती है। यदि वैज्ञानिक समुदाय इसकी अनदेखी करता रहेगा तो राजनैतिक दबाव आने लगेंगे। वैसे भी यदि कोई वैज्ञानिक सरकारी या गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा अनुदान प्राप्त कर अनुसंधान कार्य में फ्रॉड करता है तो उचित ही होगा कि उसके विरुद्ध भी देश की सम्पत्ति के दुरुपयोग का लांछन लगे और इसी के अनुरूप दण्ड भी मिले। किन्तु अच्छा यह होगा कि फ्रॉड की रोकथाम के लिए प्रभावी क़दम उठाये जायें न कि उसके होने के पश्चात् कार्यवाही की जाये।

राष्ट्रीय तथा शैक्षणिक संस्थानों में इस मुद्दे पर खुली बहस होना अति आवश्यक है जिससे फ्रॉड के मामलों की पहचान के लिए दिशा-निर्देश प्राप्त हो सकें। बेइमानी सिद्ध होने पर कठोर कदम अवश्य ही उठाने चाहिए। विदेशों में ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जहाँ शोध डिग्री को कई वर्षों बाद तब वापस ले लिया गया जब यह सिद्ध हो गया कि उसमें फ्रॉड किये गये थे। नैतिक मूल्यों और सदाचार को कानून द्वारा नहीं मनवाया जा सकता। वैज्ञानिक समुदाय को अपनी सजगता और निडरता द्वारा स्वच्छ वातावरण बनाना चाहिए, तभी फ्रॉड की संभावनाएँ दूर हो सकेंगी।

क्या आप जानते हैं?

इरफान ह्यूमन

जन विज्ञान मिशन, 67-अन्टा, शाहजहाँपुर-242001

रेटीनायड

ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे रसायन प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है, जिसमें अंगों के पुनरोत्पादन में सहायता देने के गुण होते हैं, इन जैव-रसायनों को 'रेटीनायड' कहा जाता है।

प्रदेश

माइक्रोस्माइल साफ्टेक द्वारा प्रारम्भ की गई हिन्दी कम्प्यूटर भाषा को जिसका विकास केरल के दो भाइयों पी०ए० नासिर तथा पी०ए० नजीब ने किया है, 'प्रदेश' कहते हैं।

नीरी

नागपुर के राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरी) ने लगभग सौ वर्ष पूर्व मैंगनीज खान के आस-पास फेंके हुए पथरीले मलवे पर जंगल खड़ा करने का अनोखा प्रयोग किया है, जहाँ एक लाख पेड़ों का जंगल खड़ा करने का यह प्रयोग विशेष प्रकार की मिट्टी तैयार कर उसमें विशेष जाति के सूक्ष्मजीव को प्रयोगशाला में विकसित करने के पश्चात् डालने से सम्भव हो सका है।

स्पॉन

मशरूम अर्थात् खुम्बी एक स्वादिष्ट और पौष्टिक भोज्य है जिसे उगाने के लिए कवक जाल (बीज) की आवश्यकता पड़ती है जिसे 'स्पॉन' कहा जाता है।

एपोजी

अन्तर्राष्ट्रीय स्पेस स्टेशनों अथवा चन्द्रमा एवं मंगल पर उगाई जा सकने वाली अमेरिकी वैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गई गेहूँ की एक किस्म 'एपोजी' है, जो सामान्य गेहूँ के किस्म से तीन गुना अधिक उपज प्रदान करता है।

बिग-बैंग पर विहंगम-दृष्टि

डॉ० श्रवण कुमार तिवारी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

दीवाली की रात में बच्चे फुलझड़ियाँ छोड़ते हैं और प्रसन्न होते हैं, कुछ दूसरे बालक पटाखे छोड़ते हैं जो खतरनाक भी हो सकते हैं। कुछ सयाने लोग पटाखा-बम छोड़ते हैं जिससे कानों के पर्दे झनझना उठते हैं; और जब इस प्रकार के विस्फोट बम बनकर फूटते हैं तो कितनों के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। इससे भी आगे परमाणु बम बन गए हैं। इनकी भीषणता तो जापान के हिरोशिमा या नागासाकी नगरों के निवासी ही समझ सकते हैं जिन्होंने सन् 1945 की परमाणु-बमबारी देखी सुनी हो। सुना है जब अमेरिका में प्रथम परमाणु-बम-विस्फोट का परीक्षण किया गया था तो उसकी चमक की अभिव्यक्ति में किसी विशिष्ट व्यक्ति ने गीता का यह श्लोक पढ़ा था, "दिविसूर्य सहस्त्रस्य भाषस्तस्य महात्मनः।" विस्फोटों की ये घटनाएं उनकी विभीषिका की थोड़ी बहुत याद दिलाती हैं। विस्फोट छोटे भी हो सकते हैं, बड़े भी, ये मनोहर भी हो सकते हैं और भयावह भी। परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि यह सम्पूर्ण चराचर सृष्टि, यह अनन्त विश्व आकाश में चमकते ये अगणित तारे, करोड़ों सूर्य और हजारों नीहारिकाएँ, ये सब के सब एक ऐसे महाविस्फोट - "बिग-बैंग" - की देन हैं जिसकी विशालता और चकाचौंध हमारी कल्पना से परे है। धार्मिक ग्रन्थ चाहे जो भी कहें, आज के वैज्ञानिक तो यही कहते हैं।

ये प्रबुद्ध वैज्ञानिक भी न जाने क्या-क्या सोचते रहते हैं, क्यों न हो, वे भी तो उसी महाविस्फोट की एक कड़ी हैं। न महाविस्फोट होता, न नीहारिकाएँ बनतीं, न सूरज चाँद बनते न यह धरती; और जब धरती नहीं बनती तो इस पर के जीवों का विकास कहाँ होता? पर यह सब हो चुका है। इस पर प्रबुद्ध एवं जिज्ञासु वैज्ञानिकों का भी अवतरण हुआ है जो प्रकृति के रहस्यों और क्रिया-कलापों से बेहद आकृष्ट है, उन्होंने अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। धरती की दूरियाँ तय करने के बाद मनुष्य अंतरिक्ष में उड़ने लगा है। वह चन्द्रमा, मंगल और वृहस्पति जैसे ग्रहों की कक्षाएँ लाँघने लगा है। अतः अपने प्रादुर्भाव के मूल की ओर एक विहंगम दृष्टि डालना स्वाभाविक है।

समृद्ध देशों ने अंतरिक्ष उड़ानों को बहुत महत्व दिया है। अमेरिका ने अंतरिक्ष अभियान की एक अत्यंत महत्वाकांक्षी योजना चला रखी है। इसके अन्तर्गत चन्द्रमा पर पहुँचने के बाद मंगल, वृहस्पति और शनि ग्रहों की ओर कृत्रिम उपग्रह छोड़े गये हैं। विभिन्न स्थानों पर वेधशालाओं में विशालकाय दूरबीन स्थापित किये गये हैं। तारों और नीहारिकाओं की गतिविधियों का अध्ययन किया जा रहा है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह सम्पूर्ण अगणित आकाशीय पिण्ड समुदाय एक महाविस्फोट के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है जिसे वे "बिग-बैंग' कहते हैं। इतना ही नहीं, अब तो वे यह जानने का प्रयास कर रहे हैं कि इस बिग-बैंग से ठीक पूर्व क्या था? इस बात ही जानकारी प्राप्त करने के लिए अमेरिका ने कई वर्ष पहले की सन् 1989 में कास्मिक पृष्ठभूमि अन्वेषक (Cosmic Background Explorer) या COBE कोब - अंतरिक्ष उपग्रह छोड़ा था।

यह खोजी उपग्रह पृथ्वी से लगभग 900 किलोमीटर ऊपर, ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किया गया था और उस समय इस पर लगभग 20 करोड़ अमेरिकी डॉलर व्यय हुआ था। इसे कैलीफोर्निया के वेन्गार्ड एयर फोर्स बेस से प्रक्षेपित किया गया था। इसमें अनेक अत्यन्त सूक्ष्मग्राही उपकरण और संसूचक लगे हुए हैं। इससे विश्व निर्माण की आरंभिक परिस्थितियों की खोज करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रेक्षण लिए जा सकेंगे।

वर्तमान समय में यह विश्वास किया जाता है कि विश्व का निर्माण एक आदिम ब्रह्माण्डीय विस्फोट से हुआ है। इस महाविस्फोट से ठीक पहले विश्व का अखिल द्रव्य पदार्थ आग के एक अद्भुत् गोले के रूप में संयनित था जो इतना ठसाठत भरा था कि उसमें एकाकी परमाणुओं के अस्तित्व का भी कोई पता नहीं था। क्वार्क, इलेक्ट्रॉन तथा अन्य अति परमाणु कणों का उद्भव हुआ। यह सब उस विस्फोट के प्रथम क्षणांश में ही हो गया, सृष्टि के उन आरंभिक क्षणों में द्रव्य एवं ऊर्जा इतनी गहन सघनता के साथ संकुलित थे कि संपूर्ण विश्व एक ऊष्मीय साम्यावस्था में था, उस समय विश्व एक प्रकार के तप्त ब्रह्माण्डीय तरल (कॉस्मिक सूप) के रूप में था जिसमें ऊर्जा का वितरण सर्वत्र एक समान रहा होगा।

इस विस्फोट के बाद विश्व प्रसरित होने लगा, फलतः उसका तापमान घटने लगा। लगभग सात लाख वर्षों बाद तापमान ऐसी स्थिति में आया कि "कॉस्मिक सूप" से परमाणु बनने लगे। यह स्थिति महाविस्फोट के बाद का पहला अवसर था जब कि आकाश में जगह-जगह रिक्त-स्थान या "गैप" उत्पन्न हुए।

बीस करोड़ वर्षों के बाद हीलियम और हाइड्रोजन परमाणुओं के पुंजन से तारों और नीहारिकाओं का सृजन आरंभ हुआ। इस क्रमिक विकास के क्रम में दस अरब पचास करोड़ वर्ष व्यतीत हो गए और तब कहीं जाकर हमारी धरती और इस सौरमंडल की सृष्टि हुई।

आरंभिक विश्व में जो पदार्थ था (ब्रह्माण्डीय सूप) उससे कॉस्मिक विकिरण उत्सर्जित हो रहा था, यह कॉस्मिक विकिरण वास्तव में प्रकाश के कणों के रूप में ही था जिसे आज हम 'फोटॉन' कहते हैं। ये फोटॉन बिग-बैंग के तत्काल बाद से ही अक्षत गति से चतुर्दिक उत्सरजित होते रहे हैं, और ये आज भी यह प्रदर्शित करते हैं कि जब उनकी यात्रा आरंभ हुई थी तब विश्व कैसा था? यह वात ठीक वैसी ही है जैसे यदि कोई तारा हमसे असीम दूरी पर हो, उससे उत्सर्जित फोटॉन हमारे पास तक करोड़ों प्रकाश वर्ष की दूरी तय करके जब तक पहुँचे, तब तक वह तारा अंतरिक्ष में जल-बुझ कर विलुप्त हो चुका हो?

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि कॉस्मिक विकिरग द्वारा जिस समय के हालात की सूचना परिलक्षित होती है, वह बिग-बैंग के क्षणों की नहीं बल्कि उसके आरंभ से सात लाख वर्षों बाद की स्थिति प्रदर्शित करती है। यह वह समय था जब परमाणुओं की सृष्टि हो चुकी थी और परमाणु नाभिकों ने इलेक्ट्रॉनों को अधिग्रस्त कर रखा था। चूँकि बिग-बैंग के कारण विश्व का समस्त द्रव्य पदार्थ चारों ओर प्रक्षेपित कर दिया गया अतः यह अब तक प्रसरित ही होता जा रहा है। प्रतिदिन पृथ्वी पर बमबारी कर रहे फोटॉन उत्तरोत्तर दूरतर स्थानों से आते रहते हैं। "यह विकिरण सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त रहता है। सभी दिशाओं से आता है।" मेरी लैंड में गोगार्ड स्पेस उड़ान केन्द्र - नासा के "कोब" परियोजना के वैज्ञानिक जैन मैथर तो ऐसा ही कहते हैं। यह सारी विकिरण-ऊर्जा मिलकर, किसी व्यक्ति द्वारा खुली आँखों से दिखाई पड़ने वाले समस्त तारों, नीहारिकाओं, सूर्यों और समस्त ग्रहों से आने वाले विकिरण की ऊर्जा का लगभग 100 गुनी है।

कोब मिशन का उद्देश्य इसी कॉस्मिक विकिरण का अध्ययन करना है ताकि यह विश्व जिन प्रक्रियाओं के फलस्वरूप वर्तमान रूप को प्राप्त हुआ है, उन्हें भली-भाँति समझा जा सके। वैज्ञानिक इस विकिरण का अध्ययन भूमि पर स्थित बैलूनों तथा राकेट-वाहित दूरबीनों की सहायता से गत 35 वर्षों से करते आ रहे हैं, ज्ञातव्य है कि वैज्ञानिकों को इन विकिरणों की जानकारी सन् 1963-64 में प्राप्त हुई थी। इन विकिरणों की विस्तृत खोजबीन करना ही कोब मिशन का प्रमुख लक्ष्य है। इनसे उन प्रक्रियाओं की प्रकृति को उजागर किया जा सकेगा जिनके चलते विश्व अपने वर्तमान रूप में आया है।

यह विश्व अनेक तारागणों से बना है जो गैलेक्सियों के रूप में संकुलित है, गैलेक्सियों के बीच-बीच में विशाल रिक्त स्थान हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक मैथर का कहना है कि "आज हम जिन भौतिक नियमों की तलाश में हैं वे वर्तमान विश्व को समझने में हमारी सहायता करेंगे। सम्प्रति इसे समझने के लिए हमारे पास कोई व्याख्या नहीं है अतः इस संरचना के मूल कारणों को जानने के लिए आरंभिक परिस्थितियों पर पुनर्विचार करना आवश्यक है।" इसीलिए कोब अंतरिक्षयान पर अनेक सुग्राही यंत्र रखे गये हैं। इनमें एक यंत्र ऐसा है जो यह पता करेगा कि क्या बिग-बैंग की प्रखरता सभी दिशाओं में एक समान थी?

एक अन्य यंत्र बिग-बैंग से उत्पन्न होने वाले विकिरणों का माइक्रोतरंग स्पेक्ट्रम और अवरक्त स्पेक्ट्रम खींचने के लिए आकाश का दो-दो बार सर्वेक्षण करता रहेगा। वर्तमान सिद्धान्तों के आधार पर यह आशा की जाती है कि ये दोनों स्पेक्ट्रम सर्वत्र एक समान होने चाहिये। परन्तु यदि उक्त सर्वेक्षणों के मापन भिन्न मिलते हैं तो यह निष्कर्ष निकालना होगा कि बिग-बैंग के आरंभ एवं नीहारिकाओं के निर्माण के बीच की अवधि में कुछ कल्पनातीत शक्तिशाली घटनाएँ घटी होंगी। इस प्रकार की घटनाओं में कृष्ण-विवरों की भी संभावना हो सकती है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि संभवतः इस अवधि में कभी, विशालकाय कृष्ण विबर बने होंगे। ये कृष्ण विवर किसी तारे के गुरुत्वीय निपात (कोलैप्स) के फलस्वरूप बनते हैं और इतने शक्तिशाली होते हैं कि लघुतम कणों को कौन कहे, फ़ोटॉन (प्रकाश) भी इनकी सीमाओं से बाहर नहीं जा सकते हैं। यदि कभी ऐसे भीमकाय कृष्ण-विवर बने होंगे तो उन्होंने विशाल पदार्थ-राशि को गड़प कर लिया होगा और उसके फलस्वरूप उत्सर्जित ऊर्जा आदिम अग्निगोलक के विकिरण को विकृत करने के लिए पर्याप्त रही होगी। इस विकृति को कोब पर लगे यंत्रों से संसूचित किया जा सकता है।

कोब पर एक तीसरा यंत्र भी स्थापित है जो उन प्रथम निर्मित नीहारिकाओं की आभा (शीतल विकिरण) का पता लगाएगा जो आदिम विश्व के निर्माण-क्रम में हमारी आकाश-गंगा से परे (आगे - बहुत दूर) बनी होगी। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि तारे सर्वप्रथम बिग-बैंग से 20 करोड़ वर्ष बाद बने होंगे। उनके प्रकाश भी मद्धिम अवरक्त प्रकाश के रूप में पृथ्वी पर संसूचित होने चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं हुआ है क्योंकि बीच में हमारा वायुमण्डल और सौर-धूलि के कारण वह हम तक पहुँच नहीं पाता है। उसका पता लगाने के लिए कोब पर दो इन्फ्रारेड संसूचक लगाए गए हैं जिन्हें एक ऐसे थर्मस बोतल में रखा गया है जिसमें द्रव हीलियम भरी है, उसका तापमान $-271^{\circ}C$ (निरपेक्ष शून्य से $2^{\circ}C$ अधिक) है। इससे थर्मस में रखे संसूचकों का ताप स्थाई रूप से ठंडा बना रहेगा और वह जिस शीतल विकिरण को संसूचित करेगा उसे अवशोषित करके तापमान को बदलने नहीं देगा। इससे उसकी सूक्ष्मग्राहिता बनी रहेगी। कोब से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण करके वैज्ञानिक इस विश्व की रचना के रहस्यों को जानने के प्रयास में लगे हैं। ❑

टीकाकरण का उद्भव

प्रो० देवेन्द्र कुमार राय
भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आजकल बच्चों को शैशवावस्था में ही अनेक रोगों से बचाने के लिए कई प्रकार के टीके लगाए जाते हैं। विश्व भर में इस कार्यक्रम को इतना महत्वपूर्ण माना जाता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था इसके लिए आर्थिक सहायता और टीके की दवाएँ भी उपलब्ध कराती है। टीके द्वारा प्रदत्त रोगरोधी क्षमता के कारण बालकों को उस रोग से जीवन भर के लिए मुक्ति मिल जाती है। इसीलिए स्वास्थ्य-वैज्ञानिकों का यह प्रयास रहता है कि यथासंभव अधिक से अधिक रोगों के टीके खोज लिए जायँ। कितना अच्छा हो कि कैंसर और एड्स जैसे भयंकर रोगों के लिए भी उपयुक्त टीके प्राप्त हो जायँ। पहली बार किस रोग के लिए किस प्रकार से टीका प्राप्त हुआ और इस पद्धति को आधुनिक रूप कैसे दिया गया यह सब वृतान्त निश्चय ही अत्यंत रोचक है।

अट्ठारहवीं सदी के अंत में विश्व में चेचक एक अति भयंकर रोग माना जाता था। यह बीमारी प्रायः जानलेवा होती थी और यदि भाग्यवश कोई बच गया तो वह व्यक्ति नितांत कुरूप हो जाता था; उसके शरीर, विशेषतः चेहरे पर काले-काले गड्ढे बन जाते थे जो त्वचा को बुरी तरह विद्रूप रह देते थे। चेचक के रोगी की आँखें भी नष्ट हो सकती थीं। कभी-कभी यह कुरूपता इतनी भीषण होती थी कि रोगी को मानव के रूप में पहचानना भी कठिन हो जाता था।

उन दिनों इस रोग से बचने या इसे अच्छा करने के लिए कोई दवा नहीं थी, लोग अनेक प्रकार के टोटके या झाड़-फूँक की शरण लेते थे। हमारे देश में तो अनेक भागों में इसे "बड़ी माता" के रूप में पूजा जाता है और उनसे प्रार्थना की जाती है कि वे परिवार के सदस्यों पर दया करके-प्रकोप न करें। मनुष्यों की विवशता का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि सत्रहवीं सदी में, तुर्की में, जहाँ संभवतः इसका प्रकोप बहुत अधिक होता था, कुछ स्वस्थ लोग जान बूझ कर अपने को चेचक के हल्के प्रकोप से आक्रान्त करने की प्रक्रिया अपनाने लगे थे। उनकी धारणा थी कि ऐसा करने से चेचक का हल्का प्रकोप हो भी जाय तो वे शायद भीषण प्रकोप से बच जायेंगे। इसकी विधि यह थी कि चेचक के हल्के प्रकोप से ग्रस्त व्यक्तियों के घावों से जो द्रव निकलता था उसमें एक सूई भिगो कर उसी सुई से स्वस्थ व्यक्ति के शरीर पर एक खरोंच लगा दी जाती थी। ऐसा करने से प्रायः स्वस्थ व्यक्ति को या तो चेचक का प्रकोप होता ही नहीं था या होता भी था तो बहुत ही हल्का। परन्तु कभी-कभी इससे होने वाला प्रकोप जानलेवा भी हो जाता था।

तुर्की की इस प्रथा को इंगलैंड में ले जाने का कार्य सर्वप्रथम एक अत्यंत खूबसूरत महिला ने किया, वे थीं तुर्की में इंगलैण्ड के राजदूत की पत्नी लेडी मेरी वर्टले मांटेग्यू जो सन् 1718 ई० में वहाँ गई थीं। उन्होंने अपने बच्चों को उक्त विधि से संक्रमित कराया, और वे फिर कभी चेचक से पीड़ित नहीं हुए। उन्होंने इंग्लैण्ड में इस पद्धति का प्रचार करना चाहा पर वे सफल नहीं हुई क्योंकि लोग उन्हें मनमौजी और सनकी महिला समझते थे। लगभग उन्हीं दिनों अमेरिका के बोस्टन नगर में चेचक फैली थी। वहां के एक डॉक्टर जॉबडायल ब्याल्स्टन ने 241 लोगों को इस विधि से संक्रमित कराया। इनमें 6 लोगों की मृत्यु हो गई और डॉक्टर को भीषण सामाजिक प्रताड़ना झेलनी पड़ी।

इंगलैण्ड के ग्लॉसेस्टर नामक प्रदेश में लोगों में चेचक के विषय में यह धारणा प्रचलित थी कि यदि किसी को गायों में होने वाली चेचक (काऊ पॉक्स) एक बार हो जाय तो वह सामान्य चेचक और काऊ-पॉक्स इन दोनों रोगों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। गाय के चेचक में छाले या फफोले नहीं पड़ते थे अतः उससे कुरूप होने का भय नहीं था। इस दृष्टि से यह विधि तुर्की में प्रयुक्त विधि से अधिक उपयोगी और सुरक्षित थी। ग्लॉसेस्टर के एक डॉक्टर एडवर्ड जेनर को ग्रामीणों की इस धारणा ने विशेष रूप से आकृष्ट किया; उसने देखा कि गायें चराने वाली किशोरियों को कभी कभार ही चेचक होती है, और उससे उनके चेहरे कुरूप नहीं होते हैं। संभवतः उस शती के रोमानी साहित्य में गायों के संसर्ग में रहने वाली किशोरियों को सदैव सुन्दरता का प्रतीक माना जाता था, क्योंकि जहाँ अधिकांश लोग चेचक के प्रकोप से कुरूप हो जाते थे, इन किशोरियों के चेहरे सुघड़ बने रहते थे। डॉ० जेनर ने इस धारणा की जाँच प्रारंभ की। आरंभ में उन्होंने इसका प्रयोग अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों पर ही किया; परन्तु बाद में सन् 1796 में

उन्होंने एक निर्णायक प्रयोग करने की ठानी, उन्होंने जेम्स फिप्स नाम के एक बालक को गायों वाली चेचक से संक्रमित कराया। दो महीने बाद जेनर ने जानबूझ कर उस बालक को असली चेचक् से संक्रमित किया। बालक को इस संक्रमण से कोई बीमारी नहीं हुई। जाहिर है कि जेनर का प्रयोग सफल रहा और यह सिद्ध हो गया कि ''काऊ-पॉक्स'' का पहला संक्रमण कराने से बालक के शरीर में चेचक प्रतिरोधी क्षमता का स्वतः विकास हो गया था।

जेनर ने इस प्रक्रिया को ''वैक्सिनेशन'' कहा, क्योंकि गायों वाली चेचक या 'काऊ-पॉक्स' का लैटिन नाम 'वैक्सीनिया' है। हमारे देश में यही विधि 'छापा लगाना' या 'टीकाकरण' के नाम से विख्यात हुई। चेचक से लोगों को इतना भय था कि इस वैक्सीनेशन का उपयोग थोड़े ही समय में पूरे यूरोप में फैल गया। किन्तु इससे यह भी नहीं समझना चाहिए कि उस जमाने के डॉक्टर, विशेषतः शैक्षिक संस्थानों के डॉक्टर, जेनर की योग्यता से प्रभावित हुए। क्योंकि जब सन् 1813 में जेनर को ''रॉयल कॉलेज ऑफ़ फ़िजीशियन्स'' की फेलोशिप के लिए प्रस्तावित किया गया तो यह प्रस्ताव पास नहीं हो सका। इसका कारण यह बताया गया कि जेनर को हिप्पोक्रेटस तथा गालेन का पर्याप्त ज्ञान नहीं है।

जो भी हो, इतना तो स्वाभाविक था कि जेनर की सफलता के बाद, अन्य रोगों के लिए भी सरल टीकाकरण विधियों की खोज की ओर चिकित्सकों और वैज्ञानिकों का ध्यान अवश्य आकृष्ट हुआ। परन्तु इस कार्य में दूसरी सफलता लगभग 150 वर्षों बाद लुई पास्चर को मिली। पास्चर एक ऐसे बैक्टीरिया की जाँच कर रहे थे जो मुर्गियों में हैजे की बीमारी का कारण है। उन्होंने इस बैक्टीरिया का एक ऐसा क्रियाशील घोल बनाया जिसका अत्यंत अल्पांश मात्र भी यदि किसी मुर्गी की चमड़ी के नीचे सुई द्वारा लगा दिया जाय तो वह मुर्गी एक दिन के भीतर ही मर जाती थी। एक बार उन्होंने एक ऐसा ही घोल तैयार किया जो संयोगवश आलमारी में लगभग एक सप्ताह तक पड़ा रह गया। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने यह पाया कि मुर्गी को जब यह पुराना घोल लगाया गया, उसकी तबियत कुछ हल्की सी खराब हुई, और फिर ठीक हो गई। पास्चर ने सोचा कि घोल पुराना हो गया था अतः प्रभावहीन हो गया होगा। इसलिए उन्होंने तुरंत फिर नया घोल बनाया और उसी मुर्गी को उस क्रियाशील घोल से संक्रमित किया जिसे पहले पुराने घोल से संक्रमित किया गया था। यह देखा गया कि उस मुर्गी पर इस अत्यंत सक्रिय घोल का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पास्चर ने यह निष्कर्ष निकाला कि पुराने (कम सक्रिय) घोल से संक्रमित कराने पर मुर्गी में हैजे के प्रतिरोध की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। (ठीक वैसे है जैसे किसी व्यक्ति को गाय वाले चेचक से संक्रमित कराने पर उसमें चेचक के प्रतिरोध की क्षमता उत्पन्न हो जाती है)। अतएव पास्चर ने भी अपनी विधि को 'वैक्सीनेशन' ही कहा।

जेनर एक चिकित्सक थे, उनकी रुचि रोगों के निवारण में थी, परन्तु पास्चर एक वैज्ञानिक थे, उनको इस प्रकार की प्रतिरोध-क्षमता उत्पन्न होने की प्रक्रिया को समझने में दिलचस्पी थी। अतः उन्होंने यह विचार किया कि यदि किसी भी रोग को उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं की विषाक्तता को किसी प्रकार कम (क्षीण) कर दिया जाय तो इस परिक्षीण विषाणुओं द्वारा किसी मनुष्य को संक्रमित कराने पर उस व्यक्ति के शरीर में उस रोग से बचने की क्षमता उत्पन्न हो जाती हैं। जेनर के प्रयोग में गायों के चेचक के विषाणुओं ने ही चेचक के परिक्षीणित विषाणुओं का काम किया। अतः पास्चर ने विषाणुओं की क्रियाशीलता को कम करने की विधि पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस काम में उन्हें सफलता भी मिली। गायों में होने वाले एक भयानक संक्रामक रोग ''एन्थ्रेक्स', जिसका कोई इलाज नहीं था, के विषाणुओं के लिए उन्होंने पाया कि यदि इनके विषाणुओं को उच्च ताप पर कल्चर किया जाय तो इस प्रकार से उत्पन्न बैक्टीरिया की क्रियाशीलता कम होती है।

पास्चर की सबसे बड़ी सफलता ''रेबीज'' के लिए उपयुक्त टीके की खोज करना था। रेबीज को हाइड्रोफोबिया भी कहते हैं। 'रेबीज' शब्द लैटिन भाषा के 'रेव' (rave) शब्द से बना है जिसका अर्थ ''निरर्थक चिल्लाना'' है। यह वस्तुतः कुत्ते की बीमारी है। यदि किसी मनुष्य को रेबीज से ग्रस्त कुत्ते ने काट लिया हो तो एक-दो महीने के बाद उस व्यक्ति में भी इस रोग के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और उसकी मृत्यु अत्यंत कष्टकारी ढंग से हो जाती है। निरर्थक चिल्लाने का कारण होता था, रोग द्वारा स्नायुतंत्र का विनाश। इस रोग को रोकने में पास्चर ने जिस विधि से सफलता पाई वही वास्तव में आधुनिक टीकाकरण का आधार है। इसका संक्षिप्त विवरण भी बड़ा ही रोचक है।

पास्चर को इस रोग से ग्रसित जानवरों के रक्त में किसी भी प्रकार की परायी वस्तु, जैसे बैक्टीरिया, नहीं दिखाई पड़ी, अतः हैजे के टीके जैसा बैक्टीरियाई घोल तैयार करना संभव नहीं था। इसलिए उन्होंने परिक्षीणित विषाणुओं को उत्पन्न करने के लिए जानवरों का उपयोग किया। किसी संक्रमित पशु के रक्त से वे किसी अन्य पशु, जैसे- खरगोश, के मस्तिष्क को संक्रमित किया। इस खरगोश (अर्थात् दूसरे पशु) में जब रेबीज के लक्षण उत्पन्न होने का समय आता तो वे उसे मारते; उसकी रीढ़ की हड्डी को पीस कर उससे तरल पदार्थ निकालते, और उस तरल पदार्थ को तीसरे खरगोश के मस्तिष्क में सुई से प्रविष्ट कराते, इस प्रक्रिया को तब तक चालू रखते जब तक कि अंतिम प्राप्त तरल-पदार्थ की क्रियाशीलता इतनी कम हो जाय कि उससे

संक्रमित खरगोश में रेबीज के लक्षण उत्पन्न ही न हों। इस तरल को कुछ दिन रखने के बाद, पास्चर ने एक कुत्ते को इससे संक्रमित कराया। बाद में इस कुत्ते को जब सशक्त रूप से संक्रमित (रेबीज से ग्रस्त कुत्ते की रीढ़ की हड्डी से प्राप्त तरल पदार्थ से संक्रमित) कराया गया तो यह पाया गया कि उसमें रेबीज के लक्षण नहीं उत्पन्न हुए। इससे पास्चर ने यह निष्कर्ष निकाला कि इस विशिष्ट कुत्ते में रेबीज की प्रतिरोधक क्षमता आ गई है।

सन् 1885 में पास्चर के पास एक नौ साल का ऐसा बच्चा लाया गया जिसे किसी पागल कुत्ते ने काट लिया था। बच्चे का नाम था जोसफ़ माइस्लर। पास्चर ने उसे अपने प्रयोगों द्वारा परिक्षीणित विषाणु-घोल की सूइयाँ लगा दीं। उन्होंने इस विश्वास के साथ सूइयाँ लगाईं कि जब तक पागल कुत्ते के काटने के कारण बच्चे के शरीर में रेबीज़ के लक्षण उत्पन्न होंगे, उससे पहले ही इन टीकों के कारण बच्चे के शरीर में रोग-प्रतिरोधक क्षमता आ जाएगी। प्रयोग की सफलता के लिए चिन्तित रहना तो स्वाभाविक था। परन्तु प्रयोग सफल रहा, बच्चा बच गया और वह आगे चल पर पास्चर संस्थान का द्वारपाल बना। 1940 में जब नाज़ियों ने पास्चर की कब्र को खोद कर उसके ताबूत को खोलने का, माइस्लर को ही आदेश दिया तो ग्लानिवश माइस्लर ने आत्महत्या कर ली। जिस महान व्यक्ति ने उसे जीवन-दान दिया था, उसी का ताबूत भला वह कैसे खोल सकता था?

पास्चर की सफलता की सर्वत्र सराहना की गई और इसके चलते अन्य वैज्ञानिकों का ध्यान भी टीकाकरण की प्रक्रिया की ओर आकृष्ट हुआ। अब तक जिस रोग के लिए प्रतिरोधक-क्षमता विकसित करनी होती थी, उसके लिए मनुष्य के शरीर में उसी रोग के विषाणु प्रविष्ट कराये जाते थे, चाहे वे जेनर के प्रयोग से प्राप्त किये गये हों या पास्चर के प्रयोग से (साथ ही, उनकी क्रियाशीलता पूर्व परीक्षित होती थी)। सन् 1890 में एक जर्मन सैनिक डॉक्टर एमिल वान बेहरिंग ने विचार किया कि जिन रसायनों के कारण प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होती है, क्यों न उन्हें ही किसी जानवर के शरीर में उत्पन्न किया जाय और फिर केवल उनको ही उस जानवर के रक्त से निकाल कर उन रसायनों को ही मानव शरीर में डाला जाय? संक्रमित जानवर के रक्त में विषाणु के संक्रमण के प्रतिरोध में जो रसायन बनते हैं उन्हें विष प्रतिरोधी रसायन या ''ऐण्टीटॉक्सिन'' कहते हैं।

वान बेहरिंग ने टिटनस और डिफ्थीरिया जैसे रोगों के लिए पशुओं की सहायता से ऐण्टीटॉक्सिनों की खोज की। डिफ्थीरिया से ग्रस्त बच्चे पर जब इस प्रकार से निर्मित ऐण्टीटॉक्सिन का पहली बार प्रयोग किया गया तो वह इतना सफल रहा कि यह उपचार तुरंत ही सर्वमान्य हो गया। इसके कारण बच्चों में डिफ्थीरिया रोग से मरने वालों की संख्या में आशातीत कमी आई। बेहरिंग को इस विधि के आविष्कार के लिए सन् 1901 में नोबल पुरस्कार दिया गया।

यद्यपि ऐण्टीटॉक्सिन के उपयोग से मनुष्यों में रोग के विषाणुओं (जिनकी क्रियाशीलता अत्यन्त क्षीण की गई रहती थी) को डालने की आवश्यकता तो समाप्त हो गई, पर यह देखा गयाकि ऐण्टीटॉक्सिन-जनित प्रतिरोध-क्षमता मनुष्य में तभी तक बनी रहती है जब तक कि उसके रक्त में ऐण्टीटॉक्सिन की उपस्थिति बनी रहती है। अतः कुछ समय बाद यह आवश्यक हो जाता है कि ऐण्टीटॉक्सिन का टीका पुनः लगाया जाय। इस प्रकार के दो टीकों के बीच का समयान्तराल विभिन्न रोगों के लिए भिन्न-भिन्न होता है। यह समयान्तराल जितना ही अधिक हो उतना ही अच्छा होगा, अतः वैज्ञानिकों ने इसे बढ़ाना आवश्यक समझा।

एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक गैस्टन रेमान ने दिखाया कि यदि डिफ्थीरिया या टिटनेस के ऐण्टीटॉक्सिन की फार्मेल्डीहाइड के साथ अभिक्रिया कराई जाय या इसके साथ उसे गर्म किया जाय तो यह एक अन्य रसायन में परिवर्तित हो जाता है जिसे टॉक्साइड कहते हैं। इस परिवर्तित रसायन को मनुष्यों के रक्त में बिना किसी असुविधा के मिलाया जा सकता है। इस प्रकार से एक नया ऐण्टीटॉक्सिन प्राप्त किया जा सकता है जो मनुष्य के शरीर में बनने के कारण पिछले ऐण्टीटॉक्सिन (जो किसी पशु के रक्त में बना था) की अपेक्षा अधिक समय तक कारगर बना रहता है। डिफ्थीरिया के लिए उपयुक्त टॉक्साइड का निर्माण सर्वप्रथम 1925 में किया गया और तब से इस रोग की भयानकता समाप्त हो गयी।

पास्चर द्वारा रेबीज के टीके के निर्माण में जो विधि प्रयोग में लाई गई थी उसके परिवर्धित एवं संशोधित रूप का उपयोग करके मैक्स थाइलर ने सन् 1937 में पीत-ज्वर विषाणुओं (yellow fever virus) के लिए एक उपयुक्त टीके का निर्माण किया। 1950 के दशक में इन्हीं विधियों द्वारा पहले जोनास एडवर्ड साल्क तथा उसके वाद एल्वर्ट ब्रूस साबिन ने बच्चों की घातक बीमारी- पोलियो- के लिए टीके वनाए। यदि इनका उपयोग उचित ढंग से किया जाय तो इस बीमारी को विश्व से उसी प्रकार समाप्त किया जा सकता है जैसे चेचक को किया जा चुका है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक में प्रचलित किसी प्रथा - जिसके पीछे छिपे वैज्ञानिक तथ्यों का समाज को पता तक नहीं था - उसको वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जाँचने-परखने पर तथा उसमें सुधार करने पर कितनी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं। ❑

क्यों जा बसे हैं बुद्धिजीवी सुदूर देशों में

दीप्ति भटनागर

पीपुल फार साइंस एंड डिवलपमेंट,
बी-2, वैलकम अपार्टमेंट,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085

प्रत्येक कामकाजी व्यक्ति की प्रथम आवश्यकता यह होती है कि उसे काम करने के लिए उपयुक्त सुविधाओं से युक्त, स्वच्छ विकसित कार्य-स्थितियाँ और प्रेरणादायक वातावरण मिले। तभी उसकी समूची कार्यक्षमता किसी काम को कुशलतापूर्वक करने में लग पाती है और वह उस काम को अत्युत्तम ढंग से कर पाता है।

शायद यही कारण है कि वैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ तथा अन्य बुद्धिजीवी अपना देश छोड़कर विदेशों में जाकर बसने लगे हैं। स्वाभाविक रूप से प्रतिभा का यह पलायन विकासशील देशों से विकसित देशों की ओर हो रहा है। यही नहीं, हर वह व्यक्ति, जो किसी प्रकार इन देशों में रहन-सहन के खर्च बर्दाश्त कर सकने की स्थिति में है, अपने बच्चों को पढ़ाई के लिए इन देशों में भेजने को तत्पर है। जाहिर है कि उत्तम कार्य-स्थितियों और अच्छे जीवन-स्तर की अहमियत हमारे जीवन में बढ़ती जा रही है। इस प्रकार 'बेन-ड्रेन' की यह समस्या आज मुख्यतः विकासशील देशों की समस्या बन गई है, परन्तु इतिहास गवाह है कि साठ के दशक में विकसित देश भी इस समस्या से जूझते रहे हैं।

ब्रिटेन जो आज एक समृद्ध और विकसित देश है तथा जिसकी कार्य-स्थितियाँ अब स्वयं दूसरों को आकृष्ट करती हैं, कुछ वर्षों पहले प्रतिभा के पलायन जैसी चिंताजनक स्थिति का सामना कर चुका है। इसका प्रभाव पूर्वी यूरोप के अन्य देशों पर भी कम नहीं है। 'ब्रेन-ड्रेन' की समस्या का सामना रूस को भी करना पड़ा है जो कुछ वर्षों पूर्व विश्व की दो महान शक्तियों में से एक माना जाता रहा है। सन् 1989 के बाद से हजारों की संख्या में इंजीनियर, शोधकर्ता, अध्यापक एवं अन्य बुद्धिजीवी इस देश को छोड़कर जर्मनी और अमेरिका में जा बसे हैं।

रूस के वैज्ञानिकों के अनुसार वहाँ से प्रतिभा के पलायन का मुख्य कारण अच्छे कार्य क्षेत्रों की खोज करना तो है ही, ज्ञान संबंधी कार्यक्रमों को देश की वर्तमान सरकार का पूर्ण सहयोग न मिल पाना भी है। इसमें बुद्धिजीवियों विशेषतः वैज्ञानिकों का कम वेतन तथा बिगड़ती आर्थिक परिस्थितियों का योगदान कम नहीं।

प्रतिभा के पलायन की समस्या से ग्रस्त एक अफ्रीकी देश बेनिन (डाहोमे) विशेष उल्लेखनीय है। सोलहवीं शताब्दी से ही यहाँ के निवासियों का विश्व के अन्य देशों में बहिर्गमन होता आया है। सबसे पहले बेनिन निवासियों को गुलाम बनाकर अमेरिका में

भेजने से इस बहिर्गमन की शुरुआत हुई। इसके बाद बेनिन में कार्यक्षेत्रों और रोजगार की कमी के कारण अध्ययन कुशल बेनिन निवासी अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए अन्य फ्रांसीसी उपनिवेशों में जाकर बसने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे बेनिन फ्रांसीसी उपनिवेशों के लिए बुद्धिजीवियों को हासिल करने के एक केन्द्र के रूप में विकसित हो गया। यहीं से शुरू होकर पिछली पाँच से भी अधिक शताब्दियों से बेनिन निवासी बड़ी तादाद में कभी गुलाम बनकर, तो कभी अफ्रीका में प्रशासनिक बनकर या फिर अध्ययन क्षेत्रों में सहयोगी के तौर पर दूसरे विकसित देशों में बसते रहे हैं।

वर्तमान में इस समस्या से मुख्य तौर पर तीसरी दुनिया के देश ही ग्रस्त हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार तीसरी दुनिया से हर वर्ष करीब 50,000 से 1,00,000 तक चोटी के वैज्ञानिक व अन्य विषयशास्त्री अमेरिका जैसे विकसित देशों में सदा के लिए बस जाते हैं।

भारत में भी यह समस्या बढ़ती जा रही है। आजादी के पचास साल बाद भी हम अपने देश की युवा प्रतिभाओं को राष्ट्र निर्माण के कार्य में भागीदार नहीं बना पाए हैं। आजादी मिलने के बाद देश के उत्थान की राह तो खुली, परन्तु अनेक मूलभूत कमजोरियों के कारण आज भी हमारे देश में कार्य स्थितियाँ सुविधाजनक तो नहीं ही हैं, उन्हें घुटनभरी, होनहार प्रतिभाओं का गला घोंटने वाली अत्यन्त असुविधाजनक ही कहा जा सकता है। भ्रष्टाचार, त्रुटिपूर्ण प्रशासनिक नीतियों तथा गैरजिम्मेदाराना प्रबंध व्यवस्था ने हमारे कार्यस्थलों को अकर्मण्यता का केन्द्र बना कर रख दिया है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति विशेष तथा पूरी जनसंख्या के आर्थिक उत्थान के बजाय सामाजिक व आर्थिक पतन हो रहा है। देश की प्रगति के लिए जहाँ सुविधाजनक अवसर बढ़ने चाहिए वहीं सिफारिश और पैसे के बल पर नियुक्ति बुद्धिजीवियों और योग्य व्यक्तियों तथा विशेषज्ञों को धक्का लगाने के खेल खेल रही है। इसी कारण उच्च तालीम और बेहतर कार्य स्थितियों की खोज में प्रतिवर्ष करीब 7000 भारतीय सुदूर विदेशों में बस जाते हैं। अनुमान है कि इस शताब्दी के अंत तक करीब 600,000 भारतीय वैज्ञानिक तथा तकनीकी विशेषज्ञ विदेशों में बस जायेंगे। भारत छोड़कर जाने वाले बुद्धिजीवियों में करीब 90 प्रतिशत अमेरिका, 23 प्रतिशत एशिया तथा 11 प्रतिशत पश्चिमी यूरोप में हैं।

भारत में प्रतिभा-पलायन के मुख्य कारण खोजने तथा इसे रोकने के कारगर उपाय खोजने के लिए अनेक अध्ययन किये गये हैं। इनसे स्पष्ट है कि भारत छोड़ कर सुदूर बस जाने वाले बुद्धिजीवी, बेहतर मौकों, अच्छी नौकरी, अधिक पैसे तथा सुविधाजनक कार्य स्थितियों से तो आकृष्ट होते ही हैं, इसके अतिरिक्त अपने देश में वैज्ञानिक मानसिकता की कमी तथा कार्य स्थलों की शोचनीयरूप में विघटनकारी स्थितियाँ भी इसका महत्वपूर्ण कारण हैं। शोधकर्ताओं के लिए उपयुक्त वातावरण, आमतौर पर मौजूद वैज्ञानिक नजरिया बहुत मायने रखता है। समय-समय पर अध्ययन कर्मियों के कार्यों को समझने और सराहने वाले दिमागों के साथ ही शिक्षित जनता का होना भी जरूरी है जिसकी हमारे देश में वस्तुतः कमी है।

इसके अतिरिक्त अपने कार्यक्षेत्र से संबंधित विदेशी सहयोगियों से सम्पर्क का अभाव भी इस समस्या का एक अन्य प्रमुख कारण है। विशेष क्षेत्रों में कार्यरत विशेषज्ञों को अपने कार्य संबंधी विचार-विमर्श के लिए परस्पर संपर्क की आवश्यकता होती है। इस कारण भी भारतीय विशेषज्ञों का रुझान विदेशों की ओर बढ़ता जा रहा है। कारण चाहे कोई भी हो व्यक्तिगत और व्यवसायिक रूप से यह बहिर्गमन लाभदायक हो सकता है, परन्तु देश के लिए यह ज्ञान व आर्थिक दोनों ही पहलुओं से हानिकारक है। इस बहिर्गमन से जहाँ हम प्रतिभावान नागरियों को खो देते हैं, वहीं अरबों डालरों का नुकसान झेलते हैं।

"ब्रेन-ड्रेन" की समस्या आज विश्व स्तर की एक गंभीर समस्या बन चुकी है। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसका समाधान खोजने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी कुछ कारगर कदम उठाये हैं। सन् 1991 में प्रारम्भ 'यूनिटविन' कार्यक्रम इन प्रयासों में उल्लेखनीय हैं। इसका मुख्य उद्देश्य विश्व के विभिन्न विश्वविद्यालयों के बीच सुगठित संपर्क-सूत्र कायम कर उन्हें एक धागे में पिरोना है। इससे उनमें परस्पर संबंध स्थापित

हो सकेंगे तथा भाग लेने वालों को आर्थिक सहायता भी मिलेगी। इसके 21 नेटवर्क कार्यक्रमों के अन्तर्गत् अपने व दूसरे पड़ोसी देशों में विद्यार्थियों को शोध एवं अध्ययन के अवसर प्रदान करना, विशेषज्ञों को पढ़ाने के लिए दूसरे स्थानों पर भेजना, मिली जुली प्रयोगशालाएँ आयोजित करना तथा व्यापार, खाद्य, कृषि, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता प्रदान करने जैसे प्रावधान किये गये हैं। इन कार्यक्रमों में करीब 25 गैरसरकारी संगठन सामूहिक सहायता प्रदान कर रहे हैं। सभी महत्वपूर्ण अध्यापकों और विद्यार्थियों के विभिन्न समूह बनाये गए हैं जो समय-समय पर इन कार्यक्रमों को हर संभव सहायता प्रदान करते हैं।

भारत सरकार ने भी इस ओर कुछ कदम उठाये हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आरंभ किए गये "टाक्टेन" कार्यक्रम के अन्तर्गत् इस दिशा में कुछ काम किया गया है। कार्यक्रम के अनुसार अप्रवासी भारतीय विशेषज्ञों को देश के अनुसंधान तथा विकास संबंधी कार्यों में भाग लेने के लिए अनेक बार आमंत्रित किया जाता रहा है। इसके पीछे छिपी हुई केवल यही लालसा है कि बाहर बसने पर भी जितना संभव है वह देश के कार्यक्रमों में अपना सहयोग दे सकें।

वैज्ञानिकों को भारत में उनकी कार्य कुशलतानुसार नौकरियाँ देने का एक कार्यक्रम चला रहा है। स्वदेश में ही विशेषज्ञों को सभी उत्तम सुविधायें प्रदान करने के लिये सन् 1980 में एक ऐसी ही रूपरेखा तैयार की गई थी, पर देखने में आया है कि इससे केवल उन क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा है जहाँ विशेषज्ञों की संख्या बहुतायत में है। इन्हीं कार्यक्रमों के अंतर्गत् शिक्षा के क्षेत्रों में इनामों और मान्यताओं को बढ़ावा देने के प्रयत्न किये गये हैं।

इन प्रयासों की सफलता के लिये अधिक पूँजी निवेश, अधिक वेतन या उत्तम कार्यस्थल प्रदान करना ही काफी नहीं है, बल्कि आम जनता को वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक अध्ययन के अवसर प्रदान करना, विशेषज्ञों को पढ़ने के लिये दूसरे स्थानों पर भेजना, मिली-जुली प्रयोगशालाएँ आयोजित करना तथा व्यापार, खाद्य, कृषि, विज्ञान एवं औद्योगिकी के क्षेत्र में विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता प्रदान करने जैसी सुविधायें जुटाना जरूरी है।

इस समस्या का एक और पहलू है, आंतरिक रूप से बुद्धिमत्ता का सही उपयोग नहीं होना। डॉक्टरेट जैसी उच्च शैक्षिक योग्यताएँ हासिल करने के बाद भी लोग प्रशासनिक तथा प्रबंध सेवाओं की ओर आकर्षित हो रहे हैं। 1990 के दशक के आँकड़ों के अनुसार केवल भारत में ही नहीं, बल्कि यूरोप तथा अमेरिका में भी विज्ञान के स्नातकोत्तर विद्यार्थियों की संख्या घटती जा रही है। आज के भौतिकवादी संसार में लोग पठनीय विषयों को छोड़कर व्यावसायिक विषयों को प्राथमिकता देने लगे हैं। इसलिए सबसे पहले विद्यार्थियों और आम जनता की विचारधारा में परिवर्तन लाना होगा। यही नहीं, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के ऐसे क्षेत्र कायम करने होंगे जो विज्ञान स्नातकों और स्नातकोत्तरों को सुविधापूर्ण जीवनयापन के लिए उपयुक्त नौकरियाँ दे सकें।

देश से प्रतिभा के पलायन के विषय में अनेक कार्य संयोजकों और विशिष्ट व्यक्तियों के दो मत हैं। कुछ के अनुसार इस पर एकदम रोक लगानी जरूरी है तो कुछ इसे देश में प्रज्ञता-बहिर्गमन के स्थान पर अन्य देशों में प्रज्ञता-भंडारण के रूप में देखते हैं। वैसे किसी अन्य देश में जाकर अपने विषय के विशेषज्ञों से विचार-विमर्श करना, उनसे सीखना और उनके तजुर्बों के बारे में जानकारी हासिल करना ज्ञान की सीमाओं को बढ़ाने की दिशा में एक कदम है, परन्तु अधिकांश लोगों का अपने देश को छोड़कर सदा के लिये विदेश में बस जाना उस देश के दृष्टिकोण से आपत्तिजनक है।

हालांकि इन प्रवासी भारतीयों में से बहुत से अपने प्रियजनों के मोह में या फिर देश प्रेम की डोर से खिंचे या फिर अंनजाने वातावरण से ऊबकर वापिस आ जाता है, फिर भी समस्या की गंभीरता को समझते हुए ऐसे कारगर उपायों की व्यवस्था करनी आवश्यक है जिनसे विदेशों में बसे हमारे अप्रवासी देशवासी पुनः स्वदेश लौट आयें।

[अभियान]

मौत की छाया : आर० डी० एक्स०

डॉ० अनिल वशिष्ठ
डी०ए०वी० पब्लिक स्कूल, रंगित जल विद्युत परियोजना, रंगित नगर, दक्षिण सिक्किम-737111

विस्फोटक पदार्थों में सर्वाधिक चर्चित नाम आर० डी० एक्स० का है। यह विस्फोटक पदार्थ भारत की अनेक आतंकवाद की दुर्घटनाओं से जुड़ा रहा है। चाहे वह बम्बई का विस्फोट हो या राजीव गाँधी की मृत्यु या लिट्टे की आतंकवाद से जुड़ी गतिविधियाँ रही हों। आर० डी० एक्स० का नाम आजकल ऐसे लिया जाता है जैसे द्वितीय विश्वयुद्ध के समय टी० एन० टी० अथवा डाइनामाइट का लिया जाता था।

विस्फोटक वह पदार्थ है जिनके जलने से भारी मात्रा में धुआँ व आग निकलती है और तीव्र ध्वनि उत्पन्न होती है। यह विस्फोटक पदार्थ यांत्रिक, नाभिकीय अथवा रासायनिक किसी भी तरह से प्रस्फुटित किये जाते हैं।

नागासाकी और हिरोशिमा पर गिराये गये परमाणु बम की ध्वनि सैकड़ोंकिलोमीटर दूर तक सुनी गयी तथा चालीस वर्ग किलोमीटर तक की खिड़कियों के शीशे पूरी तरह टूट गये और बम गिरने के स्थान पर हुयी जनहानि तथा इमारतों के ध्वस्त होकर धूल धूसरित होने से उस क्षेत्र में कई दिनों तक दिन में भी अँधेरा छाया रहा।

विस्फोटकों का इतिहास तेरहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है जब बारूद का उपयोग सेना में विस्फोट के लिए किया जाने लगा था। विस्फोटकों का उपयोग युद्ध के अतिरिक्त शान्ति कार्यों में भी किया जाता है। अल्फ्रेड नोबेल की अद्‌भुत देन "डाइनामाइट" द्वारा पर्वतों को विस्फोट से उड़ाकर सड़क निर्माण किया जाता है।

आर० डी० एक्स० आज का सर्वाधिक चर्चित और सुविधाजनक विस्फोटक है जिसे हैक्सागन साइक्लोट्राइमिथायलीन ट्राइनाइट्रामिन या टी-चार के नाम से भी जाना जाता है। वैसे आर० डी० एक्स का पूरा नाम एक कम्पनी के नाम पर है। आर० डी० एक्स० को प्लास्टिक विस्फोटक के नाम से भी जानते हैं। इसका अन्य विस्फोटकों के साथ मिश्रण भी प्रयोग में लाया जाता है, जिससे इसकी तीव्रता बढ़ जाती है। आर० डी० एक्स० नामक सफेद पाउडर की खोज 1899 में जर्मन वैज्ञानिक हैंस हैनिंग ने की। इसके विस्फोट की गति (डिटोनेशन स्पीड) 9300 मीटर प्रति सेकेंड आँकी गयी है। इसके विस्फोट में 139 केल्विन कैलोरी प्रति किग्रा ऊष्मा उत्सर्जित होती है, जिससे 3380 डिग्री सेल्सियस का ताप उत्पन्न होता है। इसे ट्राइनाइट्रोटोलुईन विस्फोटक (टी० एन० टी०) की तुलना में अधिक आँका गया है, जिसकी विस्फोटक गति 7000 मीटर प्रति सेकेण्ड तथा संवेदनतीव्रता 95 है। आर० डी० एक्स० तुलनात्मक दृष्टिकोण से अधिक सुरक्षित, सस्ता तथा निर्माण में सरल है।

आर० डी० एक्स० से मिलते-जुलते अन्य विस्फोटक पेन्टाइरिथ्रिटॉल (पी० ई० टी० एन०), ट्राइनाइट्रोटोलुईन (टी० एन० टी०), ट्राइनाइट्रोग्लिसरोल (टी० एन० जी०), 1-3-5-7 टेट्रानाइट्रो 1-3-6-7 टेट्रा-एजा साइक्लोआवन्टेर (एच० एम० एक्स) टेट्राइल, बेनट्राइल, इथायलीन डाइनाइट्रामिन (ई० डी० एन० ए०), लेड एजाइड टेट्रासीन, नाइट्रोगुआनिडीन, नाइट्रोसेलुलोज, कोरडाइट आदि चिरपरिचित विस्फोटक हैं। इन सभी विस्फोटकों की तुलना में आर० डी० एक्स० अन्य सभी से उत्तम है क्योंकि विस्फोटक-क्षमता के अतिरिक्त यह अन्य विस्फोटकों

की तुलना में अधिक स्थायी है और इसकी उपयोगिता भी अधिक है उदाहरणार्थ टारपेक्स, आर० डी० एक्स०, टी० एन० टी० तथा एल्यूमिनीयम का मिश्रण है। साइक्लोटोल, आर० डी० एक्स० के साथ टी० एन० टी० का साठ अनुपात चालीस (60 : 40) का मिश्रण है जबकि पेन्टोलाइट, आर० डी० एक्स० के साथ टी० एन० टी० का बराबर का मिश्रण है, जिसकी विस्फोटक-क्षमता बहुत अधिक है।

आर० डी० एक्स० को प्लास्टिक विस्फोटक भी कहा जाता है क्योंकि यह 57 डिग्री सेल्सियस से +77 डिग्री सेल्सियस ताप तक प्लास्टिक के अवयवों के साथ तीव्र विनाशक विस्फोटक बनाता है।

इस विस्फोटक की अन्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

- इसे कितना भी कठोर या लचीला बनाया जा सकता है।
- प्लास्टिक के खोल में रखपाने के कारण, इसे आसानी से लाया ले जाया जा सकता है।
- यह धातुमापक यन्त्र या मेटल डिटेक्टर की पकड़ से दूर रहता है।
- यह अत्यधिक हल्का और स्थायी है अतः इसकेअचानक विस्फोट की संभावनाएँ नगण्य होती हैं।
- इसके विस्फोट सुरक्षित होते है।
- इसके निर्माण के अवयव आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं तथा निर्माण विधि सरल हैं।
- यह आग को अत्यधिक तीव्रता से फैलाने की क्षमता रखता है जो 1.7 ग्राम प्रति घन सेमी घनत्व पर 8750 मीटर प्रति सेकेण्ड है।
- इसके तापमान व विस्फोटक तीव्रता को अन्य विस्फोटकों के साथ मिलाकर घटाया या बढ़ाया जा सकता है।
- इसे अत्याधुनिक समय-मापक यन्त्रों (टाइमर) से जोड़कर आसानी से प्रयुक्त किया जा सकता है।
- यह जल, कार्बन टेट्राक्लोराइड, कार्बन डाइसल्फाइड आदि विलायकों में अघुलनशील है जबकि मिथाइल एल्कोहॉल तथा ईथर में आंशिक रूप से घुलनशील है।

आर०डी०एक्स० को विनाश के अतिरिक्त रचनात्मक कार्यो में भी उपयोग में लाया जाता है। इसके द्वारा बड़े-बड़े वृक्षों को नष्ट किया जाता है, स्टील की कटिंग में उपयोग किया जाता है, धातुओं के दाबयुक्त साँचों में उपयोग किया जाता है। किन्तु विस्फोट की स्थिति में या तो दुर्घटना टाली जा सकती है अथवा हताहतों की संख्या में कमी आ सकती है, यदि निम्नलिखित सावधानियों पर ध्यान दिया जाए:-

- यदि बम जैसी कोई वस्तु मिलने पर उससे छेड़-छाड़ न की जाये।
- अवांछित पदार्थ की सूचना तुरन्त पुलिस को दी जानी चाहिए।
- कानों में संभावित विस्फोट की स्थिति में रुई लगा ली जाये।
- शुद्ध हवा में जाने के प्रयास किया जाय।
- यदि विस्फोट का धुआँ हवा के साथ तीव्र गति से बढ़ रहा है तो धुएँ के विपरीत दिशा में सुरक्षित हवा में जाने का प्रयास किया जाना चाहिए।
- यदि घर में रहें तो विद्युत् की मुख्य सम्पर्क व्यवस्था को अलग कर देना चाहिए। (मेन मीटर ऑफ कर देना चाहिए)।
- यदि आप विस्फोट के विषाक्त धुएँ में फँस चुके हैं तो गीला कपड़ा मुँह पर रखकर धुएँ के विषैले प्रभाव से बचा जा सकता है।
- घुटन या बेहोशी की स्थिति में तुरन्त चिकित्सक से सम्पर्क किया जाना चाहिए।

विस्फोट के प्रभाव घातक तथा विनाशकारी होते हैं। विस्फोट के प्राथमिक प्रभाव की स्थिति में विषाक्त धुआँ तीव्र ध्वनि के साथ फैलता है, जिससे जीव-जन्तुओं के कान फटना, त्वचा का जलना, फफोले पड़ना, साँस में घुटन तथा अनेक आन्तरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त द्वितीयक प्रभाव में विस्फोट के स्थान पर निर्वात उत्पन्न हो जाता है, दबाव से भारी असंतुलन के कारण शीशे टूट जाते हैं तथा भवन आदि को भारी क्षति पहुँचती है।

संहारात्मक विस्फोट अमानवीय है अतः इसके उपयोग पर कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता है। विस्फोट में प्रयुक्त होने वाले कच्चे माल पर भी अंकुश लगना चाहिये ताकि आतंकवाद को देश-विदेश से समाप्त कर शान्ति का मार्ग प्रशस्त किया जा सके। ❑

मागुर : परिचय, पालन एवं प्रजनन

डॉ० अमरेश चन्द्र पाण्डेय

सह प्राध्यापक, मत्स्य विज्ञान विभाग, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद-224229, उ०प्र०

परिचय : मागुर वायुश्वांसी मछली है। यह भारत, श्रीलंका, म्यांमार, मलेशिया, पाकिस्तान, बांग्लादेश, थाईलैण्ड, चीन, हांगकांग, फिलिपाइन्स आदि दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के नदी, तालाब, झील, जलाशय, नहर, नाला इत्यादि सभी प्रकार के जलस्रोतों में पायी जाती है। वायु से श्वांस लेने के लिए मागुर को बार-बार जल के ऊपरी सतह पर आना पड़ता है, यह अन्तराल 2 से 20 मिनट का हो सकता है। इसका सीधा सम्बन्ध जल में घुलनशील ऑक्सीजन से है अर्थात् कम ऑक्सीजन वाले जल में यह जल्दी-जल्दी तथा ऑक्सीजनपूर्ण जल में देर से ऊपर आती है। मागुर के गलफड़े अल्प विकसित होने के कारण वायुश्वांसी अंग अत्यधिक विकसित होते हैं जो कि जल के बाहर वायु से ऑक्सीजन प्राप्त करने में सहायक होते हैं। अल्प विकसित क्लोम या गलफड़ का मात्र 53 प्रतिशत भाग ही जल में श्वसन योग्य होता है।

ऑक्सीजन से परिपूर्ण जल में मागुर अनवरत 6-8 घंटे तक लगातार (ऊपरी सतह पर आये बिना) रह सकती है। इससे अधिक समय पश्चात् इसके मरने की सम्भावना हो जाती है। न्यून-ऑक्सीजन वाले जल में यह समय अधिकतम 30 मिनट ही पायी गयी है।

मागुर मुख्यतया कीट पतंगों, कृमि आदि का आहार करती है। इनके साथ ही साथ अन्य उपलब्ध भोज्य पदार्थो का उपयोग भी करती है। अंशपक्ष के नुकीले कांटों की सहायता से मागुर भूमि पर विचरण कर सकती है।

महत्व : वायुश्वांसी स्वभाव की होने के कारण मागुर कई घंटे तक छाया वाले स्थानों में जल के बाहर भी जीवित रह सकती है, शर्त यह है कि त्वचा सूखने न पाये। यह स्वच्छ जल के साथ-साथ गंदले अनुपयोगी जल में भी रह लेती है। वायुश्वांसी होने के कारण यह बाजार में जीवित अवस्था में मिलती है जिसके कारण इसे 'लाइन फ्रिज' कहा जाता है तथा इसका मूल्य भी अधिक मिलता है। इसका मांस मुलायम तथा कम हड्डी वाला होता है। मांस प्रोटीन, लवण, लौह आदि प्रचुर मात्रा में तथा कार्बोहाइड्रेट एवं वसा अत्यल्प होने के कारण पौष्टिक होता है।

पालन : इसका एकल अथवा मिश्रित पालन किया जा सकता है। मिश्रित पालन में इसको पकड़ने के लिए जल निकालने के कारण व्यय बढ़ जाता है। धान के खेत, पिंजड़ा तथा तालाब में एकल पालन सुविधाजनक एवं अधिक लाभकारी है।

(क)

अकेले मागुर के लिए छोटे (0.1 हे०) तालाब उपयुक्त होते हैं, कम जल स्तर (0.5-1.0 मी०) की आवश्यकता होती है। भीटे के चारों ओर टीन या बाँस की टटरी का 30 से०मी० ऊँचा बाड़ लगा देने से मागुर के भागने की शंका समाप्त हो जाती है। थोड़े घास-पतवार को छोड़कर अधिकांश को निकाल देना चाहिए, तत्पश्चात् चूना (100-200 कि०/हे०) का प्रयोग करना ठीक होता है। एक सप्ताह बाद 21 दिन आयु के शिशुओं को 50,000/हे० की दर से तालाब में संचय करना चाहिए। कृत्रिम आहार के

रूप में सूखी मछलियों का चूरा तथा चावल का मिश्रण (भार से बराबर-बराबर) प्रतिदिन मागुर के कुल भार का 5 प्रतिशत की दर से प्रतिदिन शाम को देना चाहिए (प्रथम माह 1.2 कि०/दिन, द्वितीय 2.4, तृतीय 4.0, चतुर्थ 8.0, पंचम 6.0, षष्ठम 4.0) छह माह में बच्चों का भार 150-200 ग्राम हो जाता है एवं मृत्युदर 75-80 प्रतिशत तक पायी गयी है। दिल्ली के समीप 7 माह में 54 टन/हेक्टेयर का उत्पादन प्राप्त किया गया है। थाईलैण्ड मे वर्ष में दो बार पालन करके एक ही तालाब से 100 टन/हे० का उत्पादन लिया जा रहा है।

(ख) धान के खेतों में भी मागुर का संचय करके 3-4 माह में 250-400 कि०/हे० मछली का उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है, साथ ही साथ धान की उपज भी 20 प्रतिशत बढ़ जाती है।

(ग) घर के समीप निजी प्रयोग हेतु सीमेंट की छोटी टंकियों (21x1 मी०) में भी मागुर पालन किया जा सकता है। यदि पचास शिशु/वर्गमीटर दर से पालन किया जाय तो 6 माह में 50 कि० मागुर प्राप्त की जा सकती है।

(घ) पिंजड़ा पालन के लिए बांस, नायलान, प्लास्टिक आदि का उपयोग करते हैं। कार्य पालन के तालाब, झील, नदी, नाले, नहर, बाँध में इस विधि का प्रयोग सुगमता से किया जा सकता है। विभिन्न आकार, माप के पिंजड़ों को रस्सी से बाँधकर 100 शिशु/वर्ग०मी० की दर से संचय करते तथा नियमित रूप से कृत्रिम आहार देते हैं। 2x1x1 मी० माप के एक पिंजड़े से औसत 10 कि०/6 माह उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

प्रजनन : मागुर पालन के रास्ते की सबसे बड़ी रुकावट मागुर शिशुओं की अनुपलब्धता है। व्यावसायिक पालन के लिए प्राकृतिक संसाधनों से प्राप्त शिशुओं पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है। प्रजनन की सफलता में प्रजनक नर एवं मादा मागुर के चुनाव तथा रख-रखाव का बड़ा महत्व है। 50 ग्रा० भार तथा एक वर्ष से अधिक आयु के प्रजनकों में प्रजनन क्षमता विकसित हो जाती है। मागुर का प्रजनन काल वर्षा ऋतु है। प्रजनन काल में नर तथा मादा की पहचान सरलता से की जा सकती है। नर का जनन छिद्र लम्बवत एवं नुकीला तथा मादा में गोलाकार, बटन सदृश्य होता है।

स्वस्थ नर तथा मादा प्रजनकों को 10-15 से०मी० मोटी मिट्टी की तह वाली 3x1x1 मी० माप की सीमेंट टंकियों में रखते हैं। इनको सूखी मछली का चूरा एवं कना (भार से 9:1 अनुपात) प्रजनकों के कुल भार का 10 प्रतिशत प्रतिदिन शाम को देते हैं। उत्प्रेरित प्रजनन के लिए मादा को "पियूष ग्रन्थि" (30 मिग्रा/कि०) या "ओवाप्रिय" (0.20 सी०सी०/कि०) एक बार पीठ की ओर अथवा पूँछ के पास शाम को लगाते हैं। चौदह से सोलह घंटे पश्चात् मादा का उदर दबाने पर 6 से 7 हजार अण्डे निकलते हैं, इनको इनामेल ट्रे में फैला कर नर की वीर्य को पंख की सहायता से मिला देते हैं। इन अण्डों को प्रवाहित जल वाले प्लास्टिक ट्रे में रखते हैं, निषेचित अंडे दीवालों से चिपक जाते हैं जबकि अनिषेचित बेकार अंडे जल के साथ बाहर निकल जाते हैं।

लगभग 26 घंटे में इनसे योक-सैक युक्त नवजात शिशु निकल आते हैं। चार दिनों तक किसी कृत्रिम आहार की आवश्यकता नहीं पड़ती। नवजात शिशु योक-सैक के योक पर ही निर्भर रहते हैं। चार दिन पश्चात् योक-सैक समाप्त हो जाने पर शिशुओं को एफ०आर०पी० या प्लास्टिक टंकी में रखते हैं। अगले 3 दिन तक "आरटीमिया सीस्ट" शिशुओं को प्रतिदिन देना चाहिए। 8-14 दिन के शिशुओं को उबले मुर्गी के अंडे का सम्पूर्ण भाग तथा 21 दिनों पश्चात् सूखी मछली का चूरा आदि देना चाहिए।

मागुर शिशुओं में वायुश्वांसी अंग 14 दिनों में विकसित हो जाते हैं। इस अवधि में इनके मरने की सम्भावना अधिक होती है। अतः स्वच्छ प्रवाहित जल तथा देख-रेख की अधिक आवश्यकता पड़ती है। 21 दिनों के शिशुओं को 200 संख्या प्रति वर्ग मी० की दर से पहले से तैयार बड़ी टंकियों में एक माह तक पालते हैं। इसके जल में बाहर से सुपर फास्फेट (100 ग्रा०) तथा गोबर की खाद (2 कि०) पहले से ही मिला देते हैं। कृत्रिम आहार के लिए सूखी मछली का चूरा एवं चावल का कना बराबर मात्रा में देते हैं। एक माह में ये बच्चे 6-8 से०मी० लम्बे हो जाते हैं। अब इन्हें तालाब में या अन्य विधियों से पालन हेतु निकाला जा सकता है। ❑

वाहन-प्रदूषण से उत्पन्न स्वास्थ्य समस्या

डॉ० बृजमोहन कुमार प्रसाद
पीपुल फॉर साइंस एण्ड डिवेलपमेंट
बी-2, वेलकम अपार्टमेंट, सैक्टर 9, रोहिणी-दिल्ली-110085

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का परिवहन विभाग प्रदूषण रोकने के लिए नागरिकों को वरावर आगाह करता रहा है। लाखों लोग बूढ़े, जवान, बच्चे और नन्हे शिशु कोई भी इनसे बच नहीं पा रहा है। यह प्रदूषण लगातार बढ़ता ही जा रहा है। इसका मुख्य कारण है- वाहन-प्रदूषण यानी ट्रकों, बसों, कारों, स्कूटरों और तिपहिया वाहनों से निकलने वाला धुआँ जो हमारी सेहत को नुकसान पहुँचाता है।

सड़क परिवहन भारत की परिवहन प्रणाली का मुख्य आधार स्तम्भ है। विश्व की मुख्य सड़क परिवहन प्रणाली में भारत भी सम्मिलित है। इसी कारण सड़कों पर वाहनों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। इससे प्रदूषण की भयंकर समस्या खड़ी हो गई है।

अब सुबह की ताज़ी हवा महानगरों से ही नहीं बल्कि छोटे-छोटे नगरों से भी गायब हो चुकी है। अव सूरज के निकलते ही नगरों की फिजां बदलने लगती है। सड़कों पर दौड़ने वाले धुएँ से आसमान काला हो जाता है। आज दिल्ली महानगर को विश्व का चौथा सर्वाधिक प्रदूषित नगर माना जा रहा है। पर्यावरण और जीवविज्ञान शोध केन्द्र के आँकड़ों के अनुसार दिल्ली में प्रतिदिन 2090 टन प्रदूषक तत्व हवा में फैल जाते हैं। इसमें 60 प्रतिशत वाहनों से होने वाला प्रदूषण है।

इस समय राजधानी की सड़कों पर दौड़ने वाले लगभग 22 लाख वाहन रोजाना 200 टन कार्बनमोनोऑक्साइड, 800 टन हाइड्रोक्लोराइड, 6 टन सल्फर-डाइऑक्साइड, 600 किलोग्राम सीसा और बड़ी मात्रा में टी०एस०पी० जैसे रसायन छोड़ते हैं। अन्य तीन महानगरों- मुंबई, कलकत्ता तथा चेन्नई की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है। निश्चित रूप से वाहनों से निकलने वाली विषैली गैसों से पर्यावरण दूषित हुआ है।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा किए गए सर्वेक्षण से पता चला है कि पेट्रोल एवं डीजल से चलने वाले वाहनों से एक ही प्रकार के प्रदूषक तत्व उत्सर्जित होते हैं। केवल इनके इंजनों की कार्य-विधियाँ अलग-अलग होने से इनसे निकलने वाले प्रदूषकों की मात्राएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। वस और ट्रक जैसे डीजल से चलने वाले भारी वाहन कुल वाहनों का आठ प्रतिशत ही हैं पर उनमें 70 प्रतिशत तेल लगता है और उनसे 89 प्रतिशत प्रदूषक पदार्थ निकलते हैं। दो और तीन पहिए वाले वाहन 93 प्रतिशत हैं जिनमें 9 प्रतिशत तेल खर्च होता है और 13 प्रतिशत प्रदूषण के हिस्सेदार हैं। लेकिन स्कूटर एवं मोटर साइकिलों से जो हाइड्रोकार्बन निकलता है वह कारों से दो गुना और भारी वाहनों के बराबर है

वायुमण्डल [illegible] ाने वाली गैसें एक निश्चित मात्रा एवं अनुपात में होती [illegible] वृद्धि या कमी हो जाने पर वायु प्रदूषण की समस्या उत्पन्न [illegible] है। वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि एक मोटरगा [illegible] मिनट में उतनी ऑक्सीजन खर्च करती है जितनी 1135 [illegible] ाँस लेने के लिए उपयोग करते हैं। एक अन्य अनुमान के [illegible] र एक वाहन 960 किलोमीटर चलने पर उतनी ऑक्सीजन [illegible] ता है जितनी एक व्यक्ति को पूरे साल के लिए जरूरत होती

वाहनों का [illegible] षण वायुमण्डल को तो प्रभावित करता ही है साथ ही साथ सजीव एवं निर्जीव को भी प्रभावित करता है। इस प्र[illegible]ार सड़कों पर दौड़ते वाहनों और हमारी सेहत के बीच गहरा रिश्ता है। वाहन प्रदूषण से मनुष्य के पूरे शरीर विशेषक दिल, दिमाग, कलेजा, फेफड़े, गुर्दे और रक्त आदि पर बुर[illegible] असर पड़ता है। फेफड़े का कैंसर औ[illegible] दमा जैसी कई अन्य बीमारियाँ जन्म लेती हैं।

वाहनों के धुएँ में मौजूद कार्बन मोनोऑक्साइड शरीर [illegible] प्रवेश कर खून में मिल जाती है और हीमोग्लोबिन से प्रतिक्रिय[illegible] कर कार्बोहीमोग्लोबिन बनाती है। कार्बोहीमोग्लोबिन पर्याप्त मात्र[illegible] में रक्त में ऑक्सीजन का अवशोषण नहीं होने देती जिसके अने[illegible] दुष्प्रभाव होते हैं। [illegible]ल्फर डाइऑक्साइड ब्रांकाइटिस, दमा औ[illegible]

साँस में गतिरोध जैसे अनेक रोगों को जन्म देता है। सांस की बीमारियों के संबंध में जो राष्ट्रीय औसत है वह दिल्ली में 12 गुना अधिक है। वाहन प्रदूषण के कारण ही दिल्ली में 10 में से 3 व्यक्ति साँस से संबंधित बीमारियों के शिकार हैं। नाइट्रोजन ऑक्साइड और हाइड्रोकार्बन पेड़-पौधों को भी नुकसान पहुँचाते हैं।

हवा को घातक रूप से दूषित करने वाला एक द्रव्य सीसा है। केवल दिल्ली में प्रतिदिन कम से कम 600 किलोग्राम सीसा उत्पन्न होता है। सीसा एक ऐसा जहर है जो नाड़ियों में संचित रहता है, जिससे मानसिक विकार और कई दूसरे प्रकार की कमजोरियाँ पैदा होती हैं। बूढ़ों की अपेक्षा यह बच्चों में 5 गुना अधिक तेज़ी से असर करता है जिससे बच्चो की सीखने की क्षमता में कमी आती है। वैज्ञानिक शोध से यह प्रमाणित हो गया है कि शहरों के वातावरण में पाया जाने वाला 80 प्रतिशत सीसा, सीसा युक्त पेट्रोल से चलने वाले वाहनों से आता है। पेट्रोल पम्पों से वितरित किए जाने वाले पेट्रोल में प्रति लीटर क्रमशः 0.57 ग्राम से 0.80 ग्राम सीसा होता है। जब यह सीसा हवा में घुलकर शरीर में चला जाता है तो रक्त में भी सीसे का स्तर बढ़ता है। यदि 100 ग्राम रक्त में सीसे की मात्रा 800 माइक्रोग्राम से अधिक हो जाये तो वह जिगर, रक्त-प्रवाह, मांसपेशियाँ, मस्तिष्क और प्रजनन-क्षमता पर घातक प्रभाव डालता है।

शहरों में हर रोज वातावरण में "मिक गैस" रिस रही है। विशेषज्ञों के अनुसार टायरों के सड़कों पर अत्यधिक रगड़ खाने से कार्बनमोनोऑक्साइड एवं नाइट्रोजन बनती है। टायरों पर लगे यूरिथेन, घर्षण से कार्बनमोनोऑक्साइड एवं नाइट्रोजन बन कर वातावरण के मीथेन एवं फार्मेल्डिहाइड से मिलकर ज़हरीली मिथाइल आइसोसाइनाइड अर्थात् "मिक गैस" बनाते हैं।

यह वही मिक गैस है जिसने भोपाल में गैस कांड किया था। इस भीषणतम औद्योगिक त्रासदी में 5000 से अधिक व्यक्ति मौत के आगोश में समा गए थे और हज़ारों आज भी उसकी त्रासदी भुगत रहे हैं।

मोटर वाहनों का शोर भी कम प्रदूषक नहीं है। इसकी ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण के कारण जहाँ स्वास्थ्य को काफी हानि होती है वहीं व्यक्ति की कार्यकुशलता पर भी काफी असर पड़ता है। इससे रक्तचाप एवं मस्तिष्क से संबंधित विभिन्न बीमारियाँ होने का भय रहता है। इसके अलावा शरीर की क्रियाओं पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ध्वनि का दुष्प्रभाव गर्भस्थ शिशुओं पर भी पड़ता है।

एक अनुमान के अनुसार 50 से 60 डेसिबल ध्वनि नाप आदर्श माना गया है जबकि नगरों के अनेक भागों में इसका प्रतिशत 70 से 80 डेसिबल नापा गया है। ट्रक, कार, दुपहिये तथा तिपहिये और मोटर साइकिलों का शोर 92 डेसिबल तक बढ़ जाता है।

हवा में वाहनों से घुलते इस ज़हर को रोकने के लिए मोटर गाड़ी अधिनियम, 1988 और केन्द्रीय मोटर गाड़ी नियम, 1989 की धारा 190 (2) में व्यवस्था है कि यदि कोई व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थान पर ऐसी मोटरगाड़ी चलाता या चलवाता है, जो वायु प्रदूषण की दृष्टि से निर्धारित मानकों का उल्लंघन करती है, तो उस व्यक्ति पर पहली बार इस प्रकार का अपराध करने पर 1000 रुपये जुर्माना और दूसरी या तीसरी बार करने पर 2,000 रुपये जुर्माना किया जा सकता है।

धारा 115(2) में व्यवस्था है कि स्टार्ट की स्थिति में कारों से निकलने वाले धुएँ में कार्बनमोनोऑक्साइड की मात्रा आयतन की दृष्टि से 3 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए और दुपहिये और तिपहिये वाहनों से निकलने वाले धुएँ में यह 4.5 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। डीज़ल से चलने वाली मोटरगाड़ियों में खड़ी हुई स्थिति में पूरी रेस देने पर धुएँ का घनत्व 65 हार्ट्ज यूनिट से अधिक नहीं होना चाहिए। परिवहन निदेशालय इस कानून के पहले (दिसम्बर 1987) से ही वाहनों के प्रदूषण की जाँच का काम कर रहा है।

वाहन प्रदूषण की समस्या ज्यों-ज्यों गंभीर हो रही है उससे निपटने के लिए सरकार नित्य नई योजनाएँ बना रही है। एक अप्रैल 1995 से मूर्त रूप में आई "हरित ईंधन योजना" पर्यावरण तथा वन मंत्रालय की एक नई कार्य योजना है। इसके अंतर्गत नई कारों में केटलेटिक कनवर्टर लगाया जाना आवश्यक है। साथ ही ईंधन के रूप में ग्रीन फ्यूएल अर्थात् सीसा रहित पेट्रोल का उपयोग आवश्यक बना दिया है। सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशानुसार यह योजना देश के चार महानगरों- दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता और चेन्नई में लागू की गई है। इसके लिए देश के चार महानगरों के 157 पेट्रोल पम्पों के माध्यम से सीसा रहित पेट्रोल की सप्लाई करने की प्रक्रिया शुरू की गई है।

इसके पूर्व केन्द्रीय पेट्रोलियम मंत्रालय द्वारा पेट्रोल की जगह कम्प्रेस्ड नेचुरल गैस अर्थात् दबावयुक्त प्राकृतिक गैस के इस्तेमाल द्वारा मोटरगाड़ियों को चलाने की कार्य योजना को अंजाम दिया जा चुका है। आई आई टी मुम्बई के प्रोफेसर पी०पी० पारिख का मत है कि यदि 150 किलोमीटर प्रतिदिन चलने वाले 80

हजार वाहनों में परम्परागत ईंधन के स्थान पर कम्प्रेस्ड नेचुरल गैस का उपयोग किया जा सके तो कार्बन मोनोऑक्साइड के स्तर में 35 हजार टन प्रतिवर्ष तथा कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर में 2 लाख 36 हजार टन प्रतिवर्ष कमी की जा सकती है।

इसके लिए यह आवश्यक है कि इन्हें सस्ता एवं सुलभ बनाये जाने के साथ ही इन योजनाओं का फैलाव दूसरे नगरों में भी किया जाये। इसके अलावा मोटर वाहनों की सही देखभाल, व्यस्त मार्गों में वाहनों के प्रवेश पर रोक, सामूहिक यातायात को बढ़ावा, वाहन प्रदूषण के कुप्रभाव के प्रति शिक्षा एवं जनचेतना तथा कम प्रदूषणकारी ईंधन जैसे एल्कोहॉल बैटरी, सौर ऊर्जा इत्यादि का उपयोग मोटर वाहन द्वारा उत्सर्जित प्रदूषण को कम करने में काफी हद तक कारगर उपाय हो सकते हैं।

प्रदूषण की रोकथाम के लिए वृक्षों की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। इसके बावजूद वनों का विनाश चिन्तनीय है। वैज्ञानिकों के अनुसार पेट्रोल से चलने वाली एक कार के काले जहरीले धुएँ को शोषित करने के लिए 250 वृक्षों की आवश्यकता होती है। अतः वन का विनाश अविलंब रोकना तथा नगरों के हरा-भरा बनाना आवश्यक है। साथ ही साथ जरूरी है कि प्रदूषण रोकने के लिए समय-समय पर बनाये गये सभी नियमों का कड़ाई से पालन सुनिश्चित किया जाए अन्यथा निश्चित है कि 'सुरसा' के मुख की तरह बढ़ता यह प्रदूषण एक दिन हम सबको लील जाएगा।

(अभियान)

क्या आप जानते हैं?

इरफान ह्यूमन

जन विज्ञान मिशन, 67-अन्टा, शाहजहाँपुर-242001

इक्की ग्रेवीस्फीयर

यह पृथ्वी के चारों ओर ब्रह्माण्ड में गोलाकार सतह होती है, जिस पर पृथ्वी का गुरुत्वीय बल स्थिर होता है।

मोनो सोडियम ग्लूकोमेट

यह एक स्वादवर्धक रसायन है जिसका प्रयोग बिस्कुटों में किया जाता है। शोधकर्ताओं का विश्वास है कि मोनो सोडियम ग्लूकोमेट के प्रयोग से बारह साल के नीचे उम्र के बच्चों में मस्तिष्क नष्ट होने का खतरा रहता है।

टाप

वैज्ञानिकों ने करोड़ो न्यूट्रॉनों का एक्सीलेटर द्वारा टकराव करके उत्पन्न ऊर्जा का अध्ययन करके बाहर ऐसे टकराव पाये हैं जिसमें 'टाप' नामक छठें क्वार्क के अस्तित्व के प्रमाण मिले जबकि अभी तक पाँच प्रकार के ही क्वार्क खोजे जा सके हैं।

आर्मल कोलाइड

चन्द्रमा पर पाई जाने वाली चट्टानों में पृथ्वी के लिए एक अज्ञात धातु मिला, जिसे 'आर्मलकोलाइड' कहते हैं। यह नाम अंतरिक्ष यात्री- आर्मस्ट्रांग, अल्ड्रिन और कालिन्स के नाम पर रखा गया है।

सोहो

पृथ्वी से लगभग दस लाख मील दूरी पर जहाँ सौर गुरुत्वाकर्षण तथा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण सन्तुलित होते हैं, पर अमेरिकी अन्तरिक्ष अनुसंधान संस्थान 'नासा' तथा यूरोपीय स्पेस एजेन्सी ने 'सोहो' नामक एक ऐसा उपग्रह प्रक्षेपित किया है, जो सूर्य का स्पष्ट दृश्यावलोकन कर पृथ्वी पर सूर्य से उठने वाली लपटों के चित्र भेज रहा है।

साइबर स्पेस

संसार के लाखों कम्प्यूटर, करोड़ों लोगों के विचार व एकत्र की गई सूचनाओं का आदान-प्रदान जैसी 'सूचना-क्रान्ति' ने एक नए दृष्टिकोण को जन्म दिया है, जिससे एक नए अंतरिक्ष की परिकल्पना परिलक्षित हुई है, और इस परिकल्पित अंतरिक्ष को 'साइबर स्पेस' कहा गया है।

डेक्टाइल

इंटरनेशनल एस्ट्रोनोमिकल यूनियन द्वारा छुद्र ग्रह इडा के कक्ष में खोजे गए चन्द्रमा को **'डेक्टाइल'** के नाम से अनुमोदित किया गया है, जिसकी खोज अन्तरिक्ष अन्वेषीयान **'गैलीलियो'** ने की थी।

डाट एजिला

कालाज़ार रोग की जाँच के लिए रोगी की अँगुली से केवल एक बूँद रक्त लिया जाता है। इस नई तकनीक को 'डाट एजिला' कहते हैं।

प्राण ऊर्जा का संतुलन स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है

चंचलमल चौरड़िया

चौरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर—342 003
फोन : (O) 35096, 35471, (R) 621454, 37689

आत्मा अनन्त शक्ति का स्रोत

आत्मा अनन्त शक्ति का धारक है परन्तु कर्मों के आवरण के कारण उसकी ऊर्जा का पूर्ण विकास अवरूद्ध हो जाता है। जैसे ही कर्मों का आवरण सम्पूर्ण रूप से दूर हो जाता है तब ही उसकी अनन्त शक्ति प्रगट हो जाती है। उस अवस्था में उसको वर्तमान, भूत एवम् भविष्य के सारे पदार्थों की सूक्ष्मतम जानकारी हो जाती है। इसी कारण जब तक जीवन है तब तक उसमें ऊर्जा को अक्षय भंडार संग्रहति रहता है, जो मृत्यु अर्थात् शरीर में से आत्मा के निकल जाने के पश्चात् क्षीण हो जाता है। रोग की उत्पत्ति का भी प्रमुख कारण आत्मा से ही होता है। उसके अनुरूप वातावरण एवम् परिस्थितियाँ मिलती हैं। मनः स्थिति बनती है जिसकी अभिव्यक्ति पहले भावों के रूप में, फिर शरीर में अवयवों के परिवर्तन तथा अन्त में शारीरिक लक्षणों के रूप में होती है। हम प्रायः देखते हैं जब कोई व्यक्ति हमें नुकसान पहुँचाता है तो पहले मस्तिष्क इस बात का निर्णय करता है कि कितना नुकसान हुआ तथा उसके पश्चात् उस हानि की प्रतिक्रिया स्वरूप दुःख अथवा क्रोध की अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रकार जब हम किसी बुद्धिमान अथवा सज्जन व्यक्ति को अनहोनी हरकत करते देखते हैं तो मस्तिष्क की प्रतिक्रिया स्वरूप हँसी आती है। अतः उपचार करते समय जो चिकित्सा पद्धतियाँ रोग के शारीरिक लक्षणों तक ही अपना निदान और उपचार को सीमित रखती हैं उनसे भले ही बाह्य रोगों में राहत मिल जाये, रोग का पूर्ण उपचार संभव नहीं।

प्राण ऊर्जा क्या है?

संसार में दो तत्व मुख्य हैं। प्रथम जीव, आत्मा अथवा चेतना और दूसरा अजीव, जड़ या अचेतन। इन तत्त्वों से ही संम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की संरचना होती है। इसी आधार पर ऊर्जा को भी मोटे रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहली चैतन्य अथवा प्राण ऊर्जा और दूसरी भौतिक ऊर्जा। जिस ऊर्जा के निर्माण, वितरण, संचालन और नियन्त्रण हेतु चेतना की उपस्थिति आवश्यक होती है, उस ऊर्जा को प्राण ऊर्जा और बाकी सभी ऊर्जाओं को जड़ अथवा भौतिक ऊर्जा कहते हैं। भौतिक विज्ञान प्रायः जड़ पर ही आधारित होता है अतः उसकी सारी शोध एवम् चिन्तन जड़ पदार्थो के निर्माण तक ही

सीमित रहती है। जब तक शरीर में आत्मा अथवा चेतना का अस्तित्व रहता है प्राण ऊर्जा क्रियाशील होती है, परन्तु उसकी अनुपस्थिति में अर्थात् मृत्यु के पश्चात प्राण ऊर्जा के अभाव में मानव शरीर का कोई महत्व नहीं अतः उसे जला अथवा दफना कर नष्ट कर दिया जाता है। आत्मा अथवा चेतना अरूपी है। अतः उसकी प्राण ऊर्जा भी अरूपी होती है तथा शरीर में अदृश्य मार्गों से ही प्रवाहित होती है। फिर भी उसके प्रभावों का अनुभव किया जा सकता है।

प्राण ऊर्जा के असंतुलन से ही आवेग आते हैं। क्रोध, भय, चिंता, दुःख, निराशा अधीरता का परिणाम है। क्रोध में व्यक्ति दुःख को भूल जाता है। अधिक भय से कभी-कभी अचेतना तक आ सकती है। आनन्द, खुशी, प्रसन्नता सारे शरीर की रासायनिक प्रक्रिया बदल देती है। ज्यादा चिंता से भूख मर जाती है। आवेग का हृदय से तथा तनाव का मस्तिष्क से सीधा संबंध है। अतः इन अंगों की प्राण ऊर्जा को यदि किसी विधि द्वारा संतुलित कर दिया जावे तो उपचार अधिक प्रभावशाली हो जाता है। उपचार जितना उच्च स्तरीय होगा, प्रायः उतना ही शीघ्र, स्थायी एवम् प्रभावशाली होगा।

मानव जीवन में पर्याप्तियों की भूमिका

माँ के गर्भ में आते ही कर्मों की स्थिति के अनुसार जीव को एक विशेष प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है जिसके द्वारा जीव आहार को शरीर एवम् इन्द्रियों में परिणत करता है। इस परिणमन करने की जीवन–दायिनी मूल ऊर्जा को जैन धर्म में पर्याप्ति कहते हैं। मनुष्य को आहार, शरीर, इन्द्रिय के अलावा श्वासोच्छवास, भाषा और मन पर्याप्ति भी प्राप्त होती है। श्वासोच्छवास पर्याप्ति से ही वायुमण्डल से श्वसन योग्य पुद्‌गलों को ग्रहण कर शरीर के लिये आवश्यक विशेष ऊर्जा में परिणत करता है। भाषा पर्याप्ति के कारण ही जीव भाषा योग्य सूक्ष्म पुद्‌गलों को ग्रहण कर बोलने की योग्यता प्राप्त करता है। जिन जीवों में भाषा पर्याप्ति का अभाव होता है, वे मुँह होते हुए भी बोल नहीं सकते। मन पर्याप्ति के प्रभाव से जीव में मनोवर्गणा के पुद्‌गलों को ग्रहण कर द्रव्य मन की सहायता से चिन्तन मनन में परिणत करने की क्षमता प्राप्त होती है। जिन जीवों को मन पर्याप्ति प्राप्त नहीं होती, वे मनुष्य की भाँति मनन चिन्तन अध्ययन आदि नहीं कर सकते। उपचार करते समय जब तक चेतना के विकास के इस क्रम की उपेक्षा होगी, निदान अपूर्ण और उपचार अस्थायी होगा।

प्राण क्या है?

जिस शक्ति विशेष द्वारा जीव जीवित रहता है अर्थात् जीवन जीने की शक्ति को प्राण कहते हैं। कानों के द्वारा शब्दों को ग्रहण करने अथवा सुनने की शक्ति विशेष श्रोत इन्द्रिय बल प्राण, आखों के द्वारा देखने की शक्ति विशेष चक्षु इन्द्रिय बल प्राण। नासिका द्वारा गंध ग्रहण करने की शक्ति विशेष घ्राणेन्द्रिय बल प्राण, जीभ के द्वारा स्वाद पहिचानने की शक्ति विशेष रसनेन्द्रिय बल प्राण, पदार्थ में रहे हुये गर्म, ठंडे, भारी, हल्का, कोमल, कठोर आदि स्पर्शों को पहिचानने की शक्ति विशेष स्पर्शेन्द्रिय, बल प्राण, मन की सहायता से चिन्तन मनन करने की शक्ति विशेष मनोबल प्राण, भाषा वर्गणा के पुद्‌गलों की सहायता से वाणी की अभिव्यक्ति की विशेष ऊर्जा वचन बल प्राण। शरीर के माध्यम से उठने-बैठने, हलन-चलन करने की विशेष शक्ति काय बल प्राण, श्वासोच्छवास वर्गणा के पुद्‌गलों की सहायता से श्वास लेने और बाहर निकालने की शक्ति विशेष श्वासोच्छवास बल प्राण तथा निश्चित समय तक निश्चित भव में जीवित रहने की शक्ति विशेष आयुष्य बल प्राण कहलाती है। आयुष्य बल प्राण के अभाव में अन्य प्राणों का कोई अस्तित्व नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की एक निश्चित आयुष्य होती है जिसका निर्धारण उसके पूर्व भव में ही हो जाता है। अन्य प्राणों की स्थिति बदल सकती है। क्षय के साथ-साथ उन प्राणों का निर्माण भी हो सकता है। विविधता के कारण प्रत्येक व्यक्ति के सुनने, देखने, चखने, सूँघने, चिन्तन मनन करने, वाणी की अभिव्यक्ति आदि अलग-अलग होती है। कभी-कभी भौतिक उपचारों से कान, नाक,

चक्षु, जीभ आदि इन्द्रियों के द्रव्य उपकरणों में उत्पन्न खराबी को दूर किया जा सकता है परन्तु उनमें प्राण ऊर्जा न होने से भौतिक उपचार सफल नहीं होते। इसी कारण सभी नेत्रहीनों को नेत्र प्रत्यारोपण द्वारा रोशनी नहीं दिलाई जा सकती। सभी बहरे उपकरण लगाने के बाद भी सुन नहीं सकते।

ये सभी दस प्राण द्रव्य प्राण कहलाते हैं जो सभी योनियों के सभी जीवों में नहीं पाये जाते। परन्तु ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति चार भव प्राण कहलाते हैं जो कम ज्यादा मात्रा में अवश्य पाये जाते हैं।

प्राण ऊर्जा का अपव्यय हानिकारक

प्राण और पर्याप्तियों पर ही हमारा स्वास्थ्य निर्भर है। शरीर एवम् प्राण का परस्पर सम्बन्ध न जानने पर कोई भी व्यक्ति न तो प्राणों का अपव्यय अथवा दुरुपयोग ही रोक सकता है और न अपने आपको नीरोग ही रख सकता है। आत्मिक आनन्द और सच्ची शांति तो प्राण ऊर्जा के सदुपयोग से ही प्राप्त होती है। यही प्रत्येक मानव के जीवन का लक्ष्य है। प्रतिक्षण हमारे प्राणों का क्षय और निर्माण हो रहा है। अतः हमारी सारी प्रवृत्तियाँ यथा संभव सम्यक् होनी चाहिए। पांचों इन्द्रियों, मन, वचन, काया का संयम स्वास्थ्य में सहायक होता है तथा उनका असंयम रोगों को आमन्त्रित करता है। हवा, भोजन और पानी से ऊर्जा मिलती है। परन्तु उनका उपयोग कब, कैसे, कितना, कहाँ का ज्ञान और उसके अनुरूप आचरण आवश्यक है। स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग भी ऊर्जा के स्रोत हैं जिसका जीवन में आचरण आवश्यक है। प्राण ऊर्जा के सदुपयोग से शरीर स्वस्थ, मन संयमित, आत्मा और प्रज्ञा विकसित होती है।

शरीर से ही आत्मा और मन के भावों की अभिव्यक्ति होती है

मन शरीर के सभी विषयों को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। मन और वचन का अलग से कोई अस्तित्व नहीं। सभी बनते हैं काया के द्वारा। जो मन के लिये सामग्री चाहिये उसका आकर्षण काया के द्वारा होता है। मनन से पहले और मनन के बाद में भी मन नहीं होता। उसी प्रकार बोलने के पहिले और बोलने के पश्चात् भाषा नहीं होती। भाषा और मन का अस्तित्व शरीर पर निर्भर है। जीव शरीर को उत्पन्न करता है। शरीर वीर्य को उत्पन्न करता है और वीर्य, मन, वचन और काया की हलन-चलन को उत्पन्न करता है। सारी शक्ति का केन्द्र, सारी शक्ति का संचालन, नियन्त्रण और आत्मा की समस्त अभिव्यक्तियाँ शरीर के द्वारा ही होती हैं। शरीर हमारी सारी शक्ति का उत्पादक यंत्र है जहाँ से ये शक्तियाँ विभिन्न मार्गों में प्रवाहित होती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आत्मा से शरीर और मन, मस्तिष्क प्रभावित होते हैं, उसी प्रकार शरीर की गतिविधियों से मन और आत्मा भी प्रभावित होते हैं। जिस स्तर का रोग हो उसके अनुरूप उपचार करने से ही स्थायी एवं प्रभावशाली परिणाम शीघ्र प्राप्त होते हैं।

प्राण ऊर्जा का रूपान्तरण जीवन संचालन हेतु आवश्यक

हमारे शरीर का संचालन पूर्णतया आपसी सहयोग, तालमेल और समन्वय से होता है। शरीर के सभी अंगों और मस्तिष्क का कार्य अलग-अलग होता है। प्रत्येक कार्य के लिये ऊर्जा जरूरी है। अतः उसके लिये अलग-अलग प्रकार की विशेष ऊर्जाओं की आवश्यकता होती है, जिसका रूपान्तरण प्राण ऊर्जा से ही होता है। उसके क्षीण होते ही सारी क्रियायें ठप्प हो जाती हैं। जिस प्रकार चुम्बकीय ऊर्जा से विद्युत तथा विद्युत से चुम्बकीय ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। विद्युत ऊर्जा का प्रकाश, गर्मी, ठण्डक, वाहनों के चलन आदि रूपों में रूपान्तरण कर उपयोग लिया जा सकता है, उसी प्रकार प्राण ऊर्जा का भी शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं एवम् अंगों की आवश्यकतानुसार रूपान्तरण हो सकता है। किसी कारणवश शरीर के किसी भाग में उसकी क्रिया हेतु आवश्यक ऊर्जा नहीं मिलती है। तब संबन्धितभाग/ अंग/ उपांग/ अवयव रोगग्रस्त होने लगता है। परिणामस्वरूप उससे संबन्धित सारी गतिविधियाँ प्रभावित होने लगती हैं। दीर्घकाल तक ऐसी स्थिति बने रहने से रोग संक्रामक और असाध्य बन सकता है।

प्राण ऊर्जा का असंतुलन रोगों का मूल

शरीर में ऊर्जाओं का प्रवाह जिस मार्ग से होता है उन्हें मेरीडियन कहते हैं। जब शरीर में कोई रोग होता है तो उसका प्रभाव सारे शरीर में चारों तरफ प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से थोड़ा बहुत पड़ता है। जिस प्रकार विद्युत उपकरणों में जब क्षमता से अधिक वोल्टेज प्रवाहित हो तो उपकरण पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं

करते। ठीक उसी प्रकार जब किसी मेरीडियन में प्राण ऊर्जा का प्रवाह आवश्यकता से कम अथवा अधिक हो तो ऊर्जा असंतुलन के कारण उस मेरीडियन की ऊर्जा से संबंधित शरीर के अंग उपांग रोगग्रस्त हो जाते हैं। सारे शरीर में अन्य मेरीडियन की ऊर्जाएँ भी असंतुलित होने लगती हैं। लम्बे समय तक ऊर्जा का असंतुलन बने रहने से शारीरिक स्तर पर मांसपेशियाँ, रक्त परिभ्रमण, श्वसन, पाचन, हृदय की धड़कन, नाड़ी की गति, विजातीय तत्वों के विसर्जन आदि प्रभावित होने लगते हैं। परिणामस्वरूप मानसिक स्तर पर भूख, प्यास, निद्रा, थकान, अरुचि, बेचैनी, तनाव, पीड़ा, दर्द, चिड़चिड़ापन, मनोबल में कमी जैसी स्थितियाँ प्रकट होने लगती हैं। आत्मिक स्तर पर स्मरण शक्ति का विस्मृत होना, सम्यक प्रवृत्तियों के प्रति अरुचि अथवा उपेक्षा भाव इन्द्रियों और मन पर नियंत्रण न रख. पाना, स्वयं के लिये आवश्यक प्राथमिकता का ज्ञान विवेक न रहना तथा उसके अनुरूप आचरण न कर पाने जैसी स्थिति बनने लगती है। स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग में मन नहीं लगता। दूसरी तरफ ऊर्जा के असंतुलन के कारण रक्त,मल-मूत्र आदि अचयवों के रासायनिक तत्वों में परिवर्तन होने लगता है। शरीर का बाह्य संतुलन भी प्रभावित होने से, चलने-फिरने, उठने-बैठने में तकलीफ तथा अन्य लक्षण प्रकट होने लगते हैं। कमजोरी अनुभव होने लगती है। इन्द्रियों की क्षमताएँ क्षीण होने लगती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर के विभिन्न अंगों में प्रवाहित प्राण ऊर्जा का संतुलन शरीर की मुख्य आवश्यकता है। जिसके असंतुलन से न केवल शारीरिक स्तर पर दुष्प्रभाव पड़ता है अपितु मानसिक, भावात्मक और आत्मिक स्तर भी प्रभावति होते हैं। अतः जो उपचार प्राण-ऊर्जा के संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित होगा वह अधिक सनातन, व्यापक और प्रभावशाली होगा।

प्राण ऊर्जा के संतुलन बिना उपचार अपूर्ण

अधिकांश चिकित्सा पद्धतियाँ प्राण ऊर्जा के असंतुलन से पड़ने वाले प्रभावों को अपने-अपने ढंग से समझ, रोग का निदान और उपचार करती हैं। नाड़ी, वैद्य नाड़ी की गति के आधार पर बात-कफ-पित्त को शरीर में स्थिति द्वारा निदान करते हैं। ऐलोपैथिक चिकित्सक मल-मूत्र, रक्त के परीक्षणों तथा ई० सी० जी०, सोनोग्राफी, एक्स-रे, सी० टी० केन स्कैनिंग आदि के आधार पर रोग का निदान करते हैं। चन्द चिकित्सा पद्धतियाँ शरीर में विजातीय तत्वों की उपस्थिति को रोगों का एकमात्र कारण मानती हैं। शारीरिक विजातीय तत्वों को दूर कर शरीर को स्वस्थ बनाने तक ही अपने उपचार का ध्येय मानती हैं। उपचार करते समय मन व आत्मा के विजातीय तत्वों की तरफ उनका ध्यान नहीं जाता। शरीर जड़ है अतः बाजार से मिलने वाली दवाइयाँ अन्य खाद्य-पदार्थों और भौतिक उपकरणों की मदद से जड़ ऊर्जा तो मिल सकती है पर प्राण ऊर्जा नहीं। ऐसी चिकित्सा पद्धतियाँ अधिक से अधिक शरीर को ठीक कर सकती हैं। मानसिक व आत्मिक रोगों का उपचार तो स्वयं की चेतना से उत्पन्न प्राण ऊर्जाओं से ही संभव हो सकता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष हिंसा को प्रोत्साहन देने वाली चिकित्सा प्राण ऊर्जा का असंतुलन ही करती है, अतः रोगी को स्थायी रूप से मुक्त नहीं बना सकती।

उपसंहार

अतः जितना-जितना हम स्वयम् अथवा अन्य जीवों के सम्पूर्ण प्राणों का अपव्यय अथवा दुरुपयोग करेंगे उतना-उतना आरोग्य से भटक जायेंगे। जो चिकित्सा पद्धतियाँ प्राण ऊर्जा के संरक्षण में सहयोग देती हैं, उनकी अभिवृद्धि में सहयोग करती हैं, ये चाहे प्राणायाम्, ध्यान, कायोत्सर्ग हो अथवा अन्य पद्धतियाँ, सभी स्तर के रोगों से मुक्ति दिलाने में सक्षम होती हैं जो चिकित्सा शरीर में आवश्यकतानुसार प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियंत्रित कर सकती है। ये अत्यधिक प्रभावशाली होती हैं। प्राण ऊर्जा के संतुलन से न केवल शरीर अपितु मन और भावात्मक स्तर पर भी उपचार होता है। प्रत्येक व्यक्ति असीम शक्ति का स्रोत है। उपचार करते समय अच्छा चिकित्सक मात्र रोगी को जगाने का प्रयास करता है। सभी रोग एक जैसे नहीं होते। सभी ठीक नहीं होते। जिसके अन्दर का तत्व जागृत होगा उस पर प्रभाव पड़ेगा। रोगी को साथ जोड़ना होगा। वह बेहोश है। अज्ञानी है, ना समझ है। सम्पूर्ण ऊर्जा संतुलन का उद्देश्य जो परम तत्व अन्दर है उसको प्रकट करना। समभाव में आना, राग द्वेष से मुक्त हो जाना। स्व में स्थित होना। नर से नारायण और आत्मा को परमात्मा बनाना। यही स्थायी उपचार है। जितना-जितना प्राण ऊर्जा का संतुलन होगा, उसी अनुपात में हम रोग मुक्त होते जायेंगे। ❑

शुष्क वनों के नाशीकीटों के नियन्त्रण में वानस्पतिक कीटनाशकों की भूमिका

सहदेव चौहान व डॉ० एस. आई. अहमद

म. नं. 43-ए, ए. सी. एफ. सी. कॉलोनी,
लोको शेड, जोधपुर-342001

वानिकी एवं कृषि में प्रायः कीटों का प्रकोप एवं आक्रमण पेड़-पौधों की प्रारंभिक अवस्था से लेकर जीवन-पर्यन्त तक होता रहता है। ये कीट-पतंग, बीजों, पत्तियों, जड़ों, तनों एवं इनकी कोमल शाखाओं को बहुत हानि पहुँचाते रहते हैं। इनके नियन्त्रण के लिए विभिन्न प्रकार की विधियाँ प्रचलित हैं, जिनमें भौतिक, यांत्रिक, जैवीय, कीट, कृषिगत, प्राकृतिक एवं रासायनिक कीट नियन्त्रण सम्मिलित हैं। व्यावहारिक तौर पर आज भी रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कीट-नियन्त्रण में हो रहा है, क्योंकि इनसे, कम समय में एवं कम लागत में कीट नियन्त्रण होता है। इनके बारम्बार एवं अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण में जल, मृदा, वायु आदि में ये अपने अवशेष छोड़ते रहते हैं, जिससे वातावरण में प्रदूषण फैलता है। कीट भी इनके प्रति प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाते रहते हैं, जिससे कीटनाशकों की अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। आज यह गंभीर चिन्ता का विषय है। अतः आज रासायनिक कीट-नियन्त्रण के विकल्प को ढूँढ़ना होगा, जो कि जैविक नियन्त्रण एवं वानस्पतिक कीटनाशकों के उपयोग में निहित है। यह पर्यावरण के लिये भी उपयुक्त है। (ढमढेरे 1987, अटवाल, 1986)।

पेड़-पौधों की जड़, तना, पत्ती, बीज, गूदा या छाल का अर्क जब कीट-पतंगों को मारने, भगाने या उनके खाने में रुकावट डालने के लिए उपयोग में लाया जाता है, तो इस प्रकार के कीट-नियन्त्रण को वानस्पतिक कीट-नियन्त्रण की संज्ञा देते हैं। इनमें प्रमुख वर्ग, अजाडेरिक्टिन, निकोटिनाइड्स, रोटिनायड्स, पायरेथ्रम आदि हैं, जो लीफ माइनर (पर्ण सुरंगक), पत्ती भृंग कीट, स्केल कीट, लेपिडोप्टरस लार्वा, वरूथी, टिड्डी एवं भंडारण में लगने वाले कीट-पतंगों को नियंत्रित करने के लिए उपयोग में आते हैं।

शुष्क क्षेत्रों में भी वन-वृक्षों को विभिन्न प्रकार के कीट हानि पहुँचाते रहते हैं। इस क्षेत्र में पाए जाने वाले वन-वृक्षों जैसे देशी बबूल (**अकेसिया निलोटिका**), खेजड़ी (**प्रोसोपिस सिनेरेरिया**), सीसम (**डलबर्जिया सिसू**), करंज (**पोन्गेमिया पिन्नाटा**), सीरस (**एलबीजिया लीबेक**) पर क्रमशः **यूप्रोक्टिस लूनाटा**, वरूथी (**माइट्स**), शीशम विपत्रक (**प्लेकोप्ट्रा रेफ्लेक्सा**), करंज पर्ण सुरंगक (**लिथोकोलिटिश विरग्युलाटा**) एवं सीरस विपत्रक (**लोआडमीया स्ट्रीगिविनाटा**) का प्रकोप एवं आक्रमण पाया जाता है।

वनस्पतिक कीटनाशकों के स्रोत एवं उनके कार्यकलाप

1. नीम (अजेडिरेक्टा इण्डिका) : नीम में अजेडिरिक्टन, नीम्बीडीन एवं मीलीनट्रायल नामक क्षाराभ पाये जाते हैं, जिनका प्रयोग वानस्पतिक कीटनाशकों के रूप में होता है। जब नीम से प्राप्त इन एलकोलॉयड्स का प्रयोग कीट-पतंगों पर किया जाता है तो कीट दूर भाग जाते हैं या भूखे रहकर मर जाते हैं। यह एक आँत्रिक विष है।

(1) नीम के बीजों (नीमोली) के अर्क का जब **पोप्लर**

डिफोलियटर के नियन्त्रण के लिए प्रयोगशाला में परीक्षण किया गया तो परीक्षण सफल रहा (भण्डारी व अन्य, 1988)।

(2) पत्तियों को काटने वाले कीटों (डिफोलियटरस) के लिये भी अजेडिरिक्टन का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के तौर पर बबूल विपत्रक (तारागामा शिवा) जो कि देशी बबूल (**अकेसिया निलोटिका**) को नुकसान पहुँचाता है (युसुफ व गौड, 1996)।

(3) नीम के बीजों का चूर्ण व गेहूँ के दानों को क्रमशः 1:100 के अनुपात में मिलाकर जो कि भंडारण में लगने वाले कीट जैसे छोटी सुसरी (**रायजोपरथा डोमिनिका**), लाल सुसरी या आटे का लाल भृंग (**ट्राइबोलियम कास्टेनियम**) आदि के नियन्त्रण में लाभदायक है (सीसमा व शीला, 1993)।

(4) एक किलोग्राम नीम की खली को पाँच लीटर पानी में एक सप्ताह तक भिगोने के बाद कपड़े से छानकर दस लीटर तक घोल बनाकर यदि नींबू पर आक्रमण करने वाले पर्ण-सुरंगक को नियन्त्रित किया जावे तो सफलता मिलती है।

(5) नीम की पत्तियों को बारीक टुकड़ों में काटकर यदि सूत्रकृमियों (नीमेटोड्स) के नियन्त्रण के लिये उपयोग में लाया जावे, तो इसका सफल प्रबन्धन होता है। नीम की पत्तियों के इन टुकड़ों को भूमि में मिलाया जावे, तो इन पौधों को कीटों के आक्रमण से बचाया जा सकता है (लाल व अन्य, 1965)।

(6) नीम की सूखी पत्तियों को गेहूँ एवं ज्वार के दानों के साथ मिलाकर उपयोग में लाने से निम्नांकित कीट-पतंगों का नियन्त्रण संभव है— श्लाभ (**इफीस्टिया क्यूटेला**), चावल का घुन (**क्लेन्ड्रा ओरायजी**), आटे का लाल भृंग (**ट्राइबोलियम कास्टीनियम**), अनाज की पंखी (**सिटोट्रोगा सिरीलिला**) और छोटी ससुरी (**रायजोपरथा डोमिनिका**)।

(7) सूखी निमोली को पीसकर बनाया हुआ पाउडर एक ग्राम प्रति एक लीटर पानी में मिलाकर यदि फुहार या छिड़काव (स्प्रे) कर दें, तो टिड्डे एवं टिड्डी आदि कीट फ़सल व वन-वृक्षों को नहीं खाते हैं (अहमद व अन्य, 1977, सिंह व सिंह, 1992)।

2. पायरेथ्रम : यह **क्राईसेन्थीमम सिनेरीफोलियम** तथा **क्राईसेन्थीमम कोक्सीनियम** नामक पौधों के फूलों को पीसकर, उनका रस निकालकर प्राप्त किया जाता है। इस रस में पाँच कीटनाशक क्षाराभ होते हैं, जिन्हें पाइरेथ्रिन्स प्रथम व पाइरेथ्रिन्स द्वितीय और सिनेरिन्स प्रथम व सिनेरिन्स द्वितीय एवं जासमोलिन नामों से पुकारते हैं। ये एस्टर्स होते हैं। ताज़े फूलों में ये 0.7 से 3% तक उपस्थित होते हैं।

पायरेथ्रम बहुत तेज़ स्पर्श विष है और सीधा तंत्रिका-तन्त्र पर प्रभाव डालता है। यह कीटों को शीघ्र ही बेहोश तो कर देता है, किन्तु उनकी मृत्यु कई दिनों बाद होती है। यह कीटों की ज्ञानेन्द्रियों तथा श्वसन छिद्रों में से होकर उनके शरीर में प्रवेश कर जाता है। इस तरह के वानस्पतिक कीटनाशकों का उपयोग सफेद मक्खियों, स्केल कीटों, विभिन्न प्रकार के पत्ती काटने एवं कुतरने वाले कीटों को नियन्त्रित करने के लिये किया जा सकता है (नॉयर व अन्य, 1989)।

3. पोंगेमिया ग्लेबरा : इससे 'पोंगेमिया केक' (खली) प्राप्त होती है जो कि विभिन्न प्रकार के कीटों के प्रकोप एवं आक्रमण से पेड़-पौधों को बचाती है। यह खली इसके बीजों को पीसकर बनाई जाती है। ग्राउण्ड बीटिल, ग्रब तथा अन्य प्रकार के मृदा में रहने वाले कीटों के विरुद्ध लाभदायक है। विस्तापित तम्बाकू की फ़सल में जब इसका उपयोग करते हैं तो यह उसे भूमिगत कीटों के आक्रमण से बचाती है।

4. तम्बाकू : इसकी प्रमुख दो किस्में हैं— **निकोटियाना टोबेकम** एवं **निकोटियाना रस्टिका**। इससे निकोटीन एवं अनाबसायन कीटनाशक प्राप्त होते हैं। इनकी मात्रा तम्बाकू की पत्तियों में 2 से 14% तक पायी जाती है (नायर व अन्य, 1989)।

निकोटीन बहुत ही तेज़ स्पर्श, आन्तरिक तथा धूम्रण विष है। यह कीटों की श्वास नलिकाओं में होकर प्रवेश कर जाता है। ऐसिटायल कोलिनिस्ट्रेज नामक इन्जाइम में रुकावट डालकर तन्त्रिका-तन्त्र को अचेत कर देता है, जिससे कीट मर जाते हैं। एक किलोग्राम तम्बाकू के अवशेषों को 10 लीटर पानी में 30 मिनट तक गर्म करते हैं। बाद में इसे ठण्डे पानी में एक दिन तक रखा रहने देते हैं। अन्त में इसका 30 लीटर तक घोल बनाकर इसमें 90 ग्राम साबुन मिला

देते हैं। इस प्रकार निर्मित पदार्थ को टोबेकोडिकॉक्सन कहते हैं। इसका उपयोग मॉहू, जैसिड्स, थ्रिप्स आदि के नियन्त्रण के लिए किया जाता है (अटवाल, 1986)।

5. रायनिया : यह **रायनिया स्पीसियोसा** नामक पौधे की जड़ एवं तने से प्राप्त किया जाता है, जो कि 0.16 से 0.2 प्रतिशत तक होता है। इसमें मुख्य विषैला एल्केलॉयड रायनोडीन होता है। यह पदार्थ स्थाई आन्तरिक एवं स्पर्शविष होता है। इसका प्रभाव लम्बे समय तक रहता है। इस तरह के वानस्पतिक कीटनाशकों का उपयोग लेपिडोप्टरस समुदाय के कीटों के नियन्त्रण के लिये किया जा सकता है। बैगन के तना भेदक एवं पत्ती कुतरने वाले कीटों के लिये भी इसका उपयोग किया जा सकता है।

6. लोबिलिया एक्सलसा : इस पौधे की एक किलो पत्तियों को बारीक टुकड़ों में काटकर एक दिन के लिये पानी में भिगो देते हैं। इसके बाद इसे छानकर इसका 20 लीटर तक घोल बना लिया जाता है एवं इस घोल में 60 ग्राम साबुन भी मिला देते हैं। इस प्रकार बने वानस्पतिक कीटनाशक को मॉहू (एफिड्स), टिन्जीड बग्स, वरूथी (माइट्स) को नियंत्रित करने के लिये किया जा सकता है। यह एक आन्तरिक स्पर्श विष होता है, जिससे उपचारित सतह के सम्पर्क में आने वाले कीट-पतंग मर जाते हैं।

7. सबडिल्ला : यह एक तेज स्पर्श एवं आन्तरिक कीटविष होता है, जो कि लिलियेसी कुल के **शीनोकौलन ऑफिसिनेल** नामक पौधे के बीजों से निकाला जाता है। कीटनाशक क्षमता इसमें उपस्थित क्षाराभ क्रमशः वेराटीन, सीवाडीन, वेराट्रीडीन की वजह से होती है। ये पदार्थ बीजों में 2-4% तक पाये जाते हैं। इस वनस्पतिक कीटनाशक का उपयोग घरेलू मक्खियों एवं भंडारण में लगने वाले कीट-पतंगों के प्रकोप एवं आक्रमण से बचाने के लिये किया जाता है (अटवाल, 1986)।

8. रोटिनॉयड्स : यह **डेरिस मैलासेन्सीस** और **डेरिस ऐलिप्टिका** की जड़ों में 4-9 प्रतिशत एवं **लोचोकार्पस युटिलीस** में 8-11 प्रतिशत तक पाया जाता है। इनसे प्राप्त होने वाला प्रमुख वनस्पतिक कीटनाशक रोटिनोन होता है। रोटीनोन बहुत तेज़ स्पर्श एवं आन्तरिक विष होता है। सभी प्रकार के चबाने व चूसने और काटने व चबाने वाले मुखांग वाले कीटों के विपरीत प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग सीरस पर लगने वाले लीफ माइनर, पत्ती भेदक व अन्य इसी प्रकार के कीट-पतंगों पर प्रभावकारी हो सकता है (शर्मा, 1984)।

9. टीफरोसिया : **टीफरोसिया वोजीली, टी. टोक्सीकॉरिया** व **टी. मेक्रोपोडा** से प्राप्त अर्क में मुख्य वनस्पतिक क्षाराभ टीफ्रोसीन होता है, जो कि एक तेज़ स्पर्श एवं आन्तरिक विष है। इस वनस्पतिक कीटनाशक का उपयोग सफेद मक्खी (ऐलयूरोडिड्स), लेपिडोप्टेरस लार्वा आदि को नियंत्रित करने के लिये किया जा सकता है।

10. लहसुन : लहसुन (**एलियम सेटाइवम**) से तेल प्राप्त कर उसको वानस्पतिक कीटनाशक के प्रयोग में लाते हैं। कीटनाशक क्षमता इसमें उपस्थित डायएलायल डायसल्फाइड एवं डायएलायल ट्राईसल्फाइड की वजह से होती है। इसका उपयोग मक्खी, मच्छरों के लार्वा आदि को नियंत्रित करने के लिये किया जाता है (डेविड़ व कुमारास्वामी, 1982)।

निष्कर्ष : कृषि एवं वानिकी में इस तरह के वनस्पतिक कीटनाशकों के उपयोग से जहाँ एक ओर पारिस्थितिक परिसंचरण का संतुलन बना रहेगा एवं पर्यावरण को कम क्षति होगी, वहीं दूसरी ओर परजीवियों, परभक्षियों एवं अन्य सूक्ष्म जीव-जन्तुओं को किसी प्रकार की कोई हानि नहीं होगी। प्रकृति में उपलब्ध पेड़-पौधों से ही हमें इस प्रकार के कीटनाशक उनकी जड़ों, तनों एवं पत्तियों, छाल, गूदा आदि से प्राप्त होंगे तो वन-सम्पदा का भी समुचित दोहन होगा। साथ ही साथ इन कीटनाशकों का अवशिष्ट प्रभाव भी पर्यावरण पर नहीं होता है जिससे कीटों का सफलतम प्रबन्धन होगा। सूक्ष्मजीवों जैसे जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ, विषाणु (वाइरस) परजीवियों, परभक्षियों एवं अन्य जीवधारियों द्वारा कीटों का नियन्त्रण जैविक-नियन्त्रण कहलाता है। इसके बाद पर्यावरण को सबसे कम क्षति केवल वनस्पतिक कीटनाशकों के प्रयोग से ही होती है। अतः प्रकृति में उपलब्ध वन-सम्पदा का गंभीरता से अध्ययन कर इस तरह के पेड़-पौधों का पता लगाये जाने की अविलम्ब आवश्यकता है, जिनमें वनस्पतिक क़ीटनाशकों को निर्मित करने के लिए पर्याप्त क्षमता हो। इस तरह इन वनस्पतिक क्षाराभों का अधिकतम उपयोग होगा एवं कीट-पतंगों के प्रबन्धन में ये वनस्पतिक कीटनाशक अपनी अहम् भूमिका का निर्वाह भी सफलतापूर्वक कर सकेंगे। ❑

खनिजों के खनन से पैदा होने वाले रोग

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक, भूगर्भ, इंजिनियरी कॉलेज भागलपुर-813210

आज किसी भी देश के विकास -स्तर के मूल्यांकन हेतु उस देश में होने वाले खनिज उत्पादन को एक महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय मापदंड माना जाता है । यही वजह है कि आज प्रत्येक देश अपने खनिज-स्रोतों का अधिक से अधिक दोहन कर विकास की दौड़ में अधिक से अधिक आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा है। इसके कारण देश का औद्योगिकीकरण तथा विकास तो अवश्य हो रहा है, परन्तु इससे पर्यावरण - प्रदूषण की भीषण समस्या पैदा हो रही है तथा लोग अनेक प्रकार के रोगों का शिकार बन रहे हैं । खनिजों के खनन के कारण हमारे पर्यावरण के सभी घटक प्रदूषित हो रहे हैं जिनमें शामिल हैं भूमि, जल तथा वायु।

अनेक रोगों की उत्पत्ति साँस द्वारा धूल को ग्रहण करने के कारण होती है। वायुमण्डल में उन क्षेत्रों में धूल अधिक पायी जाती है जहाँ खनिजों को प्राप्त करने के लिए चट्टानों को तोड़ा-फोड़ा जाता है। मानव स्वास्थ्य पर धूल का क्या प्रभाव पड़ता है, यह जानने के लिए पहले यह मालूम कर लेना आवश्यक है कि यह धूल किस प्रकार के चट्टानों से उत्पन्न होती है। धूल का खनिज संघटन तथा वायुमण्डल में उसका परिमाण अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग हो सकता है।

मरुस्थल में उपस्थित वायुमण्डल में निलंबित बालू के कण या गलियों में बहने वाली हवा में पाये जाने वाले बालू के कण, जिनके सम्पर्क में हम सामान्य तौर पर आते हैं, इतने बड़े-बड़े होते हैं कि वे हमारी नाक में उपस्थित बालों में फँस कर रह जाते हैं तथा वे फेफड़े में नहीं पहुँच पाते। हमारे फेफड़ों में सिर्फ वे ही धूल-कण पहुँच पाते हैं जिनका आकार पाँच माइक्रान (एक माइक्रान एक मिलीमीटर के हजारवें भाग के बराबर होता है) या उससे छोटा रहता है। हाल में किये गये अध्ययनों से जानकारी मिली है कि अधिकांश खानों में उपस्थित वायु में इस आकार के धूल-कण काफी संख्या में पाये जाते हैं।

हंटर नामक एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने 'सिलिकॉसिस' रोग के कारण मृत्यु को प्राप्त व्यक्तियों के फेफड़ों का अध्ययन किया। उसने पाया कि ऐसे व्यक्तियों के फेफड़ों में धूल-कण मौजूद रहते हैं, उनमें से अधिकांश कणों का आकार एक माइक्रौन या उससे छोटा रहताहै। अभी तक किये गये अनेक अध्ययनों के आधार पर वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सिलिकॉसिस नामक रोग साँस द्वारा मुक्त या असंयुक्त सिलिका कणों के फेफड़ों में पहुँचने के कारण होता है। अतः जिन खनिजों या शैलों में मुक्त सिलिका शामिल नहीं रहता उनके खनन के दौरान उठने वाली धूल के फेफड़ों में पहुँचने से सिलिकॉसिस होने की संभावना नहीं रहती। जिन खनिजों के खनन के दौरान उठने वाली धूल से सिलिकॉसिस होने का डर रहता है उनमें शामिल हैं– ट्रीमोलाइट तथा क्राइसोटाइल एस्बेस्टस, सर्पेंटीन, सिलिमेनाइट, रॉक तथा स्फटिक इत्यादि। जिन प्रमुख शैलों के खनन के दौरान उठने वाली धूल से सिलिकॉसिस होने का डर रहता है उनमें शामिल हैं– ग्रेनाइट, पेगमेटाइट, बलुआ पत्थर, शेटा, क्वार्जाइट तथा पेरिडोटाइट इत्यादि।

सिलिकॉसिस रोग के कारण मरने वाले व्यक्तियों के फेफड़ों में जमा हुए धूल-कणों के खनिज विश्लेषण से पता चला है कि सर्वाधिक खतरनाक खनिजों में वैसे सिलिकायुक्त खनिज शामिल हैं जिनकी आकृति रेशेदार (फाइब्रस) होती है। इस प्रकार शुद्ध स्फटिक (क्वार्ज) उतना खतरनाक नहीं है जितना खतरनाक क्राइसोलाइट तथा ट्रीमोलाइट नामक एस्बेस्टस हैं। सिलिकॉसिस रोग से ग्रस्त रोगियों के फेफड़े में

ऊतक सूक्ष्म तथा रेशेदार किस्म के सिलिकेट कणों के द्वारा विशेष प्रकार की संरचना विकसित कर लेते हैं। हालांकि इस प्रकार के अध्ययन प्रारम्भ में सिर्फ पोस्टमार्टम के दौरान ही हो पाते थे, परन्त उपयोगी निष्कर्षों को प्राप्त करने की दिशा में उनका बहुत अधिक महत्व था। अब तो शल्य-क्रिया के दौरान भी इस प्रकार के अध्ययन चलाये जा रहे हैं। इस प्रकार के अध्ययनों के आधार पर चिकित्सा वैज्ञानिक रोगियों को अनेक प्रकार के उपयोगी परामर्श दे सकते हैं। इन अध्ययनों के आधार पर खानों के मालिकों को भी आवश्यक दिशा-निर्देश दिये जा सकते हैं। खान मालिकों को आगाह किया जा सकता है कि रेशेदार खनिजों (जैसे एस्बेस्टस इत्यादि) के खनन के दौरान उन्हें क्या सावधानी बरतनी है।

सिलिकॉसिस के समान ही एक अन्य खतरनाक रोग 'न्युमोकॉनियोसिस' होता है। यह रोग कोयला खानों में काम करने वालों को होता है। चूँकि यह रोग शीघ्र अपना प्रभाव नहीं दिखाता, अतः कई शताब्दियों तक लोग इसके खतरे को नहीं समझ पाये। कोयला खान से उठने वाली धूल में कोयला के कणों के साथ-साथ सिलिका कण भी मौजूद रहते हैं। ये दोनों प्रकार के कण साँस द्वारा फेफड़ों में पहुँचकर धीरे-धीरे 'न्युमोकॉनियोसिस' नामक रोग को जन्म देते हैं। यह रोग इतनी धीमी गति से विकसित होता है कि अधिकांश स्थितियों में खान कर्मचारी सेवामुक्त होने के बाद इसका प्रभाव अनुभव करता है। परन्तु तब तक बहुत अधिक विलम्ब हो चुका होता है।

रोग पैदा करने के दृष्टिकोण से सबसे अधिक खतरनाक होता है रेडियोधर्मी खनिजों का खनन। ऐसे खनिजों के खनन के दौरान उठने वाली धूल-कण रेडियोधर्मी किरणों का विकिरण करते रहते हैं। ये अदृश्य किरणें होती हैं जो जीवों को गुप्त रूप से प्रभावित करती हैं। ऐसे खनिजों के कण जब सांस द्वारा फेफड़े में पहुचते हैं तो वहाँ उस जीव के पूरे जीवन भर पड़े रहकर अदृश्य रेडियोधर्मी किरणों का विकिरण करते रहते हैं तथा उस व्यक्ति के स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित करते रहते हैं।

हाल ही में बिहार विधान परिषद् द्वारा गठित पर्यावरण समिति के अधीनस्थ चिकित्सा वैज्ञानिकों के एक दल ने बिहार में स्थित जादूगुड़ा यूरेनियम खान के आस-पास रहने वाले लगभग 2900 लोगों की जाँच की। इस जाँच से पता चला कि खान में काम करने वाले अनेक व्यक्ति कैंसर तथा ल्युकीमिया से ग्रस्त होकर अपना दम तोड़ चुके हैं। अनेक व्यक्तियों को कैंसर की चिकित्सा हेतु जमशेदपुर स्थित 'मेहरबाई टाटा मेमेरियल हॉस्पिटल' में भर्ती किया जा चुका है। कई व्यक्ति यकृत तथा प्लीहा की जलन से परेशान थे तो कई व्यक्ति'ऑस्टियोपोरोसिस' से ग्रस्त थे। कुछ महिलाएँ बार-बार होने वाले गर्भपात से परेशान थीं तो कुछ अन्य महिलाएँ 'अमोनेरिया' (मासिक स्राव का अभाव) नामक रोग से। कई महिलाओं ने ऐसे बच्चों को जन्म दिया जो शारीरिक रूप से विकलांग तथा मानसिक विकृति से ग्रस्त थे।

जादूगड़ा क्षेत्र में रेडियोधर्मी विकिरण द्वारा फैलने वाले प्रदूषण से सिर्फ मानव ही नहीं प्रभावित हुए हैं, अपितु पशु-पक्षी, जलचर तथा पेड़-पौधे भी इसकी चपेट में आ गये हैं। इस क्षेत्र में पैदा होने वाले प्रमुख वृक्ष केंदू के फलों का जब रेडियो समस्थानिक प्रयोगशाला में विश्लेषण किया गया तो उसमें विकिरण स्तर लगभग 3 रैड पाया गया जो मान्य स्तर से बहुत अधिक ऊँचा है। वस्तुतः होता यह है कि खान से प्राप्त अयस्क में से उपयोगी पदार्थ निकाल लेने के बाद कचरे को निकटवर्ती गाँवों में स्थित कुछ गड्ढों (टेलिंग पांड) में डाल दिया जाता है। यह कचरा भी रेडियोधर्मी किरणों का विकिरण करता रहता है। टेलिंग पांड का यह कचरा हवा तथा पानी के साथ प्रवाहित होकर आस-पास के क्षेत्र में फैल जाता है तथा वहाँ की मिट्टी में मिल जाता है। इस मिट्टी पर उगने वाले पौधे रेडियोधर्मी विकिरण से प्रभावित होते रहते हैं। फिर इन वनस्पतियों को आहार के रूप में ग्रहण करने वाले जीव-जन्तु भी इसकी चपेट में आ जाते हैं।

खनिजों के खनन के दौरान धूल उड़ने की क्रिया को नियंत्रित करने के लिए आजकल कई तरीके अपनाये जाते हैं। इन विधियों में शामिल हैं- खानों में ताजी हवा के आवागमन का पूरा प्रबन्ध करना तथा जल का छिड़काव। हाल में सिलिकॉसिस की रोकथाम के लिए 'प्रोफाइलौक्सिस' नामक विधि को अपनाया जाने लगा है। इस विधि में खान कर्मचारी को खान में काम हेतु जाने के पहले अल्प मात्रा में एल्युमिनियम धातु की धूल सूँघने को दी जाती है। जब एल्युमिनियम धूल के सम्पर्क में सिलिका धूल आती है तो वह अघुलनशील तथा निष्क्रिय बन जाती है। इस कारणवश वह फेफड़े में अपना प्रभाव नहीं डाल पाती है। ❑

जब आँखों से कटेगा टिकट

इरफान ह्यूमन
निदेशक, साइंस टाइम्स न्यूज एंड व्यूज, 67-अण्टा, शाहजहाँपुर-242001

आँखें प्रकृति की एक अनोखी और अनमोल देन हैं तथा यह सत्य है कि मुख से कुछ कहे बिना आँखों से बातें ही नहीं की जा सकतीं बल्कि किसी के भावों और विचारों को उसकी आँखों से पढ़ा जा सकता है। अब वैज्ञानिक एक ऐसी मशीन का विकास कर रहे हैं जो यात्रियों की आँखों में झाँककर किराया लेना आसान कर देगी।

हमारे शरीर में ऐसे संवेदांग अथवा ग्राही अंग (रिसेप्टर आर्गन) होते हैं जो वातावरण में होने वाले परिवर्तनों से सचेत रखने में हमारी सहायता करते हैं। भूख, प्यास, पीड़ा, रुधिर-दाब, शरीर-संतुलन आदि के उद्दीपनों को ग्रहण करने वाले अंतर-ग्राही अंगों तथा आँख, कान, नाक और त्वचीय बाह्य-ग्राही अंगों में आँख हमारे शरीर का एक महत्वपूर्ण संवेदांग हैं। लेकिन किसी व्यक्ति की आँखों में झाँककर उसकी पहचान कैसे की जा सकती है? इसको समझने के लिए पहले नेत्र की संरचना जानना जरूरी है।

प्रत्येक नेत्र खोपड़ी के मजबूत नेत्र-कोठर (ऑरबिट) में स्थित होता है, जिसका लगभग 1/5 भाग बाहर दिखाई पड़ता है। नेत्र-गोलक (आई बाल) तीन स्तरों से मिलकर बनता है- दृढ़ पटल (स्कलेट्रोटिक), जो बाहर की ओर होता है, रक्तक पटल (कोरोयड), जो बीच में होता है तथा एक दृष्टिपटल (रेटिना), जो भीतर की ओर होता है। दृढ़ पटल रक्त पटल से चिपका रहता है और नेत्र-गोलक के सामने महीन और पारदर्शक होकर कॉर्निया बनता है। नेत्र गोलक के सामने के भाग में अर्थात् कॉर्निया के पीछे रक्त पटल स्तर दृढ़पटल से अलग होकर भीतर की ओर झुक जाता है। इस प्रकार कॉर्निया के पीछे एक रंगीन परदा बन जाता है जिसे उपतारा अर्थात् आइरिस कहते हैं। उपतारा के कारण ही मनुष्य की आँख का रंग काला, नीला या भूरा होता है।

आँख की पुतली के चारों ओर एक उपतारा पट्टी के किनारे-किनारे आरोपित वर्तुल या सरकुलर स्फिंक्टर फैली होती हैं, जिनके संकुचन से पुतली का व्यास घटता या बढ़ता है। इस प्रकार उपतारा कैमरे के डायफ्रेम की भाँति कार्य करके गोलक में जाने वाले प्रकाश की मात्रा का नियमन करता है। अब वैज्ञानिक इसी उपतारा की सहायता से एक नई प्रौद्योगिकी के प्रयोग से रेल यात्रियों से किराया लेना आसान बनाने जा रहे हैं।

एक अमेरिकी कम्पनी ऐसी मशीन का विकास कर रही है जिससे रेल-यात्रियों की आँखों में झांककर उनकी पहचान की जा सकती है। वैज्ञानिकों के अनुसार हर व्यक्ति की आँख के उपतारा में उपस्थित छोटी-छोटी रेखाओं की स्थिति अलग-अलग होती है अर्थात् कोई भी दो व्यक्तियों का उपतारा समान नहीं होता। "आइरिस स्केन" कहलाने वाली इस नई उपतारा परीक्षण प्रणाली में एक विशेष कैमरे की सहायता से उपतारा की जाँच करके यात्रियों की पहचान की जा सकती है।

'आइरिस स्कैन' के विकास के बाद यात्रियों को हर बार रेल की यात्रा करने से पहले किराया या अन्य कोई टिकट अथवा प्रवेश पत्र देने की जरूरत नहीं रहेगी। इस प्रणाली का उपयोग करने के लिए किसी भी रेल यात्री को पहले मनचाही रेलों पर यात्रा करने के लिए पर्याप्त किराया देना होगा, फिर जितनी बार वह यात्री रेल से यात्रा करेगा इस 'आइरिस स्केन' में हर बार किराया उसी में से घटाया जाता रहेगा।

इक्कीसवीं सदी में एक दिन वह भी होगा जब रेलवे स्टेशनों पर टिकट खिड़कियों के स्थान पर 'आइरिस स्केन' लगा होगा और ट्रेन पर चढ़ने से पहले यात्री को इस मशीन में झाँकना होगा। जब मशीन यात्री के उपतारा की जाँच कर लेगी तब वह उस यात्री के उपतारा की तुलना अन्य यात्रियों के उपतारा से करेगी जो मशीन में पहले से ही दर्ज होंगे।

'आइरिस स्केन' तकनीक का विकास माइकल सेक्स ने न्यूजर्सी राज्य की एक कम्पनी के लिए किया है। माइकल के अनुसार आइरिस प्रणाली उन प्रणालियों से तीव्र है जिनमें उँगलियों के निशान देखकर पहचान की जाती है। फिलहाल कुछ देशों की सार्वजनिक परिवहन सेवाएँ जल्द ही आइरिस स्केनिंग मशीनों का उपयोग करना प्रारम्भ कर देंगी और वह दिन दूर नहीं जब यह मशीन आपकी आँखों में झाँकेगी और आप मुस्कराए बिना नहीं रह पायेंगे। कम से कम प्रथम बार तो इसका स्पर्श पाकर आपके शरीर में एक अद्भुत रोमांच की लहर दौड़ ही जायेगी।

मंगल ग्रह पर जीवन के लक्षण का ताज़ा प्रमाण

श्रीमती अर्पिता मोहन

द्वारा श्रीमती प्रभा मोहन, 224 बी, तुलाराम बाग़, इलाहाबाद

मंगल ग्रह पर जीवन की संभावनाओं की खोज के सन्दर्भ में अमेरिकी वैज्ञानिकों का दावा है कि उन्होंने दक्षिणी ध्रुव की झीलों के सख्त बर्फ़ की चट्टानों के अन्दर जीवाणुओं (बैक्टीरिया) के उपनिवेश ढूँढ़ निकाले हैं।

अंटार्कटिका में पायी जाने वाली उथली झीलों की बर्फ की खुदाई (ड्रिलिंग) के दौरान शोधकर्ताओं के दल ने पाया कि जिन स्थानों पर पानी का तापमान हिमांक बिन्दु के ऊपर कभी-कभार ही जा पाता है, वहाँ सूक्ष्मजीव समुदाय के रूप में निवास करते हैं।

कॉखोलिस के ऑरेगन विश्वविद्यालय के श्री ब्रायन डी. लनोली के अनुसार, "जीवन हमारी पूर्व कल्पना से कहीं अधिक कठोर है।" श्री लनोली "सांइस" नामक शोध पत्रिका में प्रकाशित उपरोक्त विषय से संबंधित एक लेख के सह लेखक भी हैं। उनके अनुसार यदि सूक्ष्म जीव अंटार्कटिका की जमी हुई झीलों के अंदर रह सकते हैं तो यकीनन वृहस्पति (जुपिटर) ग्रह और मंगल ग्रह के जमे हुए सागर यूरोपा (Europa) की बर्फ़ीली टोपियों में भी होंगे ही। जब हम यह जानते ही हैं कि हमारे सौरमण्डल में अन्यत्र बर्फ़ पायी जाती है तो इस खोज के प्रकाश में यदि जीवन के लक्षण न पाये जायें तो यह एक आश्चर्य ही होगा। ऑरेगन प्रदेश के ही एक अन्य सहलेखक श्री स्टीफन जे. गिओबनोई के अनुसार अंटार्कटिका की छः झीलों की बर्फ़ की खुदाई के दौरान शोधकर्ताओं को सूक्ष्मजीवों के उपनिवेश मिले। तापमान सदैव हिमांक बिन्दु के नीचे रहने वाली झीलों की सतह से 6 (छः) से 8 (आठ) फुट नीचे उन्हें धूल और ग्रिट की एक पट्टी मिली। श्री गिओबनोई के अनुसार अंटार्कटिक ग्रीष्म के दौरान, जबकि सूर्य सदैव चमकता रहता है और धूल उड़-उड़ कर बर्फ़ पर गिरती रहती है, तो धूल के कण एक विशेष प्रकार का वातावरण पैदा कर देते हैं जिसमें सूक्ष्म जीवों का रहना संभव हो जाता है। वास्तविकता यह है कि धूल के कण, सौर्य ताप को अवशोषित कर, बर्फ़ के अन्दर धँसने लग जाते हैं और फिर तो दो-ढाई मीटर की गहराई तक पहुँचकर ही इनकी यात्रा समाप्त होती है। यहाँ इन धूल कणों के इर्द-गिर्द पानी का छोटा सा गड्ढा निर्मित हो जाता है। और यहीं सूक्ष्मजीव अपने समुदाय स्थापित करते हैं। ये झीलें एक विशेष प्रकार के निर्जन रेगिस्तान में बनती हैं जहाँ की वायु अर्त्यन्त शुष्क एवं वर्षा न्यूनतम होती है। झील की सतह की बर्फ़ निरन्तर अपरदित होती रहती है और इसी कारण पानी के गढ़े कमोवेश उसी स्थिति में बने रहते हैं।

सूक्ष्मजीवों के लिए सबसे अच्छा समय वह होता है जब सूर्य में चमक होती है। इस समय सूक्ष्मजीवों के कुछ संगठित समूह सूर्य की सहायता से प्रकाश संश्लेषण (फोटोसिंथेसिस) द्वारा भोजन बनाते हैं। किन्तु सुदूर अंटार्कटिका में पूरे वर्ष मौसम आंशिक रूप से अथवा पूर्णरूपेण अंधकारमय होता है।

श्री गिओबनोई के अनुसार सक्रिय सूक्ष्मजीव का तापमान आमतौर से शून्य डिग्री सेन्टीग्रेड होता है जो कि हिमांक बिन्दु के लगभग बराबर होता है, किन्तु शीतकाल में तो बर्फ़ीली बूंदों का तापमान –28.89 डिग्री सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। श्री गिओबनोई बताते हैं कि सूक्ष्मजीव वर्ष के अधिकांश समय जमी हुई अवस्था में रहते हैं फिर भी प्रतिकूल परिस्थितियों में उन्होंने स्वयं को वृद्धि के लिए ढाल लिया है। रोचक तथ्य यह है कि सूक्ष्मजीव विपरीत पर्यावरणीय परिस्थितियों में स्वयं को ढाल लेते हैं। सूक्ष्मजीवों का जमी हुई अवस्था में होने के बावजूद सक्रिय जीवन जीना पहली नज़र में देखने पर विरोधाभास प्रतीत होता है। मंगल ग्रह पर एवं यूरोपा उपग्रह में जोकि जमे हुए पानी (बर्फ़) से ढके हैं और जहाँ बर्फ़ीली टोपियाँ विद्यमान हों वहाँ भी सूक्ष्मजीवों का जीवित रहना संभव जान पड़ता है। इस बात की संभावना है कि बर्फ़ के अन्दर ही मिट्टी व धूल के कण काफी मात्रा में सौरशक्ति को अवशोषित करके बर्फ़ को पिघला कर जलीय गढ़े बना देते हैं, जहाँ सूक्ष्मजीव जीवित रह सकते हैं। इस प्रकार एक पूर्णतः नवीन छोटे से निवास-स्थल का निर्माण हो जाता है, जहाँ सूक्ष्मजीव-जन्य समुदाय की वृद्धि होती रहती है। ❑

वन सप्ताह महोत्सव

प्रस्तुति : श्रीमती अर्पिता मोहन

प्रत्येक वर्ष 1-7 जुलाई वन सप्ताह के रूप में मनाया जाता है। इसी श्रृंखला की कड़ी थी— प्रदेश की राजधानी लखनऊ में आयोजित एक शिविर।

शिविर का आयोजन वन विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा किया गया। इसके अन्तर्गत पर्यावरण केन्द्रित अनेक कार्यक्रम एवं प्रतियोगिताएँ हुई। मुख्य आकर्षण था— विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कला प्रतियोगिता। इसके अतिरिक्त इस शिविर की एक खास बात और रही। महिलाओं के लिए "क्विज" प्रतियोगिता। महिलाओं की समुचित भागीदारी के अभाव में किसी भी उद्देश्य की पूर्ति में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती, इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए वन विभाग ने महिलाओं में भी पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए उनको पूरी तरह से इस कार्यक्रम के साथ जोड़ने का प्रयास किया। प्रतियोगिताएँ प्राणि उद्यान के मुक्त प्रांगण में सम्पन्न हुई। शिविर के अन्त में पुरस्कार वितरण हुआ तथा विजेता प्रतियोगियों को पुरस्कार के रूप में प्रमाण-पत्र प्रदान किये गये।

शिविर पर्यावरण संबंधी अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं, वैज्ञानिकों एवं प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से आयोजित किया गया था। इस अवसर पर बोलते हुए श्री दिलीप कुमार, निदेशक, वन विभाग ने बढ़ते हुए प्रदूषण को रोकने के लिए पर्यावरण के प्रति जागरूक होने पर बल दिया। ❑

विज्ञान पहेलियाँ

डॉ० अरुण आर्य

प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग

विज्ञान संकाय, महाराज स० राव०वि०वि०, बड़ौदा, बड़ोदरा-390002

1. हम एक एवं बहुकोशीय
हम सूक्ष्म एवं सर्वव्यापी
हम स्वयंपोशी एवं परजीवी
हममें नाभिक-तंत्र अपर्याप्त है।

जी हाँ हम जीवाणु हैं।

2. हम सूक्ष्म एवं एककोशीय
हम मात्र परजीवी हैं
हमारी बाह्य भित्ति बनी लिपोप्रोटीन की
पाये जाते पादपों के संवहन ऊतक में

जी हाँ हम फाइटोप्लाज्म हैं।

3. हम केवल परजीवी हैं
पादप एवं जीवों में अपना आतंक दिखाते हैं

हमारा कवच प्रोटीनयुक्त
केन्द्रक अम्ल डी एन ए अथवा आर एन ए होताहै।

हमसे बचिये हम विषाणु हैं।

4. सोमरस के रूप में हों या ब्रेड के वेष में
शराब, खमीर एवं प्रतिजैविकों के निर्माण में
पृथ्वी को करते उपजाऊ, कहीं बीमारी फैलाते हैं
फल, बीजों एवं पत्तों में अपना आतंक दिखाते हैं।

जी हाँ, हम कवक हैं।

5. हम में कोई फूल, कोई फल, कोई दवा देता है
हम पर्यावरण का संतुलन बनाते हैं
वनों में खुशहाली, बागों में बहार लाते हैं
हम वो हस्ती हैं जो जन-जन में

जीवन को जुड़ा रखते हैं

जी हाँ, हम दरख्त हैं।

राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी : पर्यावरण एवं स्वास्थ्य

औद्योगिक विष-विज्ञान, अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ

27 व 28 फरवरी, 1998

डॉ० जयराज बिहारी, सचिव, संगोष्ठी

औद्योगिक विष विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, (आई०टी०आर०सी०) लखनऊ में 'पर्यावरण एवं स्वास्थ्य' विषय पर एक दो दिवसीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन लखनऊ स्थित वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद की चारों प्रयोगशालाओं - औद्योगिक विष विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, केन्द्रीय औषधीय अनुसंधान संस्थान, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान एवं केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, के संयुक्त तत्वधान में हुआ। समारोह का उद्‌घाटन दिनांक 27.2.1998 को प्रख्यात पर्यावरणविद श्री सुन्दरलाल बहुगुणा की अध्यक्षता में हुआ। परिषद के पूर्व संयुक्त सचिव श्री दिलीप कुमार, आयुक्त एवं प्रशासक, शारदा सहायक विकास परियोजना, उ०प्र० समारोह के मुख्य अतिथि थे।

संगोष्ठी मुख्यतया जिन विषयों पर केंद्रित रही उन्हें पाँच सत्रों में विभाजित किया गया था और वे हैं:-

1. पर्यावरण प्रदूषण : जनमानस परिवेश, कारण एवं निदान।
2. पर्यावरण, स्वास्थ्य एवं रोग नियंत्रण।
3. स्वास्थ्य एवं पर्यावरण में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका।
4. पर्यावरण नियंत्रण में वनस्पतियों का योगदान।
5. प्राकृतिक औषधि संपदा एवं जन स्वास्थ्य।

संगोष्ठी में 45 शोधपत्र देश के विभिन्न संस्थानों से प्राप्त हुए तथा लगभग 100 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

श्री बहुगुणा ने कहा कि मनुष्य अपनी सुख शांति व समृद्धि के लिए प्राकृतिक संसाधनों को समाप्त करता जा रहा है। वायु, जल तथा मिट्टी को भी बढ़ती आवश्यकताओं के लिए प्रदूषित किया जा रहा है। और कहा कि गम्भीरता इससे ही समझी जा सकती है कि गंगा जहाँ से निकली हैं वह स्थान भी प्लास्टिक के बढ़ते उपयोग के कारण प्रदूषित हो चुका है। उन्होंने कहा कि विज्ञान, वेदान्त और विश्वास इन तीनों के सम्बन्ध से ही मनुष्य तथा बाकी प्राणियों को जीने की शक्ति मिलती है।

श्री बहुगुणा ने कहा कि वैज्ञानिक गाँवों की ओर जायँ और प्राकृतिक संसाधनों को अधिक से अधिक सुरक्षित रखने व संयम से प्रयोग किये जाने के प्रति जागरूकता बढ़ायें और कहा कि विज्ञान सर्वप्रथम शक्ति है जो सत्यता के आधार पर सभी समस्याओं का निवारण कर सकती है।

उन्होंने कहा कि अधिक से अधिक और शीघ्रातिशीघ्र अनाज की उपज बढ़ाने के लिए किये जा रहे विभिन्न रसायनों के प्रयोग ने पानी और मिट्टी को इतना प्रदूषित कर दिया है कि मिट्टी को नशेबाज बना दिया है। आज मनुष्य थोड़े से कृत्रिम सुख, थोड़ी कृत्रिम शांति एवं भौतिक शांति प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहा है और पर्यावरण को दूषित करने का कारक बन रहा है। श्री बहुगुणा ने इस अवसर पर प्रस्तुत किये गये शोध पत्रों की सारांश पुस्तिका का विमोचन भी किया।

श्री दिलीप कुमार ने अपने उद्‌घाटन भाषण में दिल्ली में प्रदूषण की भयावह स्थिति का उल्लेख करते हुए इस बात पर जोर दिया कि वैज्ञानिकों को पर्यावरण सुधार एवं संरक्षण पर अधिक ध्यान देना चाहिए जिससे लखनऊ जैसे शहरों की स्थिति और न बिगड़ने पाये।

आई.टी.आर.सी. के निदेशक डॉ० प्रहलाद किशोर सेठ ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि हम खुद पर्यावरण प्रदूषण के लिए जिम्मेदार हैं और वैज्ञानिकों को ही इसका समाधान ढूँढ़ना पड़ेगा। जल प्रदूषण पर काबू पाने के लिए केन्द्र द्वारा किये उपायों के संदर्भ में उन्होंने बताया कि केन्द्र ने सचल जल विश्लेषण प्रयोगशाला का निर्माण किया है तथा अमृत कुम्भ नामक सस्ते उपकरण का प्रदूषित जल के शुद्धीकरण हेतु विकास किया गया है, जिससे घरेलू स्तर पर स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था संभव है।

राजभाषा समिति के उपाध्यक्ष डॉ० सुभाष कुमार खन्ना ने विज्ञान अब मानस तक पहुँचाने में पर्यावरण तथा स्वास्थ्य संबंधी वैज्ञानिक उपलब्धियों का राजभाषा में मूल्यांकन करने पर बल दिया और संगोष्ठी का संक्षिप्त विवरण एवं तकनीकी सत्रों की जानकारी दी।

उद्घाटन समारोह का संचालन एवं धन्यवाद ज्ञापन संगोष्ठी के संयोजक, केन्द्र के वैज्ञानिक डॉ० जयराज बिहारी ने किया और विश्वास व्यक्त किया कि जनभाषा एवं राजभाषा हिन्दी का प्रयोग पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के वैज्ञानिक तथ्यों को जन सामान्य तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण है तथा संगोष्ठी के माध्यम से समाज में मानव स्वास्थ्य एवं समस्याओं के समाधान हेतु दिशादर्शन करने में संगोष्ठी विज्ञान एवं भाषा के योगदान को सिद्ध करेगी।

अपने विशेष व्याख्यान में प्रोफेसर आर०सी० सक्सेना, अध्यक्ष फार्माकालॉजी विभाग के०जी० मेडिकल कॉलेज लखनऊ ने औषधियों पर निर्भरता एवं सामाजिक प्रदूषण पर प्रकाश डाला और कहा कि मदिरालय, धूम्रपान व औषधिपान के फलस्वरूप सामाजिक अपराध, पारिवारिक क्लेश, मानसिक असंतुलन, त्रुटिपूर्ण निर्णय के कारण दुर्घटनायें, यौन सम्बन्धी अपराध एवं विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ जन्म लेती हैं जिससे जीना दूभर हो जाता है और परामर्श दिया कि इनसे बचकर ही रहना उचित है। प्रमुख वक्ताओं में प्रथम दिन सुश्री डॉ० विनीता सिंघल, तकनीकी शब्दावली आयोग के पूर्व निदेशक डॉ० हरिमोहन कृष्ण सक्सेना एवं डॉ० मुकुलचन्द पाण्डेय थे जिन्होंने क्रमशः विज्ञान का हिन्दी माध्यम में संचार की स्थिति, भाषिक पक्ष पर तथा धरती की भूख से मानव जीवन के खतरे से अवगत कराया। वैज्ञानिक कार्टून साइन्टून के सुन्दर व्यंग्य के माध्यम से मनुष्य द्वारा पर्यावरण पर किये जा रहे प्रहार के वैज्ञानिक तथ्यों को डॉ० प्रदीप श्रीवास्तव ने अत्यंत रोमांचक ढंग से प्रस्तुत किया। दूसरे दिन प्रस्तुत शोध पत्रों में सिमैप के डॉ० राकेश पाण्डे, हसन तनवीर, एच०बी० सिंह द्वारा पादप सूत्र कृमियों के द्वारा जैवीय नियंत्रण पर डा० रामचन्द्रा एवं अरुण शर्मा तथा मंजूषा चौबे ने औद्योगिक कचरों को विष रहित करने में वनस्पतियों के योगदान पर व्याख्यान दिये। डॉ० वी०बी० प्रताप, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, नेत्र विभाग के०जी० मेडिकल कालेज लखनऊ ने वाहन के द्वारा प्रदूषण की गंभीर समस्या एवं नेत्र तथा फेफड़ों पर प्रदूषण के कुप्रभाव पर अपना शोधपत्र (उन्हीं के अनुसार मातृभाषा में प्रथम) प्रस्तुत किया अन्त में डॉ० रमेश दत्त शर्मा ने हिन्दी में स्वस्थ पत्रकारिता के विकास एवं पर्यावरण पत्रकारिता की स्थिति का उल्लेख किया। बिगड़ती हवा की दवा शीर्षक से प्रकाशित रचना में उद्घृत बाल स्वरूप राही की भीतर है अंध कुआँ, बाहर से सिर्फ धुआँ, रमे कहाँ मेरा मन, का भी उल्लेख डॉ० शर्मा ने किया।

दूसरे दिन संगोष्ठी के तकनीकी सत्रों में 21 शोध पत्र प्रस्तुत किये गये तथा विभिन्न सत्रों में यह बात उभर कर आयी कि कृषि उत्पादन का अधिकांश भाग किसी न किसी पादप रोग से प्रभावित रहता है। इस क्षति को अरासायनिक तरीकों से कम करके पौधों की उपज बढ़ाई जा सकती है। वैज्ञानिकों ने कीटनाशकों के असंभावित प्रयोग से सावधान भी किया और कहा कि संभावित रोग नियंत्रण में जैविक नियंत्रण ही आज एक विकल्प दिखता है। संगोष्ठी का समापन राष्ट्रीय विज्ञान दिवस पर आयोजित प्रतियोगिताओं एवं प्रदर्शनी से हुआ जिसमें विभिन्न स्कूलों के छात्रों, छात्राओं को पुरस्कार दिया गया। इस अवसर पर आयोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन जर्मनी से आये अतिथि प्रोफेसर कुर्ट शैटेलिक, आखेन विश्वविद्यालय द्वारा किया गया। स्कूली बच्चों के लिए केन्द्र प्रातः 10 बजे से 4 बजे तक खुला रहा तथा केन्द्र में प्रयुक्त विभिन्न शोध क्रिया-कलापों तथा संबंधित उपकरणों के बारे में जनमानस को जानकारी प्रदान कराई गई। संगोष्ठी तथा विज्ञान दिवस समापन समारोह के मुख्य अतिथि लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर सूर्य प्रसाद दीक्षित तथा

समारोह की अध्यक्षता केन्द्र के पूर्व निदेशक रिखब चन्द श्रीमाल ने की।

प्रोफेसर दीक्षित ने समाज में वैचारिक प्रदूषण की बात पर बल दिया और इसे पर्यावरण प्रदूषण से भी अधिक खतरनाक बताया। उन्होंने वैज्ञानिकों से कहा कि वे आम लोगों की भाषा में संवाद स्थापित करें। उन्होंने बताया कि हमें अब अंग्रेजी कल्चर में पली-बढ़ी विदेशी तकनीक का सम्मोह छोड़ना होगा क्योंकि विदेशों से वही तकनीक दी जाती है, जो आउटडेटेड हो जाती है। और यदि हम अब भी वही विदेशी तकनीक अपनाये रहे तो हमारा देश पीछे रह जायेगा। प्रो० दीक्षित ने कहा कि आजादी के समय हमने अंग्रेजी को शासकों की भाषा कहते हुए स्वीकारना शुरू कर दिया तथा अपनी भाषा से दूर हो गये। हमने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अंग्रेजी की कृत्रिम दीवार खड़ी कर ली है जो विकास में अवरोध रही है। आज हम अंग्रेजी के वैचारिक प्रदूषण को दूर किये बिना पर्यावरण प्रदूषण दूर नहीं कर पायेंगे। उन्होंने कहा कि हिन्दी को विज्ञान के अध्ययन की भाषा बनाने की आवश्यकता है और जिससे हमारे वैज्ञानिक हिन्दी में कार्य करने की हिचक खत्म कर पायेंगे, उसी दिन हिन्दी विज्ञान के माध्यम की भाषा बन जायेगी।

समापन समारोह की अध्यक्षता कर रहे केन्द्र के पूर्व निदेशक डॉ० आर०सी० श्रीमाल ने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि हिन्दी की व्यावहारिक कठिनाइयों से निपटने के लिए हमें आज कार्यात्मक (फंक्शनल) हिन्दी का प्रयोग कर जनमानस को प्रदूषण की त्रासदी से बचाना होगा। तथा औद्योगीकरण इस भाँति करना है कि वह पर्यावरण हानिरहित हो। केन्द्र के निदेशक डॉ० सेठ ने कहा कि विज्ञान शब्दावली को सजह भाषा में प्रयोग करके हम विज्ञान को जनसाधारण से जोड़ पायेंगे।

विज्ञान दिवस के समारोह पर डॉ० जवाहर लाल काव ने प्रकाश डाला। संगोष्ठी में हुई चर्चाओं, प्रस्तुत शोध पत्रों की संक्षिप्त समीक्षा डॉ० जयराज बिहारी ने तथा समापन समारोह पर धन्यवाद ज्ञापन डॉ० दयाकृष्ण सक्सेना ने किया।

संगोष्ठी के समापन के उपरान्त एक सामूहिक चर्चा का भी आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता डॉ० आर०सी० श्रीमाल ने की, प्रो० सूर्य प्रकाश दीक्षित, डॉ० प्रहलाद किशोर सेठ, श्री मुकुल चन्द पाण्डेय व लखनऊ के जन प्रतिनिधि श्री भइया जी सहित अनेक प्रतिभागियों ने रुचि से इसमें भाग लिया एवं डॉ० जयराज बिहारी ने संचालन किया।

फलस्वरूप कुछ महत्वपूर्ण विचार उभर कर आये जो इस प्रकार हैंः-

1. वैज्ञानिक शोधपत्रों का आंकलन अन्य "इम्पैक्ट फैक्टर" जनरल में प्रकाशित लेखों के समकक्ष किये जाने पर ही हिन्दी में वैज्ञानिक कार्यों को सही माने में बढ़ावा दिया जा सकता है। हिन्दी भाषा में लिखे गए शोधपत्रों के लेखकों को पदोन्नति के समय प्राथमिकता देने का प्रावधान होना चाहिए।

2. वैज्ञानिक संगोष्ठियों के अवसर के अतिरिक्त हिन्दी वैज्ञानिक संगोष्ठियों की प्रतिभागिता हेतु अलग से अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

3. कृत्रिम रंगों के अवगुणों से विकसित देशों की जनता अब सचेत हो चुकी है, तथा जर्मनी जैसे देशों में अधिकांश रासायनिक रंग न तो खाद्य सामग्री को आकर्षक बनाने और न ही कपड़ा आदि रंगने में प्रयुक्त होते हैं। विभिन्न प्रकार के मिष्ठानों, बेकरी उत्पादों आदि में प्रयुक्त अवैध रंगों के प्रयोग के बारे में जागरूकता एवं नियमों के लागू किये जाने पर बल दिया जाना चाहिए।

4. पर्यावरण प्रदूषण से स्वास्थ्य पर कुप्रभाव विषय पर अधिकाधिक साहित्य प्रकाशन एवं प्रदर्शनी के माध्यम से तथा विभिन्न शहरों में इस प्रकार की संगोष्ठी प्रतिवर्ष आयोजित करके जन-जागरण की बात कही गई तथा राज्य स्तर पर इस हेतु एक समिति बनाये जाने का सुझाव दिया गया।

5. सप्ताह में एक दिन महानगरों में किसी वाहन के न चलाये जाने का मत व्यक्त किया गया।

6. टेम्पो के स्थान पर बैटरी चालित बसें चलाई जाएं जिनकी गति भले ही कुछ कम हो, प्रदूषण की रोकथाम हो सके तथा इस कार्य में स्वयं-सेवी संगठनों का योगदान लिया जाना चाहिए।

यह सभी सिफारिशें सम्बद्ध विभागों पर्यावरण वन, परिवहन विभाग तथा परिषद मुख्यालय को भेजी जायें। ❑

पुस्तक : हिन्दी में बाल विज्ञान लेखन

लेखक - डॉ० शिवगोपाल मिश्र

[**प्रकाशक** - उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1997, मूल्य - 50.00 रूपये, पृष्ठ- 6+90]

किसी भी राष्ट्र का भविष्य वहाँ के बालकों पर निर्भर करता है। आधुनिक युग विज्ञान का युग है, अतः बालकों को नवीन आविष्कारों और वैज्ञानिक विषयों की जानकारी देकर उनमें वैज्ञानिक चेतना का विकास करना आवश्यक है। यह वैज्ञानिक चेतना इस प्रकार विकसित की जानी चाहिए जिससे कि उनके ऊपर बोझ का अनुभव न हो। ऐसे में नई सूझ- बूझ से युक्त रोचक बालोपयोगी विज्ञान साहित्य की भूमिका बड़ी ही महत्वपूर्ण हो जाती है।

पिछले कुछ एक वर्षों में इस दिशा में काफी प्रयास हुए हैं और विज्ञान लेखकों द्वारा विविध प्रकार के बाल विज्ञान साहित्य का सृजन किया गया है। यही नहीं कुछ एक पुराने विज्ञान लेखकों ने भी बाल विज्ञान लेखन में रुचि लेना शुरू कर दिया है, जिससे कुछ अच्छा साहित्य प्रकाशित हो सका है। प्रकाशकों ने उनकी कृतियों को स्थान दिया है और सरकार ने भी उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कृत करना भी शुरू कर दिया है। किन्तु अभी तक इनके सर्वेक्षण का कोई प्रामाणिक कार्य न हो पाने की कमी खटकती रही है।

पुस्तक के लेखक डॉ० शिवगोपाल मिश्र, जो कि एक सिद्धहस्त व प्रसिद्ध हिन्दी विज्ञान लेखक हैं, ने 'हिन्दी में बाल विज्ञान लेखन' पुस्तक के माध्यम से इस कमी को, सीमित पृष्ठों में, पूरा करने का सफल प्रयास किया है। लेखक ने अपने सर्वेक्षण में लेखन से जुड़े सभी पहलुओं का अध्ययन किया है तथा उनका वर्णन किया है। स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता परवर्ती दोनों ही समय के लेखकों की सूची उनके कृतित्व, सृजनात्मक अवधि, प्रकाशन वर्ष के साथ ही प्रमुख महत्वपूर्ण बाल विज्ञान साहित्य का एक मूल्यांकन भी देने का प्रयास किया है, जिससे उपरोक्त सभी के विषय में हमें संक्षेप में जानकारी मिल जाती है और हमें बाल विज्ञान साहित्य के बारे में जानने के लिए इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता है। महत्वपूर्ण बाल विज्ञान लेखकों के बारे में जानने की जिज्ञासा को दृष्टिगत रखते हुए लेखक ने उनके बारे में भी थोड़ा बहुत परिचय प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

पुस्तक में जीवनी साहित्य, कथा तथा कहानी साहित्य, उपयोगी कोश साहित्य- तीन परिशिष्ट भी शामिल किये गये हैं, जिससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। सम्भव है कि इसमें कुछ बाल विज्ञान लेखकों अथवा कृतियों को स्थान न मिल पाया हो, लेकिन इतने मात्र से ही इस पुस्तक की उपयोगिता कम नहीं होती। यह अपने प्रकार की प्रथम पुस्तक है और लेखक ने दूर-दूर तक बिखरे साहित्य को एकत्रित करने का प्रयत्न किया है और इस प्रकार यह एक संग्रहणीय पुस्तक बन गयी है।

पुस्तक की छपाई, आवरण पृष्ठ आदि ठीक हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन से जुड़े सभी व्यक्ति बधाई के पात्र हैं।

—डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

पुस्तक - युग प्रवर्तक आविष्कार

लेखक- दिलीप एम० सालवी

[**अनुवादक** - आर० चेतनक्रान्ति, **प्रकाशक** - सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001, प्रथम संस्करण- 1997 मूल्य- 50.00 रुपये, पृष्ठ- 8+92]

हमारे मन में विविध प्रकार की वस्तुओं को देखकर मन कौतुहल से भर उठता है और विविध प्रकार की जिज्ञासाओं को जन्म देता है। इसमें से कुछ वस्तुएं हमारे दैनिक जीवन में काम आती हैं, तो कुछ अन्य प्रकार से उपयोगी होती हैं। पिछले कुछेक वर्षों में विज्ञान के क्षेत्र में काफी उन्नति व प्रगति हुई है, और हम इसका भरपूर लाभ उठाते रहे हैं। मोटरकार, रेल, हवाई जहाज, ट्रांजिस्टर, टेलिविजन आदि कुछ ऐसे आविष्कार हैं, जो हमारे जीवन के अंग बन चुके हैं। यही नहीं कम्प्यूटर के आविष्कार ने तो उसके आविष्कारक स्वयं मानव मस्तिष्क को ही चुनौती देना शुरू कर दिया है।

जरा कल्पना कीजिए ! यदि ये महत्वपूर्ण आविष्कार न हुए होते तो आज हम कैसा जीवन जी रहे होते? सच पूछा जाय तो आज से हजार वर्ष पूर्व का कोई मनुष्य यदि इस पृथ्वी पर अवतरित हो जाय, जब इन समस्त सुविधाओं का घोर अभाव था, तो यह सब देखकर आश्चर्य और विस्मय से भर जावेगा। उसे यह लगेगा, जैसे वह पृथ्वी पर न हो कर कोई स्वप्न देख रहा है। आखिर कौन थे वे लोग जिनके अथक परिश्रम व लगन से हम इन समस्त सुविधाओं का आनन्द उठा रहे हैं? इनका आविष्कार कैसे हुआ? जैसे प्रश्न स्वतः ही उभर कर सामने आते हैं। जिज्ञासु व्यक्ति इन समस्त प्रश्नों के उत्तर अविलम्ब चाहता है और समीक्ष्य पुस्तक ऐसी ही जिज्ञासाओं को शांत करती है।

किसी भी राष्ट्र का भविष्य उस राष्ट्र में विज्ञान की उन्नति व उसके अनुप्रयोग पर निर्भर करता है। अतएव नवीन आविष्कारों एवं उसके आविष्कारकों की जानकारी देकर जनसामान्य में वैज्ञानिक चेतना का विकास करना अपरिहार्य हो गया है। पुस्तक 'युग प्रवर्तक आविष्कार' में कुछ एसे ही आविष्कार एवं उनके आविष्कारकों के बारे में सूचना देकर विभिन्न प्रकार की जिज्ञासाओं का निराकरण करने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक में कुल 16 ऐसे आविष्कारों तथा आविष्कारकों का वर्णन किया गया है, जिसने मनुष्यों की जीवन-शैली बदल दी है। पुस्तक में कहीं-कहीं चित्रों का भी समावेश किया गया है फिर भी रेखाचित्रों की कमी खटकती है। शायद इनके होने से पुस्तक की विषय सामग्री और बोधगम्य हो गयी होती। इससे निश्चित रूप से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती। पुस्तक में कुछेक महत्वपूर्ण आविष्कारों के बारे में उल्लेख नहीं किया गया है, फिर भी इतने मात्र से पुस्तक की उपयोगिता का अंकन कम नहीं किया जा सकता है।

कुल मिलाकर देखा जाय तो लेखक दिलीप एम. सालवी अपने प्रयास में सफल हैं। अनुवादक आर. चेतनक्रान्ति इसके लिए विशेष बधाई के पात्र हैं, क्योंकि उन्हीं के प्रयास से यह पुस्तक हिन्दी पाठकों को उपलब्ध हो पायी है। पुस्तक की छपाई, प्रस्तुति, आवरण आदि बढ़िया है। इसके लिए प्रकाशन से जुड़े सभी व्यक्ति साधुवाद के पात्र हैं।

-डॉ. सुनील कुमार पाण्डेय
शोध सहयोगी, विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा सुमचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रनचाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका की अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 400.00 रु०, आधा पृष्ठ 200.00 रु०, चौथाई पृष्ठ 100.00 रु०

आवरण द्वितीय; तृतीय तथा चतुर्थ 1000.00 रु०

प्रेषक :

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

विज्ञान परिषद्

द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हजार रुपयों का पुरस्कार

- ❑ लेख अथवा पुरस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- ❑ केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- ❑ लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
- ❑ लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- ❑ इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- ❑ लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- ❑ विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- ❑ वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च 1999 है।
- ❑ पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार

'विज्ञान' में प्रकाशित रचनाओं में से वर्ष की सर्वश्रेष्ठ तीन रचनाओं को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार तथा प्रमाण-पत्र प्रदान किये जाते हैं।

लेख निम्न पते पर भेजें :

संपादक : **विज्ञान**

विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 84 अंक 6

सितम्बर 1998

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

एक प्रति : 5 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सहायक सम्पादक

डॉ० दिनेश मणि

मुद्रक

सुधीर श्रीवास्तव

ट्रोजन कम्प्यूटर्स, इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

इस अंक में

1. विज्ञान वक्तव्य — 1-2
2. अनुपम व्यक्तित्व के धनी स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती — 3-5
(डॉ० प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल')
3. भारत में वैज्ञानिक विकास की अर्धसदी — 6-10
(कृष्णलाल धवारिया)
4. कहानी प्लूटोनियम के भार आकलन की — 11-12
(प्रो० रमेश चन्द्र कपूर)
5. कैसे निर्धारित करें ब्रह्माण्ड की आयु — 13-14
(डॉ० विजय कुमार उपाध्याय)
6. पारम्परिक खेती बनाम व्यावसायिक खेती — 15-17
(डॉ० राधा मोहन श्रीवास्तव)
7. विज्ञान और हम — 18-19
(डॉ० रमेशचन्द्र तिवारी)
8. स्मृतिशेष डॉ० गोरखप्रसाद — 20-21
(प्रो० हरिश्चंद गुप्त)
9. पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण हेतु परिचर्चा तथा पोस्टर प्रतिस्पर्धा का सफलतापूर्वक आयोजन — 22-23
10. एड्स दे रहा है दस्तक — 23
(डॉ० वी०के० तिवारी, एम०डी०)
11. अब आपके ड्राइंग रूम में सिमट जायेगा संसार — 24
(अरुण कांत जिंदल)
12. अंटार्कटिका : रहस्यमय महाद्वीप — 25
(ओम प्रकाश वर्मा)
13. मत्स्य प्रजनन केन्द्रों पर प्रजनित मछलियों में शारीरिक विकृतियाँ — 26-27
(अरविन्द मिश्रा, अजय कुमार एवं अमरेश चन्द्र पाण्डेय)
14. अभयारण्य व राष्ट्रीय उद्यान वैधानिक परिप्रेक्ष्य में — 28-29
(डॉ० सतीश कुमार शर्मा)
15. चंचल मौसम की चुनौती — 30-32
(मार्टिन रेविस)

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

इस अंक में आपसे बात-चीत का प्रारंभ दुःखद घटनाओं से करना पड़ रहा है। एक तो सरसों के तेल में भरभंडे के तेल की मिलावट से उत्पन्न विषाक्तता, दूसरा हिमालय का कहर और तीसरा पूर्वांचल में जल प्रलय।

अर्जिमोन विषाक्तता

देश की राजधानी दिल्ली से शुरू होकर न केवल आसपास के राज्यों वरन् सिक्किम और महाराष्ट्र में भी सरसों के तेल (भरभंडे का तेल मिला हुआ) के उपयोग से लोग 'ड्राप्सी' व्याधि की चपेट में आते जा रहे हैं।

अपने देश में खाने-पीने की वस्तुओं में मिलावट की समस्या नई नहीं है। दूध में पानी मिलाना, काली मिर्च के बीजों में पपीते के बीज मिलाना, पिसी लाल मिर्च में ईट के चूर्ण मिलाना, सरसों के तेल में भरभंडे का तेल मिलाना, पीली पत्ती तम्बाकू में घोड़े की लीद मिलाने की बातें मैं बचपन से सुनता आया हूँ। कैसी विडम्बना है कि जहाँ पूरा देश स्वतंत्रता के 50 वर्ष पूरे होने का जश्न मना रहा है, वहीं उपरोक्त मानवकृत एवं प्राकृतिक आपदाओं का गम भी। हम में से ही चंद लोग अपनी लालच में कितनों की जान से खेल रहे हैं, और वह भी जान बूझ कर। कैसी सोच हो गई है हमारी? कितना पतन हो गया है हमारा?

भरभंडा या भड़भांड (आर्जिमोन मेक्सिकाना, कुल पैपावरेसी- *Argemone mexicana* Family Papaveraceae) एक तरह का खरपतवार है। यह बंजर भूमि अथवा खेतों में अपने आप उग आने वाला 3 फीट ऊँचा एकवर्षीय पौधा है (मुख पृष्ठ पर चित्र)। यह बरसात में उगता है। पत्तियाँ सरसों (ब्रैसिका कैम्पेस्ट्रिस कुल क्रुसीफेरी / ब्रैसिकेसी- *Brassica campestiris*, Family Cruciferae/ Brassicaceae) पत्तियों से मिलती जुलती सी होती है, किन्तु कांटों से भरी होती है। पत्तियों अथवा तनों को तोड़ने या सूई चुभोने से पीला द्रव निकलता है। इस पौधे को चूंकि जानवर भी नहीं छूते, इस कारण खूब फूलता-फलता है। फूल पीले रंग के और फल डिब्बी-नुमा कैप्सूल (Capsule) होता है। पकने पर फल से काले रंग के गोल सरसों के बीजों जैसे बीज निकलते हैं। किन्तु सरसों के बीजों की अपेक्षा अधिक काले और खुरदरे सतह वाले होते हैं। भरभंडे के एक पौधे से 150-200 ग्राम बीज प्राप्त होते हैं। आम आदमी के लिए सरसो और भरभंडे के बीजों में अंतर कर पाना आसान नहीं। और तो और, भरभंडे के बीजों में 35 प्रतिशत तेल होता है। तेल का रंग सरसों के तेल जैसा पीला होता है, पर गंध अरुचिकर होती है।

भरभंडे में विद्यमान विषैला तत्व "सैग्बीनैरीन" है। इसके प्रभाव से रक्त में पायरुविक अम्ल की मात्रा में बृद्धि हो जाती है और परिणामस्वरूप हृदय, फेफड़े, गुर्दे, जिगर व आँख के पर्दे पर सूजन आ जाती है और हृदय की पेशियाँ सुस्त पड़ जाती हैं।

आर्जिमोन विषाक्तता से उत्पन्न व्याधि 'ड्राप्सी' कहलाती है। ड्राप्सी के लक्षणों में आँखों में दर्द, हाथ-पैर में अकारण दर्द, पैरों में सूजन, उल्टी, दस्त, सांस लेने में कठिनाई, भूख न लगना, जलोदर आदि शामिल हैं। इस प्रकार के लक्षण देश के कई राज्यों में देखने में आ रहे हैं। और तो और, हृदय की धड़कन बंद हो जाने से मनुष्य काल के गाल में भी समा जाते हैं।

ताज़े अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि लम्बे समय तक अधिक मात्रा में सरसो के तेल के उपयोग से गाल ब्लैडर का कैंसर भी हो जाता है। जौनपुर, गोरखपुर, आजमगढ़, बस्ती बलिया में गाल ब्लैडर कैंसर के रोगी अधिक संख्या में पाये जाते हैं, क्योंकि इन क्षेत्रों में सरसों के तेल की खपत अधिक है। किन्तु कावेरी के दक्षिणी क्षेत्रों में जहाँ नारियल के तेल का अधिक सेवन किया जाता है, वहाँ गाल ब्लैडर कैंसर के रोगी यदा-कदा ही देखने में आते हैं। किन्तु अभी इसकी पुष्टि के लिए और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

ड्राप्सी एक ही परिवार के कई लोगों को एक साथ हो सकता है। अभी तक वैज्ञानिक इसकी कोई दवा नहीं ढूँढ़ सके हैं। इसलिए रोगी को तुरंत अस्पताल में भर्ती करा देना चाहिए, जहाँ रोग के लक्षणों के आधार पर इलाज किया जाता है, रोगी को नमक के सेवन से बचना चाहिए और आराम करना चाहिए क्योंकि रोग जानलेवा हो सकता है। ड्राप्सी से बचने के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दें—

1. सरसों के तेल का उपयोग बंद कर दें, अपना स्वयं का निकलवाया तेल ही इस्तेमाल करें।

2. भरभंडे के बीजों को एकत्र करने वालों को रोकें।

3. भरभंडे के पौधों में फूल लगने अथवा फल बनने के पहले ही पौधों को नष्ट कर दें।

उत्तराखण्ड भू-स्खलन की परिधि में

इस वर्ष हिमालय काफी कहर दिखा रहा है। हम हिमालय के वृक्षों और हरीतिमा को नष्ट करके उसे नंगा कर रहे हैं, फिर प्रकृति तो बदला लेगी ही। बांस, बुरांस, देवदार तथा अन्य झाड़ियों के स्थान पर चीड़ वृक्षों के विस्तार से भूस्खलन बढ़ता जा रहा है। पहाड़ी क्षेत्रों में खुदाई, सड़क निर्माण, भवन निर्माण, जंगलों में लगने वाली आग, पेड़ों की जड़ों से पत्थर निकालना आदि ने भू स्खलन में 'आग में घी' का काम किया है। जल, जंगल और ज़मीन की छेड़छाड़ का परिणाम आत्मघाती है।

पूर्वांचल में जल प्रलय

उत्तर प्रदेश के पूर्वी हिस्सों में बाढ़ की स्थिति गंभीर बनी हुई है। गोरखपुर, बस्ती, सिद्धार्थ नगर, देवरिया, कुशीनगर, पडरौना आदि में बाढ़ के कारण गाँव के गाँव पानी की तेज़ धार में बह गए। जान-माल के नुकसान का ठीक-ठीक पता लगना अभी भी शेष है। पानी शहरों में भी प्रवेश कर गया है। रेल मार्ग, बस मार्ग बंद हैं और बिजली और टेलीफोन व्यवस्था भी चरमरा गई है। वैसे तो इन क्षेत्रों में बाढ़ से जान-माल की हानि होती ही रही है, किन्तु इस वर्ष बाढ़ ने विकराल रूप धारण किया है।

अब कुछ और बातें

स्थानीय सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज परिसर 'टापू' हो गया है। परिसर के अंदर और वाहर चारों ओर वर्ष भर जल भराव रहता है। रुका पानी नाले के पानी से मिल चुका है। पानी बदवू मारता रहता है। मच्छरों का 'ब्रीडिंग ग्राउण्ड' बन चुका है। विद्यार्थी, अध्यापक और कर्मचारीगण आशा लगाये बैठे हैं, शायद किसी की नजरे-इनायत से यह समस्या दूर हो सके।

स्थानीय 'क्योर संस्था' प्रशंसनीय कार्य कर रही है। 'क्योर' पत्रिका का ताजा अंक, जिल्द 4, 1998 बहुत बढ़िया छपा है। अच्छे लेख हैं। संपादक, प्रकाशक और डॉ० अशोक रंजन सक्सेना को बधाई।

'विज्ञान' के आगामी अंकों के सम्पादक डॉ० दिनेश मणि होंगे। अतेव सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। मैं लगभग 12 वर्षों से अब तक सम्पादन का कार्य मात्र इसलिए कर सका क्योंकि मुझे अपने कॉलेज के प्राचार्यो- श्री जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव (अब स्वर्गीय) एवं डॉ० ए० के० श्रीवास्तव, मेरे पूर्व विभागाध्यक्षों डॉ० जे० पी० श्रीवास्तव एवं श्री आर० सी० श्रीवास्तव विभाग के सहयोगी डॉ० डी० एन० लाल, डॉ० ए० एस० श्रीवास्तव, डॉ० आर० पी० श्रीवास्तव, डॉ० एस० एन० श्रीवास्तव, डॉ० राजेश्वर प्रसाद (अब स्वर्गीय), डॉ० वी० के० ललोरिया, डॉ० हृदयनारायण, डॉ० मंजु एवं डॉ० मीनाराय ने विभाग के अनेक कार्यो से मुझे मुक्त रखा। विज्ञान संकाय के अधिकतर अध्यापक मेरे निवेदन पर आजीवन सदस्य बने, लेखकीय सहयोग प्रदान किया, परिषद् की गतिविधियों में रुचि से भाग लिया, मुझे प्रेरणा दी, मेरा मनोबल बढ़ाया और हर प्रकार से सहयोग किया। मैं कनाडा के प्रो० वाई० पी० वाष्णेय का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे निवेदन पर 'व्हिटेकर पुरस्कार' के लिए 10,000 रुपयों की राशि प्रदान की।

परिषद् की विभिन्न शाखाओं के पदाधिकारियों ने शाखाओं की गतिविधियों की रिपोर्ट भेजकर सहयोग किया। मै उपरोक्त सभी के प्रति, जिनका नामोल्लेख हुआ है और स्थान की सीमा के कारण मै जिनके नामों का उल्लेख नहीं कर सका, कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। विज्ञान परिषद् से तो मैं आजीवन जुड़ा ही रहूँगा और परिषद् की सेवा सामर्थ्य भर करता रहूँगा। इस दृष्टि से आप सभी के पास ही रहूँगा।

मेरा विनम्र नमन् स्वीकार करें।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

24 अगस्त जन्मदिन पर

अनुपम व्यक्तित्व के धनी स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

(24 अगस्त 1905-18 जनवरी 1995)

डॉ० प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल'
अध्यात्म कुटीर, 43A वासुकी खुर्द, दारागंज, इलाहाबाद (उ०प्र०)

डॉ० सत्यप्रकाश जी के नाम से मेरा परिचय 1953-54 में ही हो गया था जब मै इण्टरमीडिएट के छात्र के रूप में उनकी रसायनशास्त्र की पुस्तक का पाठक बना। उस समय कृषि विज्ञान में दो पुस्तकें हिन्दी भाषा में विशेषरूप से प्रचलित हुई थीं। एक डॉ० सत्यप्रकाश जी की रसायनशास्त्र की तथा दूसरी डॉ० आर०डी० विद्यार्थी की जन्तुविज्ञान की। जन्तु विज्ञान की पुस्तक की भाषा कुछ क्लिष्ट हिन्दी में थी। जबकि डॉ० सत्यप्रकाश जी की रसायनशास्त्र की पुस्तक अपेक्षाकृत सुबोध, सरल एवं भावगम्य थी। अतएव डॉ० सत्यप्रकाश जी पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय थे।

इसके पश्चात् जब मैने कुलभाष्कर आश्रम विद्यालय में प्रवक्ता और फिर विभागाध्यक्ष का पद ग्रहण किया एवं अपनी शैक्षणिक योग्यता बढ़ाने के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी-फिल करने का निर्णय लिया तो मुझे उस समय के रसायन विज्ञान के विभागाध्यक्ष से सम्पर्क करना पड़ा। 1964-65 में सौभाग्य से डॉ० सत्यप्रकाश जी ही विभागाध्यक्ष थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कृषि संकाय अलग से न होकर विज्ञान संकाय के अन्तर्गत् ही है। उस समय मेरे विषय पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान में इलाहावाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध इलाहावाद एग्रीकल्चर इन्स्टीट्यूट, नैनी में स्नातकोत्तर कक्षायें नहीं थीं अतः हमारे जैसे मेरे अनेक सहयोगी विज्ञान संकाय से ही डी-फिल की डिग्री प्राप्त करने के लिए पंजीकरण करा रहे थे। अतः मैने भी इसी प्रयास में डॉ० सत्यप्रकाश जी से भेंट करने पहले विभाग में उनके कक्ष में गया, किन्तु वहाँ पता चला कि वे किसी मीटिंग में व्यस्त हैं। अतएव काफी प्रतीक्षा करने के उपरांत एक सहयोगी के सुझाव एवं मार्गदर्शन पर मैं उनके आवास पर मिलने दूसरे दिन प्रातः पहुँचा। वहाँ मैने देखा कि एक व्यक्ति नंगे बदन कुर्सी पर बैठा स्वयं ही तेल मालिश (धूप में) कर रहा है। मैंने उन्हीं से अपना मन्तव्य बतलाया कि मुझे डॉक्टर सत्यप्रकाश जी से मिलना है। उन्होंने मुझे बड़े ही स्नेह भाव से देखा और पूछा- "आप कहाँ से आये हैं?" मेरे द्वारा अपना परिचय दिये जाने पर उन्होंने पूछा- "आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र नहीं रहे हैं क्या?" मेरे यह बतलाने पर कि नहीं, मैं पहले आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एवं तत्पश्चात् गोरखपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध विद्यालय का स्नातक हूँ, स्नातकोत्तर उपाधि मैंने आगरा विश्वविद्यालय से ली है। तब पूरी बात को समझकर उन्होंने कहा-"आप क्या चाहते हैं? मै ही सत्यप्रकाश हूँ।" तब मैंने झट उनका सादर अभिवादन किया और अपना आवेदन उनकी ओर बढ़ा दिया। उन्होंने फिर कुछ सोचकर कहा-"ऐसा है आप कल कार्यालय में मुझसे मिलिए और अपने साथ गोरखपुर एवं आगरा विश्वविद्यालयों के सिलेबस लेते आइएगा।" मैंने उन्हें प्रणाम किया और लौट आया। दूसरे दिन आवश्यक प्रमाण लेकर जब मैं उनके कार्यालय पहुँचा तो देखता हूँ कि लकदक खादी की सफेद धोती, कुर्ता व चश्में से सज्जित भव्य व्यक्तित्व मेरे सामने था। उन्होंने मुझे देखते ही बड़े प्यार से अन्दर बुला लिया। सभी कागजातों को देखने और पूछताछ करके संतुष्ट हो जाने पर उन्होंने तुरन्त अपनी संस्तुति कर दी। मैंने उसी आधार पर फ्रेंच डिप्लोमा के लिए भी आवेदन दे दिया तथा मुझे प्रवेश भी मिल गया। किन्तु मेरा दुर्भाग्य कि डॉ० सत्यप्रकाश जी

ने उसी समय अवकाश ग्रहण कर लिया। किन्तु नए विभागाध्यक्ष द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों के कारण मुझे शोध करने का विचार त्याग देना पड़ा। फिर काफी अन्तराल के पश्चात् मेरे गुरुवर डॉ० शिवगोपाल मिश्र की कृपादृष्टि से मेरा यह संकल्प पूरा हुआ।

इसी क्रम में मैं डॉ० सत्यप्रकाश जी द्वारा सिंचित विज्ञान परिषद् का सदस्य बन गया। मेरे शोध गुरु डॉ० शिवगोपाल मिश्र उस समय विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री थे। विज्ञान परिषद् के क्रिया-कलापों में मेरी अभिरुचि बढ़ने लगी, विभिन्न कार्यक्रमों में मै भाग लेने लगा। वहाँ डॉ० सत्यप्रकाश जी का आना-जाना अक्सर होता था। अतः मुझे उनके सानिध्य का लाभ और आनन्द बहुधा प्राप्त होने लगा। मैने उनके सन्यास के पूर्व और पश्चात् दोनों समय के व्यक्तित्व को निकट से देखा है, परखा है। वे एक महान रसायनविद्, वैदिक धर्म और संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान, उद्भट व्याख्याता, अपूर्व मानवीय सहृदयता के धनी, गुरू गम्भीर व्यक्तित्व के साथ ही साथ, एक सरल हृदय एवं उन्मुक्त स्वभाव के हंसमुख व्यक्ति थे। उनके हास्य-व्यंग में रस और विनोद का अद्भुत् संगम, अथवा ज्ञान और भाव-रस का मिश्रित प्रभाव रहता था। मुझे अनेक अवसरों प विज्ञान परिषद् प्रांगण में, आर्य समाज हाल में एवं अनेक महाविद्यालयों में भी उनके विद्वता पूर्ण प्रवचन एवं व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके वैदिक साहित्य के ज्ञान का मै प्रशंसक था। वे अक्सर आर्य समाज के प्रवक्ता के रूप में देश-विदेश भ्रमण किया करते थे। आने पर विज्ञान परिषद् के ऊपरी कक्ष में अपने व्यक्तिगत कमरे में विश्राम करते थे। वह विश्राम कक्ष कम, एक समृद्ध पुस्तकालय अधिक था जहाँ उनकी व्यक्तिगत हजारों पुस्तकें तथा लिखने-पढ़ने की सामग्री करीने से सजी रखी थीं। सन्यास लेने के पश्चात् स्वामी जी भिक्षा का अन्न ही ग्रहण करते थे। मुझे भी एकाध बार उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

एक बार मैं कई तरह की कचौड़ियां और मीठी पूड़ियाँ स्वामी जी के लिए बनवा कर लाया। मुझे मालूम था कि उन्हें खीर बहुत पसंद है अतः खीर भी ले गया। उन्होंने भोजन की मात्रा देखी तो व्यंग में बोले-"यह मेरे लिए ही है कि और लोगों को दावत भी देना है?" मैंने कहा- "है तो आप ही के लिए। यदि कोई और उपस्थित हो गया तो वह भी प्रसाद पा लेगा।" मुक्त हंसी बिखेरते हुए उन्होंने हाथ-मुंह धोकर भोजन करना प्रारम्भ किया। मैं टिफिन कैरियर से निकाल-निकाल कर दे रहा था और वे प्रशंसा करके खाते जा रहे थे। पूछते भी जा रहे थे, यह क्या है? यह क्या है? खूब संतुष्ट होकर उन्होंने बड़े मनोयोग से भोजन किया। मैं प्रसन्न था। एक सन्यासी की सेवा करके परम शान्ति का अनुभव हुआ। फिर भी भोजन बच गया, कोई आया भी नहीं। वे बोले- "रख दो भोजन स्वादिष्ट बना है, खराब तो होगा नहीं। जाड़े का दिन है, फिर खा लूंगा।" मैनें कहाँ-जैसी आज्ञा" और प्रणाम करके चलने लगा तो उन्होंने पूछा- "तुम कहाँ रहते हो?, मेरे बतलाने पर कि मैं कुलभाष्कर स्नातकोत्तर महाविद्यालय के आवास नं० 4 में रहता हूँ स्वामी जी बोले, " कभी भी जलपान अथवा भोजन के समय बिना बतलाये उपस्थित हो जाऊँगा।" और फिर मेरे परिवार, जन्म स्थान आदि के बारे में संक्षिप्त जानकारी लेकर बोले-" अब तुम जाओ, मुझे निन्द्रा देवी का आमंत्रण मिलने लगा है। दरवाजा उढ़का दो।" मैं प्रसन्न और संतुष्ट होकर चला आया। स्वामी जी विज्ञान परिषद् में जब भी रहते थे, ठीक चार बजे सायं नीचे कार्यालय में आकर चाय अथवा काफी पीते थे। कभी कोई भी मंगाकर उपस्थित सभी लोगों को पिलाता था तो कभी कोई, किन्तु प्रायः स्वामी जी स्वयं अपना पैसा खर्च करके सबको पिलाते थे। उस समय वे बहुधा हास्य-व्यंग के मूड में ही रहते थे।

एक बार मुझे स्वामी जी ने एक हस्तलिखित आलेख दिया कि इसे टाइप करा लाओ। उन्हें अफ्रीका में व्याख्यान देना था, उसी की प्रति थी। मैं कटरा गया। वहाँ नैयर के यहाँ, हाल ही में इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर आया था। मैने आलेख को उसी टाइपराइटर पर टाइप करवा लिया। खर्च अपेक्षाकृत ज्यादा लगा। किन्तु छपाई अच्छी हुई थी। स्वामी जी ने देखा तो प्रसन्न हो गये। बोले-" इलाहाबाद में यह सुविधा हो गई, अच्छा हुआ। मुझे तो अक्सर जरूरत पड़ेगी। खर्च तो कुछ ज्यादा पड़ा होगा? क्या पड़ा?" बतलाने में मेरे संकोच करने पर स्वामी जी कुछ नाराज से हुए और उन्होंने जोर देकर तुरंत पूछकर सारा भुगतान कर दिया। उनका आदेश मुझेसंकोचपूर्वक स्वीकार करना पड़ा।

एक बार उन्होने मेरी कुछ आध्यात्मिक कवितायें सुनकर आशीर्वाद भी दिया- "अच्छा लिखते हो। ईश्वर द्वारा प्रदत्त गुणों के द्वारा मानवता की सेवा करना ही अपना धर्म है। अनासक्त और निर्लिप्त मन से इस धर्म का पालन करना

चाहिए।" बाद में उनकी कुटिया विज्ञान परिषद् के प्रांगण में बनकर तैयार हो गई। वे जव इलाहाबाद वापस आते, उसी में विश्राम करते। वाहर धूप में कुर्सी पर बैठकर धूप का सेवन करते हुए बात करते। सबसे सहज भाव से बातचीत, हालचाल पूछना। अब उनका शरीर वृद्धावस्था से काफी रुग्ण हो गया था। कहीं भी आना-जाना उन्होंने पहले कम, और फिर धीरे-धीरे बन्द ही कर दिया था। एक दिन जब मैं विश्वविद्यालय गया तो पता चला कि उनके कोई शिष्य उन्हें अपने साथ ले गये। सेवा-सुश्रुषा के लिए डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं अन्य थे। सचमुच यहाँ उनकी देखभाल भरपूर नहीं हो पा रही थी। फिर एक दिन उनके स्वर्गवासी होने की सूचना मिली। समाचार-पत्रों के माध्यम से विज्ञान परिषद् द्वारा आयोजित श्रद्धांन्जलि समारोह में उपस्थित हुआ। सबने उस महान व्यक्तित्व की चर्चा की और उनके चित्र पर भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। स्वामी जी के विशेष प्रयास एवं सहयोग से विज्ञान परिषद् का विशाल हाल बनकर लगभग तैयार हो गया है। उनके आर्यसमाजी शिष्यों के सहयोग से बनी उनकी नवनिर्मित कुटिया अब भी अपनी जगह पर विराजमान है पर उसको गौरव प्रदान करने वाला, उसको जीवन्तता प्रदान करने वाला महान व्यक्तित्व अब यहाँ नहीं रहा। सब सूना-सूना लगता है। ❑

माशेलकर को बैंक आफ इंडिया पुरस्कार

विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के महानिदेशक और वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग के सचिव डॉ० रघुनाथ अनंत माशेलकर को रचनात्मक अनुसंधान एवं विकास प्रबंधन में उत्कृष्टता के लिए 1998 के बैंक ऑफ इंडिया पुरस्कार से सम्मानित किया गया। बैंक ऑफ इंडिया ने स्वतंत्रता की 50वीं वर्षगाँठ के अवसर पर चार पुरस्कारों की शुरुआत की है। प्रबंधन में उत्कृष्टता का यह पुरस्कार उनमें से एक है। इसमें पुरस्कार विजेता को एक लाख रुपये पुरस्कार दिया जाता है।

प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव स्मृति अंक का विमोचन

विज्ञान परिषद् में प्रसिद्ध गणितज्ञ प्रो० चन्द्रिका प्रसाद के कर कमलों द्वारा विज्ञान के प्रो० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव स्मृति अंक का विमोचन 6 अगस्त को हुआ।

इस अवसर पर प्रो० श्रीवास्तव द्वारा हिन्दी विज्ञान लेखन के पोषण एवं परिवर्धन के लिए की गई उनकी महती सेवाओं पर प्रकाश डाला गया। 64 पृष्ठ के इस अंक के संपादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने स्व० प्रो० भगवती प्रसाद जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके सहज-सरल व्यक्तित्व और हिन्दी विज्ञान लेखन के प्रति समर्पित भाव और उनके सम्बन्ध में अपने व्यक्तिगत संस्मरण सुनाए। इसके पूर्व परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने सभी का स्वागत किया।

इस अवसर पर जगदीश नारायण टण्डन, स्व० श्रीवास्तव की पोती श्रीमती भावना मोहन, राजीव मोहन, श्रीमती जे०एन० टंडन, डॉ० जगदीश सिंह चौहान, डॉ० दिनेश मणि, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय, हरिमोहन मालवीय, शुकदेव प्रसाद, डॉ० राजकुमार दुबे, डॉ० विमलेश, डॉ० एस०एम० राय, डॉ० प्रभाकर द्विवेदी सहित अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

('हिन्दुस्तान' 7 अगस्त से साभार)

जड़ी बूटी आधारित पर्यावरण हितैषी मच्छर कॉयल

केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान (सी एफ टी आर आई) मैसूर ने पूर्णतः वनस्पति पदार्थों पर आधारित मच्छर कॉयल का विकास किया है। फिलहाल बाज़ार में, मच्छर मारने या भगाने के लिए बिकने वाले कॉयल, वेपोराइजर या मैट इत्यादि उत्पाद संश्लेषित रसायनों पर आधारित हैं। इसलिए यह नयी कॉयल पर्यावरण हितैषी होने के साथ-साथ अधिक प्रभावकारी भी है तथा जलाने पर अच्छी गंध भी फैलाता है।

जड़ी बूटियों पर आधारित यह कॉयल बनाने की सी एफ टी आर आई विधि काफी सरल है। कच्चा माल भी आसानी से उपलब्ध हो जाता है। उपकरण और उपस्कर भी सरल और स्वदेशी हैं। इसलिए कुटीर स्तर पर इकाई लगाकर इन कॉयलों का निर्माण किया जा सकता है। ❑

भारतीय विज्ञान के 51 वर्ष

भारत में वैज्ञानिक विकास की अर्धसदी

कृष्णालाल धवारिया

प्राध्यापक, जीवविज्ञान, रा० उ० मा० वि०, कांकरोली - 313324

स्वतंत्रता से पूर्व भारत में स्वदेशी उद्योग-धन्धों के संस्थापक एवं भारतीय रसायन विज्ञान के जन्मदाता डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय द्वारा कुछेक उद्योग संस्थापित थे। उसके बाद सितम्बर 1945 में वैज्ञानिक एवं औद्योगित अनुसंधान परिषद् की स्थापना की गई। उस समय देश में बड़े कल-कारखाने न होने के कारण कच्चे माल की बहुलता होते हुए भी आयातित तैयार माल पर निर्भर थे और वह व्यवस्था भी अंग्रेजों के नियंत्रण में थी।

स्वतंत्रता के बाद भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी वैज्ञानिक दृष्टि का उपयोग कर देश में औद्योगिक विकास की पहल की। नेहरू जी ने अपनी संपूर्णशक्ति देश के लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने, वैज्ञानिक प्रतिभाओं को उभारनें एवं राष्ट्रीय अनुसंधान प्रयोगशालाओं का जाल बिछाकर औद्योगिक विकास पर लगा दी। नेहरू जी के इस अविस्मरणीय योगदान के कारण भारतीय विज्ञान उन्हें सदैव याद रखेगा।

औद्योगिक विकास

स्वाधीन भारत में वैज्ञानिक क्रांति एवं वैज्ञानिक संस्कृति लाने में नेहरूजी का साथ अनेक वैज्ञानिक प्रतिभाओं ने दिया है। सन् 1940 में डॉ० शान्तिस्वरूप भटनागर की अध्यक्षता में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक गवेषणा विभाग की स्थापना हुई। बाद में इसी संस्थान का नाम वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् सी० एस० आई० आर० (C. S. I. R.) रखा। इस संस्थान के निदेशक पद पर रहते हुए डॉ० भटनागर ने नेहरू जी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का फायदा उठाते हुए देश में एक के बाद एक करके एक दर्जन से अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित कीं ताकि भारतीय वैज्ञानिक अपने देश में ही रहकर अनुसंधान कर सकें। इसी कारण डॉ० भटनागर को औद्योगिक अनुसंधान का प्रणेता माना जाता है। उधर भौतिक विज्ञान में विश्व के सर्वोच्च सम्मान "नोबेल पुरस्कार" प्राप्त डॉ० चन्द्रशेखर वेंकट रामन ने न केवल 'रामन प्रभाव', ऑपथैल्मोस्कोप, चुम्बकीय क्षेत्र शक्ति, एक्स किरणें, सामुद्रिक जल वर्ण, ध्वनि पर खोज व अनुसंधान कार्य किये हैं बल्कि भारत में वैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुसंधान हेतु सदैव प्रयास किया है। उन्होंने देश में अनेक अन्वेषणशालायें, विश्वविद्यालयों एवं वैज्ञानिक संस्थाओं की स्थापना कीं, इसलिए इनको विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं के जन्मदाता का खिताब प्राप्त है। औद्योगिक विकास में समर्पित देश की सबसे बड़ी संस्था 'वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (C. S. I. R.) आज अपनी 41 अनुसंधान प्रयोगशालाओं एवं 100 क्षेत्रीय ईकाइयों के नेटवर्क द्वारा औद्योगिकी क्षेत्र में अनुसंधानरत है। इसी संस्थान के कारण देश के छब्बीस हजार उत्पादों के पेटेंट कराने का प्रयास चल रहा है और एक सौ साठ जड़ी बूटियों की पहचान का युद्ध स्तर पर कार्य चल रहा है।

विगत पचास वर्षों के उद्योग-विकास के परिणामी आँकड़ों को देखें तो यह विकास भी किसी क्रांति से कम प्रतीत नहीं होता। 1950-51 की तुलना में 1995-96 में कोयला पैट्रोलियम एवं कच्चे लोहे का खनन क्रमशः 9,117 एवं 21 गुणा बढ़ गया है। धातु कार्मिक उद्योग में तैयार इस्पात 1950-51 में 1.04 मिलियन टन था जो 1995-96 में 21 गुणा बढ़कर 21.4 मिलियन हो गया। इसी प्रकार एल्युमिनियम भी अधिक हो गया है। उद्योग-विकास के कारण ही 1995-96 तक बिजली उत्पादन लगभग 74 गुणा बढ़ कर 379.4 बिलियन किलोवाट हो गया जो 1950-51 में केवल 5.1 बिलियन किलोवाट था। पैट्रोलियम पदार्तों का उत्पाद भी 273 गुणा बढ़कर अब 54.5 मिलियन टन से अधिक हो गया है।

औद्योगिक उत्पादों के उत्पादन में जैव प्रौद्योगिकीय प्रक्रियाओं के प्रयोग से औद्योगिक विकास की गति और तेज हो गयी है। प्रौद्योगिकीय प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने जैव प्रौद्योगिकी विभाग (D.B.T.) की स्थापना की। जैव प्रौद्योगिकी विभाग ने वैज्ञानिक एवं औद्योगिकी अनुसंधान परिषद (C.S.I.R.), भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् (I.C.M.R.), विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (D.S.T.), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (I.C.A.R.) एवं अन्य सरकारी ऐजेंसियों के सहयोग से विश्वविद्यालयों में जैव प्रौद्योगिकीय अनुसंधान हेतु सुविधायें मुहैया करवायी हैं। इसी के परिणामस्वरूप चिकित्सा क्षेत्र में उपयोगी कई सारे प्रतिजैविक पदार्थों एवं टीका के उत्पादन के लिए प्रचुर क्षमताओं को प्राप्त कर उत्पादन किया जा रहा है। जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग से एल्कोहॉल, सीट्रिक अम्ल, लैक्टिक अम्ल, ग्लूकोज, डेक्सट्रोज, जैव उर्वरकों आदि का उत्पादन भारत में ही हो रहा है।

कृषि विकास

कृषि विकास में भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने "अधिक अन्न उपजाओ" के नारे से किसानों को अधिक अन्न उपजानें के लिये प्रेरित किया। देश में भारतीय कृषि एवं अनुसंधान परिषद् (I. C. A. R.) की स्थापना के बाद फसलों की एक से बढ़कर एक किस्मों का विकास होने लगा। डॉ० स्वामीनाथन, डॉ० बी० पी० पाल, डॉ० नारमन बोरिलॉग एवं अन्य कृषि वैज्ञानिकों के प्रयासों से आयी "हरित क्रांन्ति" के कारण आज हम 1950 के 5.30 करोड़ टन के मुकाबले लगभग 20 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन कर विश्व में प्रथम स्थान पर पहुँच गये हैं। सन् 1950 की तुलना में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष उपलब्ध खाद्यान्न की मात्रा जनसंख्या विस्फोट के बावजूद 144 किलोग्राम से बढ़कर 183 किलोग्राम हो गयी है। गेहूँ का उत्पादन ग्यारह गुणा से भी अधिक बढ़कर 69 मिलियन टन हो गया है। चावल का उत्पादन 21 मिलियन टन से बढ़कर 81 मिलियन टन होने के बाद आज भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा चावल निर्यातक देश है। वर्तमना में फलों का उत्पादन 912 मिलियन टन से बढ़कर 40 मिलियन टन हो जाने से भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। हरी सब्जियों का उत्पादन भी 10 मिलियन टन से बढ़कर 67 मिलियन टन हो गया है। 'पीली क्रांति' के कारण तिलहनों का वार्षिक उत्पादन 5 मिलियन टन से बढ़कर 25 मिलियन टन हो गया है। 'नीली क्रान्ति' के परिणामस्वरूप मछली उत्पादन भी 7.5 मिलियन टन से बढ़कर 50 मिलियन टन हो गया है।

दुग्ध उत्पादन को बढ़ाने के लिये भारत में 1970 में ऑपरेशन फ्लड कार्यक्रम शुरू हुआ। परिणामस्वरूप देश में 'श्वेत क्रांति' आ गयी है। वर्तमान में हमने लगभग 7 करोड़ टन दूध उत्पादित कर अमेरिका के बाद विश्व में दूसरा स्थान हासिल कर लिया है।

नाभिकीय प्रौद्योगिकी

स्वतंत्रता से पूर्व 1945 में मुम्बई में "टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च" की स्थापना के साथ ही भारत में परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की शुरुआत हो चुकी थी। स्वतंत्रता के साथ इस कार्यक्रम को निर्बोध गति दी भारतीय परमाणु ऊर्जा अनुसंधान के जनक डॉ० होमी जहाँगीर भाभा ने। इनके प्रयासों से परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग, अनुसंधान, प्रशिक्षण, खनिज व परमाणु शक्ति के उत्पादन के उद्देश्यों से 10 अगस्त 1948 को परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना की। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के सहयोग से भाभा ने ट्राम्बे में परमाणु शक्ति केन्द्र बनाने में सफलता प्राप्त की, जिसे अब भाभा एटॉमिक रिसर्च सेंटर "बार्क" के नाम से जानते हैं। उधर डॉ० मेघनाद साहा के प्रयत्नों से 1950 में कलकत्ता में "इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स" की स्थापना हुई, जिसका नाम बाद में 'साहा इंस्टीट्यूट ऑफ न्युक्लियर फिजिक्स' रखा। डॉ० साहा ने दो महत्वपूर्ण अनुसंधान विभागों की स्थापना की- एक नाभिकीय भौतिकी के लिये और दूसरा जीव भौतिकी के लिये। आणविक खोजों के प्रारम्भिक कार्य के लिये डॉ० साहा का नाम अमर है। डॉ० एच० एन० सेठना व राजा रमन्ना के संरक्षण में 18 मई 1974 को भारत ने अपना प्रथम परमाणु परीक्षण पोखरण (जैसलमेर) में किया और भारत विश्व में छठी परमाणु शक्ति के रूप में उभर आया और अब हाल ही में 8 व 11मई को किये 5 परमाणु परीक्षणों से पूरा विश्व आश्चर्यस्तब्ध है। भारत में परमाणु-भट्टियों के डिजाइन, निर्माण एवं नियंत्रण के संबंध में डॉ० ए० एस० राव ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वास्तव में अप्सरा और जरलीना भट्टियों का निर्माण श्री राव के निर्देशन में ही सम्पन्न हुआ।

आज भारत के पास अप्सरा, साइरस, जरलीना, पूर्णिमा एवं ध्रुव, नामक पाँच परमाणु भट्टियाँ हैं। साइरस को छोड़कर सभी देशी तकनीक के आधार पर स्थापित की गयी हैं। देश में रावत भाटा, राजस्थान, तारापुर, नरौरा, कलपक्कम, काकरपाड़ी एवं कैगा में एटामिक शक्ति गृह विद्युत-उत्पादन के लिये कार्यरत हैं। राष्ट्र का सातवां परमाणु शक्ति गृह कुंडानकुलम में निर्माणाधीन है तथा 8 भारी पानी रिएक्टर कार्य कर रहे हैं। नाभिकीय प्रौद्योगिकी के बहुविकास से ईंधन निर्माण, ऊर्जा उत्पादन, कृषि, चिकित्सा व उद्योगों में अनुसंधान कार्यों में अब हम आत्मनिर्भर हो गये हैं।

अक्षय ऊर्जा विकास

ऊर्जा के परम्परागत साधनों के सीमित होने के कारण अतिरिक्त ऊर्जा स्रोतों के विकास के लिए भारत सरकार ने 1981 में कमीशन फॉर एडीशनल सोर्सेज ऑफ एनर्जी (CASE) को एक विभाग के रूप में स्थापित किया जिसे 1992 में अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय (MVES) में परिवर्तित कर दिया गया। गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के प्रोत्साहन, अनुसंधान एवं विस्तार के लिये भारत सरकार ने 1987 में भारतीय अक्षय ऊर्जा विकास समिति 'इरेडा' की स्थापना की गयी। परिणामस्वरूप आज देश में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा एवं बायोगैस ऊर्जा पर अनेक अनुसंधानों के बाद उपयोग शुरू हो गया है। अब देश में ही पवन विद्युत् जनरेटर 'वेग्स', सोलर थर्मल पॉवर प्लांट, बायोगैस निर्माण रिएक्टर एवं अन्य ऊर्जा स्रोतों से ऊर्जा प्राप्ति की विभिन्न युक्तियों का विकास किया गया है। लेकिन अभी भी इस क्षेत्र में बहुत कुछ करना बाकी है।

अंतरिक्ष

सन् 1962 में भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग में 'भारतीय राष्ट्रीय अन्तरिरक्ष अनुसंधान समिति' के गठन के साथ भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरुआत हुई। इसके बाद 1969 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) का गठन बैंगलोर में किया गया तत्पश्चात् जून 1972 में डॉ० विक्रम साराभाई के सक्रिय प्रयासों से अंतरिक्ष आयोग तथा अंतरिक्ष विभाग की स्थापना की गई। डॉ० साराभाई ही इसके प्रथम अध्यक्ष बने। इन्हीं के परिणामस्वरूप आज आकाश में भारत में ही बने उपग्रह तैर रहे हैं। इसलिए इनको भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का जनक भी कहा जा सकता है।

1975 में आर्यभट्ट के प्रक्षेपण से भारतीय उपग्रह प्रक्षेपण की शुरुआत होकर अब तक दो दर्जनों से अधिक उपग्रहों को आकाश में तैरा चुके हैं। 3 अप्रैल 1984 को प्रथम भारतीय अंतरिक्ष यात्री के रूप में राकेश शर्मा को अंतरिक्ष में भेजकर भारत विश्व के उन 14 देशों में सम्मिलित हो गया जिनके अंतरिक्ष यात्री अंतरिक्ष में पहुँच चुके हैं। आज भारत के 19 शहरों में अन्तरिक्ष केन्द्र और उनकी इकाइयों द्वारा अंतरिक्ष कार्यक्रमों को अंजाम दिया जा रहा है। अंतरिक्ष कार्यक्रमों की सफलता के परिणामस्वरूप आज हम घर बैठे ही दुनिया के किसी भी कोने पर हो रही विभिन्न घटना, वार्तालाप या कार्यक्रम में भाग ले सकते हैं। दूर संचार, दूरदर्शन प्रसारण, भू-संपदा सर्वेक्षण, मौसम-की जानकारी, शैक्षिक कार्यक्रम, आकाशवाणी के मल्टी चैनल, आर० एन०, स्टाक एक्सचेंज, प्रशिक्षण आदि सभी कार्य उपग्रहों की बदौलत एक ही कमरे में सम्पन्न हो रहे हैं। इसरो के वर्तमान अध्यक्ष कस्तूरी रंगन एवं साथियों के निर्देशन में 29 सितम्बर 1997 को ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (PSLV-C-1) का सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में प्रक्षेपण कर अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भरता की महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल कर अमेरिका के बराबर पहुँच गये हैं। इस सदी के अंतिम वर्षों में कुछ और उपग्रहों को छोड़कर नई ऊँचाईयों को छूने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रतिरक्षा

भारतीय सेनाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सैन्य उपकरणों के निर्माण में आत्मनिर्भरता के लिए भारत सरकार ने 1958 में रक्षा अनुसंधान व विकास संगठन (DRDO) की स्थापना की। इसी संगठन की बदौलत अर्जुन एवं विजयन्त टैंक, विध्वसंक जलयान डेस्ट्रायर, फ्रेगट, पनडुब्बी, फाइटर एवं बॉम्बर यान जैसे "लक्ष्य", "पिनाका" एवं प्रक्षेपास्त्रों से हमारी रक्षापंक्ति सुसज्जित है। पूर्णरूप से स्वदेशी प्रौद्योगिकी से निर्मित प्रक्षेपास्त्र पृथ्वी, आकाश,नाग त्रिशूल, अग्नि जैसे प्रक्षेपास्त्रों ने विश्व की नजरें अपनी ओर खींच ली हैं। इनमें पृथ्वी का व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन शुरू भी हो गया है।

यातायात एवं परिवहन

इलेक्ट्रॉनिक्स एवं प्रौद्योगिकी तकनीकों के विकास का असर यातायात क्षेत्र में भी हुआ है। अब भारत का प्रत्येक

गाँव सड़क से जुड़ गया है। देश भर में लगभग 78 राष्ट्रीय राजमार्गों द्वारा देश में 34,058 किमी० सड़कों का महान् जाल फैला हुआ है। सड़क लम्बाई में आज भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। भारतीय रेलवे में भी काफी परिवर्तन हुआ है। 1950 में रेलवे के राष्ट्रीयकरण के बाद 1950 में चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स एवं 1956 में पैराम्बूर में इन्टीग्रल कोच फैक्टरी की स्थापना की गयी। रेल सेवा में कम्प्यूटरीकरण, गेज परिवर्तन, विद्युतीकरण एवं आधुनिक तकनीकी के प्रयोग से यातायात एवं परिवहन प्रणाली सशक्त, सक्षम एवं अत्यधिक प्रभावी हो गयी हैं। आज भारतीय रेल का एशिया में प्रथम एवं विश्व में दूसरा स्थान है।

इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी

आधुनिक युग में विभिन्न क्षेत्रों में जो भी विकास हुआ है, उसका मुख्य कारण रहा है इलेक्ट्रॉनिकी का तेज़ी से विकास। आज हमारे जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं बच पाया जहाँ इलेक्ट्रॉनिकी का उपयोग न हो। दो दशक पूर्व कम्प्यूटर शब्द हमारे लिए अनजान था वहीं आज उद्योगों, बैंकों, अंतरिक्ष, परिवहन, शिक्षा, प्रतिरक्षा एवं सुरक्षा और अनुसंधानों में ही नहीं घरेलू कार्यों में भी कम्प्यूटर हम पर हावी हो गये हैं। इलेक्ट्रॉनिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये भारत सरकार ने 1970 में इलेक्ट्रॉनिकी विभाग की स्थापना की सन् 1982 में भारत-सरकार ने एक निर्णय लेकर पंचम पीढ़ी के आधुनिक कम्प्यूटर बनाने का फैसला किया इस पर अमेरिका ने सुपर कम्प्यूटर की प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगा दिया परिणाम स्वरूप भारत स्वदेशी तकनीकी द्वारा सुपर कम्प्यूटर का विकास कर विकासशील देशों को निर्यात करने की स्थिति में आ गया है।

इलेक्ट्रॉनिकी विकास ने संचार क्षेत्र में भी क्रान्ति ला दी है आज संचार क्षेत्र में अनेक प्रकार की मूलभूत एवं मूल्यगुण युक्त सेवायें उपलब्ध हैं। जैसे आई० एस० डी० टेलेक्स, मोबाइल, सेल्युलर, रेडियोपेजिंग, इन्टरनेट, फैक्स, इन्सारसेट, मोबाइल, भू-उपग्रह, दूरसंचार, ई०मेल, इलेक्ट्रॉनिक डेटा इन्टरचेंज, वीडियो कान्फ्रेंसिंग आदि। सरकार द्वारा 1984 में घोषित राष्ट्रीय दूर संचार नीति द्वारा देश के हर गाँव में सार्वजनिक टेलीफोन लगाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

चिकित्सा

वैज्ञानिक विकास के क्षेत्र में हो रहे नित नये परिवर्तन, खोजें एवं तकनीकी के विकास से चिकित्सा क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान संस्थायें, मेडिकल कालेजों एवं अस्पतालों की तो बाढ़ आ गयी है। सन् 1951 में मात्र 17 मेडिकल कॉलेजों से प्रतिवर्ष लगभग 1400 चिकित्सकों की तुलना में आज देश में स्थापित 162 मेडिकल कॉलेजों से प्रतिवर्ष 17000 से अधिक चिकित्सक तैयार हो रहे हैं। चिकित्सा संस्थाओं एवं अस्पतालों में रोगों के निदान एवं उपचार के लिये सोनोग्राफी इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफी, इलेक्ट्रोऐनसेफेलोग्राफी, पेसमेकर, कम्प्यूटराइज्ड टोमोग्राफी, मैगनेटिक रिजोनेंस इमेजिंग, एंजियोग्राफी, एंजियोप्लास्टी, कार्डियोथोरेसिक एवं वास्क्यूलर सर्जरी, लिथोट्रिप्सी, लेसर सर्जरी जैसी अत्याधुनिक एवं उच्चतम चिकित्सा सुविधाओं के उपयोग से रोगियों के विदेशों में जाकर इलाज कराने की प्रवृत्ति में कुछ कमी आई है। अब देश में हृदय, त्वचा, गुर्दे यकृत, कॉर्निया, कॉक्लिया, आदि अंगों के सफल प्रत्यारोपण हो रहे हैं। रीहेबीलीटेशन हॉस्पिटल जयपुर द्वारा विकसित कृत्रिम पैर तथा केन्द्रीय कांच एवं सिरेमिक संस्थान कलकत्ता के हिप ज्वाइन्ट्स से विकलांग एवं दुर्घटनाओं में खोये पैरों से त्रस्त व्यक्ति भी सामान्य व्यक्ति की तरह जीवन जी सकते हैं। स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान देने एवं रोगों के उन्मूलन हेतु कई राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किये गये हैं। परिणाम स्वरूप चेचक रोग का उन्मूलन हो चुका है। नारू रोग भी समाप्त प्रायः है। पोलियो एवं कुष्ठ रोगों के भी इस सदी के साथ ही समाप्त हो जाने की संभावना है।

चिकित्सा क्षेत्र में इन क्रांतिकारी परिवर्तनों से हमारी औसत आयु बढ़कर 62 वर्ष हो गई है। मृत्युदर घटकर 9 व्यक्ति प्रति हजार तक आ गयी है। परिवार नियोजन कार्यक्रम के कारण जन्म दर 50 से घटकर वर्तमान में 28.3 प्रति हजार हो गयी है। शिशुओं की मृत्युदर भी घटकर 74 प्रतिहजार हो गयी है।

विगत पचास वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों में हुए अनुसंधान की कड़ियों में अनेक वैज्ञानिकों का हाथ रहा है। भौतिक विज्ञान में विश्व के सर्वोच्च सम्मान 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त, वैज्ञानिक संस्थाओं के जनक डॉ० चन्द्रशेखर वेंकटरामन ने रामन प्रभाव, आपयेलोमोस्कोप, चुम्बकीय शक्ति, एक्सकिरणों, सामुद्रिक जलवर्ष आदि खोजों का कार्य स्वतंत्रता पूर्व ही कर लिया था। स्वतंत्रता के बाद भी वे देश में अनेक स्वतंत्र अन्वेषणशालाएं, विश्वविद्यालय और वैज्ञानिक संस्थाओं की

स्थापना कर वैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुसंधान हेतु प्रयास रत रहे। जीवाश्म वनस्पति शास्त्र के जनक बीरबल साहनी की 'सूक्ष्म जीवाश्मों' पर खोजें विश्वभर में प्रशस्ति पा रही है, लेकिन वे स्वतंत्र भारत को 2 वर्ष से भी कम समय तक ही सेवा दे पाये। राजस्थान में जन्मे आधुनिक भ्रूण विज्ञान के जनक पंचानन माहेश्वरी ने परखनली में बीज की उत्पत्ति की खोज कर टेस्टट्यूब बेबी के जन्म का आधार प्रस्तुत किया।

भारतीय नदी-घाटी परियोजनाओं की इंजीनियरी के प्रमुख निर्माता अयोध्यानाथ खोसला की द्रव इंजीनियरी एवं जल विद्या के कारण आज हम पानी की बरबादी रोकने में सफल सिद्ध हुए हैं। देश को विश्व के सांख्यिकी मानचित्र पर अंकित करने के लिए वैज्ञानिक आन्दोलन करने का श्रेय प्रो० प्रशान्तचन्द महालनवीस को है। उन्होंने विशाल स्तर पर सैंपलिंग सिद्धान्त व्यवहार का प्रयोग और फ्रैक्टाइल ग्राफिक एनालिसिस विधि विकसित की। आइन्सटीन के नाम के साथ जुड़े सत्येन्द्रनाथ बोस ने नाभिकीय भौतिकी के परमाणु कणों को दो भागों में विभक्त कर 'बोसोन' की खोज की। देश की प्रथम स्थापित राष्ट्रीय अनुसंधानशाला- राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के 1947 से निदेशक पद पर कार्यरत रहे प्रो० कृष्णन ने कार्बन, क्रोमियम, लोहा, कोबाल्ट, निकिल, बैनेडियम, मैंगनीज, चांदी, सोना, ताँबा के स्थिरांक ज्ञात किये। प्रो० कृष्णन ने व्यावहारिक भौतिकी के क्षेत्र में निर्वात में बिजली से गरम की गई पतली छड़, नली या गोलाकार तार में तापमान के प्रसार की विधि को युक्तिसंगत बनाकर भावी मार्ग प्रशस्त किया। सन् 1948 से 1961 तक प्रतिरक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार पद पर कार्यरत रहे डॉ० दौलतसिंह कोठारी ने समस्त प्रतिरक्षा वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों का पुनर्गठन किया। उन्होंने 'दबाव आयनीकरण' सिद्धान्त की अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज की है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त डॉ० आत्माराम ने कांच उद्योग एवं सिरेमिक क्षेत्रों में अनेक प्रकार के कांच निर्माण की विधियों की खोज की। इन्हीं के परिणामस्वरूप भारत आज विश्व के छः प्रमुख ऑप्टिकल काँच निर्मित करने वाले देशों में से एक है।

भारत ने अनुसंधान कार्य केवल प्रायद्वीप की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि 1981 से 1997 तक समुद्रपारीय क्षेत्र- अंटार्कटिका पर सोलह अभियान दल भेज चुका है। इन दलों के वैज्ञानिकों ने अंटार्कटिका पर भूकंपीय, मौसम, पर्यावरण, जीवाश्म, जीव-वनस्पति, खनिज, परमाणविक अनुसंधान, ओजोन छिद्र, धातु चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, इंजीनियरिंग, संचार आदि के सम्बन्धित क्षेत्रों पर अनुसंधान कार्य किया है और पहले से जारी अनुसंधानों को आगे बढ़ा रहे हैं। ❑

ताप बिजलीघर की राख से कृषि पैदावार में वृद्धि

ताप बिजलीघर से निकली राख का अब कृषि पैदावार बढ़ाने में प्रयोग किये जाने की संभावना है। अभी तक इस राख का प्रयोग ईंट एवं भवन निर्माण सामग्री बनाने में किया जाता रहा है। परन्तु हाल ही में हुए एक अनुसंधान के अनुसार इस राख के तीस टन को प्रति हेक्टेयर कृषि क्षेत्र में डालने से 15%-20% कृषि-पैदावार बढ़ाई जा सकती है।

कर्नाटक के रायचूर जिले के एक वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्र (एग्रीकल्चरल कॉलेज ऑफ रायपुर) के अनुसंधानकर्ताओं का एक दल श्री सी०वी० पाटिल के नेतृत्व में दस वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् इस नतीजे पर पहुँचा है। यही नहीं, इस दिशा में अब कृषकों को प्रशिक्षित एवं उत्प्रेरित करने का कार्य भी इन वैज्ञानिकों द्वारा किया जा रहा है।

महाराष्ट्र में भूकम्प के कारण

मुम्बई सहित महाराष्ट्र का पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्र अब भूकम्प के लिए अधिक संवेदनशील होता जा रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार निरन्तर बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण एवं तटवर्ती क्षेत्रों में मानव बस्तियों के विस्तार (Back bay reclamation) के कारण भूकम्प के झटकों के बढ़ने की आशंका है। अतएव समय रहते हमें सचेत हो जाना है और उपरोक्त कारणों से उत्पन्न समस्याओं पर गंभीरता के साथ सोच-विचार कर भूकम्प न आने देने के लिए वैज्ञानिक उपाय ढूँढ़ने होंगे।

—श्रीमती अर्पिता मोहन
द्वारा श्रीमती प्रभा देवी,
224-बी तुलाराम बाग, इलाहाबाद

इतिहास के झरोखे से

कहानी प्लूटोनियम के भार आकलन की

प्रो० रमेश चन्द्र कपूर
8 रेजिडेन्सी रोड, जोधपुर, राजस्थान

मानव द्वारा निर्मित तत्व प्लूटोनियम का सर्व प्रथम भारात्मक ऑकलन अपने आप में एक रोचक कहानी है। यही माना जाता है कि 2 दिसम्बर 1942 को नियंत्रित परमाणु श्रृंखला अभिक्रिया का सफल परीक्षण हुआ था और शिकागो विश्वविद्यालय के स्टेडियम मैदान के भूमिगत कक्ष में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक **एनरिको फर्मी** के निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न हुआ था। परन्तु उसके पूर्व हुए एक महत्वपूर्ण प्रयोग के बारे में आम जानकारी नहीं है, जिसकी श्रृंखला अभिक्रिया को सफल करने में प्रभावशाली भूमिका रही थी। प्रयोग शाला में निर्मित प्लूटोनियम तत्व का सर्वप्रथम भार-मापन ही यह प्रयोग था। सुविख्यात रसायनज्ञ **ग्लैन सीबोर्ग** के शब्दों में- "10 सितम्बर 1942 को किया गया यह प्रयोग अपूर्व ऐतिहासिक महत्व का था। सीबोर्ग उस समय शिकागो विश्वविद्यालय की धातुकर्मीय प्रयोगशाला में कार्यरत थे। तब तक यह ज्ञात हो चुका था कि परमाणु विखण्डन अभिक्रियाओं के फलस्वरूप यूरेनियम पुंजों में प्लूटोनियम तत्व के परमाणु बन जाते हैं। सीबोर्ग का लक्ष्य यह था कि इन निर्मित प्लूटोनियम के परमाणुओं को स्थूल यूरेनियम से अलग किया जाये। अधिकतर वैज्ञानिकों को इसकी सफलता में संदेह था। उन्हें पहले तो यही नहीं समझ में आ रहा था कि प्लूटोनियम प्राप्त करने के लिये उपयुक्त स्रोत क्या हो? इसके विपरीत सीबोर्ग आश्वस्त थे कि सामान्य यूरेनियम ही उपयुक्त स्रोत रहेगा। हाँ, सफलता पाने के लिये अत्यंत संवेदनशील और सूक्ष्म विश्लेषण रासायनिक विधियाँ अपनानी होंगी। उनके मतानुसार यूरेनियम की बड़ी मात्रा पर साइक्लोट्रॉन द्वारा प्राप्त न्यूट्रॉनों की बौछार करने से उपयुक्त मात्रा में प्लूटोनियम मिल जायेगा जो उपसूक्ष्म विश्लेषण विधि द्वारा पहचाना जा सकेगा।

इसमें कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए सीबोर्ग ने अमेरिका के उत्कृष्ट सूक्ष्म विश्लेषण रसायनज्ञों को कार्य के सम्पादन हेतु सम्मिलित होने का न्योता दिया। फलस्वरूप न्यूयार्क स्थित क्वीन कॉलेज के माइक सफोला तथा कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के **कनिंघम** तथा **लुई वर्नर** ने आमंत्रण स्वीकार किया। कार्य द्रुत गति से आरम्भ हुआ और पहले चरण में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय स्थित साइक्लोटॉन द्वारा निर्मित प्लूटोनियम का नमूना मंगाया गया। नमूने की मात्रा बहुत कम थी। जिसमें कई माइक्रोग्राम विरल मृदा तलों के बीच एक माइक्रोग्राम प्लूटोनियम उपस्थित होने का अनुमान था। फिर भी कनिंघम, सफोला तथा वर्नर मिश्रण से शुद्ध प्लूटोनियम पृथक करने में सफल हो गये। 18 अगस्त 1942 को यह पृथक्कीकरण सम्पन्न हुआ। उपस्थित प्लूटोनियम इतनी न्यून मात्रा में था कि उसका भार मापन संभव न हो सका यद्यपि इसे आँखों से देखा जा सकता था। इस अद्भुत् तत्व को देखकर उपस्थित वैज्ञानिक रोमांचित हो गये। सीबोर्ग ने अनुमान लगाया कि प्लूटोनियम फ्लुओराइड तथा हाइड्राक्साइड रूप में रहा होगा।

उसी समय दो पृथक स्थानों (वाशिंगटन विश्वविद्यालय तथा कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले) में सैकड़ों किलोग्राम यूरेनियम पर न्यूट्रॉनों की बौछार के प्रयोग चलने लगे जिससे कि प्लूटोनियम की अधिक मात्रा प्राप्त हो सके। प्रयोगों द्वारा प्राप्त सक्रिय पदार्थ को शिकागो विश्वविद्यालय भेजा गया जहाँ पर **जैफे** तथा **कोहमान** की टोली ने ईथर द्वारा निष्कर्षण क्रिया के बाद किये गये विभिन्न उपापचयन (Oxidation-reduction) श्रृंखलाओं के पश्चात् मिलिग्राम मात्रा में विरल-मृदा तत्वों को पृथक किया। ऐसा अनुमान था कि इस मिश्रण में 100 माइक्रोग्राम मात्रा में प्लूटोनियम उपस्थित होगा। इस अमूल्य संपदा को सीबोर्ग को सौंपा गया। उनकी टोली के तीन विलंगो ने उसे क्रमशः आयोडेट- हाइड्रॉक्साइड - ऑक्साइड स्थितियों में बदल कर विशुद्ध प्लूटोनियम प्राप्त किया। इसी ऐतिहासिक नमूने का भार मापन 10 सितम्बर 1942 को किया गया। इसका भार केवल 2.77 माइक्रोग्राम निकला। कनिंघम के शब्दों में वैज्ञानिक इतिहास में यह पहला अवसर रहा होगा जब इतनी तुच्छ मात्रा के लिये इतने लोगों ने इतने जोखिम उठाये।

प्लूटोनियम प्रतिदर्श का भार मापन अपने में रोचक कहानी है। यह भी तथ्य है कि यह अमेरिका में अतिसूक्ष्म भार मापन का पहला प्रयोग था। जटिल समस्या यह थी कि ऐसे नमूने, को किस विधि से तोला जाये, जो कठिनता से दिखाई भी देता हो। पहले यह सोचा गया कि नमूने को ऐमिश तराजू से तौला जाये। इसमें जटिल विद्युत्-चुम्बक प्रतिकार (Compensation) विधि प्रयुक्त होती थी। ऐसे तराजू को उस समय बनाने में महीनों लग जाते। कनिंघम के ध्यान में यह विचार आया कि इस कार्य के लिये क्यों न स्फटिक तन्तु (quartz fibre) का उपयोग किया जाये। एक 0.1mm व्यास के 12 सेमी० लम्बे स्फटिक तन्तु को एक ओर जड़ दिया गया और दूसरी ओर उसपर तोल-पात्र लगाया गया। पात्र पर नमूना रखने से तन्तु में आया झुकाव नमूने के भार पर निर्भर रहना चाहिए। अपने बनाये तराजू में कनिंघम ने तंतु के झुकाव को सूक्ष्मदर्शी से नापकर भार का अनुमान लगाया। आरम्भ में अधिकांश वैज्ञानिकों को तकनीक की विश्वसनीयता पर संदेह था। वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि माइक्रोग्राम मात्रा के नमूने को ऐसी विधि द्वारा कैसे नापा जा सकता था क्योंकि ऐसे तराजू का अंशशोधन (calibration) ही टेढ़ी खीर होती। अंततः लोगों के संशय दूर हो गये जब कि तीन अंशशोधन विधियों द्वारा नमूने का एक-सा भार पाया गया।

यह सारा कार्य सुगमता से हो गया हो ऐसी बात नहीं थी। सफोला के अपने रोचक वृत्तांत के अनुसार एक दिन उसने प्रयोगशाला की ऊपरी मंजिल के कक्ष में ढेर सारे काउंटरों को शोर मचाते देखा। छत पर भीमकाय वाष्पन पात्र रखे थे, जिनमें यूरेनिल नाइट्रेट के ईथर द्वारा निकले निष्कर्ष (Extract) लबालब भरे थे। इन्हें देखकर वह हड़बड़ा सा गया। वर्नर के अनुसार एक दिन उसे अपनी सूक्ष्मरसायन प्रयोगशाला के निकट स्थित जोन्स प्रयोगशाला से भीषण खड़खड़ाहट सुनाई दी। वहाँ का हाल देखकर उसके होश उड़ गये। जिस अपकेन्द्रण यंत्र (Centrifuge) में उसने प्रथम संचित प्लूटोनियम विलयन को रखा था, उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। अमूल्य परन्तु विषैला विलयन यंत्र की बेयरिंगों के बीच टपक-टपक कर फर्श पर बह रहा था। उनके लिये वह वास्तव में काला दिवस ही था। बड़े परिश्रम से उन्होंने तौलिये तथा स्पंज द्वारा विलयन को सोखा। धैर्यता से संपाचन क्रिया द्वारा वे चतुर रसायनज्ञ सारा प्लूटोनियम बचा सके।

इसी क्रम में एक और दुर्घटना घटी थी। बड़ी मात्रा में प्राप्त यूरेनियम विरल मृदा मिश्रित प्लूटोनियम को प्राप्त करने की जिम्मेदारी जैफी तथा कोहमान की टोली पर थी। यह क्रम लम्बा तथा जोखिम भरा था। उन्हीं के एक सहयोगी पेरिमन ने सारे संचित पदार्थ को एक लीटर वाले बीकर में रात भर के लिये छोड़ दिया था। अगले प्रातः काल बीकर टूटी अवस्था में मिला। ऐसा लगा कि रात्रि काल में एक सीसे की ईंट उस पर गिर पड़ी। याद रहे कि तीव्र विकिरण वाले पदार्थ के खतरे से बचने के लिये उसे सीसे की ईंटों द्वारा घेर कर रखना आवश्यक होता है। बीकर शिकागो ट्रिब्यून समाचार पत्र की एक प्रति पर रखा गया था जिसने बीकर से निकले सारे विलयन को सोख लिया था। अमूल्य निधि को समाचार पत्र से निकालने के लिये एक विशाल वाष्पन पात्र ढूँढा गया जो स्नान टब से भी बड़े आकार का था। कई दिनों तक पत्र के कागजों का नाइट्रिक अम्ल द्वारा उस कढ़ाई में पाचन होने के पश्चात् ही बीकर से उस सम्पदा की प्राप्ति संभव हो सकी।

अंततः मानव निर्मित प्लूटोनियम वियोजित हो ही गया। स्वाभाविक था कि सारा समूह उसके दर्शन के लिये उत्सुक हो रहा था, परन्तु देखने को था ही क्या। कुछ व्यक्तियों को तो विश्वास था कि यह सरा कार्यक्रम ढकोसला मात्र ही था। उधर कार्यकर्ताओं ने सोचा कि अमूल्य विरल नमूने को दिखाने के बजाय एक नकली विलयन ही प्रदर्शित किया जाये। इसके लिये हरी स्याही का विलयन उचित समझा गया क्योंकि प्रयोगकाल में प्लूटोनियम लवण का विलयन हरा ही दिखाई दिया था। एक विशिष्ट व्यक्ति के सम्मान में ऐसा हरा विलयन एक दिन पहले संजोकर रख दिया गया। अगले प्रातः विशिष्ट अतिथि के आने के पहले अफरातफरी मच गई, क्योंकि विलयन जामुनी रंग में बदल गया था। खैर किसी प्रकार मामले को रफादफा किया गया। बाद में यह भी ज्ञात हुआ कि प्लूटोनियम की +3 अवस्था का रंग जामुनी ही होता है। इसको उचित चेतावनी मानी गई। बाद में सीबोर्ग ने इस ढकोसले के औचित्य को हँसी में न्यायसंगत बताते हुए कहा कि "मैंने तो अतिथि से यही कहा था कि विलयन प्लूटोनियम हाइड्रॉक्साइड को निरूपित करता है।"

प्लूटोनियम की प्रथम बार भारात्मक मात्रा जानने का समाचार 10 सितम्बर 1942 वाले सप्ताह में होने वाले एक सेमिनार में सीबोर्ग ने वैज्ञानिक मंडली को दिया था। उन दिनों की याद करते हुए एक वरिष्ठ वैज्ञानिक ने वर्षों के बाद कहा था कि यह कठिन व जटिल कार्य ऐसे युवा वैज्ञानिक समूह ने सम्पन्न किये जिनमें साहसिकता और ढिठाई थी। इसी कारण वे असंभव को संभव करने में समर्थ हो सके। □

ब्रह्माण्ड विज्ञान

कैसे निर्धारित करें ब्रह्माण्ड की आयु ?

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक, भूगर्भ, इंजिनियरिंग कॉलेज, भागलपुर-813210

प्रकृति का एक शाश्वत नियम है कि हमें जो भी कुछ दिखाई पड़ता है, उसका कभी न कभी जन्म हुआ है तथा कभी न कभी विनाश या अन्त भी अवश्य होगा। अब प्रश्न उठता है कि उस ब्रह्माण्ड की उत्पति कब हुई जिसके अंग सभी पदार्थ हैं, जिनमें शामिल हैं- धरती, चन्द्रमा, सूरज तथा अन्य तारे एवं मंदाकिनियाँ इत्यादि। वैज्ञानिकों ने पृथ्वी तथा कई खगोलीय पिण्डों की आयु का अनुमान लगा लिया है। वे इस अखिल ब्रह्माण्ड की उत्पति-काल तथा इसकी आयु का अनुमान लगाने का प्रयास काफी लम्बे अरसे से करते आ रहे हैं। विगत कुछ दशकों में वैज्ञानिकों को इस दिशा में महत्वपूर्ण सफलतायें प्राप्त हुई हैं।

सन् 1930 के दशक में संसार के प्रमुख खगोलविद् **एडविन हब्बुल** ने अपने द्वारा किये गये शोधों से पता लगाया कि अन्य मंदाकिनियाँ (गैलेक्सी) हमारी मंदकिनी आकाशगंगा से धीरे-धीरे दूर हटती जा रही हैं। इस पर्यवेक्षण के आधार पर उसने निष्कर्ष निकाला कि ब्रह्माण्ड धीरे-धीरे फैल रहा है। परन्तु ब्रह्माण्ड का यह फैलाव किस दर से हो रहा है यह बताने में हब्बुल असमर्थ रहा। हाल ही में **माइकेल पिचेर्स** के नेतृत्व में अनुसंधानरत वैज्ञानिकों तथा **वेंडी फ्रिडमैन** के नेतृत्व में शोधरत खगोल वैज्ञानिकों ने यह दावा किया है कि उन्होंने ब्रह्माण्ड के फैलने की गति को निर्धारित करने में सफलता प्राप्त कर ली है।

इन दो वैज्ञानिक दलों ने ब्रह्माण्ड में फैलाव की दर को मापने के लिए एक नियतांक (कॉंस्टैंट) को निर्धारित किया है जिसे 'हब्बुल नियतांक' कहा जाता है। एडविन हब्बुल ने पता लगाया था कि कोई मंदाकिनी हमसे जितनी अधिक दूर है, वह उतनी ही अधिक तेजी से हमसे दूर हटती दिखाई देती है। गणितीय भाषा में हम कह सकते हैं कि किसी मंदाकिनी का हब्बुल नियतांक उस मान को बताता है कि जो उसकी गति को उसकी दूरी में भाग देने से प्राप्त होता है।

अब प्रश्न उठता है कि किसी मंदाकिनी का हब्बुल नियतांक कैसे मालूम किया जाय? इस नियतांक को मालूम करने के लिए सबसे पहले उस मंदाकिनी की हमसे दूर हटने की गति को मालूम करना पड़ता है। यह काम कठिन है। इसके लिए उस मंदाकिनी से उत्सर्जित प्रकाश का अध्ययन किया जाता है तथा उसकी आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) में आने वाले परिवर्तन (विस्थापन) को मापा जाता है। इस विस्थापन को सामान्य भाषा में लाल विस्थापन (रेड शिफ्ट) कहा जाता है। यह विस्थापन कुछ उसी प्रकार का है जिस प्रकार का विस्थापन किसी दूर जाती हुई मोटरकार के सायरेन की ध्वनि की तेजी (पिच) में मालूम पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई वस्तु हमसे जितनी अधिक गति से दूर हटती है उससे निकलने वाली ध्वनि या प्रकाश की आवृत्ति में उतना ही अधिक विस्थापन मालूम पड़ता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या है मंदाकिनियों की दूरी माप की। यह समस्या भी काफी जटिल है। विगत लगभग पाँच दशकों के दौरान वैज्ञानिकों के बीच सबसे अधिक विवाद का विषय मंदाकिनियों के बीच की दूरी का ही रहा है। इस समस्या के समाधान की दिशा में सबसे अधिक भरोसेमन्द विधि रही है सेफाइड तारों के उपयोग की। सैफाइड तारे उस प्रकार के तारे हैं जो हमारे सूर्य से तिगुने या चौगुने बड़े हैं। इनका नाम सेफाइड तारा इस कारणवश रखा गया, क्योंकि सबसे पहले इनकी खोज अंतरिक्ष के उत्तरी भाग में स्थित सेफाइड नामक तारामंडल में हुई थी। ऐसे तारे अपने विकास के मध्य काल में नियतिकालिक स्पंदन (पल्सेशन) अर्थात् प्रसार तथा संकुचन के दौर से गुजरते हैं।

सन् 1920 के दशक में **हेनरियेट्टा सीविट** तथा

हार्लो शैपली नामक वैज्ञानिकों ने अपने द्वारा किये गये अध्ययनों से पता लगाया है कि जो सेफाइड तारा जितना अधिक चमकीला था उसका स्पन्दन (पल्सेशन) उतना ही मन्द था, अर्थात् इसके प्रसार तथा संकुचन की गति धीमी थी। इन वैज्ञानिकों ने इन तारों की चमक तथा उनके स्पंदन अवधि के बीच संबंध स्थापित किया। इन वैज्ञानिकों द्वारा दिये गये सूत्र के आधार पर खगोल वैज्ञानिक लोग किसी तारे के स्पन्दन की गति को जानकर उस तारे की चमक का अनुमान लगाने में समर्थ हुए। इस प्रकार सेफाइड तारे खगोल वैज्ञानिकों के लिए बहुत उपयोगी साबित हुए। अब वे इनकी सहायता से किसी तारे की निरपेक्ष चमक का अनुमान लगा सकते थे। फिर निरपेक्ष चमक तथा आभासी चमक के बीच का अन्तर मालूम कर उस तारे की दूरी की गणना की जा सकती थी।

परन्तु सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सेफाइड तारे अधिक चमकीले नहीं हैं तथा दो करोड़ दस लाख प्रकाश वर्ष से अधिक दूरी पर स्थित सेफाइड तारों को सामान्य दूरबीनों की सहायता से देख पाना संभव नहीं है। एक प्रकाश वर्ष वह दूरी से जिसे प्रकाश किरणें एक वर्ष में तय करती हैं। हमारे पड़ोस की मंदाकिनियाँ हमसे करोड़ों प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त विधि द्वारा सिर्फ चंद मंदाकिनियों की ही दूरी की माप की जा सकती है।

मंदाकिनियों की दूरी का अनुमान लगाने हेतु खगोल वैज्ञानिक लोग अन्य विधियों की खोज का प्रयास भी करते आये हैं। अब तक ये वैज्ञानिक दो खेमों में बँटे रहे हैं। प्रत्येक खेमे के वैज्ञानिक मंदाकिनियों की दूरी को मापने हेतु सुपरनोवा से लेकर तारामंडलों के इर्द गिर्द मौजूद नाभस (नेबुला) जैसे खगोलीय पिण्डों का उपयोग करते हैं। परन्तु दोनों के तरीकों में कुछ भिन्नता रही है। यही कारण है कि दोनों खेमों के वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित हब्बुल नियतांक के मान में काफी अंतर रहा है। ऐलेन सैंडेज नामक वैज्ञानिक के नेतृत्व में काम करने वाले खेमे के वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित हब्बुल नियतांक का मान या 50 किलोमीटर प्रति मेगा पार्सेक (एक पार्सेक = तीन प्रकाश वर्ष)। दूसरे खेमे के वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित हब्बुल नियतांक का मान था लगभग 100 किलोमीटर प्रति मेगा पार्सेक। इस प्रकार वैज्ञानिक लोग किसी सर्वसम्मत मान पर नहीं पहुँच पा रहे थे।

सन् 1990 में हब्बुल नामक अति विकसित किस्म की एक दूरबीन को अन्तरिक्ष में स्थापित किया गया। इस दूरबीन को अंतरिक्ष में स्थापित करने का एक प्रमुख उद्देश्य था कन्या राशि (वर्गो कौंस्टेलेशन) के सेफाइड तारों का अध्ययन, जो काफी दूरी पर स्थित तारा समूह है। इस अंतरिक्ष दूरबीन से खगोल वैज्ञानिकों को पहले की तुलना में काफी अधिक मंदाकिनियों से संबंधित आँकड़े प्राप्त होंगे जिनसे हब्बुल नियतांक की गणना की जा सकती है। इस दूरबीन से एम-100 नामक मंदाकिनी के संबंध में प्राप्त आँकड़ों की सहायता से संयुक्त राज्य अमेरिका की कार्नेगी वेधशाला में कार्यरत वेंडी फ्रीडमैन तथा उसके साथियों ने जो हब्बुल नियतांक प्राप्त किया उसका मान है 80 किलोमीटर प्रति मेगा पार्सेक। हाल ही में संयुक्त राज्य अमेरिका के इंडियाना विश्वविद्यालय में कार्यरत माइकेल पियेर्स ने हवाई द्वीप के 'मौनाकी' नामक पर्वत की चोटी पर स्थित दूरबीन की सहायता से एन०जी०सी०-4571 नामक मंदाकिनी में अनेक सेफाइड तारों का पता लगाया तथा इनके संबंध में प्राप्त आँकड़ों से हब्बुल नियतांक की जो गणना की उसका मान था 87 किलोमीटर प्रति मेगा पार्सेक।

ब्रह्माण्ड विज्ञान में उपर्युक्त गणनाओं तथा आँकड़ों का सर्वाधिक महत्व ब्रह्माण्ड की आयु के निर्धारण हेतु है। ब्रह्माण्ड की आयु हब्बुल नियतांक तथा ब्रह्माण्ड में मौजूद पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करता है। जिस प्रकार हब्बुल नियतांक के मान के संबंध में वैज्ञानिकों के बीच मतभेद है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में मौजूद पदार्थ की मात्रा के संबंध में वैज्ञानिकों के बीच मतभेद है। यही कारण है कि विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा ब्रह्माण की आयु की जो गणना की गयी है उसका मान भी भिन्न-भिन्न आता है। यह मान आठ अरब वर्ष के बीच आता है। परन्तु अधिकांश खगोल वैज्ञानिकों की धारणा है कि ब्रह्माण्ड की आयु का उपर्युक्त मान बहुत कम मालूम पड़ता है। आयु का वास्तविक मान इससे काफी अधिक हो सकता है। वैज्ञानिकों की इस धारणा ने एक महत्वपूर्ण प्रश्न को जन्म दिया है कि ब्रह्माण्ड की आयु की गणना में कहाँ त्रुटि रह गयी? □

कृषि विज्ञान

पारंपरिक खेती बनाम व्यावसायिक खेती

डॉ० राधा मोहन श्रीवास्तव
उपाचार्य एवं अध्यक्ष, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, नेशनल पी०जी० कॉलेज
बड़हलगंज, गोरखपुर-273 702

आधुनिक खेती को हम व्यावसायिक खेती भी कहते हैं। आधुनिकता किसी क्षेत्र में लायी जा सकती है। यह एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है। अतएव, यह निरन्तर परिवर्तनशील भी है। कृषि में प्रगति का चक्र जितनी तेजी से चलेगा, जितनी तेजी से परिवेश बदलेगा, राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और सामाजिक शक्तियाँ जितनी सक्रिय होंगी और स्थिति से जितनी तेजी से टकरायेंगी, उतनी ही तेजी से कृषि में आधुनिकता के स्वरूप और उसकी अवधारणाओं में परिवर्तन होंगे।

सामान्यतया, पारम्परिक खेती को हम जीवन निर्वाही खेती कहते हैं। किन्तु आज पारम्परिक खेती से जीवनयापन कर लेना संभव नहीं रह गया है। आज ऐसी उपभोक्ता संस्कृति और वैश्वीकरण का बोलबाला है कि कोई भी कृषक बिना इनकी धारा से जुड़े प्रगति नहीं कर सकता। यही कारण है कि पारंपरिक खेती का स्थान व्यावसायिक खेती लेने लगी है। पारंपरिक खेती रूपान्तरित हो रही है। नवोन्मेष हो रहा है कृषि का।

वास्तव में, आज रूढ़ियों तथा परंपराओं को तोड़ने की इच्छाशक्ति का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया है। स्वाभाविक है कि हमारा ध्यान इस प्रश्न पर विचार करने के लिए आकृष्ट हो। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि कैसे कोई पारम्परिक कृषि अपने को आधुनिक कृषि में बदल लेती है? पारंपरिक खेती में कृषक अधिकांशतः अपने उपभोग के लिए ही वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। व्यावसायिक खेती में या आधुनिक खेती में अथवा मौद्रिक अर्थव्यवस्था में निर्यात् क्षेत्र तथा औद्योगिक क्षेत्र को भी बढ़ावा मिलता है।

यह एक मानी हुई बात है कि एक बार जब कृषि पारंपरिक अवस्था से बाहर आ जाती है और निर्यात के लिए वस्तुओं का उत्पादन करने लगती है तो कृषि और उद्योग दोनों क्षेत्र एक-दूसरे पर निर्भर हो जाते हैं। औद्योगिक क्षेत्र कृषि द्वारा उत्पादित वस्तुओं के बाजार को बढ़ाता है। और कृषि क्षेत्र के फालतू श्रम को खपाता है, जिससे कृषि उत्पादिता में वृद्धि होती है।

वैसे भी, कृषि विकास के लिए यह आवश्यक है कि कृषि क्षेत्र बड़ी मात्रा में उद्योगों के लिए साधन पूर्ति करे यही नहीं बल्कि कृषि को अवश्य ही देश भर के उपभोक्ताओं के लिए भोजन का सरंजाम जुटाना चाहिए। इसके लिए हमारी कृषि सामर्थ्यवान बने। इसे अवश्य ही औद्योगिक उत्पादों के लिए आंतरिक बाजार उपलब्ध करने में समर्थ होना चाहिए। इसके बाद कृषि को विश्व बाजार में उपभोक्ताओं तथा उद्योगों को अपने उत्पाद मुहैया करने में सामर्थ्यवान होना चाहिए। पारंपरिक खेती इन महत्वपूर्ण उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकतीं।

इसी प्रसंग में एक विचारणीय पहलू और भी है। चूँकि भूमि की पूर्ति सीमित है, इसलिए भी कृषि उत्पादकता में वृद्धि आवश्यक हो जाती है। और ठोस रूप में कहें तो कृषि में वर्द्धमान उत्पादकता तभी संभव है जब परम्परागत कृषि को आवश्यक रूप से आधुनिक/व्यावसायिक खेती में रूपान्तरित कर दिया जाए।

कुछ अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि कृषि की निम्न उत्पादिता का महत्वपूर्ण कारण विशिष्ट साधनों जैसे उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशी, यंत्र-उपकरण, शोध, शिक्षा तथा प्रशिक्षण का अभाव है, न कि केवल पूँजी का अभाव। इन अर्थशास्त्रियों का यह भी मत है कि कृषि उत्पादिता में वृद्धि का सबसे व्यावहारिक और कम खर्चीला आय संसाधनों/आदानों/अन्तर्धारित की गुणवत्ता में सुधार, ज्ञान-विज्ञान तथा प्रगति का होना है। साथ ही आधुनिक प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रयोग द्वारा मौजूदा कृषि व्यवसाय की कार्यकुशलता में बेहतरी लाना कम आवश्यक नहीं।

जो भी हो, आज पारम्परिक खेती को विकास के सापेक्षतः सस्ते स्रोत में बदलने का मार्ग अपनाना होगा। ऐसे नवीन कृषि आदानों की पूर्ति को बढ़ाने के लिए निवेश करना होगा जिन्हें अपनाया जाना कृषि के लिए लाभदायी हो। इस संदर्भ में उर्वरकों का प्रयोग और अच्छी दर वाली फसलों का चुनाव विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है।

अधिक पैदावार देने वाली किस्मों का कार्यक्रम वर्ष 1966-67 में शुरू हुआ और इसका देशव्यापी विस्तार होने लगा। उस वर्ष 19 लाख हेक्टेयर भूमि इसके अन्तर्गत थी। मैक्सिको की बौनी गेहूँ प्रजाति इस बात की साक्षी है कि नयी प्रौद्योगिकी का कृषि क्षेत्र की उत्पादिता पर क्या प्रभाव पड़ता है। ऐसी ही बौनी प्रजातियों से हमारे देश में व्यावसायिक खेती करने में गतिशीलता आई।

व्यावसायिक खेती में उत्पादिता में वृद्धि बेहद जरूरी है। इसके लिए पहले अधिक से अधिक क्षेत्रफल खेती के उपयोग में लिया जाता है। परन्तु जैसे-जैसे भूमि का अभाव होता जाता है, कृषि विकास का स्रोत कृषि भूमि के विस्तार अथवा विस्तृत खेती से हटकर गहन खेती की ओर मुड़ता है। इसके लिए सुधरे बीज, उर्वरक, कीटनाशी, सिंचाई, यंत्र-उपकरण जैसे मदों पर निवेश करना महत्वपूर्ण बन जाता है। संक्षेप में कहें तो कृषि में सामयिक तकनीकी परिवर्तन आवश्यक बन जाता है। भारत में हो रही जनसंख्या वृद्धि कृषि में परिवर्तन या आधुनिकीकरण को प्रोत्साहित करती है।

इसमें सन्देह नहीं कि पिछले 30-35 वर्षों के दौरान भारतीय कृषि व्यवसाय में इच्छाशक्ति बढ़ा है और प्रगति हुई है। अधिक पैदावार देने वाली फसलों की किस्मों का विकास हुआ है। अधिक सिंचाई जल की व्यवस्था की गयी है। उर्वरकों व पौध संरक्षण रसायनों के उपयोग में वृद्धि हुई है। भूमि संरक्षण के विकसित उपाय किए गए हैं। नतीजतन प्रमुख फसलों की उत्पादनशीलता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। साथ ही, ट्रैक्टर, कम्बाइन हार्वेस्टर, थ्रेसर, ट्यूबवेल, पम्पिंग सेट, प्लान्टर, सीड ड्रिल आदि श्रम बचाने और कृषि दक्षता बढ़ाने वाले अनेकानेक यंत्र-उपकरणों के आविष्कार हुए हैं और उनके प्रयोग बढ़े हैं। औद्योगीकरण में तेजी आई है। इन सभी उपायों से पारम्परिक खेती का स्थान व्यावसायिक खेती लेने लगी है। जाहिर है कि यह विषय रूढ़ियों तथा परम्पराओं को तोड़ने की इच्छाशक्ति पर निर्भर है। और, इच्छाशक्ति जाग्रत करने के लिए जनसंख्या वृद्धि पहले बाध्य करके फिर प्रोत्साहित करती है।

यह एक शुभ लक्षण है कि कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक विकास की प्रक्रिया ने कृषकों की इच्छाशक्ति को बढ़ाया है। इच्छाशक्ति की ही बदौलत गेहूँ की प्रति हेक्टेयर औसत उपज देने वाली उन्नत किस्मों को बोकर और संस्तुत प्रणालियों को अपनाने पर उपज बढ़ाई गई है। यह उपज वृद्धि 22 क्विंटल से लेकर 40 क्विंटल तक दर्ज की गयी है। प्रगतिशील किसानों के फार्मों पर धान, मक्का, गेहूँ और गन्ने की पैदावार औसत पैदावार की अपेक्षा 25% से 50% तक बढ़ गयी है। फसल प्रदर्शन के परिणामों से यह स्पष्ट हो चुका है कि अधिक पैदावार देने वाली किस्मों और समुन्नत प्रणालियों को अपनाकर पैदावार के स्तर को इससे भी अधिक बढ़ाया जा सकता है।

बहरहाल यह व्यावसायिक खेती का बढ़ता प्रभाव ही है कि भारत में उर्वरकों के उत्पादन और खपत में 1950-51 की तुलना में आज क्रमशः 175 और 176 गुनी वृद्धि हुई है। इसी प्रकार सिंचित क्षेत्रफल, कुल फसली क्षेत्रफल और अधिक पैदावार देने वाली फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। इन सभी के फलस्वरूप देश में खाद्यान्न उत्पादन जो 1950-51 में 5.50 करोड़ टन था, वह आज 1997-98 में बढ़कर लगभग 19 करोड़ टन हो गया। आलू, गन्ने, तिलहन और दलहनों की उपज में भी आशातीत वृद्धि हुई है।

परन्तु, समस्याएँ भी कम नहीं। अब आइए कृषि व्यवसाय की उन समस्याओं पर विचार करें जो इसकी प्रगति में बाधक बन रही हैं-

कितनी अजीब बात है कि फसलोत्पादन की बुनियादी और सबसे महत्वपूर्ण सामग्री उत्कृष्ट बीज के अभाव में सब किए पर पानी फिरता रहता है। उपज में खासी कमी हो जाया करती है। अमूमन देखने में आता है कि किसानों ने एक ही बीज कई सालों तक लगातार बोए हैं, जबकि दो बार बोने के बाद बीजों की अधिकाधिक पैदावार की क्षमता काफी हद तक चुक जाती है। बीज उत्पादन केन्द्रों पर पैदा किए गए बीज में प्रायः समुचित प्रमाणीकरण और श्रेणीकरण का अभाव होता है। नतीजतन, घटिया व नकद्दर बीज किसानों को मिल पाते हैं। ऐसी दशा में फसलों की उपज में न तो मात्रात्मक बढ़ोत्तरी हो पाती है और नां ही गुणात्मक बेहतरी आ पाती है। तब यदि 26 वर्ष पुराने बने 'बीज अधिनियम' को महज कागजी ही रह जाना करार दिया जाना असंगत न होगा।

यद्यपि अप्रमाणित बीज बेचने पर विक्रेता के विरुद्ध 1995,

10 की धारा 4 बीज आदेश सं० 1983 आवश्यक खाद्य वस्तु अधिनियम के तहत मुकदमे यदा-कदा पंजीकृत किये जाते हैं तथापि निम्न कोटि के मिलावटी बीजों के विक्रय धड़ल्ले से हो रहे हैं।

दूसरी ओर, जहाँ तक रासायनिक उर्वरकों के उपलब्धता की वात है, माँग की बनिस्बत इसकी पूर्ति ही कम ठहरती है। पर, जो कुछ उपलब्ध है वह शुद्ध मिले तो भी गनीमत रहती। विभिन्न उर्वरकों में मिलावट के धंधेबाज बेरोकटोक मिलावट कर रहे हैं। कहीं-कहीं तो मिलावट की बात ही नहीं वरन् एकदम नकली उर्वरक बेचकर किसानों की आँखों में धूल झोंका जा रहा है। यह जो कुछ हो रहा है वह रासायनिक खादों की चमक-दमक, प्रचार और अंधाधुंध इस्तेमाल की किसानों की बढ़ती मानसिकता की वजह से है। वे निश्चय ही गुमराह हो गए हैं, क्योंकि जीवांश खादों (जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, खली आदि) की खूबियों से वे या तो अन्जान हैं या कि उस ओर से बेपरवाह हो चुके हैं।

कुदरती और बनावटी खाद के सवाल को लेकर राष्ट्रपिता गाँधी जी ने विल्टशायर के एक बड़े किसान फ्रेण्ड सायिक्स का 'ह्यूमस ऐण्ड फार्मर' विषयक लेख अपने पत्र 'हरिजन सेवक' के 10 नवम्बर 1946 के अंक में प्रकाशित किया था। लेख में उस किसान ने कहा है, "आज जो एक फैशन बन चुका है कि हम जमीन को उपजाऊ बनाने के बारे में वनस्पतियों के बजाय रसायनशास्त्र के उसूलों पर सोचते हैं, सो गलत है।..... बनावटी खाद से ऐसी फसल पैदा होती है जो शक्ति को इतना घटा देती है कि खाने वालों में बीमारी को रोकने की ताकत दिन-ब-दिन कम होती जाती है।" सायिक्स ने आगे कहा है, 'दिनों दिन हम ऐसी खराबी की ओर बढ़ रहे हैं जो करीब-करीब सभी मुल्कों में जमीन के उपजाऊपन को पुराने जमाने का एक किस्सा बना देगी।'

अफसोस है कि कई बार विद्वानों की अनेक चेतावनियों के बावजूद वानस्पतिक खादों के भरपूर उपयोग की ओर से हमारे किसान निरन्तर मुँह फेरते जा रहे हैं। काश, उन्हें प्रदर्शनियों के जरिए अच्छी तरह समझा दिया जाता कि रासायनिक खादों से कहीं बेहतर परिणाम देने वाली जीवांश खादें हैं। इनसे उपजाई गई चीजें ज्यादा स्वादिष्ट हैं और इनसे स्वास्थ्य के लिए कोई क्षति नहीं पहुँचती। मिट्टी की सेहत ठीक रहती है और खादों का उपजाऊपन दो सालों तक बना रहता है। यह भी किसानों को समझाया जाय कि रासायनिक खादों के प्रयोग के घातक परिणाम क्या हैं? और उनसे बचने में ही किसान व उसकी खेती की भलाई है।

इसी तरह, फसलों को बचाने के लिए न तो कुशल कीट नियंत्रण विधियों व कीटनाशकों की व्यवस्था और न रोगनाशकों की। जिन कीट-रोग नाशकों का बारम्बार इस्तेमाल किया जाता है, आगे चलकर वे बेअसर हो जा रहे हैं। इस कारण कीट-रोग नियंत्रण को पूरी तरह एक गतिशील विज्ञान बनाये बगैर काम नहीं चल सकता। आज फसलों, कीट-व्याधि नाशकों और पर्यावरण की अन्तःक्रियाओं को भली-भाँति परखना-समझना अनिवार्य बन चुका है।

यद्यपि आधुनिक खेती/व्यावसायिक खेती की अनेक विशेषताएँ हैं और बड़े लाभ भी किन्तु व्यावसायिक खेती करते समय पारम्परिक खेती को पूरी तरह नजरंदाज करना घातक है। खासकर जीवांश खादों में व्यावसायिक कृषकों को दिलचस्पी लेनी ही होगी। ❑

सूखा आलू

मैड्रिड के एक वैज्ञानिक फ्रेन्सिको कमाचो जोरेज ने आलू सुखाने की एक नयी तकनीक विकसित की है। इस विधि से निर्जलित आलू को पानी में डाल कर पुनर्गठित करने पर वह बिलकुल ताज़ा आलू जैसा बन जाता है, जब कि अन्य प्रचलित तकनीकों से सुखाया गया आलू चिपचिपा और लिसलिसा बन जाता है। केमिस्ट्री एंड इंडस्ट्री पत्रिका में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार जोरेज की तकनीक में निर्जलन (सुखाने) के पहले आलू कंद में उपस्थित एमाइलो पेक्टिन मांड का सोडियम हाइड्राक्साइड, एसिटिक अम्ल या अल्कोहॉल जैसे हल्के ऑक्सीकरणी की सहायता से विघटन किया जाता है, फिर आलू की कतरनों को भट्टी (ओवन) में गरम हवा चला कर सुखाया जाता है। इस तरह तैयार सूखा उत्पाद कई महीनों तक अच्छा रहता है और भंडारण के लिए विशेष साधन उपस्करों की आवश्यकता नहीं होती। उपयोग करना चाहें तो बस इन सूखी कतरनों को, ताज़ा आलू जैसा बनने तक पानी में डाल कर रखना है।

बाल विज्ञान

विज्ञान और हम

डॉ० रमेशचन्द्र तिवारी
प्राध्यापक, राजकीय सेरछिप कॉलेज, सेरछिप, जनपद - आइजोल-796181 (मिजोरम)

वर्तमान युग में हम प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में विज्ञान से इस कदर जुड़े हुए हैं कि उसके बिना सामान्य जीवन की कल्पना तक करना मुश्किल है। ग्रामीण इलाकों में दूध की शुद्धता के निर्धारण हेतु आम आदमी द्वारा प्रयोग किया जाने वाला लैक्टोमीटर हो या फिर विशिष्ट वैज्ञानिक आवश्यकताओं का क्षेत्र जैसे- विभिन्न उपग्रहों तथा अंतरिक्ष शटलों आदि का प्रक्षेपण हो, में विज्ञान के अनगिनत सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है।

विज्ञान शब्द से अभिप्राय उस विशिष्ट ज्ञान से है, जो क्रमबद्ध एवं सूत्रबद्ध ढंग से प्राप्त किया जाता है। अथवा विज्ञान, ज्ञान प्राप्त करने की वह विधा है जिसमें तार्किक विधियों एवं प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। यूँ तो आम धारणा यह रही है कि विज्ञान धर्म एवं दर्शन का विरोधी है, पर इस भ्रान्ति की महत्वहीनता विश्वविख्यात महान वैज्ञानिक **अलबर्ट आइन्सटीन** के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाती है— **"धर्म के बिना विज्ञान पंगु है और विज्ञान के बिना धर्म अन्धा है।"** इसके अतिरिक्त यदि हम मूलभूत भौतिकी (परमाणु संरचना) एवं मूलभूत गणित (प्राकृतिक संख्याएँ) की बात करें तो यह मूल रूप से कल्पनाओं पर ही आधारित है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कार्य करने का मतलब है ऐसी दक्षता से कार्य करना जिसमें निवेश न्यूनतम, हानि कम से कम तथा लाभ अधिकतम हो। उपरोक्त कथन को और स्पष्ट करने हेतु यहाँ पुनः महाविज्ञानी अलबर्ट आइन्स्टीन के जीवन की एक घटना का उल्लेख समीचीन होगा। मृत्यु के कुछ दिन पूर्व किसी ने आइन्स्टीन से पूछा, "आप वैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति और अवैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति में क्या अन्तर करते हैं?" आइन्सटीन ने उत्तर दिया, "वैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति से अगर आप 100 प्रश्न पूछेंगे तो वह 99 प्रश्नों के बारे में 'मुझे पता नहीं' कहेगा। सौवें प्रश्न के बारे में कहेगा, 'इसके बारे में मुझे जो जानकारी है वह इतनी ही है, पूर्ण नहीं। कल पता लग जायेगा क्योंकि ज्ञान रोज प्रकाशमान है। लेकिन अवैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति से जब 100 प्रश्न पूछेंगे तो वह 101 उत्तर देगा, और हर उत्तर पर दावा करेगा कि यह उत्तर पूर्ण एवं आखिरी है इसके आगे उत्तर नहीं हो सकता।"

आइए अब विभिन्न वैज्ञानिक शाखाओं (विशेष रूप से भौतिकी) की संक्षिप्त जानकारी ले लें।

(1) **भौतिक शास्त्र**— विज्ञान की इस शाखा के अन्तर्गत् द्रव्य की तीन प्रमुख अवस्थाओं (ठोस, द्रव एवं गैस) के भौतिक गुणधर्मों का व्यापक अध्ययन किया जाता है। भौतिक शास्त्र की अनेक उपशाखाएँ हैं, जिनमें कुछ निम्नवत् हैं—

(क) ठोस अवस्था भौतिकी, (ख) नाभिकीय भौतिकी, (ग) इलेक्ट्रॉनिकी, (घ) खगोल भौतिकी, (ङ) भू-भौतिकी, (च) मौसम विज्ञान, (छ) प्लाज़्मा भौतिकी, (ज) कम्प्यूटर विज्ञान और (झ) कृषि-भौतिकी।

(क) **ठोस अवस्था भौतिकी** के अन्तर्गत् ठोस अवस्था पदार्थों की आन्तरिक संरचना एवं अन्य सम्बन्धित गुणधर्मों का अध्ययन किया जाता है। इन्हीं गुणों के आधार पर ठोसों को चालक, कुचालक, अर्द्धचालक एवं अतिचालक आदि वर्गों में बाँटा गया है।

(ख) **नाभिकीय भौतिकी** के अन्तर्गत् परमाणु की आन्तरिक संरचना, उसमें उपस्थित नाभिक की संरचना एवं नाभिक के अन्दर उपस्थित विभिन्न कणों एवं नाभिकीय क्रियाओं आदि का अध्ययन किया जाता है।

(ग) **इलेक्ट्रॉनिकी** भौतिकशास्त्र की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत् निर्वात में इलेक्ट्रॉनों के प्रवाह का अध्ययन करते हैं।

(घ) **खगोल भौतिकी** के अन्तर्गत्, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, उसका जीवन काल, उसमें उपस्थित तारों, काले छिद्रों आदि के जन्म प्रौढ़ावस्था एवं मृत्यु आदि का व्यापक अध्ययन किया जाता है।

(ङ) **भू-भौतिकी** भौतिक शास्त्र की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत् पृथ्वी में होने वाले वाह्य एवं आन्तरिक परिवर्तनों एवं भूगर्भ में छिपे खनिजों, जीवाश्मों आदि का अध्ययन किया जाता है।

(च) **मौसम विज्ञान** के अन्तर्गत् मौसम परिवर्तन के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार अवयवों जैसे- ताप, दाब, आर्द्रता, वायु-गति एवं दिशा इत्यादि का मान भौतिकी यंत्रों द्वारा मापकर एवं विभिन्न गणनाओं के आधार पर मौसम संबंधी भविष्यवाणियाँ की जाती हैं।

(छ) **प्लाज़्मा-भौतिकी** के अन्तर्गत् द्रव्य के तीन रूपों (ठोस, द्रव व गैस) के अतिरिक्त एक चौथी द्रव्यावस्था (प्लाज़्मा अवस्था) का व्यापक अध्ययन किया जाता है। प्लाज्मा अवस्था में द्रव्य की तीनों अवस्थाएँ एक साथ, एक ही समय में उपस्थित रहती हैं।

(ज) **कम्प्यूटर विज्ञान** भौतिकशास्त्र की वह शाखा है, जिसके अधीन संगणकों के विभिन्न अवयवों का अध्ययन करते हैं, तथा उत्तरोत्तर अधिक कार्यक्षमताओं तथा तीव्रतर गणनाएँ कर सकने में समर्थ कम्प्यूटरों का विकास किया जाता है।

(झ) **कृषि-भौतिकी** के अन्तर्गत् प्रमुख रूप से वहुचर्चित ओज़ोन (O_3) क्षरण के सम्भावित खतरे एवं कृषि क्षेत्र पर इसके कुप्रभावों का अध्ययन किया जाता है। कृषि वैज्ञानिक ऐसी प्रजातियों का विकास करने में लगे हैं, जो अंतरिक्ष से आने वाले हानिकारक पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) विकिरणों को झेल सकें और कृषि-उत्पादन पर प्रतिकूल असर न पड़े।

विज्ञान की कुछ अन्य शाखाएँ निम्नवत् हैं—

(2) **रसायन शास्त्र**— विज्ञान की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत् द्रव्य के विभिन्न रूपों के रासायनिक संगठनों एवं अन्य गुणधर्मों का अध्ययन किया जाता है। इसकी अनेक शाखाएँ हैं।

(3) **बायोलोजी** के अन्तर्गत् दो शाखाएँ- प्राणि विज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान- आती हैं। इसके अधीन भूमण्डल पर उपस्थित जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों का विभिन्न उद्देश्यों हेतु व्यापक अध्यन किया जाता है।

(4) **पर्यावरण विज्ञान**— अन्य वैज्ञानिक शाखाओं की तुलना में नया है परन्तु आम आदमी पर इसका सीधा एवं परोक्ष असर इसके अत्यधिक महत्व को रेखांकित करता है। विज्ञान की इस शाखा के अन्तर्गत् पर्यावरणीय प्रदूषणों (जैसे : वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण) तथा उसके फलस्वरूप मानव जाति एवं अन्य प्राणियों पर पड़ने वाले कुप्रभावों तथा उनके निदान का अध्ययन करते हैं।

विज्ञान ने हमारे भौतिक विकास में तो अवर्णनीय योगदान दिया ही है, साथ ही विनाशकारी पक्ष में इसका योगदान कम नहीं है। यदि एक तरफ हमारे अन्तरिक्षयान चन्द्रमा तथा मंगल ग्रह के तल पर उतर कर वहाँ के प्राकृतिक रहस्यों का पर्दाफाश करने में जुटे हैं, सुदूर शनि ग्रह कर भी सन् 2004 तक अंतरिक्षयान उतरने की सम्भावना है, तो दूसरी ओर आज विश्व में इतने परमाणु हथियार मौजूद हैं जो सम्पूर्ण पृथ्वी को कः बार प्राणीरहित कर सकने में सक्षम हैं। साथ ही सात प्रकृति के कुछ ऐसे रहस्य भी हैं, जिन पर से पद उठना अभी बाकी है। जैसे- ज्वार-भाटा का होना यू०एफ०ओ० (अपरिचित उड़नशील वस्तुएँ) या उड़न तश्तरियों की यात्राएँ, बरमूदा त्रिकोण क्षेत्र का अजी व्यवहार आदि। उक्त सभी रहस्यों पर जारी शोधका के मद्देनज़र आशा की जानी चाहिए कि विज्ञान ए न एक दिन इन पर से पर्दा उठाने में सक्षम होगा यद्यपि विज्ञान के कुछ शोधों (यथा मानव क्लोनिंग) बारे में सम्भावित खतरों को देखते हुए इन्हें जारी रख पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

आभार प्रदर्शन : लेखक, प्रो० डॉ० आर० पं तिवारी, अध्यक्ष, भूगर्भ विज्ञान, पछुन्गा यूनिवर्सिटी कॉले का हार्दिक आभारी है, जिन्होंने विभिन्न विषयों उपयोगी वाद-विवाद करके अमूल्य सहयोग दिया।

व्याख्यान अंश (21-3-98)

स्मृतिशेष डॉ० गोरखप्रसाद

प्रो० हरिश्चंद्र गुप्त

150, दीपाली, पीतमपुरा, दिल्ली-34

सर्वप्रथम मैं 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की अंतरंग सभा के प्रति अपनी कृतज्ञता की अभिव्यक्ति करना चाहता हूँ कि उसने 'डॉ० गोरखप्रसाद स्मृति व्याख्यानमाला' के अन्तर्गत् चौथे व्याख्यान हेतु आमंत्रित कर मुझे गुरुदेव जी को अपनी श्रद्धांजलि देने का अवसर प्रदान किया। मेरे जीवन-विकास में उनकी सर्वाधिक भूमिका थी। गणित तथा अन्य साहित्य लेखन कला भी मैंने उनसे सीखी, शोधकार्य का प्रारंभ तो उनके मार्गदर्शन में किया है।

नवम्बर, 1935 में जब पहली बार मैं सामान्य परिचय पत्र के साथ उनसे घर पर मिला तो वे मुझे तुरंत कार में बिठा पब्लिक लाइब्रेरी ले गये। वहाँ से Philosophical Magazine के अंकों की जिल्द अपने नाम निकलवा मुझे दे दी और उसमें प्रकाशित एक शोध-पत्र का वैकल्पिक हल सुझाया। इस संबंध में जब भी उनसे मिलता वे काफी समय देते, यद्यपि वे अपने लिए Differential Calculus में अत्यन्त व्यस्त थे। जब 25 पृष्ठों का शोधपत्र लंदन में इसी मैगज़ीन हेतु तैयार हो गया तो मैंने कहा कि आपका इतना योगदान है कि लेखकों में आपका नाम भी होन चाहिए। किन्तु अपना नाम देने को राजी न हो उन्होंने मेरे प्रति आत्मीयता का संकेत दे दिया। मुझे प्रूफ पढ़ना सिखा दिया और मैंने पूरे मनोयोग से प्रूफ पढ़े, प्रश्न हल किये, सुझाव भी दिये आदि। परिणामतः Differential Calculus के कृतज्ञता-ज्ञापन में उन्होंने मेरी सराहना 10-12 पंक्तियों के पूरे पैरा में की जबकि अगले छोटे पैरा में औपचारिकता हेतु अपने सहकर्मियों और अन्य व्यक्तियों की चर्चा थी। यह पैरा मेरे लिए प्रेरणास्रोत तथा गणित-जगत हेतु प्रशंसा-पत्र बन गया और वस्तुतः आगे चलकर एक प्रशंसा पत्र उन्होंने लिख ही दिया–

I have the highest respect for Dr. Gupta's scholarship and sincerity.

काव्य में उनकी सदा से रुचि थी। बताते थे कि 'Jack and Jill went up a hill' आदि कविताओं के पद्यानुवाद पर प्रकाशक ने उन्हें 40 रु० दिये थे।

1947 से 1957 तक प्रायः हर ग्रीष्मावकाश में मैं उनके साथ पुस्तकें लिखने मसूरी आदि पहाड़ी स्थलों पर चला जाता था। 1957 में जब हम शिमला में थे, सम्पादक ने 'पराग' पत्रिका के प्रथम अंक हेतु उनसे एक लेख का अनुरोध किया। उन्होंने मुझसे कहा कि मन तो करता है कि चन्द्रलोक की सैर पर लेख लिख दूँ, किन्तु समय नहीं है। तब मैं उनकी सहायता से कविता रूप में लिखने को राजी हो गया। उस समय प्रचलित था फिल्मी गाना 'आओ बच्चों तुम्हें दिखायें झांकी हिन्दुस्तान की'। उसी तर्ज पर दो पंक्तियाँ बना दीं, बाद में मैंने उनकी सहायता से 54 पंक्तियों की कविता पूरी कर दी और वह 'पराग' में छप गयी। उसकी प्रथम आठ पंक्तियाँ ये हैं—

> आओ बच्चों तुम्हें करायें, सैर चमकते चाँद की,
> घटता बढ़ता रहता नभ में जो शोभा रात की।
>
> देखें काले धब्बे कैसे कौन वस्तुएं काम की,
> पहले ठीक सवारी खोजो जल्दी की आराम की।
>
> मोटर गाड़ी आदि सवारी की चर्चा बेकार है,
> वायुयान भी नहीं चलेगा उसे हवा दरकार है।
>
> रॉकिट चलता वाण सरीखा वायुरहित आकाश में,
> ढाई लाख मील की दूरी तय हो जाये मास में।

काव्य-शास्त्र का भी उन्होंने अध्ययन किया होगा। वे बताते थे कि शुभ अवसरों के लिए विशिष्टतः विवाह-निमंत्रण हेतु, हरिगीतिका छंद सर्वश्रेष्ठ है। इसकी विशेषता यह है कि इसे तीन बार गाने से छंद बन जाता है और चार बार भी। सतुकांतता के पचड़े में वे नहीं पड़ते थे। छंद को सतुकांत बना देने पर मेरी सराहना में कहते कि गुप्ता जी तो कविता को माँज कर चमका देने में नहीं थकते।

अव श्रद्धांजलि की इन पंक्तियों से वार्ता समाप्त करता हूँ।

गुरु गोरख थे प्रकाण्ड विद्वदवर
हिन्दी के उद्‌भव सेवी,

सरल सुवोध सुपरिमार्जित थी
भाषा जिनकी वर देवी।

हिन्दी ने भी नेह निभाया,
दिया ''मांगला'- मान उन्हें,

श्रद्धांजलि विज्ञान-गणित पर
व्याख्यान हर हिन्दी में।

पालक पोषक परिषद् और
हिंदी साहित्य सुसम्मेल

विश्वकोष के संपादक वर
कोटि-कोटि है तुम्हें नमन।।

डॉ० माशेलकर 'एफ आर एस' चुने गए

डॉ० रघुनाथ अनंत माशेलकर, महानिदेशक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद और सचिव, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग को रॉयल सोसायटी का फैलो (एफ आर एस) चुना गया है। डॉ० माशेलकर तीसरे भारतीय इंजीनियर और छत्तीसवें भारतीय वैज्ञानिक हैं जिन्हें यह सम्मान प्राप्त हुआ है। उन्हें यह सम्मान पॉलीमर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान के लिए दिया गया है।

पहली जनवरी 1943 को जन्मे डॉ० माशेलकर अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त रासायनिक अभियंता हैं। वे बंबई विश्वविद्यालय से 1966 में बी०केम० इंजी० और 1969 में पी-एच० डी० करने के बाद लंदन चले गये जहां सलफोर्ड विश्वविद्यालय में उन्होंने अक्तूबर 1969 से सितम्बर 1970 तक लीवरह्यूम रिसर्च फैलो के रूप में और सितम्बर 1970 से नवम्बर 1976 तक व्याख्याता के पद पर काम किया। उन्होंने नवम्बर 1976 में राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला में उप-निदेशक के रूप में कार्य भार संभाला और जून 1989 में वे उसी प्रयोगशाला के निदेशक बनाए गए। महानिदेशक के रूप में कार्य संभालने तक वे उसी पद पर कार्यरत रहे।

डॉ० माशेलकर को भारतीय रासायनिक उद्योग में प्रतिरूपण (मॉडलिंग) और अनुकरण (सिमुलेशन) को बढ़ावा देने का श्रेय जाता है। उत्पादकता बढ़ाने और उत्पाद की गुणवत्ता सुधारने के साथ-साथ वैज्ञानिक आधार पर तकनीकों को सुधारने के लिए उनके पॉलीएस्टर रिएक्टर के अनुकरण का प्रयोग भारतीय पॉलीएस्टर फाइबर उद्योग (भारतीय आर्गेनिक केमीकल्स, पेट्रोफाइल्स, डी सी एल पॉलीएस्टर, जे के सिंथेटिक्स) में बखूबी किया गया। उनके प्रतिरूपणों का प्रयोग ईस्टमान कोडेक (अमेरिका), तोयोबा (जापान) और नाइलॉन स्पिनर्स (दक्षिण अफ्रीका) आदि अनेक विदेशी पॉलीएस्टर निर्माताओं ने भी किया।

डॉ० माशेलकर को वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया है।

शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार (1982), हरडिलिया एवार्ड (1982), संतता सिल्वर जुबली अवार्ड (1983), चिन्नामूल मेमोरियल पुरस्कार (1983), यू डी टी सी आउटस्टैंडिंग एल्यूम्नी मेडल (1984), के जी नाइक स्वर्ण पदक (1985), फिक्की एवार्ड (1987), विश्वकर्मा पदक (1988), ओ पी भसीन अवार्ड (1991), प्रौद्योगिकी के लिए पंडित जवाहर लाल नेहरू अवार्ड (1991), वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए जी डी बिरला अवार्ड (1993), ऑनरेरी डॉक्टरेट ऑफ साइंस, यूनीवर्सिटी ऑफ सलफोर्ड, यू०के० (1993), यू०डी०सी०टी० डायमंड (1994), राज क्रिस्टो दत्त मेमोरियल अवार्ड (1994-95), और एन आर डी सी गणतंत्र दिवस पुरस्कार (1995)।

भारत सरकार ने उनकी अभूतपूर्व सेवाओं के लिए 1991 में उन्हें पद्मश्री की उपाधि से सम्मानित किया।

डॉ० माशेलकर ने अब तक देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों, संस्थानों और अनुसंधान संगठनों में अनगिनत व्याख्यान दिए हैं। अब तक उनके 180 से अधिक अनुसंधान पत्र अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न विषयों जैसे हीट ट्रांसफर इक्विपमेंट डिजाइन, रिसेंट ट्रेन्ड्स इन केमीकल रिएक्शन इंजीनियरिंग और रीडिंग्स इन सॉलिड स्टेट केमिस्ट्री आदि पर उनकी 16 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

—विनीता सिंघल
('आविष्कार' जुलाई 1998 से साभार)

परिषद् की बडोदरा शाखा से

पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण हेतु परिचर्चा तथा पोस्टर प्रतिस्पर्धा का सफलतापूर्वक आयोजन

गत 5 जून 'विश्व पर्यावरण दिवस' के अवसर पर परिषद् की बड़ोदरा शाखा ने केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, इण्डियन एसोसिएशन फॉर एअर पोल्यूशन कन्ट्रोल एवं फेडरेशन ऑफ गुजरात इण्डस्ट्रीज के सहयोग से एक परिचर्चा का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता प्रो० एस०एस० मेढ़ ने की। प्रो० मेढ़ जो कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के भू-वैज्ञानिक हैं और विज्ञान संकाय के अध्यक्ष भी रह चुके हैं, ने प्रदूषण के विविध पहलुओं पर संक्षिप्त चर्चा की। आपने प्राकृतिक आपदाओं एवं ज्वालामुखी जैसे अनेक प्रभावों का भी उल्लेख किया। बिगड़ते हुए वातावरण के प्रति आपने चिन्ता व्यक्त की और इसे प्रदूषण मुक्त बनाने हेतु सभी तकनीकों के तुरन्त प्रयोग हेतु पहल करने को कहा।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की बड़ोदरा शाखा के अध्ययन डॉ० एस० एस० बाला ने कारखानों, घरेलू एवं शोर से उत्पन्न होने वाले 3 प्रकार के प्रदूषणों पर चर्चा की। आपने उद्योगों द्वारा प्रदूषण रोकने हेतु नवीन जानकारी का प्रयोग न किये जाने को अनुचित बताया। उनके अनुसार इंडस्ट्रीज अपने वचे हुए कचरे को बिना समुचित ट्रीटमेंट दिये वातावरण में छोड़ रही हैं, यह एक गंभीर बात है। नियंत्रण बोर्ड के सीमित साधनों एवं धन की कमी को भी आपने महत्वपूर्ण कहा।

स्थानीय ट्रांसपेक इंडस्ट्रीज के रसायन इंजीनियर श्री डी०बी० ठाकर ने बढ़ते प्रदूषण को असहनीय कहा। आपके अनुसार हमें सभी प्रयोग की हुई वस्तुओं को पुनः कार्य योग्य बनाना चाहिए। अर्थात् रिसाइकिलिंग का महत्व आज और भी उपयोगी होता जा रहा है।

वह विभाग से प्रमुख अधिकारी डॉ० सनत भाई चवन का कहना था कि समुद्रतटीय प्रदूषण बढ़ रहा है। गुजरात के तट पर तेल एवं अन्य प्रदूषणों से पर्यावरण को खतरा उत्पन्न हो गया है, जो कि अगले 60 वर्षों में वहाँ की सम्पूर्ण जीव-सम्पत्ति को नष्ट कर देगा। समुद्रों में नमक की मात्रा बढ़ने से वहाँ की मछलियाँ एवं अन्य जीव कम होते जा रहे हैं। समुद्र तटों पर कोरल (मूंगे की चट्टानों) एवं मैन्ग्रूव वनस्पति के विलुप्त होने के आसार दिखाई पड़ रहे हैं।

गुजरात के दीव एवं दमन द्वीपों पर प्रदूषण बढ़ने पर चिंता व्यक्त की गई।

विश्वविद्यालय के पर्यावरण विभाग के वरिष्ठ प्रो० डॉ० एन०एम० भट्ट का मत था कि हमें अपनी जीवन शैली में परिवर्तन लाना चाहिए। उन्होंने कहा कि हमें कचरे को उपयोग में लाने हेतु ट्रीटमेंट प्लांट लगाने चाहिए। वाहनों से प्रदूषण कम करने हेतु आपने एक दिन पेट्रोल से चलने वाले वाहनों का प्रयोग न करने की सलाह दी। थोड़ी-थोड़ी दूर जाने हेतु हमें साइकिल अथवा पैदल चलकर जाना चाहिए। इन महत्वपूर्ण तरीकों से ही प्रदूषण कम हो सकेगा।

सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग से डॉ० श्रीमती अंजना देसाई का कथन था कि हमें जैव तरीकों से कचरे को खाद एवं अन्य पदार्थों में परिवर्तित करना चाहिए। आपने भी पुनःचक्रण (रिसाइकिलिंग) को अनिवार्य कहा।

जी०एस०एफ०सी० के कार्यकारी अध्यक्ष डॉ० एम०एच० मेहता ने अपने संक्षिप्त भाषण में विज्ञान परिषद् की इस परिचर्चा में भाग ले रहे विद्वानों द्वारा बताये गये उपायों को अपनाने की राय दी। उनके अनुसार आज 'ज्ञानम् एवं कर्मम्' की खाई बढ़ रही है। तरीके मौजूद हैं, हम उन्हें अपना नहीं रहे।

परिचर्चा में विद्वानों का मत था कि मनुष्य का प्रादुर्भाव पृथ्वी के विकास में सबसे बाद की घटना है, लेकिन अपने

थोड़े ही कार्यकाल में इसने अपनी विनाशकारी गतिविधिओं से पृथ्वी के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया है।

इस अवसर पर स्कूली छात्रों हेतु 'हमारा आदर्श पर्यावरण' विषय पर एक पोस्टर प्रतिस्पर्धा का भी आयोजन किया गया। 65 छात्रों की प्रविष्टियों में से तीन को पुरस्कार के योग्य चुना गया। चार अन्य प्रतियोगियों को प्रोत्साहन पुरस्कार दिये गये।

सभी पोस्टरों की एक प्रदर्शनी भी आयोजित की गई। इसका उद्घाटन विज्ञान संकाय के विभागाध्यक्ष माननीय श्री बोनी पाइलो ने किया। छात्रों के प्रयास की आपने सराहना की और वातावरण को शुद्ध रखने हेतु वृक्षारोपण जैसे कार्यक्रम आयोजित करने की आवश्यकता पर बल दिया। प्रो० एस० जे० वेदी, प्रो० श्रृंगारपुरे, श्री एम०एन० गाँधी, श्री सिसोदिया, डॉ० कृष्णैया, डॉ० (श्रीमती) संध्या गर्ग आदि उपस्थित महानुभावों में प्रमुख थे।

—डॉ० अरुण आर्य
सचिव, विज्ञान परिषद्, वड़ोदरा शाखा
वनस्पति विभाग, विज्ञान संकाय, एम०एस० विश्वविद्यालय,
वड़ौदा, वड़ोदरा-390002

❑

एड्स दे रहा है दस्तक

डॉ० वी०के० तिवारी, एम०डी०
निदेशक, टी०बी० डिमांस्ट्रेशन ट्रेनिंग सेन्टर एवं चेस्ट इंस्टीट्यूट, आगरा
निवास : 5, ओम विहार, शास्त्री नगर, आगरा-282002

इन्सानों के शत्रु एड्स से, विश्व को मुक्त कराओ।
इस महामारी से बचाव का, संदेश घर-घर पहुँचाओ।

एड्स दे रहा दस्तक, अपने घर को इससे बचाओ।
इस भयंकर व्याधि से, बचाव के साधन अपनाओ।।
रक्तदान से पूर्व रक्त का, उचित परीक्षण करवाओ।
सुरक्षित यौन संबंध का संदेश घर-घर पहुँचाओ।

जिसको संक्रमित किया एड्स ने, वह तो एक दिन जाएगा।
मानवता के लिए वह एक, संदेश छोड़ता जाएगा।।
पति-पत्नी के पावन रिश्ते की, सीमा को जो तोड़ेगा।
वह अपने घर परिवार के, सुख-चैन से मुंह मोड़ेगा।।

एच आई वी संक्रमण से होते, भयाक्रांत और त्रस्त लोग।
रोग प्रतिरोधक क्षमता समाप्त कर, आमंत्रित करता अनेकों रोग।
इनसे सीधे संबंधित हैं, चरित्र, व्यसन, रक्तदान व संभोग।
बचाव के साधन अपना कर, रहे सभी स्वस्थ और निरोग।

वजन में कमी, क्षुधा में गिरावट एक माह से अधिक ज्वर आना।
चर्म दोष, बार-बार दस्त, सफेद छाले, लंबी खांसी का आना।।
गिल्टियों का बढ़ना, रोग-प्रतिरोधक शक्ति का लोप हो जाना।
न्यूमोनिया, क्षय रोग, हर पीज, मैनिन्जाइटिस का प्रकोप होना।

निरोध का करें प्रयोग, रति रोगी से यौन संबंध न बनाओ।
असामान्य, समलैंगिक मैथुन, वेश्या-गमन को न अपनाओ।।
पति-पत्नी के मध्य यौन सम्बन्ध, सदैव ही सुखदायी होगा।
सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यतिक्रम, बड़ा ही दुखदायी होगा।

पर्याप्त शुद्धिकरण करके उपकरणों का उपयोग करो।
सुरक्षित रहना है तो डिस्पोजेबल सीरिंज ही प्रयोग करो।
स्वास्थ्य-शिक्षा का प्रचार कर, जन-जन में जागरूकता लाओ।
भ्रांतियों को दूर कर बचाव का संदेश घर-घर पहुँचाओ।।

यह नहीं होता, रोगी से हाथ मिलाने, उसके साथ बात करने से।
उसके साथ खाने-खेलने से, साथ-साथ कार्य करने से।।
रोगी के वस्त्र, बर्तन, भोजन से, उसके खांसने या छींकने से।
रोगी माँ के स्तन-पान से, या रोगी संग यात्रा करने से।।

घर-घर, विद्यालयों, कार्यालयों, निजी प्रतिष्ठानों में जाए।
सभी धर्म, जाति आयु व्यवसाय या समुदाय वालों को बतलायें।।
गरीब, अमीर, पढ़े, अनपढ़, बचाव के साधन अपनायें।
बचाव ही श्रेष्ठ साधन है, यह बात घर-घर पहुँचायें।

❑

नई प्रौद्योगिकी

अब आपके ड्राइंग रूप में सिमट जायेगा संसार

अरुण कांत जिंदल

पीपुल फॉर साइंस एण्ड डिवेलपमेंट, बी-2 वैलकम अपार्टमेंट,
सेक्टर-9 रोहिणी, दिल्ली-110085

दूरसंचार के क्षेत्र में ऑप्टिकल फाइबर के प्रवेश द्वारा तीव्रता का एक नया दौर आरंभ हो चला है। समुद्र की तली में बिछाये जा रहे ऑप्टिकल फाइबर केबल नेटवर्क के द्वारा अगले कुछ वर्षों में सम्पूर्ण विश्व आपके ड्राइंग रूप में आ सिमटेगा।

इसके माध्यम से वीडियो, फोन, केबल टी०वी० पर लाइब्रेरी से मनचाही फिल्म देखना, रेलवे व हवाई जहाजों के घर बैठे ही आरक्षण कराना, घर बैठे ही बाजार से आवश्यक सामग्री की ख़रीदारी और केबल नेटवर्क से जुड़े कंप्यूटर द्वारा ही उनके बिलों का भुगतान सीधे अपने बैंक के खाते से कराना, फायर ब्रिगेड, अस्पताल, बैंक आदि से तुरंत सम्पर्क साधना जैसी दैनिक आवश्यकताओं की आपूर्ति में असाधारण तीव्रता आ जायेगी। और तो और, हमारे ड्राइंग रूम में रखे कंप्यूटर पर विश्व भर की जानकारियाँ उपलब्ध होंगी जिनमें आरक्षण की उपलब्धता, बाजार भाव, मंडियों के भाव, शेयर बाजार की जानकारी, राजनैतिक जानकारी जैसी और भी बहुत सी बातें शामिल होंगी।

क्या है यह चमत्कारी ऑप्टिकल फाइबर? आपके दिमाग में यह विचार अवश्य ही कौंध रहा होगा। दरअसल ऑप्टिकल फाइबर सिलिका (रेत में मिश्रित चमकीले कण) या प्लास्टिक के तंतुओं से बना सिर के बाल जितना महीन तार होता है। सिलिका नामक तत्व बालू के कणों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। सिलिकन केबिल में विद्युत् के स्थान पर प्रकाश प्रवाहित होता है।

प्रकाश के माध्यम से विभिन्न जानकारी युक्त संकेतों को बिना किसी व्यवधान के एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जा सकता है। फाइबर के माध्यम से प्रेषित संकेत चुम्बकीय प्रभाव, स्पार्क प्रभाव आदि से पूरी तरह अछूते रहते हैं। धातु के केबिलों में उन्हें काट कर संकेतों की चोरी करना एक आम बात है परन्तु फाइबर केबिलों को काटकर संकेतों की चोरी करना पूर्णतः असंभव है।

धातु के केबिल के मुकाबले फाइबर केबिल वजन में बहुत हल्का होता है। जहाँ 35 हजार चैनलों वाले 7.5 सेंटीमीटर व्यास के धातु के केबिल का वजन 99 किलोग्राम प्रति मीटर होता है, वहीं 50 हज़ार चैनल युक्त 9.25 सेंटीमीटर व्यास वाले फाइबर केबिल का वजन मात्र 9.2 किलोग्राम होता है।

फाइबर केबिलों के माध्यम से संकेतों को तीव्रता के साथ बिना किसी क्षति के बहुत लम्बी दूरी तक आसानी से ले जाया जा सकता है, जबकि साधारण केबिलों में एक निश्चित दूरी के बाद से प्रवर्धक (एम्प्लीफायर) लगाने की आवश्यकता है।

फाइबर तंतु में प्रकाश का प्रचालन प्रकाश की प्रकृति पर निर्भर करता है। निर्वात में प्रकाश तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकेंड की गति से दौड़ता है, किन्तु किसी अन्य सघन माध्यम से गति में थोड़ी कमी (लगभग शून्य) आ जाती है।

ऑप्टिकल फाइबर प्रणाली में भेजे जाने वाले संकेतों को पहले विद्युत संकेतों में और फिर इन्हें प्रकाश संकेतों में बदलकर फाइबर तंतुओं के जरिए गंतव्य स्थान पर पहुँचा दिया जाता है, जहाँ इन संकेतों को पुनः मूल संकेतों में परिवर्तित कर लिया जाता है।

आज दुनिया भर के अनेक देश अपने राष्ट्रीय दूरसंचार नेटवर्क अंतर्राष्ट्रीय फाइबर नेटवर्क से जोड़ रहे हैं। अटलांटिक महासागर, प्रशांत महासागर, मेडिटेरेनियन और इंग्लिश चैनल की गहराइयों में आज फाइबर केबिलों के जाल बिछाने का काम पूरा किया जा चुका है। आज प्रतीक्षा इस बात की है कि इस सुविधा को एक महीन तार के जरिए कब तक आपके और हमारे ड्राइंग रूप में पहुँचाया जायेगा। (अभियान) ❑

17वें अभियान के संदर्भ में

अंटार्कटिका : रहस्यमय महाद्वीप

प्रस्तुति : ओम प्रकाश वर्मा
ई-4, एन एम एल, जमशेदपुर—831007

अंटार्कटिका धरती का रहस्यमय तथा असीम संभावनाओं का महाद्वीप है। मनुष्य के साहस को यह निरन्तर चुनौती देता आ रहा है। वैज्ञानिक शोध के लिये यह सभी देशों के वैज्ञानिकों को आकर्षित करता रहा है। भारत ने हाल ही में 17वाँ अभियान-दल शोध के लिये इस महाद्वीप पर भेजा था जिसके एक सदस्य के रूप में राष्ट्रीय धातुकर्म प्रयोगशाला के वैज्ञानिक श्री सत्यनारायणन् भी दिसम्बर 1997 से अप्रैल 1998 तक वहाँ अनुसंधान कार्य में लीन रहे।

श्री सत्यनारायणन् ने 11 जून 1998 को प्रयोगशाला के व्याख्यान कक्ष में अंटार्कटिका (दक्षिणी ध्रुव) पर अपने शोध कार्यों तथा अन्य विषयों की जानकारी दी। आप ने बताया कि भारत से दस हज़ार किमी. दूर यह महाद्वीप पृथ्वी का सबसे बड़ा, सबसे ऊँचा, सबसे ठंडा और सबसे क्रूर स्थल है। यह भारत के क्षेत्रफल से पाँच गुना बड़ा है। पृथ्वी के 1/10 भूक्षेत्र वाला यह महाद्वीप सब तरफ ठंड के कारण जमे पानी से घिरा हुआ है। पृथ्वी का 90% शुद्ध जल अंटार्कटिका में जमा हुआ है। यदि यह बर्फ पिघल जाये तो समुद्रों का जलस्तर 50 मीटर तक ऊँचा हो जायेगा और विश्व जलमग्न होकर तुरन्त नष्ट हो जायेगा।

दक्षिणी ध्रुव पर 40 किमी. प्रति घण्टा की रफ्तार से तेज़ हवायें नित्य चलती रहती हैं। यह रफ्तार 300 किमी. प्रति घण्टा तक होना भी सामान्य बात है। विशेष किस्म के कपड़ों को पहने विना यहाँ एक पल भी रहना संभव नहीं है। यहाँ चोरी करने का विचार भी मन में नहीं आता। जिस उपकरण को जहाँ भी छोड़ दिया जाये अगले दिन उसी हालत में मिलेगा। दक्षिणी ध्रुव में विभिन्न देशों के चालीस अनुसंधान केन्द्र हैं। सबसे ज़्यादा रूस के छः केन्द्र हैं। सन् 1820 ई० में एक रूसी वैज्ञानिक वेलिशोव ने सर्वप्रथम अंटार्कटिका को देखकर उसके वारे में शेष विश्व को जानकारी दी। भारत ने सर्वप्रथम सन् 1981-82 ई० में अंटार्कटिका पर सफलतापूर्वक अपना अभियान-दल भेजा। भारत के इस अनुसंधान केन्द्र का नाम दक्षिण गंगोत्री है। श्रीमती इंदिरा गाँधी के नाम पर एक झील का नाम 'प्रियदर्शिनी' रखा गया है। भारत ने यहाँ 25 कमरों वाला अपना केन्द्र "मैत्री" बनाया है जिसमें बिजली उत्पादन के लिये दस जेनरेटर काम करते हैं। यहाँ एक भूकम्प-मापन केन्द्र भी है। हाल में पोखरन में किये गये परमाणु विस्फोटों का कम्पन वहाँ तुरन्त दर्ज़ हो गया। यह अनुसंधान केन्द्र दिल्ली तथा देहरादून से सीधे जुड़ा हुआ है। अतः वहाँ की खबरें नित्य प्राप्त होती रहती हैं।

दक्षिणी ध्रुव में 800 मीटर ऊँची एक चट्टान भी है जिसे "शिवलिंग" कहा जाता है। यह कभी पिघलती नहीं है तथा भारत के तीर्थ अमरनाथ की याद दिलाता है। इस क्षेत्र में किसी प्रकार के गंदगी करने की मनाही है। शौच के लिये विशेष स्थल बने हुये हैं जिन्हें जलाकर पुनः पैक कर के खाद के लिये अन्य भूक्षेत्रों में भेजा जाता है।

दक्षिणी ध्रुव पर किसी देश का अधिकार नहीं है। अनुसंधान कार्य के समन्वय के लिये सन् 1958 में "अंटार्कटिका अनुसंधान के लिये वैज्ञानिक समिति" का गठन हुआ जो दक्षिणी ध्रुव संबंधी सभी मामलों पर विचार तथा निर्णय के लिये सर्वोपरि संस्था है। भारत इस समिति का स्थाई सदस्य है। भारत के अलावा छः अन्य देश भी इस समिति के स्थाई सदस्य हैं।

अत्यन्त कठिन तथा दुर्गम भूक्षेत्र होने के बावजूद अंटार्कटिका पर जाने का मानव का उत्साह कभी कम नहीं हुआ है। चाँद और मंगल की तरह दक्षिणी ध्रुव भी वैज्ञानिकों के लिये एक चुनौती है। केवल वैज्ञानिक ज्ञान के लिये ही नहीं, बल्कि मनुष्य के भविष्य के कल्याण के लिये दक्षिणी ध्रुव में असंख्य रहस्य समाये हुए हैं।

श्री सत्यनारायणन् ने बताया कि भारत के समुद्री विकास विभाग में शोध-दल के सदस्य के रूप में आवेदन-करने पर कड़ा परीक्षण हुआ। परीक्षण में सफल होने पर कठोर तैयारी और प्रशिक्षण हुआ। अंत में इस अभियान-दल के लिए कुल बीस सदस्य चुने गये।

वार्ता के बाद रोचक प्रश्नोत्तर कार्यक्रम हुआ। प्रारम्भ में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद गोयल ने वक्ता का परिचय दिया। डॉ० अकबर अली के धन्यवाद प्रस्ताव के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। ❑

प्राणि विज्ञान

मत्स्य प्रजनन केन्द्रों पर प्रजनित मछलियों में शारीरिक विकृतियां

अरविन्द मिश्र[1], अजय कुमार पाण्डेय[2] एवं अमरेश चन्द्र पाण्डेय[3]

1. मत्स्य पालक विकास अभिकरण वाराणसी,

2. राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ-226 004

3. मत्स्य विज्ञान विभाग, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद-224 229, उ०प्र०

विगत कुछ दशकों में हमारे देश में मत्स्य पालन में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के बैरकपुर स्थित अन्तर्स्थलीय मत्स्य प्रग्रहण संस्थान द्वारा विकसित शफर (कार्प) प्रजातियों के मिश्रित पालन की उन्नतशील तकनीक को अपनाते हुए किसानों द्वारा शफर पालन वृह्द स्तर पर किया जा रहा है। इसी के साथ मत्स्य बीज की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के उद्देश्य से स्थान-2 पर अनेक सरकारी तथा निजी मत्स्य बीज उत्पादन केन्द्र भी कार्यरत हैं।

इन मत्स्य बीज उत्पादन केन्द्रों पर प्रजनकों से कृत्रिम विधि द्वारा मत्स्य बीज प्राप्त एवं संवर्धित करके मत्स्य पालकों को उचित मूल्य पर विक्रय किया जाता है। इन्हीं में से उत्पादित कुछ मत्स्य अंगुलिकाओं को केन्द्रों पर संचय तालाबों में भी पाला जाता है। वयस्क होने के पश्चात लाभ-हानि तथा वंशानुक्रम का ध्यान रखे विना प्रजनकों तथा वंशजों का पुनः प्रजनन तथा निषेचन करा दिया जाता है जो कि आनुवंशिक गुणों की दृष्टि से अनुचित एवं दोषपूर्ण है। इसी को अंतः प्रजनन (इन-ब्रीडिंग) कहते हैं जिसके फलस्वरूप गुणसूत्रों पर उपस्थित गुण बिन्दुओं (जीनस) की विभिन्नता विलुप्त होते-होते समाप्त हो जाती तथा आनुवंशिक गुणों में एकरूपता आ जाती है।

अंतः प्रजनन तथा वास्तविक जनसंख्या आकार (एफेक्टिव पापुलेशन साइज या एन. ई.) में विपरीत संबंध है। अंतः प्रजनन की प्रतिशत अधिक होने पर वास्तविक प्रजनकों की संख्या (जिनके शिशु भविष्य में प्रजनन योग्य हों) कम होती जाती है।

एकनाथ एवं डोएल (1990) के अनुसार कर्नाटक राज्य में स्थित मत्स्य प्रजनन केन्द्रों में आपस में प्रजनकों का किसी भी प्रकार का आदान-प्रदान नहीं किया जाता था। प्रत्येक प्रजनन केन्द्र संकुचित दायरे में आनुवंशिकता की दृष्टि से बन्द एकक के रूप में कार्य करते हुए मत्स्य प्रजनन कराते थे। इनमें पीढ़ी दर पीढ़ी अंतः प्रजनन होता पाया गया है। इसके परिणामस्वरूप पाली जाने वाली मछलियों की शारीरिक विकास गति धीमी थी तथा अनेकों विकृतियाँ भी पायी गयीं। इसी प्रकार के शोध परिणाम उत्तर प्रदेश में कार्यरत मत्स्य प्रजनन केन्द्रों में भी उपलब्ध हैं (मिश्रा एवं जैन, 1993)। कटक (उड़ीसा) से भी अंतः प्रजनन सम्बन्धित विकृतियों का उल्लेख मिलता है। (इब्राहिम बगैरह, 1982)। यही स्थिति हमारे सम्पूर्ण देश में होने की सम्भावना है।

शारीरिक विकृतियों में अवरुद्ध विकास व नाटापन, अविकसित पूंछ पक्ष, रीढ़ के अस्थियों का छोटा एवं टेढ़ा होना आदि प्रमुख हैं। इन विकृतियों के कारण मत्स्य उत्पादन तथा आय पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

सम्भवतः अंतः प्रजनन के कारण होने वाले इन विकृतियों को रोकने में निम्नलिखित सुझाव लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं:—

(क) प्रत्येक प्रजाति के कम से कम 30% प्रजनकों को प्रत्येक

वर्ष बदलते रहना चाहिए। इनके स्थान पर नदियों, जलाशयों से इतने ही प्रजनकों को लाकर प्रक्षेत्र पर रखना उचित होगा। किसी भी दशा में उसी प्रक्षेत्र से दूसरी जगह पाली गयी मछलियों को पुनः मूल प्रक्षेत्र पर लाना आनुवंशिक दृष्टि से हानिकारक होगा।

(ख) प्रत्येक वर्ष विभिन्न मत्स्य बीज प्रजनन केन्द्रों को आपस में प्रजनकों का आदान-प्रदान करते रहना चाहिए। इन प्रजनकों से उत्पन्न बच्चों को ही (प्रथम पीढ़ी) संचय तालाबों में पालना चाहिए।

(ग) प्रत्येक प्रजाति के अधिकतम प्रजनकों (प्रत्येक पीढ़ी) को रखना आवश्यक है, यदि यह संख्या न्यूनतम 344 (प्रत्येक पीढ़ी) हो सके तो अति उत्तम होगा।

(घ) अंत प्रजनन की संभावना को निर्मूल करने हेतु नर एवं मादा प्रजनकों का अनुपात 1:1 रखना श्रेयस्कर होगा।

(ङ) "स्ट्रीपिंग विधि" द्वारा प्रजनन करने वाली प्रजातियों के अंडों को कई समूह में विभाजित करने के पश्चात एक ही नर के वीर्य से निषेचन कराना लाभकारी होगा। इससे "वास्तविक जनसंख्या आकार" बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

❑

हारमोन असंतुलन से नपुंसकता

आज की इस भागती-दौड़ती जिंदगी, बदले खान-पान के कारण हमारा रहन-सहन भी बदल गया है। महानगरों का जीवन आज ट्रेन की रफ्तार से दौड़ रहा है। चिंता व तनाव हमारे जीवन का अंग बन गए हैं। इनसे उपजे हैं अनेक रोग। मधुमेह एक ऐसी ही बीमारी है। विशेषज्ञों के अनुसार मधुमेह व हारमोन असंतुलन आज नपुंसकता का सबसे बड़ा कारण बना है।

दरअसल हारमोनों का हमारे जीवन में बहुत महत्व है या कहें तो हम अपनी सारी दिनचर्या इन हारमोनों के कारण ही सम्पन्न करते हैं। उठना-बैठना, घूमना-फिरना, खाना-पीना व सोना-जगना आदि सभी किसी न किसी हारमोन के कारण होता है। अब नए शोधों से पता चला है कि हारमोन में असंतुलन से नपुंसकता भी हो सकती है।

चिकित्सकों के अनुसार हारमोन असंतुलन के अलावा अधिक मदिरापान व धूम्रपान भी नपुंसकता का कारण बन सकते हैं। मधुमेह से पीड़ित लोगों में नपुंसकता ज़्यादा देखी गई है और मधुमेह का सबसे बड़ा कारण हमार बदला रहन-सहन व खान-पान है। इसके अलावा तनाव व चिंता भी इसका एक बड़ा कारण हैं।

वास्तव में तनाव और दबाव भी व्यक्ति को नपुंसक बनाने के लिए काफी हैं। शरीर और मन से थका हुआ व्यक्ति जब घर पहुँचता है तो उसकी सेक्स इच्छा मर जाती है। पति-पत्नी के बीच जब रोमांसरहित सेक्स संबंध बनता है तो इससे तनाव मुक्ति न होकर तनाव उत्पन्न होने का खतरा बना रहता है।

डॉक्टरों के अनुसार हर व्यक्ति में टेस्टोरस्टेरॉन (पुरुष हार्मोन) का स्तर सामान्य हो और खून का बहाव भी नार्मल हो तो उसके नपुंसक होने की कोई संभावना नहीं होती है। सेक्स की इच्छा और स्तंभन के लिए इस हारमोन का उचित मात्रा में रहना बहुत जरूरी है।

भारत में जिस तरह लोग तेज़ी से नपुंसकता के शिकार बन रहे हैं उसी तरह से अमेरिका में इस मर्ज के तीन करोड़ शिकार हैं। अमेरिका में नपुंसकता का इलाज कराने पर हर साल अरबों डॉलर खर्च किया जाता है। मुंबई, दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास जैसे भागमभाग वाले शहरों के लोगों को जो तनाव झेलने पड़ते हैं उससे भी मेल हारमोन बनने बंद हो जाते हैं। इसलिए देहातों की तुलना में शहर वालों को नपुंसकता ज्यादा होती है।

(सम्प्रेषण)

❑

पर्यावरण

अभयारण्य व राष्ट्रीय उद्यान वैधानिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ० सतीश कुमार शर्मा
क्षेत्रीय वन अधिकारी, अरावली वृक्षारोपण परियोजना झाडोल (फ.), जिला उदयपुर (राज.), पिन - 313702

अभयारण्य (सेंक्चुरी) एवं राष्ट्रीय उद्यान (नेशनल पार्क) प्राय: वे वन क्षेत्र होते हैं जहाँ प्राणी एवं वनस्पति विविधता की उच्च स्थिति के दर्शन होते हैं या जहाँ ऐसे उपयुक्त आवासों की उपस्थिति होती है जहाँ कोई विशिष्ट प्राणी या वनस्पति जाति प्राकृतिक रूप से निवास करती है तथा उसे एवं उसके साथ पनपने वाले अन्य वन्य जीवन को भी संरक्षित कर दिया गया हो। आमतौर पर तत्कालीन रजवाड़ों की निजी शिकारगाहों को ही अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यानों के रूप में स्थापित किया गया है।

साधारणतया राष्ट्रीय उद्यानों का दर्जा अभयारण्यों से ऊँचा मान जाता है। राष्ट्रीय उद्यानों की सुरक्षा एवं प्रबंध व्यवस्था अभयारण्यों की तुलना में ज्यादा प्रभावी एवं अच्छी होती है साथ ही राष्ट्रीय उद्यानों की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान भी अभयारण्यों के मुकाबले ज्यादा होती है। महत्व बढ़ने पर अभयारण्यों को राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर दिया जाता है परन्तु इसका उल्टा देखने को नहीं मिलता।

अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यानों में कतिपय अन्तर जो ऊपर गिनाये गये हैं वे सुरक्षा एवं प्रबंध पहलू तक सीमित हैं परन्तु दोनों के अन्तर का बड़ा आधार कानूनी भी है। वन्य प्राणी (संरक्षण) अधिनियम 1972 के अध्याय-4 में अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यान की स्थापना की कानूनी प्रक्रिया निहित है। अधिनियम की धारा 18 में राज्य सरकार को अभयारण्य बनाने की शक्तियाँ मिली हुई हैं। इस धारा के अन्तर्गत राज्य सरकार किसी भी आरक्षित वन या उसमें समाविष्ट क्षेत्र से भिन्न क्षेत्र, राज्य क्षेत्रीय सागर खण्ड को अभयारण्य गठित करने के अपने आशय की घोषणा कर सकती है यदि वह यह समझती है कि ऐसा क्षेत्र वन्य जीवों या उसके पर्यावरण के संरक्षण, संवर्धन या विकास के प्रयोजनार्थ महत्वपूर्ण है। यह घोषणा प्रथम घोषणा कहलाती है। इस घोषणा में सुस्पष्ट स्थाई भौगोलिक चिन्हों जैसे नदी, पहाड़, सड़क आदि का उपयोग कर सीमाओं का वर्णन भी बताया जाता है। प्रथम घोषणा के बाद भी लम्बी कानूनी प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। घोषित क्षेत्र में लोगों के हक-हुकूक संबंधी दावे आमन्त्रित कर उनकी विधिवत जाँच व निपटारा किया जाता है। जरूरत पड़ने पर भूमि अर्जन भी किया जाता है। यह सब कार्य जिला कलक्टर को करने पड़ते हैं। प्रथम घोषणा से पूर्व ही लोगों के वैध हक-हकूकों का तर्कसंगत व कानूनी निपटारा हो सके। अन्यथा बाद में भारी अड़चनें आ सकती हैं तथा स्थानीय लोगों का सहयोग भी मिलने की संभावना कम हो जाती है। दावों के उचित निपटान के बाद अंतिम घोषणा हो जाने पर ही कोई क्षेत्र कानूनी रूप से अभयारण्य का दर्जा ले सकता है। अंतिम घोषणा धारा 26 में की जाती है।

राष्ट्रीय उद्यान की स्थापना की प्रक्रिया भी अभयारण्य जैसी ही होती है। राष्ट्रीय उद्यान की स्थापना के आशय हेतु राज्य सरकार द्वारा धारा 35 में प्रथम घोषणा की जाती है। घोषित क्षेत्र के सीमा विवरण, दावों का निपटान, आदि भी उसी तरह किया जाता है जिस तरह एक अभयारण्य के गठन में किया जाता है। समस्त दावों के निपटाने के बाद राज्य सरकार द्वारा अंतिम घोषणा प्रकाशित की जाती है तथा कोई क्षेत्र कानूनी रूप से राष्ट्रीय उद्यान हो जाता है। सभी घोषणाओं का विधिवत प्रकाशन राजपत्र (गजट) में किया जाता है।

अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यान बनाने की शक्तियाँ धारा 38 में केन्द्र राज्य के पास भी सुरक्षित होती हैं। केन्द्रीय सरकार भी किसी क्षेत्र को उसी तरह अभयारण्य या राष्ट्रीय उद्यान बना सकती है जिस तरह कि किसी राज्य की सरकार बनाती है। धारा 18 से 35 तक की गठन संबंधी प्रक्रिया एवं उपबन्धों का पालन करवा कर केन्द्र सरकार किसी क्षेत्र को अभयारण्य या राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर देती है।

कई बार कई क्षेत्र वन्य जीव संरक्षण की दृष्टि से अपेक्षाकृत

कम महत्वपूर्ण होते हैं तथा सरकार उन्हें अभयारण्य या राष्ट्रीय उद्यान घोषित न कर उन्हें आखेट के लिए प्रतिषिद्ध क्षेत्र (Closed Area) घोषित कर देती है। यह घोषणा राज्य सरकार धारा 37 में करती है तथा इस तरह घोषित आखेट निषिद्ध स्थानों के सम्बन्ध में अभयारण्यों एवं राष्ट्रीय उद्यानों के गठन जैसी हक-हकूक निपटान सम्बन्धी लम्बी कानूनी प्रक्रिया भी नहीं अपनाई जाती है। अतः जो घोषणा की जाती है वह अपने आप में अंतिम घोषणा के समकक्ष ही होती है।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यान एवं आखेट निषिद्ध क्षेत्र की घोषणा का संक्षिप्त विवरण नीचे सारिणी में अंकित है :-

यदि कभी सरकार यह समझती है कि किसी आखेट निषिद्ध क्षेत्र का जैविक दृष्टि से महत्व अधिक है तो उसका स्तर बढ़ा कर उसे अभयारण्य या राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा भी दिया जाना संभव होता है। ❑

सारणी : अभयारण्य व राष्ट्रीय उद्यान के गठन हेतु कानूनी धारायें

संरक्षित स्थल की प्रकृति	राज्य सरकार द्वारा घोषणा			केन्द्र सरकार द्वारा घोषणा		
	प्रथम घोषणा	गठन हेतु प्रक्रिया निर्वहन हेतु धारायें	अंतिम घोषणा	प्रथम घोषणा	गठन हेतु प्रक्रिया निर्वहन हेतु धारायें	अंतिम घोषणा
1. अभयारण्य	18	19 से 25	26	38	19 से 25	38
2. राष्ट्रीय उद्यान	35	19 से 25	35	38	19 से 25	38
3. आखेट निषिद्ध क्षेत्र	-	-	37	-	-	-

एल-लेक्टेट के लिए बायोसेन्सर

सी एफ टी आर आई ने बायोसेन्सर विकसित करने के लिए चल रहे कार्यक्रम के अन्तर्गत, माइक्रोप्रोसेसर आधारित एल-लेक्टेट बायोसेन्सर, व्यापारीकरण के लिए तैयार कर लिया है।

बायोसेन्सर आधुनिक विश्लेषण यंत्र है। इसमें डिटेक्टर एक ऐसा इलेक्ट्रॉनिक या इलेक्ट्रोकेमिकल यंत्र है, जो क्रियाशील जैविक पदार्थ जैसे एंज़ाइम या प्रोटीन से संपर्क स्थापित करके, उनके जैविक अणुओं की क्रियाशीलता को इलेक्ट्रॉनिक आवेश में मापता है। यह प्रचलित विश्लेषण विधियों की अपेक्षा परिशुद्ध, विशिष्ट, उपयोग में आसान और त्वरित है तथा इसमें नमूने के पूर्व उपचार की आवश्यकता नहीं होती। बायोसेन्सर का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों जैसे रोग निर्धारण, औषधीय, कृषि, रक्षा, अपराध अन्वेषण और खाद्य प्रसंस्करण इत्यादि में होता है। सी एफ टी आर आई ने एल-लेक्टेट की जाँच के लिए, बायोसेन्सर आधारित विश्लेषण उपकरण विकसित किया है। एंज़ाइम झिल्ली का उपयोग करके, यह तीन मिनिट में प्रति 100 मि०लि० में 50-800 मि०ग्रा० एल-लेक्टेट माप सकता है।

व्यापारीकरण के लिए तैयार यह लेक्टेट बायोसेन्सर, लेक्टेट मोनो आक्सीजेनेज (एल.एम.ओ.) एंज़ाइम का उपयोग करता है और लेक्टेट ऑक्सिडेज (एल.ओ.) या लेक्टेट डीहाइड्रोजिनेस (एल.डी.एच.) एंज़ाइम का उपयोग करने वाले प्रचलित बायोसेन्सर की अपेक्षा बेहतर है। एल.ओ. और एल.डी.एच. उपयोग करने वाले बायोसेन्सर में स्थिरता, परिदूषण (फाउलिंग), एंज़ाइम मेम्ब्रेन का ह्रास इत्यादि दोष हैं। सी एफ टी आर आई के बोयोसेन्सर इन दोषों से मुक्त है। यह विशेष रूप से खाद्य किण्वन उद्योग के लिए अति उपयुक्त है। यह परिशुद्ध और अधिक विश्वसनीय है और प्रति दिन इसका अंशशोधन (केलीबरेशन) भी किया जा सकता है। इससे पहले कि इसकी झिल्ली बदली जाए, इसकी कार्यशक्ति साधारण तापक्रम पर दो महीने होती है।

इस सरल और सुविधाजनक यंत्र को, फल उत्पादों में हो रही खराबी के अनुवीक्षण के लिए भी काम में लाया जा सकता है, क्योंकि एल लेक्टिक एसिड, फलों में हो रही खराबी का सूचक है। इस यंत्र द्वारा आम के गूदे के बहुत से नमूनों का अनुवीक्षण किया गया है। खाद्य नमूनों में ग्लुकोज, सुक्रोज और आर्गेनोफास्फेट अवशेष की जाँच के लिए उपयुक्त बायोसेंसरों पर भी संस्थान में काम प्रगति पर है। ❑

पर्यावरण

चंचल मौसम की चुनौती

मार्टिन रेविस

मौसम विभाग को अपनी गलत भविष्यवाणियों के लिए अब और शर्मिंदा होने की जरूरत नहीं है।

कल मौसम कैसा रहेगा? इस सवाल का क्या कोई भी सही जवाब दे सकता है? मौसम विभाग तो अपनी भविष्यवाणियाँ गलत निकलने के कारण कई बार शर्मिंदा हो चुका है। यहाँ तक कि ब्रिटेन के मौसम विभाग की मौसम सेवा अगले दिन के मौसम के बारे में 86 प्रतिशत ही सच्ची ठहरी है। उम्मीद है कि इस साल से इसकी सफलता-दर बढ़ जायेगी।

इस आशावाद के पीछे है 'क्रे टी-3-ई सुपर कंप्यूटर जो एक सेकेंण्ड में 80 अरब गणनाएँ कर सकता है। यह क्षमता वर्तमान 'के' मॉडल से पांच गुनी तेज़ है। सुपर क्रंप्यूटर चालू होने तक ही पुराने मॉडल को इस्तेमाल में लाया जा रहा है। 'टी3-ई' के सुपर कंप्यूटर दुनिया भर के हज़ारों स्वचालित और मानवचलित मौसम केन्द्रों, उपग्रहों, विमानों और समुद्री जहाज़ों से आंकड़े इकट्ठे करके उनका विश्लेषण आनन-फानन में कर देंगे।

अकेले ब्रिटेन में हर रोज 8,500 मौसमी प्रेक्षण किये जाते हैं, जो कि 3000 केन्द्रों से प्राप्त होते हैं। फिर भी चंचल जलवायु ऐसी करवट बदलती रहती है कि चतुर से चतुर गणना-प्रणाली पर आधारित मौसम की भविष्यवाणी भी उपहास का पात्र बन जाती है। इसका कारण यह है कि वायुमण्डल बहुत विशाल और जटिल है और कंप्यूटर के क्षेत्र में अपार प्रगति के बावजूद मौसम वैज्ञानिक मौसम की चाल के सामने मात खा जाते हैं।

भौतिकी सिद्धान्तों पर पर आधारित गणनाओं से आने वाले दिनों में मौसम का पता लगाने का विज्ञान सन् 1920 के बाद के दशक में जन्मा था। लेकिन तब तक कंप्यूटर का आगमन नहीं हुआ, परंतु इसका खास कोई असर नहीं पड़ा। होता यह था कि जब तक लंबी-लंबी गणनायें पूरी हो पातीं, तब तक तो मौसम जैसा भी था, घटित हो जाता था। इसके बाद 1840 के बाद के दशक में जब तक मौर्स कोड से टेलीग्राफ पद्धति विकसित नहीं हुई, तब तक मौसम की जानकारी को तेज़ी से प्रसारित करना भी संभव नहीं था। बस आप जहाँ गणना कर रहे हों,उसी शहर में ही मौसम का मिजाज बता सकते थे। मौसम भविष्यवाणी के सफल मॉडलों में बहुत सी गणनाएँ जितनी जल्दी करनी होती है, उतनी जल्दी बस कंप्यूटर ही कर सकता है।

लंदन के पश्चिम में कोई 50 किलोमीटर की दूरी पर ब्रैकनेल में मौसम विभाग का कार्यालय है। यहाँ के एक प्रवक्ता ने बताया कि इस समय अगले दिन का मौसम ठीक-ठीक बनता पाने में सात बार में से एक बार गलती होती है। यह गलती आदमी की वजह से होती है, क्योंकि कंप्यूटर का इस्तेमाल तो अब भी आदमी ही करता है।

ब्रिटेन के मौसम विभाग में 2200 लोग काम करते हैं और उसके केन्द्र 80 स्थानों में हैं। यह अपने निश्चित ग्राहकों के लिए हर रोज लगभग 3000 तैयार शुदा भविष्यवाणियाँ करता है। इन ग्राहकों में रक्षा मंत्रालय, नागरिक विमान प्राधिकरण तथा समुद्रतटीय उद्योग और जहाजरानी उद्योग जैसें व्यापारिक उद्यम शामिल हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह विश्व मौसम संगठन के लिए, विकासशील देशों के लिए मौसम विज्ञान संबंधी उपकरण और प्रशिक्षण प्रदान करता है।

विदेश में इस तरह का एक ताज़ा व्यापारिक सौदा

थाईलैण्ड के साथ किया गया है। वहाँ सुपर कंप्यूटर की सुविधा स्थापित की जायेगी। यह नवम्बर 1998 से काम करना शुरू कर देगी।

ब्रैकनैल का नया सुपर कंप्यूटर अलनीनो मौसम प्रणाली के बारे में अनुसंधान में भी मदद करेगा। यह ईसा मसीह के बचपन के नाम पर आधारित है, क्योंकि गर्म पानी की यह समुद्री लहर प्रायः क्रिसमस के आस-पास ही सबसे बलवती होती है। यह उस समय पनपती है, जब प्रायः दक्षिण अमेरिका से आस्ट्रेलिया की ओर बहने वाली गरम हवाएँ मंद पड़ जाती हैं और प्रशांत सागर का गरम पानी पूर्व की ओर बहने लगता है। इससे सारी दुनिया के मौसम पर सूखे से लेकर चक्रवातों तक भारी असर पड़ता है। कहीं बाढ़ आती है, तो कही फसलें नष्ट हो जाती हैं। इसका सबसे ज़्यादा प्रभाव लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के मौसम पर पड़ता है।

लंदन की साउथ बैंक यूनिवर्सिटी के कंप्यूटर और गणित के प्राध्यापक प्रोफेसर पीयर्स कोर्बिन ने एक कंपनी बनायी है, 'वेदर एक्शन'। इसने मौसम के पूर्वानुमान की एक वैकल्पिक प्रणाली विकसित की है। इस कंपनी के पास केवल 11 पूर्णकालिक कर्मचारी हैं जो सरकारी मौसम विभाग के भारी तामझाम से स्पर्धा कर रहे हैं। ये लोग ब्रिटेन में एक टेलीफोन और फैक्स सेवा प्रदान कर रहे हैं, जिस पर बीमा, बिजली पैदा करने वाली कंपनियों और अन्य ग्राहकों तथा जनता के लिए मौसम की भविष्यवाणियाँ की जाती है। अब तो कुछ विदेशी ग्रहक भी इस सेवा की माँग कर रहे हैं। इनमें स्वीडन की कुछ बड़ी फर्में भी शामिल हैं जो पेट्रोरसायनों और ऊर्जा के क्षेत्र में कार्यरत हैं।

प्रोफेसर कोर्बिन की प्रणाली में सूरज की गतिविधियों के आधार पर मौसम का पूर्वानुमान लगाने की परम्परागत प्रणाली में कुछ सुधार करके वर्तमान मौसम को वायुमण्डलों के कुछ मुख्य परिवर्तनों से जोड़कर देखा जाता है। सूरज के अन्दर चल रही हलचलों का पता उपग्रहों से और विविध वैज्ञानिक अनुसंधानों से प्राप्त आंकड़ों से लगाया जाता है। इस तरह खासतौर पर दीर्घकालीन पूर्वानुमान में सूर्य से वायुमण्डल में कम और अधिक दबाव के क्षेत्र बनने की जानकारी डाली जाती है, जो कि विश्वव्यापी है और हर जगह के मौसम को प्रभावित करती है। ये तमाम गणनाएँ किस तरह की जाती हैं इसे फिलहाल गोपनीय रखा गया है, लेकिन अन्ततः इसका सबको पता चल ही जायेगा।

कोर्बिन महोदय का दावा है कि उनसे मौसम संबंधी दीर्घकालीन पूर्वानुमान वर्तमान सुपर कंप्यूटर आधारित पूर्वानुमानों से अधिक विश्वसनीय है जो कि मुश्किल से अगले 3-4 दिन के मौसम का हाल ही बता पाते हैं। कोर्बिन की मौसम पूर्वानुमान प्रणाली की उत्तर-पूर्व ईग्लैण्ड में स्थित यूनिवर्सिटी ऑव सण्डरलैण्ड के वैज्ञानिकों ने स्वतंत्र रूप से समीक्षा की तो पता चला कि इस प्रणाली से मौसम की भविष्यवाणी की सफलता में संयोग के योगदान की गुंजाईश एक हज़ार में एक बार से ज़्यादा की नहीं है। उन्होंने आंधी आने की भी भविष्य वाणी परखी थी।

मौसम विभाग का कहना है कि उसने इस प्रणाली के बारे में अपने विचार उदार रखे हैं, लेकिन अभी तो मौसम पर सूर्य की गतिविधियों के प्रभाव का कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला, जो उसे मौसम के पूर्वानुमानों में जोढ़ने की प्रेरणा दे। स्पर्धात्मक पूर्वानुमानों के दावों को जांचना बेहद कठिन है, क्योंकि इसके लिए बुनियादी नियम बनाना ही मुश्किल है। एक राष्ट्रीय पत्र ने तो फैसला अपने ग्रहकों पर छोड़ा हुआ है और वह 'वेदर एक्शन' की भविष्यवाणी मौसम विभाग से प्राप्त पूर्वानुमान की बगल में छापता है।

कोर्बिन साहब को मौसम विभाग की खुले मन वाली बात का भरोसा नहीं है और वे खुद भी इस बात का दावा नहीं करते कि उनकी गणना में गलती की गुंजाइश नहीं है। कोर्बिन के मौसम बुलेटिन में एरिक चक्रवात के बारे में यह महीनों पहले ठीक-ठीक बता दिया गया था कि वह सितम्बर 1997 में अटलांटिक महासागर पर से गुजरेगा, लेकिन इस उष्ण कटिबंधीय तूफान के कारण ब्रिटेन में वर्षा की जो तीव्रता घोषित की गयी थी, असल में वर्षा उससे बहुत कम हुई।

मौसम के बारे में जानना और बात करना ब्रिटेनवासियों का भी खासा शगल है और रहेगा भी। इसका अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि मौसम

विभाग देखने के लिए आने वाले दर्शकों के लिए 1999 के शुरू तक की तारीखें बुक हो गई हैं।

ब्रिटेन के नागरिकों के बारे में दो साल पहले दी गयी डॉक्टर सैम्युल जॉनसन की यह भविष्यवामी आज भी सच है कि 'जब दो अंग्रेज कहीं आपस में मिलते हैं, तो सबसे पहले मौसम का हाल पूछते हैं।'

(ब्रिटिश समीक्षा, अगस्त 1998 से साभार) ❑

हृदयाघात से बचायेगा कंप्यूटर

रोगी में हृदयाघात की आशंका जानने के लिए लंदन में यूनिवर्सिटी कॉलेज हॉस्पिटल के हृदयरोग विशेषज्ञों ने एक कंप्यूटर सॉफ्टवेयर विकसित किया है। इससे हृदयाघात के दस प्रमुख खतरों को भांपकर रोगी के लिए अगले दस वर्षों में मृत्यु के खतरों की भविष्यवाणी की जा सकती है।

इस तरह से चिकित्सक इस आघात के होने पर रोगी को पूर्व सावधानियाँ बरतने की सलाह दे सकते हैं। इस सॉफ्टवेयर को यूनिवर्सिटी कॉलेज हॉस्पिटल में कार्यरत हृदय विशेषज्ञ प्रोफेसर पैट्रिक वेलेन्स ने कंप्यूटर विशेषज्ञ माइक गान के साथ मिलकर तैयार किया है। इस प्रोग्राम में रोगी की शोध आधारित जीवनशैली और ऐसे मामलों के हजारों अध्ययन वाले अन्य चिकित्सा अंकड़े मौजूद होते हैं।

एक बार परिणाम पता चलते ही रोगियों को आगामी पूर्व सावधानियों के बारे में सलाह दी जा सकती है। कंप्यूटर में शामिल सूचनाओं में मोटापा, हृदय का आकार और उसकी धड़कन आदि है, इसके अलावा कुछ ऐसे व्यक्तियों के बारे में सूचनाएँ भी होती हैं जो इस रोग से ग्रस्त नहीं है।

प्रोफेसर मार्टिन के अनुसार इससे रोगियों को कोलेस्ट्रॉल घटाने अथवा रक्तचाप के अलावा कुछ विशिष्ट जानकारियाँ देना ज्यादा आसान हो गया है। कंप्यूटर द्वारा रोगियों को व्यायाम करने और सिगरेट न पीने की सलाह के बड़े ही नाटकीय लेकिन, सकारात्मक परिणाम निकले हैं।

प्रोफेसर मैक वी कहते हैं कि मानवी जांच की तुलना में कंप्यूटर और मशीन के विश्लेषण से इन मामलों को अधिक प्रमाणित माना जा सकता है।

इस संबंध में रक्त वाहिकाओं की सघनता और गरदन की असामान्यता को जांच कर बड़े पैमाने पर शोध किये जाने की योजना बनायी जा रही है।

(ब्रिटिश समीक्षा) ❑

अब कम्प्यूटर करेंगे कैंसर का निदान

अमेरिका वैज्ञानिकों ने जीव विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में नवीनतम अनुसंधानों का समावेश करके एक ऐसा चिप विकसित किया है जिसमें डी एन ए के सूक्ष्म भाग एक सिलिकान डिस्क पर रासायनिक रूप से जुड़े होंगे।

मरीज के रक्त नमूने से सम्पर्क होते ही चिप तत्काल यह सूचित कर देगा कि रोगी के शरीर में किस तरह का कैंसर विकसित हो रहा है। एक बार चिप द्वारा कैंसर की सही पहचान कर लिए जाने के बाद उसके समुचित उपचार का तरीका कंप्यूटर से जाना जा सकेगा।

विश्व के एक अग्रणी जीन अनुसंधानकर्ता प्रो० लिराय हुड सीएटल स्थित वाशिंगटन विश्वविद्यालय में इस परियोजना को कार्य रूप दे रहे हैं। उनका प्रथम लक्ष्य ऐसे ही डी एन ए चिप विकसित करना है जो प्रोस्टेट (पौरुष ग्रन्थि) के कैंसर का पता लगाकर उसका विश्लेषण कर सकेगा। प्रोस्टेट के जीनों से युक्त एक नमूने का परीक्षण भी किया जा चुका है। प्रो० हुड को विश्वास है कि धीमी गति से बढ़ने वाले कैंसर एवं आक्रामक कैंसर में अन्तर करने के लिए पर्याप्त आनुवंशिक जानकारी जल्दी ही प्राप्त हो जाएगी।

प्रोफेसर हुड को विश्वास है कि एक दशक में ही ऐसी मल्टी कैंसर चिप ली जाएगी जिसमें डी एन ए के कैंसर रोगी की पहचान करने में सक्षम होगी। प्रत्येक कैंसर से सक्रिय जीनों के खास प्रतिरूप (पैटर्न) को पढ़ना इसकी विशेषता होगी।

वैज्ञानिक मानते हैं कि यदि कैंसर के निदान हेतु चिप का निर्माण सफल हो जाता है तो दूसरे जटिल रोगों के लिए भी इस तरह के चिप तैयार करने का रास्ता खुल सकता है। प्रो० हुड के अनुसार रोग की विभिन्न किस्मों को श्रेणीबद्ध कर उनके सही निदान की क्षमता उनके इलाज पर भी गहरा प्रभाव डालेगी।

(अभियान) ❑

विज्ञान परिषद्

द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हज़ार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च 1999 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार

'विज्ञान' में प्रकाशित रचनाओं में से वर्ष की सर्वश्रेष्ठ तीन रचनाओं को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार तथा प्रमाण-पत्र प्रदान किये जाते हैं।

लेख निम्न पते पर भेजें :

संपादक : विज्ञान

विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 400.00 रु०, आधा पृष्ठ 200.00 रु०, चौथाई पृष्ठ 100.00 रु०

आवरण द्वितीय; तृतीय तथा चतुर्थ 1000.00 रु०

भेजने का पता :

सम्पादक
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 84 अंक 7

अक्टूबर 1998

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०
एक प्रति : 5 रु०

*

प्रकाशक
डा० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

*

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी०एस-सी०

*

मुद्रक
शाकुन्तल, ऑफसेट, इलाहाबाद

*

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

इस अंक में

1. सम्पादकीय — 1
2. वे अब नहीं मारे जायेंगे (डा० विजय कुमार) — 2-5
3 क्या ब्रह्माण्ड अनन्त काल तक फैलता रहेगा? (डा० विजय कुमार उपाध्याय) — 6-7
4. समुद्र तटीय वनस्पतियाँ-मेन्ग्रोव (डा० दीपक कोहली) — 8-9
5. पहाड़ी क्षेत्रों में ग्रीन हाउस तकनीक द्वारा वैज्ञानिक विधि से कृषिकरण के ये आयाम (त्रिभुवन पंत, आर.पी. जोशी एवं डा० नरेन्द्र कुमार) — 10-12
6. निरापद नहीं रही सूरज की धूप भी (डा० गणेश कुमार पाठक) — 13- 15
7. प्रदूषण दूर करेगी धातु खाने वाली गोभी (सोमदत्त) — 16- 17
8. मानव अंगों की दुकानें खुलेंगी! (डा० जगदीप सक्सेना) — 18- 20
9. कुबड़े हो रहे हैं देश के ढाई करोड़ बाशिन्दे (डा०.डी०डी० ओझा) — 21- 22
10. कहाँ से आयेगा इतना रक्त ? (संजय शर्मा) — 23- 24
11. निगलने में तकलीफ हो तो तुरन्त जाँच करवायें (डा० शिवशंकर राय) — 25- 26
12. ट्रांसजेनिक फसलों पर क्यों है विवाद? (विनय राणा) — 27- 28
13. विषाक्त भोजन : जानलेवा भी हो सकता है (राजेन्द्र कुमार राय) — 29- 30
14. खेल और दुर्घटनायें (संजय लखेड़ा) — 31- 32
15. पुस्तक-समीक्षा (प्रो. देवेन्द्र शर्मा) — 32

सम्पादकीय

विज्ञान परिषद प्रयाग—यानी विज्ञान लेखकों की प्राथमिक पाठशाला। पिछले 86 वर्षों से विज्ञान के लोकप्रियकरण में संलग्न एक प्राचीनतम संस्था है, विज्ञान परिषद– प्रयाग,-जहाँ से पिछले 84 वर्षों से निरन्तर प्रकाशित हो रही है देश की सर्वप्रथम विज्ञान पत्रिका—'विज्ञान'। 'विज्ञान' के अतिरिक्त पिछले 41 वर्षों से अनवरत प्रकाशित हो रही है—देश की सर्वप्रथम हिन्दी वैज्ञानिक शोध पत्रिका—"विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका"।

कहना न होगा कि 'विज्ञान' पत्रिका प्रतीक बन चुकी है नैरंतर्य की, एक सतत् प्रवाह की। कौन देता है इसे गति? कौन बनाता है इसे गतिमान? आप स्वयं ही लगाइये इसका अनुमान। निःसन्देह, पत्रिका को समय के साथ कुछ उतार-चढ़ाव के दौर से गुजरना पड़ा किन्तु आप जैसे सुधी लेखकों/पाठकों के स्नेह के सम्बल ने इसे सँभाल लिया और भविष्य में इसे सँवारेंगे भी—ऐसा मेरा विश्वास है।

परिषद के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं पूर्व सम्पादक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने मुझे समय-समय पर कुशल लेखन/सम्पादन हेतु अपने बहुमूल्य सुझाव देकर आपसे सीधे संवाद करने योग्य बनाया है और अब स्वतन्त्र रूप से 'विज्ञान' के सम्पादन का गुरुतर दायित्व मुझ पर आ पडा है। निश्चित रूप से यह सम्मान की बात हैं और मेरे शुभचिन्तकों की ओर से मुझे हार्दिक बधाइयाँ भी मिल रही हैं किन्तु मैं समझता हूँ कि सम्मान प्राप्त करने में कोई गरिमा नहीं है, गरिमा तो इस चेतना में है कि हम सम्मान का पात्र बने रहें।

'विज्ञान' के सम्पादकों की श्रेष्ठ श्रेणी में यह नाम कितना सार्थक सिद्ध होगा, इसका निर्णय तो कालचक्र ही करेगा। फिलहाल मैं अपनी लेखनी को विराम दे रहा हूँ क्योंकि मेरे अन्दर का व्यक्ति कह रहा है-

मंजिल की तरफ दौड़ यहाँ रात न कर,
ये वक्त अमल का है बहुत बात न कर।

दिनेश मणि

(डॉ० दिनेश मणि)

वन्य जीव संरक्षण सप्ताह पर विशेष

वे अब नहीं मारे जाएंगे...

डॉ० विजय कुमार

सम्प्रेषण, डी–753, सरस्वती विहार, दिल्ली–110034

वैज्ञानिक प्रयोगों में मनुष्य की भलाई के नाम पर होने वाले अनुसंधानों में अनेक प्रकार की तकलीफें सहते हुए मौत के आगोश में जाना अनेक जन्तु प्रजातियों की त्रासदी रही है। रसायनों का विषाक्त परीक्षण इन अनुसंधानों में प्रमुख है। परन्तु हाल के वर्षों में इन प्रयोगों में जन्तुओं के विकल्प की खोज की दिशा में काफी प्रगति हुई है। अब तक इस दिशा में हुई प्रगति से यह आशा बँधी है कि वह दिन दूर नहीं जब जन्तु प्रजातियों को वैज्ञानिक प्रयोगों में तिल–तिल कर मरने से छुटकारा मिल जाएगा।

विश्व भर में प्रतिवर्ष लाखों करोड़ों निरीह जन्तु वैज्ञानिक अनुसंधानों की भेंट चढ़ जाते हैं। वैसे तो इन जन्तुओं की सूची बहुत लम्बी है। इनमें बन्दर, गोरिल्ले, खरगोश, चूहे गिनीपिग आदि प्रमुख है। इन जन्तुओं पर होने वाले अधिकांश वैज्ञानिक प्रयोग मानव की बेहतरी के लिए किए जाते हैं और हमारी भलाई के लिए हमारी भावी जिन्दगी को सुरक्षित सुखमय रोगमुक्त बनाने के लिए प्राणियों को घोर कष्टों से गुजरना और अक्सर अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

जन्तुओं पर होने वाले वैज्ञानिक अनुसंधानों में रसायनों की विषाक्तता अथवा विषालुता का परीक्षण प्रमुख है। प्रतिवर्ष हजारों रसायनों को परीक्षण के विभिन्न दौरों से होकर गुजरना पड़ता है। इन परीक्षणों का उद्देश्य होता है इनकी संभावित विषाक्तता का मूल्यांकन करना ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे मानव उपयोग के लिए कहाँ तक सुरक्षित हैं। इस तरह के लगभग सारे ही परीक्षण जन्तुओं पर ही होते हैं।

वास्तव में विषाक्तता परीक्षण हर उस नए रसायन के लिए आवश्यक होता है जो बाजार में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त विषाक्तता परीक्षण उस पुराने (पहले से उपयोग में रहने वाले) रसायन का भी आवश्यक होता है जिसका नया उपयोग किया जाना होता है अथवा किसी नए अथवा पुराने रसायन के साथ मिलकर उसका उपयोग किया जाना होता है। इस तरह के विषाक्तता परीक्षणों में प्रमुख रूप से दो उद्देश्य होते हैं, पहला उन खतरों का पता लगाना, जिससे यह जाना जा सके कि परीक्षित रसायन के गलत प्रभाव क्या होंगे–जैसे वह कैंसरकारक होगा, गुर्दों के लिए हानिकारक होगा, जनन अंगों को क्षति पहुँचाएगा, पाचन अंगों को हानि पहुँचाएगा, तन्त्रिका तन्त्र के लिए हानिकारक होगा, आदि दूसरे परीक्षणों के आधार पर रसायन की उस मात्रा से सम्बन्धित आंकड़ों का पता लगाना जो मात्रा मनुष्य तथा अन्य जन्तुओं के लिए खतरनाक होगी। रसायन की मात्रा, उसके सम्पर्क में आने के समय आदि के प्रभाव के बीच सम्बन्धों से जन्तु में उस विशिष्ट हानिकारक जैविक प्रतिक्रिया के विकास की सम्भावनाओं का पता लगाना है जो उस रसायन के सम्पर्क में आने का परिणाम होती है। इस प्रकार का सम्बन्ध सम्भवतः रसायन के प्रत्येक हानिकारक प्रभाव के बीच पाया जाता है। हाँ, इस बात के अनुसार कि व्यक्ति किस तरह से रसायन के सम्पर्क में आया है। इन सम्बन्धों में विभिन्नता हो सकती है। रसायन के साथ सम्पर्क उसको खाने या पीने,श्वसन मार्ग से उसके शरीर में प्रवेश करने

अथवा बाहरी त्वचा के उसके सम्पर्क में आने से हो सकता है। व्यक्ति की आयु, उसका स्वास्थ्य, उसकी पौषाणिक स्थिति और उसकी आनुवांशिक बनावट की भी इन सम्बन्धों में प्रमुख भूमिका होती है।

किसी रसायन के विषाक्तता परीक्षण के लिए किए जाने वाले इतने सारे परिणामों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक रसायन को पूर्ण विषाक्तता परीक्षण के दौरान अनेक परीक्षणों को अत्यन्त जटिल प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता है, जिससे समय तो अधिक लगता ही है साथ ही यह अत्यधिक खर्चीला होता है। एक नए रसायन के परीक्षण में 5 लाख से 15 लाख अमेरिकी डालर खर्च होते है।, कम से कम 2-3 वर्ष का समय लगता है और पूर्ण परीक्षण में हजारों जानवरों की बलि देनी पड़ती है। इन्हीं कारणों से वैज्ञानिक बहुत समय से ऐसे परीक्षण की खोज में थे जो सस्ता हो ही और कम समय में पूरा हो जाए।

पिछले दशकों के दौरान जन्तु प्रेमियों ने भी जन्तुओं के साथ होने वाले अमानवीय, क्रूर ओर निर्दयी परीक्षणों के खिलाफ अपने आन्दोलन तेज कर दिए थे। साथ ही नए—नए रसायनों को बाजार में लाने वाले उद्योग भी नए रसायनों के विषाक्तता परीक्षण पर आने वाले व्यय और लगने वाले समय को लेकर परेशान हो गए थे। इन सब ने मिलकर विषाक्तता परीक्षणों में जन्तुओं के विकल्प की खोज की और अधिक प्रेरित किया। इसी दौरान थैलिडोमाइड जैसी असुरक्षित दवा के हानिकारक प्रभाव के उदाहरण ने वैज्ञानिकों को रसायनों की सुरक्षा के प्रति और सचेत कर दिया था।

यहाँ पर यह बता देना अनुपयुक्त न होगा कि 1957 में जन्तु परीक्षणों के पश्चात् जर्मनी द्वारा थैलिडोमाइड दवा के बाजार में आने और उसका उपयोग बढ़ने के कुछ समय बाद ही थैलिडोमाइड का उपयोग करने वाले देशों में विकृत शिशुओं के जन्म की बाढ़ आ गई थी। इन शिशुओं के हाथ विकसित न होकर ठूंठ की भाँति होते थे। इस तरह जन्म लेने वाले अधिकांश बच्चे तो मर गए, लेकिन कुछ जिन्दगी भर के लिए अपंग होकर जिन्दगी बिताने के लिए जीवित बचे रह गए। बाद में इन विकृत शिशुओं के जन्म के लिए थैलिडोमाइड को जिम्मेदार पाया गया और उसका प्रयोग बन्द करना पड़ा था।

अन्ततः अथक प्रयासों के फलस्वरूप वैज्ञानिकों को रसायनों के विषाक्तता परीक्षण के लिए एक वैकल्पिक तरीका हाथ लगा है। यह तरीका है इनविट्रो अथवा अन्तःपात्र परीक्षण। इनविट्रो का शाब्दिक अर्थ है शीशे के वर्तन में परीक्षण। लेकिन जीवविज्ञानी व्यापक रूप में इस शब्द की व्याख्या जिस रूप में करते हैं उसका अर्थ उस अनुसंधान से है जिसमें पूरे बड़े जन्तु की आवश्यकता न पड़े। इनविट्रो परीक्षणों में जीवाणुओं , सम्वर्धित जन्तु कोशिकाओं, निषेचित मुर्गों के अण्डों, मेढ़क के भ्रूणों का उपयोग शामिल है जिनका उपयोग मानव में रसायनों की विषाक्तता के परीक्षण में किया जा सकता है। वैज्ञानिकों को आशा है कि अन्ततः वे मनुष्य के विभिन्न अंगों और ऊतकों से प्राप्त मानव कोशिकाओं के संवर्ध में रसायनों का सीधे परीक्षण कर सकेंगे।

इनविट्रो परीक्षण प्रारम्भ करने में कई अन्य उपलब्धियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें से एक है स्वयं विषविज्ञान के क्षेत्र में हुई महत्त्वपूर्ण प्रगति जिसके फलस्वरूप आज वैज्ञानिक यह बेहतर तरीके से जानते हैं कि विषविज्ञानी प्रक्रियाएं किस प्रकार प्रारम्भ होती हैं और विषैले पदार्थों (रसायनों) का प्रभाव किस प्रकार व्यक्त होता है। अब उन्हें इस प्रकार के अध्ययनों में अन्तिम परिणाम तक पहुंचने में किस जन्तु की मृत्यु अथवा विषैले रसायन के प्रभाव में उसके हताहत होने तक की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है। दूसरी उपलब्धि रही है पिछले कुछ वर्षों के दौरान विज्ञान के क्षेत्र में हुआ तकनीकी विकास।

अब संवर्ध तकनीकों के क्षेत्र में हुई आधुनिकतम प्रगति और नई—नई जैव विश्लेषण तकनीकों के विकास से उन्हें

विषाक्तता पर कोशिका स्तर पर इतनी सूक्ष्मता और शुद्धता से नजर रखना संभव हो गया जिसकी पहले कल्पना तक नहीं की जा सकती थी।

अनेक प्रयोगशालाएँ मानव त्वचा के मॉडल के रूप में मनुष्य की उपत्वचीय कोशिकाओं का सवर्ध तैयार करने की दिशा में प्रयासरत हैं। कुछ त्वचा कोशिका संवर्ध विधियाँ जले हुए रोगियों के लिए त्वचा को पुनः उगाने की तकनीकों से विकसित की गई है।

किसी विशिष्ट अंग में रसायनों की विषाक्तता ज्ञात करने के लिए भी इनविट्रो परीक्षणों का विकास किया जा रहा है। जन्तुओं के अंगों के लिए रसायन की विषाक्तता का परीक्षण करने में रासायनिक उपचारित जन्तुओं के अंगों में विकृतविज्ञानी परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। इनविट्रो परीक्षणों में अंग विशिष्ट की कोशिकाओं का संवर्धन करके उनका परीक्षण किया जाना होगा। यकृत, रक्त, हृदय, गुर्दो, फेफड़ों और तन्त्रिका–तन्त्र की विषाक्तता के इनविट्रो परीक्षण की दिशा में काफी प्रगति हुई है। यकृत कोशिकाओं के इनविट्रो कोशिका विषाक्तता परीक्षण में अलग की गयी यकृत कोशिकाओं के इनविट्रो कोशिका विषाक्तता परीक्षण में अलग की गयी यकृत कोशिकाओं, यकृत के पतले टुकडों तथा पूरे यकृत का भी उपयोग किया जाता है। कुछ परीक्षणों में मानव की यकृत कोशिकाओं का भी परीक्षण किया जा चुका है। जिन परीक्षणों में मानव के स्थान पर जन्तुओं की यकृत कोशिकाओं का भी प्रयोग किया जाता है, उनमें भी लक्ष्य अंगों के इनविट्रो परीक्षण आंकड़ों का उपयोग करके ऐसे परीक्षणों के लिए आवश्यक जन्तुओं की संख्या को काफी कम किया जा सकता है। केवल 2-3 जन्तुओं से उतने अध्ययन के लिए पर्याप्त मात्रा में शारीरिक अंग प्राप्त किए जा सकते हैं, जितने के लिए 20 से 40 जन्तुओं को मारने की जरूरत पड़ सकती है।

ऐसे इनविट्रो परीक्षणों का उद्देश्य विशेष तौर पर यकृत में विषाक्तता उत्पन्न करने वाले रसायनों का पता लगाने से लेकर रसायनों के चयापचय ओर चयापचयी पदार्थों के प्रभाव तथा शरीर से बाहर निकलने के मार्गों और तरीकों का पता लगाना हो सकता है।

विषैले रसायन के प्रभाव में विकसित हो रहे शिशु के शरीर की संरचना सम्बन्धी विकृतियों अथव गड़बड़ियों के मूल्यांकन के लिए भी इनविट्रो परीक्षणों के विकास की दिशा में प्रगति हुई है। इस प्रकार के परीक्षण की सफलता विषविज्ञानी अनुक्रिया के इनविट्रो अधिसूचकों और विकासशील जीव में विभेदी विषाक्तता की जटिल प्रक्रिया के बीच सम्बन्धों पर निर्भर करती है।

जब कोई व्यक्ति किसी रसायन के सम्पर्क में आता है तो उसके रसायन गुण यह तय करते हैं वह रसायन स्वयं अथवा उसका कोई चयापचयी पदार्थ संवेदी कोशिकीय अथवा आणुविक लक्ष्य तक पहुँचकर जैविक अनुक्रिया प्रारम्भ करेगा। लक्ष्य अंग तक रसायन के सक्रिय घटक के पहुचँ जाने पर अगली प्रक्रिया यह तय करती हैं कि वह घटक व्यक्ति को कितना अधिक नुकसान पहुँचाएगा। अन्तिम विकृति विज्ञानी प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति का शरीर जैविक संगठन के सभी स्तरों पर विषैले पदार्थ से होने वाले हानिकारक प्रभाव की कितनी मरम्मत कर लेगा।

सफल इनविट्रो परीक्षणों के मार्ग में एक अन्य रोड़ा है–मानव कोशिका संवर्धो का परीक्षण जिसे इनविट्रो परीक्षण का सबसे बड़ा लाभ माना जा रहा है। क्योंकि इससे रसायनों के विषाक्तता परीक्षण में जंतुओं की कुर्बानी समाप्त हो जाएगी। परन्तु मानव कोशिका संवर्धो के परीक्षण के मार्ग में अभी एक कठिनाई है। अभी तक सब प्रकार की मानव कोशिकाओं का संवर्धन अर्थात् प्रयोगशाला में उन्हें उगाना, सम्भव नहीं हो पाया है। दूसरी अड़चन यह है कि कुछ मानव अंगों की कोशिकाएँ प्रयोगशाला में संवर्धित किए जाने पर अपनी पूर्ववर्ती अविशिष्ट आदिम कोशिका में बदल

जाती है जिससे उसका विकास हुआ होता है। (उनमें ऐसे गुण नहीं रह जाते हैं जिनके आधार पर उन्हें मांसपेशी कोशिका, प्लीहा कोशिका, गुर्दा कोशिका आदि के रूप में अलग–अलग पहचाना जा सके)। इसके साथ ही विषाक्तता परीक्षण के लिए सामान्य मानव कोशिकाओं की उपलब्धता भी सीमित है। अतः यह सुनिश्चित करने के लिए विषाक्तता परीक्षणों के लिए सामान्य मानव कोशिकाएँ पर्याप्त संख्या में लगातार मिलती रहें, उन्हें पर्याप्त संख्या में प्राप्त करने के उपाय विकसित करने होंगे।

कुछ भी हो, विषाक्तता परीक्षण में जन्तुओं के विकल्प की खोज में पिछले एक–दो दशकों में काफी प्रगति हुई है और वैज्ञानिक इस प्रयोग को उस चरम अवस्था तक ले जाने की दिशा में प्रयत्नशील है जब वैज्ञानिक परीक्षणों में जन्तुओं का उपयोग बिल्कुल ही बंद हो जाएगा। इन वैज्ञानिक अनुसंधानों, विकासों और उपलब्धियों से जन्तु प्रेमियों को जन्तु प्रजातियों के संरक्षण और उनके जीवन को निरापद बनने के प्रति काफी आश्वस्त कर दिया है।

❑❑❑

एल्यूमिनियम के डिब्बों की परियोजना

केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान मैसूर, रक्षा खाद्य अनुसंधान प्रयोगशाला मैसूर और भारतीय पैकेजिंग अनुसंधान संस्थान, मुम्बई के सहयोग से कुछ चुने हुए प्रसंस्कृत खाद्यों और पेयों की पैकिंग के लिए कठोर एल्यूमिनियम पात्रों का मूल्यांकन और विकास पर खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित परियोजना के तहत खाद्य उत्पादों की पैकेजिंग के लिए टिन के पात्रों के बजाए एल्यूमिनियम का उपयोग करने से संबंधित कार्य काफी उन्नति पर है। फिलहाल एल्यूमिनियम डिब्बों का उपयोग मुख्य रूप से बीयर या कोला पेय तथा मत्स्य उत्पादों की पैकिंग के लिए किया जा रहा है। इसके अलावा एल्यूमिनियम को पिघलाकर फिर से उपयोग में लाया जा सकता है जबकि टिन के पात्रों को फिर से उपयोग में लाने की प्रक्रिया काफी कठिन है, इस परियोजना के अंतर्गत विभिन्न किस्म के फल और सब्जी उत्पादों के लिए विकसित पैकेजिंग पात्रों के व्यापारीकरण संबंध प्रयास चल रहा है।

जीवित मछलियों में नमक की मात्रा का विश्लेषण

जो लोग सुबह के नाश्ते में धुंआ लगी (स्मोक्ड) मछली खाना पसंद करते हैं, उनके लिए शुभ समाचार है कि मछली से स्वादिष्ट व्यंजन बनाने के लिए सही मात्रा में नमक के निर्धारण में सहायक एक नवीन विधि विकसित की गई है। अमेरिकन केमिकल सोसाइटी समाचार की विज्ञप्ति के अनुसंधानकर्ताओं ने प्रसंस्करण से पहले जीवित मछली में, नमक की मात्रा ज्ञात करने की नवीन विधि विकसित की है नमक की मात्रा पर मछली का स्वाद निर्भर होता है तथा यह बैक्टीरिया की संख्या में वृद्धि को भी रोकता है अनुसंधानकर्ताओं ने विश्लेषण के लिए नजदीकी इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोमीटर का इस्तेमाल किया है। इस यंत्र में लगा आप्टिकल फाइबर प्रोब, मछली के शल्क के संपर्क में आने पर पानी और वसा की मात्रा बताता है। यह जानी हुई बात है कि मत्स्य मांस में वसा और पानी, उसमें उपस्थित नमक की आनुपातिक मात्रा में होते हैं। इस तरह मछली में पहले से ही उपस्थित नमक की मात्रा ज्ञात करके, सुरक्षा मानकों की पूर्ति के लिए आवश्यक अतिरिक्त नमक डाला जा सकता है। अब प्रसंस्कृत मछली में ज्यादा नमक हो जाने का भय नहीं है।

क्या ब्रह्माण्ड अनन्त काल तक फैलता रहेगा ?

डा० विजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक, भूगर्भ, इन्जीनियरिंग कॉलेज, भागलपुर–813210

मनुष्य प्रारम्भ से ही प्रकृति के गूढ़ रहस्यों की खोज में प्रयत्नशील है। ब्रह्माण्ड के विषय में भी वैज्ञानिक समय-समय पर नये-नये तथ्यों को उजागर करते रहे हैं। प्रस्तुत लेख में पढ़िए-ब्रह्माण्ड विषयक एक रोचक जानकारी।

स्टीफेन हौकिंग नामक अमरीकी गणितज्ञ ने हाल में एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है **"ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम"।** इस पुस्तक में ब्रह्माण्ड से संबंधित एक बहुत बड़े रहस्य पर से पर्दा उठाने का प्रयास किया गया है। इसमें एक सिद्धान्त का प्रतिपादन कर यह बताया गया है कि काल (टाइम) कैसे शुरू हुआ। साथ ही यह निष्कर्ष निकाला गया है कि समय अपनी गति से बराबर चलता रहेगा तथा यह कभी भी समाप्त नहीं होगा।

अल्बर्ट आइंस्टीन के बाद हौकिंग शायद पहला ऐसा महान वैज्ञानिक है जिसने अपनी मानसिक क्षमता का उपयोग एक अत्यन्त गूढ़ रहस्य के समाधान में किया है। यह गूढ़ रहस्य है महाविस्फोट (बिग बैंग) के पूर्व की परिस्थिति के संबंध में अर्थात आज से लगभग 12 अरब वर्ष पूर्व जब ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई थी तो उसके पूर्व क्या परिस्थिति थी ?

संसार के सभी ब्रह्माण्ड–वैज्ञानिक इस बात पर एकमत हैं कि महाविस्फोट (बिग बैंग) के बाद ब्रह्माण्ड अति द्रुत गति से ठंडा होने लगा जिसके फलस्वरूप परमाणविक कणों के आपस में मिलने तथा फिर संगठित होने से पदार्थों के बड़े–बड़े टुकड़े बने तथा फिर इन टुकड़ों से अन्ततः नीहारिकाओं, तारों तथा ग्रहों का निर्माण हुआ। परन्तु ब्रह्माण्ड निर्माण हेतु महाविस्फोट (बिग बैंग) का कारण क्या था, इस संबंध में ब्रह्माण्डविदों के बीच काफी मतभेद है।

हौकिंग तथा **तुर्लौक** नामक वैज्ञानिकों की धारणा है कि महाविस्फोट (बिग बैंग) के ठीक पहले हमारा ब्रह्माण्ड मटर के एक दाने के समान बहुत ही छोटे टुकड़ों के रूप में था जो एक कालहीन (टाइमलेस) शून्य में निलम्बित था। यह टुकड़ा एक समय से होकर गुजरा जिस दौरान इसका द्रुत गति से फैलाव शुरू हुआ। इस फैलाव का नाम हौकिंग तथा तुर्लौक ने **'इनफ्लेशन'** रखा। यह फैलाव महाविस्फोट (बिग बैंग) के तुरन्त पहले (एक सेकंड के सूक्ष्म अंश के बराबर) शुरू हुआ था।

कुछ ब्रह्माण्डविदों की मान्यता है कि ब्रह्माण्ड का फैलना तब तक जारी रहेगा जब तक गुरुत्वाकर्षण बल इसे संकुचन के लिये बाध्य न कर दे। हौकिंग तथा तुर्लौक का कहना है कि आइंस्टीन के गुरुत्वाकर्षण समीकरण के समाधान के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ब्रह्माण्ड अनन्त काल तक फैलता रहेगा।

संसार के अधिकांश ब्रह्माण्डविद हौकिंग तथा तुर्लौक के सिद्धान्त को रोचक तथा महत्त्वपूर्ण मानते हैं परन्तु वे इस सिद्धान्त को स्वीकार करने के पूर्व तरह आश्वस्त हो लेना चाहते हैं कि इसमें कहीं कोई त्रुटि (फैलसी) तो नहीं है अतः

चाहते हैं कि इसमें कहीं कोई त्रुटि (फैलसी) तो नहीं है अतः उनका विचार है कि इस सिद्धान्त के विभिन्न पहलुओं के गहन अध्ययन की अभी आवश्यकता है।

वस्तुतः हैकिंग तथा तुर्लौक ने अपना **"ओपेन इनफ्लेशन"** नामक सिद्धान्त का जो प्रतिपादन किया वह किसी ब्रह्माण्डीय अथवा खगोलीय पर्यवेक्षण पर आधारित नहीं था, बल्कि भौतिकी के नियमों के चातुर्यपूर्ण विश्लेषण पर आधारित है।

अतः इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में अधिकांश ब्रह्माण्डविदों को दुविधा हो रही है। **सर मार्टिन रीस** नामक खगोलविद् का मानना है कि हौकिंग तथा तुर्लौक द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की जब तक सीधे खगोल वैज्ञानिक पर्यवेक्षणों द्वारा पुष्टि नहीं हो जाती तब तक इसे मात्र एक अनुमान ही कहा जा सकता है।

इसके विपरीत हौकिंग तथा तुर्लौक अपने द्वारा प्रतिपादित किये गये सिद्धान्त से पूर्णतः संतुष्ट हैं तथा पूरे विश्वास के साथ कहते हैं कि इसमें कोई भी त्रुटि (फैलसी) नहीं है। उनका पूरा विश्वास है कि उनका सिद्धान्त प्रत्येक जाँच की कसौटी पर खरा उतरेगा।

यदि हौकिंग तथा तुर्लौक का सिद्धान्त सही तथा दोषहीन भी हो तो एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि शुरू-शुरू में मटर के दाने के समान आकार एवं आकृति वाला ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में हौकिंग ने अपने द्वारा लिखित पुस्तक **"ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम"** में बताया है कि यदि हम यह मानते हैं कि ब्रह्माण्ड का प्रारम्भ कभी हुआ था तो यह भी निश्चित है कि इसका सृष्टिकर्त्ता भी कोई न कोई अवश्य रहा होगा। परन्तु यदि हम यह मानते हैं कि ब्रह्माण्ड अपने आप में पूर्ण तथा स्वयंभू है तो यह मानना पड़ेगा कि यह अनादि तथा अनन्त है अर्थात् इसकी न तो कभी उत्पत्ति हुई और न कभी विनाश होगा।

अगले दो वर्षों के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका एक उपग्रह प्रक्षेपित करने वाला है। इस उपग्रह के द्वारा महाविस्फोट (बिग बैंग) के अवशिष्ट सूक्ष्म तरंगों (माइक्रोवेव) का अध्ययन किया जायेगा। इस अध्ययन के आधार पर हौकिंग तथा तुर्लौक द्वारा प्रतिपादित 'ओपेन इनफ्लेशन नामक सिद्धान्त की सहायता की परख हो सकेगी।

□□□

अति आधुनिक खाद्य पदार्थ निर्जलन उपकरण

सी एफ टी आर आई में फल, सब्जियाँ, खाद्यान्न और मांस उत्पादों के निर्जलीकरण के लिए अति आधुनिक निर्जलीकरण यंत्र (डीहाइड्रेटर) की स्थापना की गई है। सैंडविक प्रोसेस सिस्टम, मिलन, इटली द्वारा निर्मित इस संयंत्र में दो कक्ष है। प्रत्येक की विभिन्न कार्य प्रणालियों को स्वतंत्र रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।

इस इकाई में चेंबर के अंदर स्टेनलेस स्टील का छेददार निरंतर बेल्ट लगा होता है। इसमें बेल्ट की गति को ठीक से नियंत्रित किया जा सकता है। मुख्य चेंबर वायुरोधी पट्टी पर बना होता है, इसमें हवा को गर्म करने वाली कायल तथा हवा को बाहर भेजने के लिए सेंट्रीफ्यूगल ब्लोअर लगा होता है। बेल्ट का अनुवीक्षण, पदार्थों को एक सा बिछाना, निर्जलित खाद्य पदार्थ को बाहर निकालना, तापक्रम और नमी पर नियंत्रण इत्यादि की व्यवस्था इसमें होती है, ताकि एक सा निर्जलित उत्पाद प्राप्त हो सके।

इस संयंत्र का उपयोग भिन्न–भिन्न कार्यों के लिए किया जाता है। यह न सिर्फ खाद्य अभियांत्रिकी के क्षेत्र में निर्जलित प्रक्रिया को इष्टतम बनाने संबंधी अनुसंधान और विकास कार्य के लिए उपयोगी है बल्कि विपणन अध्ययन के लिए निर्जलन उत्पादों के निर्माण के लिए भी उद्योग द्वारा इसका उपयोग हो सकता है।

वनस्पति-विज्ञान

समुद्र तटीय वनस्पतियाँ- मैन्ग्रोव

डा० दीपक कोहली

उद्योग अनु.3एनेक्सी (चतुर्थ तल)उ०प्र० सचिवालय लखनऊ–226001

लौह–युग में जब मनुष्य ने मेन्ग्रोव–पादपों की उपयोगिता को समझा, तभी से उसने अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मैन्ग्रोव जंगलों को काटना आरम्भ किया और यह सिलसिला लगातार जारी रहा। आज स्थिति यह है कि समुद्र तटीय क्षेत्रों में इन वनस्पतियों का घनत्व न्यूनातिन्यून होता जा रहा है फलस्वरूप पारिस्थितिक सन्तुलन धीरे–धीरे बिगड़ता जा रहा है।

मैन्ग्रोव' विशेष प्रकार की "लवण–वनस्पतियाँ" हैं जो केवल समुद्र के किनारे पायी जाती हैं। भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र तटों पर इन वनस्पतियों का बाहुल्य है। पूर्वी समुद्र पर (बंगाल की खाड़ी) पर स्थित "सुन्दरवन डेल्टा" उनका मुख्य निवास स्थान है। भारत में विद्यमान कुल मैन्ग्रोव पादपों में से 60 प्रतिशत यहाँ पाये जाते हैं। उसके अतरिक्त "महानदी–डेल्टा", "गोदावरी–डेल्टा", "कृष्णा–डेल्टा", "कावेरी–डेल्टा", "कच्छ", "काठियावाड़" एवं "मुम्बई के समुद्र तटों पर भी मेन्ग्रोव मिलते हैं। पूर्वी तथा पश्चिमी तटों के अलावा "अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह" में इन वनस्पतियों के जंगल बहुतायत में हैं। यह वनस्पतियां ऐसे पारिस्थितिक क्षेत्रों में पायी जाती हैं, जहाँ नदी का जल, समुद्र के लवणीय जल में मिश्रित होता है। इस प्रकार के पारिस्थितिक जल क्षेत्र को "ब्रेकिश जल क्षेत्र" की संज्ञा दी गयी है। भरपूर वर्षा, अधिक आर्द्रता और लगभग एक समान वातावरणीय तापमान मेन्ग्रोव–वनस्पतियों के उचित विकास के लिए आवश्यक है।

भारत में मेन्ग्रोव–पादपों की लगभग 67 प्रजातियाँ पायी जाती हैं एवं ये प्रजातियां लगभग 7000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में वितरित हैं। इन प्रजातियों में **रॉइजोफोरा, सीरीओप्स, ब्रुगेरा, कैन्डीलिया, ऐविसीनिया, हेरिटिरा, एक्सोकेरिया, सोनेरेशिया, ल्युमनिटजिरा, ऐजिऑलिटिस, एकेन्थस, जॉइलोकार्पस, नॉइपा एवं फोइनिक्स** आदि प्रमुख हैं। ब्रेकिश जल क्षेत्र (लवणीय जल क्षेत्र) में अनुकूलन हेतु इन वनस्पतियों में कुछ विशेष प्रकार के लक्षण विकसित होते हैं :–

1) "श्वांस मूल" (न्यूमेटोफोरस) का पाया जाना–

ये विशेष प्रकार की जड़े गुरुत्वाकर्षण शक्ति के विपरीत जमीन से ऊपर निकल आती है। "जलाक्रान्त" (वॉटर–लाग्ड) परिस्थितियों के कारण उन पादपों की साधारण जड़ों को 0_2 उपलब्ध नहीं हो पाती है। जिस कारण ये श्वांस मूल, जिनमें छोटे–छोटे छिद्र (रन्ध्र) होते हैं, गैसीय आदान–प्रदान द्वारा पादपों को उपयुक्त आक्सीजन उपलब्ध कराती हैं।

2) अवलम्ब-जड़ों (प्राप-रुट्स) की उपस्थिति-

अवलम्ब जड़ें मुख्य तने से निकलती हैं, जो मैंग्रोब पादपों को जमीन में मजबूती से खड़े रहने में सहायता करती हैं।'

3) विविपेरी (जरायुजता का पाया जाना)–

मैन्ग्रोव–पादपों में राइजोफोरेसी परिवारके पादप सदस्यों के बीजों का अंकुरण तभी आरम्भ हो जाता है जबकि फल पादप पर लगे रहते हैं। इस विशेष प्रकार के बीज–अंकुरण को 'विविपेरी' कहा जाता है। ये अंकुरित बीज फल से अलग होकर तीर की भाँति दलदलीय भूमि में धंस जाते हैं और इस भाँति नवीन मैन्ग्रोव–पादप उत्पन्न होते हैं।

4) पत्तियों पर मोटी 'क्यूटिकल' पर्त की उपस्थिति–

इन वनस्पतियों की पत्तियों पर मोटी 'क्यूटिकल' पर्त होती है। इसके अतिरिक्त "पेलीसेड–पैरनकाइमा" भी विकसित

होता है एवं रन्ध्र धंसे होते हैं। ये विशेषताएं अधिक वाष्पोत्सर्जन पर नियन्त्रण रखती हैं।

5) **'लवण-स्रावण ग्रन्थियों' का पाया जाना—**

कुछ मैन्ग्रोव पादपों में "लवण-स्रावण ग्रन्थियाँ" उपस्थित होती हैं। ये विशेष प्रकार की ग्रन्थियाँ पौधे में उपस्थित अधिक लवण की मात्रा को बाहर निकालती हैं। इस प्रकार लवण—स्रावण ग्रन्थियाँ पादपों में लवण-सान्द्रता का नियमन करती हैं। ये ग्रन्थियां प्रमुख रूप से मैन्ग्रोव वनस्पतियां यथा— **ऐविसीनिया** एवं **ऐजिआलिटिस** में पायी जाती हैं।

समुद्र की ज्वारीय प्रकृति एवं लवण सान्द्रता की मात्रा के कारण मैन्ग्रोव—पादपों के विभिन्न क्षेत्र बन जाते हैं। दक्षिण—पूर्वी एशिया में समुद्र से उत्तरोत्तर अन्तर्भूमीय क्षेत्रों में इनका अनुक्षेत्र वर्गीकरण निम्न प्रकार है—

क) **ऐविसीनिया, सोनेरेशिया क्षेत्र**
ख) **बुग्रेरा कैरियोफिलौएड्स क्षेत्र**
ग) **रॉइजोफोरा क्षेत्र**
घ) **ब्रुगेरा पारवीफ्लोरा क्षेत्र**
ङ) **ब्रुगेरा जिम्नोरॉइजा क्षेत्र**

समुद्र-तटीय पर्यावरण को संतुलित रखने में मैन्ग्रोव—पादपों का अभूतपूर्व योगदान है। उन पादपों की जड़ें मिट्टी के कणों को मजबूती से बांधे रखती हैं, जिससे मिट्टी का कटाव नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त मैन्ग्रोव वनस्पतियां समुद्र एवं तटीय (स्थलीय) भूमि के मध्य 'बफर-जोन' का निर्माण करती हैं। यह "बफर -जोन' समुद्री तूफानों द्वारा होने वाली विध्वसंक दुर्घटनाओं से तटीय भूमि पर रहने वाले जनमानस की रक्षा करता है।

लौह—युग में जब मनुष्य ने मैन्ग्रोव—पादपों की उपयोगिता को समझा, तभी से उसने अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मैन्ग्रोव जंगलों को काटना आरम्भ किया और यह सिलसिला लगतार जारी रहा। आज स्थिति यह है कि समुद्र तटीय क्षेत्रों में इन वनस्पतियों का घनत्व न्यूनातिन्यून होता जा रहा है। जिस कारण पारिस्थितिक—संतुलन शनैःशनैः बिगड़ता ही जा रहा है। परिणाम सामने हैं, आजकल समुद्री तूफानों से न जाने कितना जानमाल का नुकसान प्रत्येक वर्ष हो रहा है। स्थिति अत्यन्त गम्भीर है एवं समुद्र-तटीय क्षेत्र खतरे में है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि मानव को मैन्ग्रोव—पादपों की पारिस्थितिक के सम्बन्ध में शिक्षित किया जाए, जिससे इनके अनियन्त्रित दोहन पर नियन्त्रण लगाया जा सके, अन्यथा वह दिन दूर नहीं कि विनाश के कगार पर खड़ी मैन्ग्रोव वनस्पतियां ऐसे ही लुप्त हो जायेंगी जैसे कि **डोडो** तथा **डॉयनासॉर**।

तालिका : भारत में मैन्ग्रोव वनस्पतियों का विवरण

	प्रदेश	स्थान	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)
1.	पश्चिम बंगाल	सुन्दरवन डेल्टा	418,888
2.	अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह	बंगाल की खाड़ी	115.208
3.	महाराष्ट्र	बम्बई से समुद्र तट	62.200
4.	गुजरात	कच्छ, काठियावाड़	52,616
5.	आन्ध्र प्रदेश	गोदावरी एवं कृष्णा डेल्टा	18,424
6.	उड़ीसा	महानदी डेल्टा	12,000
7.	तमिलनाडु	कावेरी डेल्टा	2,640

□□□

पहाड़ी क्षेत्रों में ग्रीन हाउस तकनीक द्वारा वैज्ञानिक विधि से कृषिकरण के नये आयाम

त्रिभुवन पंत, आर.पी. जोशी. एवं डा. नरेन्द्र कुमार

रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला, पिथौरागढ़ (उ०प्र०)

ग्रीन हाउस तकनीक व उत्तम प्रजाति के बीजों के प्रयोग से पहाड़ी क्षेत्रों में सब्जियों के उत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति की अपार सम्भावनायें हैं। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन द्वारा इस दिशा में किये गये विशेष प्रयासों की विस्तृत जानकारी दी गई है प्रस्तुत लेख में।

पहाड़ों में कृषिकरण की तीव्र गति के प्रयासों में आड़े आयी विभिन्न फसलों की कम पैदावार के फलस्वरूप पहाड़ों के किसानों में वांछित रुचि उत्पन्न न हो सकी। इसके मुख्य कारण, क्षेत्र में कम तापक्रम का रहना, अचानक ओला वृष्टि, एवं वांछित प्रबन्ध का न होना आदि रहे। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन ने इस दिशा में विशेष प्रयास किये ताकि पहाड़ों में उपलब्ध विभिन्न भौगोलिक स्थितियों के अनुरूप कृषि संसाधनों को विकसित किया जा सके एवं कम क्षेत्र में भी अधिक पैदावार ली जा सके, ताकि कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो। इस दिशा में ग्रीन हाउस , तकनीक से कृषिकरण को बढ़ावा दिये जाने पर विशेष तकनीकें विकसित की गयी ताकि सब्जियों आदि की खेती इन विकसित ग्रीन हाउसों में जो कि पहाड़ों के लिए उपयुक्त हैं, की जा सकें व प्रतिकूल मौसम में भी इनकी सहायता से अधिक सब्जी उत्पादन किया जा सके एवं कृषकों को उनके उत्पादों का रुचिकर मूल्य प्राप्त हो।

इस दिशा में उत्तक संवर्धित पौध, हाइब्रिड किस्म के सब्जी बीज व बीमारी रहित सब्जियों की प्रजातियाँ प्रमुख हैं ताकि इनके प्रयोग से प्रति वर्गमीटर पैदावार में वृद्धि हो सके। अतः ग्रीन हाउस तकनीक व उत्तम प्रजाति के बीजों के प्रयोग से इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की अपार संभावनाएं हैं। भारत में अब लगभग 67 करोड़ टन सब्जियों का उत्पादन हो रहा है एवं विश्व में भारत का सब्जी उत्पादन में दूसरा स्थान है। सन् 2000 तक 110 करोड़ टन सब्जियों के उत्पादन का लक्ष्य है जो कि वर्तमान उत्पाद का लगभग दुगुना है।

गर्मी व बरसात का मौसम पहाड़ों में सब्जी उत्पादन के लिए अनुकूल है अतः पहाड़ों में उपलब्ध जलवायु इस मौसम में सब्जी उत्पादन बढ़ाने में अहम भूमिका निभा सकती है जबकि मैदानी क्षेत्रों में भीषण गर्मी की वजह से सब्जी उत्पादन के लिए यह समय उतना अनूकूल नहीं है। ग्रीन हाउस तकनीक के अधिक उपयोग से पहाड़ों में सब्जी की उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है क्योंकि उक्त तकनीक से पैदावार 3 से 4 गुना तक बढ़ जाती है एवं कृषक उतनी ही भूमि में 3 से 4 गुना अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। ओला वृष्टि अधिकतर खेत में खड़ी फसल को नष्ट कर देती है अतः ग्रीन हाउस तकनीक से अधिक पैदावार मिलने के साथ–साथ खेती करने पर इन प्राकृतिक विपदाओं से फसलों की सुरक्षा हो सकती है। इस तकनीक के उपयोग से ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में पढ़े लिखे नवयुवकों को रोजगार के नये आयाम उपलब्ध हो सकेंगे तथा नवयुवकों का ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन भी रुक सकेगा, क्योंकि ग्रीन हाउस तकनीक ऐसे नवयुवकों को स्वरोजगार उनके ही क्षेत्र में उपलब्ध करा सकेगी। इसके अलावा ऐसी भूमि जो

अत्यधिक कम तापमान की वजह से खेती योग्य नहीं हैं, बेमौसमी सब्जियों के उत्पादन के लिए अनुकूल हो सकती हैं क्योंकि इन गृहों में वांछित वातावरण उपलब्ध हो सकता है। पहाड़ों में जाड़ों के मौसम में कम तापमान की वजह से उत्पादकता लगभग नगण्य हो जाती है उसमें भी इस विधि को अपनाकर उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। अतः 5500 फीट की ऊँचाई पर तापमान की स्थिति निम्नवत हैं–

तालिका :1 बाहरी वातावरण व ग्रीन हाउस में विभिन्न महीनों में उपलब्ध तापक्रम (ऊँचाई 5500")

महीना	ग्रीन हाउस के अंदर का औसत तापक्रम °सेग्रे०	बाहरी वातावरण का औसत तापक्रम °से० ग्रे०
जनवरी	30.1	10.9 (0.36)
फरवरी	31.2	12.2 (1.60)
मार्च	32.5	14.2 (6.50)
अप्रैल	34.3	21.2
मई	45.1	23.2
जून	44.1	23.1
जुलाई	42.0	22.2
अगस्त	40.0	21.8
सितम्बर	39.0	21.2
अक्टूबर	36.1	18.2
नवम्बर	34.2	14.1
दिसम्बर	32.0	12.0

(औसत न्यूनतम तापक्रम)

तालिका -2 ग्रीन हाउस में नर्सरी लगाने एवं रोपण समय

सब्जियों का समय	बोने का समय	रोपण का समय
टमाटर, मिर्च, बैंगन, कद्दू, खीरा	जनवरी, फरवरी पोलीथीन बेग में मिट्टी भरकर जनवरी, फरवरी	मध्य फरवरी, मार्च
बन्द गोभी, फूलगोभी (7000 के नीचे के क्षेत्र)	जून, जुलाई	अगस्त, सितम्बर
बन्दगोभी, फूलगोभी, टमाटर, मिर्च, बैंगन, खीरा, बोना, कद्दू (अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में (7000 से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्र)	मार्च	अप्रैल, मई

तालिका- 3 ग्रीन हाउस व सब्जी उत्पादन हेतु उपयोग समय

सब्जी	बीज बोने का समय	नर्सरी रोपण का समय	सब्जी उपलब्धता का समय
टमाटर,मिर्च	जनवरी, फरवरी	फरवरी, मार्च	मई, जून, जुलाई,
	जून, जुलाई	अगस्त, सितम्बर	अक्टूबर, नवम्बर
खीरा	फरवरी (पोलीथीन बैग में)	मार्च	मई, जून
	जून (पोलीथीन बैग में)	जून, जुलाई	अगस्त, अक्टूबर
बौना कद्दू	फरवरी	मार्च	मई, जून
फ्रेंच बीन	मार्च		मई–जून
	जून	----	अगस्त–सितम्बर
	जुलाई	----	सितम्बर–अक्टूबर
	अगस्त	----	अक्टूबर–नवम्बर

तालिका- 4 विभिन्न सब्जियों की ग्रीन हाउस एवं सामान्य क्षेत्र में उत्पादकता

सब्जी	लगाने का समय	प्रथम बार उपलब्धता समय (दिन)	उपज कुन्तल प्रति हेक्टेअर: ग्रीन हाउस में	उपज कुन्तल प्रति हेक्टेअर: बाहर खेत में
खीरा (ग्रीन लौंग)	फरवरी, अतिम सप्ताह	64	400.00	80-100 (औसत)
फ्रेंच बीन	फरवरी अंतिम सप्ताह	47	13330	55-65 (औसत)
टमाटर	फरवरी अंतिम सप्ताह	67	511.8	160-240 (औसत)
हाइब्रिल				
मारग्लोब		72	457.1	
पूसा रुबी		60	380.8	

उर्वरक एवं सिंचाई : अच्छी पैदावार लेने के लिए 6.10 टन गोबर की खाद प्रति हे० की दर से मिट्टी में मिलानी चाहिये एवं 80 कि०ग्रा० नाइट्रोजन, 50 कि०ग्रा० फास्फोरस, एवं 30 कि०ग्रा० पोटास, मिट्टी की जांच के उपरान्त मिलाना चाहिए।

सिंचाई आदि की समुचित व्यवस्था से अधिक पैदावार उपलब्ध हो जाती हैं। जहां पानी प्रचुर मात्रा में न हो वहां ड्रिप सिंचाई उपयुक्त रहती है ताकि पानी का समुचित उपयोग पैदावार बढ़ाने में किया जा सके।

□□□

पर्यावरण-प्रदूषण

निरापद नहीं रही सूरज की धूप भी

डा० गणेश कुमार पाठक
अभियान, बी-2, वैलकम अपार्टमेण्ट, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085

सदा से सेहत देने वाली सूरज की किरणें भी आज मनुष्य की जानलेवा बनती जा रही हैं। पर्यावरण के इस विघटन को रोकने के लिए देश को पुरजोर कोशिश करने की जरूरत है साथ ही देशवासियों को इसके खतरे से आगाह किए जाने की आवश्यकता है।

हमारे पर्यावरण को विघटित करने वाले रसायनों में सबसे ज्यादा उल्लेखनीय रसायन क्लोरो-फ्लोरो कार्बन की खोज करने वाले कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्री **शेरवुड राऊलैण्ड** को क्या पता था कि एक दिन उनका खोजा गया यह रसायन संसार को प्रलय के कगार पर ढकेल देने का प्रमुख कारण बन जाएगा।

इस रसायन ने जिसे संक्षेप में सी एफ सी कहते हैं गैस के रूप में वायुमंडल में पहुंच कर ओजोन की परत को कमजोर करके उसमें छिद्र कर दिए हैं जिससे सूर्य की पराबैंगनी किरणें बेरोकटोक धरती पर आने लगी हैं और पृथ्वी पर जीवन के लिए खतरा बन गई हैं। वर्षों से इस प्रक्रिया के चलते आज स्थिति इस हद तक गंभीर हो गई बताई जा रही है कि इस रसायन की खोज करने वाला वैज्ञानिक भी स्वयं चिंतित होकर सूर्य की पराबैंगनी किरणों के बढ़ते खतरों के प्रति विश्व समुदाय को चेतावनी देने वालों में शामिल हो गया है।

राऊलैण्ड के अनुसार सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों की मात्रा इस कदर बढ़ रही है कि इससे पृथ्वी बंजर व वीरान हो सकती है, तापमान असाधारण रूप से बढ़ सकता है, जिससे ध्रुवों पर जमी बर्फ को पिघलने से जल प्रलय की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और आगामी पीढ़ियों को गंभीर आनुवंशिक क्षति का सामना करना पड़ सकता है।

यही नहीं, म्यूटेशन जैसी विरल जेनेटिक घटनाएं स्वाभाविक रूप से घटित होने लग सकती हैं, जिससे सम्पूर्ण मानवजाति में विलक्षण एवं विचित्र किन्तु घातक बदलाव आ सकते हैं, इससे पेड़-पौधों के झुलसने और उनकी रोग प्रतिरोधी क्षमता नष्ट होने की सम्भावना बढ़ सकती हैं जिससे 80 प्रतिशत वनस्पतियां नष्ट हो सकती हैं तथा फसल उत्पादन पर भी घातक प्रभाव पड़ सकता है।

राऊलैण्ड के अनुसार सूर्य की पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से मनुष्य में आँख से संबंधित बीमारियाँ एवं असाध्य कैंसर से लेकर अंधेपन तक की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। पशुओं पर किए गए परीक्षणों से यह साबित हुआ है कि पराबैंगनी किरणों से त्वचा कैंसर हो सकता है। इसी आधार पर जीव वैज्ञानिकों ने यह आशंका व्यक्त की है कि इसके सीधे संपर्क में आने से मनुष्यों में भी त्वचा कैंसर हो सकता है। अनुमान है कि पराबैंगनी किरणों की मात्रा में वृद्धि के कारण प्रतिवर्ष 5000 नए रोगी कैंसर के शिकार होंगे।

मौसम वैज्ञानिकों का कहना है कि पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि होगी, जिससे ध्रुवों की बर्फ पिघल कर समुद्री जलस्तर में वृद्धि कर देगी। संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरण कार्यक्रम (यूनेप) के अनुसार तापमान वृद्धि का सबसे बुरा प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ेगा जिससे विश्व में खाद्यान्न संकट की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

यद्यपि ओजोन की परत के विघटन के कारण उपर्युक्त परिस्थितियों में से अभी केवल कुछ ही हमारे सामने आई हैं, लेकिन इन्हीं की भयावहता को देखते हुए दुनिया भर में सी एफ सी के उपयोग पर रोक की मांग उठ रही है और वैज्ञानिक इसका विकल्प खोजने के प्रयत्न में लग गए हैं।

साथ ही देश विदेश में इनसे बचने के लिए तरह–तरह के उपाय व उपचार अपनाए जाने लगे हैं। न्यूजीलैंड के स्वास्थ्य विभाग ने विद्यालयी बच्चों को धूप के सीधे संपर्क में आने से बचने की सलाह दी है। उन्हें अनिवार्य रूप से टोपी पहनने के आदेश दिए गए हैं। आस्ट्रेलियाई सरकार ने भी अपने नागरिकों को नंगे बदन धूपस्नान से बचने की चेतावनी दी है। प्रचार-प्रसार माध्यमों से इसकी जानकारी आम नागरिकों को दी जा रही है। डेनमार्क में लोगों को हैट व चश्मा लगाकर ही धूप में निकलने की सलाह दी गई है। इसी तरह के उपाय अन्य देशों में भी किए जा रहे हैं। खेद की बात केवल यही है कि हमारे देश में सरकार और नागरिक दोनों अभी तक भी इन खतरों के प्रति पूरी तरह उदासीन हैं।

यद्यपि ये सभी उपाय किसी सीमा तक उपयोगी हैं किन्तु पराबैंगनी किरणों के खतरे से बचने का सबसे कारगर उपाय यही है कि सी एफ सी गैस का उपयोग कम से कम किया जाए। साथ ही सी एफ सी के निरापद विकल्प की खोज जल्द से जल्द की जाए, अन्यथा वह दिन आते देर नहीं लगेगी जब हम अपने ही कारनामों से अपने विनाश का मार्ग प्रशस्त कर चुके होंगे और वापसी का मार्ग बंद हो चुका होगा।

इस गम्भीर चुनौती के बावजूद यथार्थ की दुनिया में चल रही राजनीतिक स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत है। वास्तव में पूरी दुनिया ने इस समय जो क्षुद्र आर्थिक राजनीति हो रही है उसके चलते तो सी एफ सी के उपयोग पर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध लगना संभव नहीं लगता क्योंकि उपयोग पर रोक का सीधा असर अमेरिका और पश्चिम के उन कारखानों पर पड़ेगा जो वैज्ञानिकों को चेतावनियों के बावजूद आज भी धड़ल्ले से औद्योगिक स्तर पर इसका उत्पादन और व्यापार कर रहे हैं।

सच तो यह है कि राऊलैण्ड ने सी एफ सी की खोज के वक्त ही बता दिया था कि ओजोन परत को नष्ट करने में सी एफ सी विशेष रूप से उत्तरदायी होगा। इस चेतावनी के बावजूद अमेरिका ने ही सर्वप्रथम इस रसायन का उपयोग एअर कंडीशनरों और रेफ्रीजेरेटरों जैसी मशीनों के निर्माण में करना प्रारंभ किया। इसके बाद इसका अनुकरण पश्चिम की पहल पर संसार के सभी देशों में किया जाने लगा है। आज दुनिया भर में सी एफ सी का उत्पादन किया जा रहा है और परिणामस्वरूप चेतावनियों के बावजूद इसका उपयोग औद्योगिक स्तर पर आज भी धड़ल्ले से हो रहा है।

ऐसा नहीं है कि इसके उपयोग के दुष्परिणामों ने आज सम्पूर्ण विश्व को सकते में डाल न रखा हो। अमेरिका, ब्रिटेन एवं यूरोप के अन्य समृद्ध एवं विकसित देश बैचेन हैं, क्योंक यही देश सी एफ सी का सबसे अधिक उत्पादन एवं उपभोग दोनों करते है। विगत दिनों यूरोप में ब्रिटेन सी एफ सी का प्रमुख निर्यातक देश था। सन् 80 के दशक में तो अकेले ब्रिटेन ने ही एक वर्ष में लगभग 125 देशों को 50,000 टन सी एफ सी निर्यात किया था।

सी एफ सी के उत्पादन एवं खपत पर किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व में प्रति वर्ष लगभग आठ लाख मैट्रिक टन सी एफ सी उत्पादन किया जाता है। इसमें अकेले अमरीका का हिस्सा 14 प्रतिशत है, जबकि शेष 86 प्रतिशत में विश्व के अन्य देश सम्मिलित हैं। इसके बावजूद इन समस्त देशों की औसत खपत अमरीका से कहीं कम है।

जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में सबसे अधिक आबादी

वाले देशों चीन एवं भारत में सी एफ सी की कुल खपत विश्व की खपत की केवल 5 प्रतिशत है। किन्तु अन्तराष्ट्रीय स्तर पर जब भी इसका उत्पादन रोकने या इसके कारगर विकल्प खोजने की बात चलती है तो यही कहा जाता है कि विकासशील देश इस प्रश्न पर गंभीर नहीं है, और इसका उपयोग रोकने की दिशा में किये जा रहे प्रयत्न तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक विकासशील देश इस दिशा में गंभीर प्रयत्न नहीं करेंगे। यानि हर हाल में दोष विकासशील देशों का ही माना जाता है और क्योंकि अमरीका और पश्चिमी देशों की आवाज में दम है, इस आरोप को भी अन्य आरोपों की तरह चुपचाप स्वीकार कर लेने में ही भलाई समझी जाती है।

वस्तुस्थिति यह है कि यदि समय रहते भारत जैसे देश अपनी आवाज बुलंद नहीं कर पाये और सही जगह सही समय पर अपनी बात कहने में असमर्थ रहे तो कसूरबार न होने पर भी दंड के भागी होंगे। आज एक परमाणु अस्त्र सम्पन्न राष्ट्र होने के नाते हमें अपनी बात को असरदार तरीके से कहने का सलीका भी सीखना होगा, तभी हम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने नागरिकों के हित की रक्षा कर पायेंगे।

□□

डॉ० मणि को "विज्ञान रत्न"

विज्ञान परिषद प्रयाग के पूर्व संयुक्त मंत्री एवं वर्तमान सम्पादक डा० दिनेश मणि को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा "हिन्दी दिवस (14 सितम्बर 1998) के अवसर पर हिन्दी भाषा के माध्यम से विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें लिखकर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करने के उपलक्ष्य में "विज्ञान रत्न" की मानद उपाधि प्रदान कर उनका सारस्वत–सम्मान किया गया। परिषद–परिवार की ओर से डा० मणि को हार्दिक बधाई।

संजीव त्रिपाठी
वरिष्ठ शोध छात्र, शीलाधर, मृदा–विज्ञान संस्थान
5, लाजपत राय रोड, इलाहाबाद–211002

पर्यावरण-प्रदूषण

प्रदूषण दूर करेगी

धातु खाने वाली गोभी

सोमदत्त

अभियान,बी–2, वेलकम अपार्टमेन्ट, सेक्टर 9 रोहिणी, दिल्ली–110085

●

वैज्ञानिकों को कुछ ऐसे पौधे खोज निकालने में सफलता मिली है जो धातुओं की काफी मात्रा मिट्टी में से सोखकर अपने ऊतकों में भंडारित कर सकते हैं। अब वे इनका उपयोग करके धातु युक्त मिट्टी को पुनः उपजाऊ बनाने के प्रयत्न कर रहे हैं। आशा की जा रही है कि ये तरीके कारगर तो होंगे ही सस्ते भी होंगे।

प्रगति के दौर में मनुष्य ने कितनी ही ऐसी चीजें बना ली है जो हमारे स्वास्थ्य के लिए आम तौर पर हानिकारक होती हैं कभी–कभी घातक भी हो जाती है।

आज हमें चारों तरफ से प्रदूषण ने घेरा हुआ है और इसके लिए जिम्मेदार भी हम ही हैं। इस समस्या से आसानी से निपटने के लिए हमें ऐसे तरीके ईजाद करना जरूरी हो गया है जो हमारे विकास से जुड़ी किसी भी गतिविधि में बाधा न डाले, बल्कि आर्थिक एवं सामाजिक लाभ के साधन भी बनें।

खुशी की बात है कि इस दिशा में काम कर रहे कृषि वैज्ञानिकों ने एक अच्छा उदाहरण पेश किया है। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के पादप विज्ञान विभाग के **एन्डू स्मिथ** और **यूटे केमर** ने अनुवांशिक इंजीनियरी की सहायता से फूल गोभी, पत्ता गोभी, ब्रूसेल्स स्प्राउट आदि सब्जियों में ऐसे रसायनों की उपस्थिति का पता लगाया है जिनकी सहायता से भूमि प्रदूषण को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकेगा। संभावना है कि आने वाले भविष्य में ही ये सब्जियाँ प्रदूषण ग्रस्त इलाकों में आसानी से उगायी जा सकेगी और प्रदूषण नियंत्रण की समस्या के निराकरण में हमारी सहायता करेंगी।

वास्तव में दुनिया में सैकड़ों एकड़ भूमि विषैली धातुओं की वजह से बेकार पड़ीहै। इनमें लेड, जिंक और कापर जैसी विषैली धातुओं के कारण कोई फसल पैदा नहीं होती। यह इस बात का प्रमाण है कि यहाँ कभी रासायनिक औद्योगिक इकाइयाँ रही होंगी जिनके कार्य–कलापों के कारण ये धातुएँ मिट्टी में काफी गहराई तक पहुँच गई। वैज्ञानिक मिट्टी में से इन धातुओं को दूर करने के प्रयत्न काफी समय से करते चले आ रहे थे किन्तु उन्हें परीक्षणों में निरंतर विफलता ही मिल रही थी। काफी खोज बीन के बाद अंततः वैज्ञानिकों ने इस समस्या का हल निकाला है।

आक्सफोर्ड के वैज्ञानिकों के अनुसार 'एलीयम लेस्बियेकम' का पौधा निकिल धातु का भक्षण करता है। इसके पौधे इस धातु को काफी बड़ी मात्रा को अवशोषित कर अपने हरे ऊतकों में भंडारित कर लेते हैं। पौधों के भीतर ही इस विषैले रसायन को अविषालु बनाया जाता है जिससे वह पौधों के लिए धातक नहीं रहता। पौधों का यह विचित्र गुण मिट्टी को धातुमुक्त करने में सहायक हो सकता है। इसके अलावा वैज्ञानिकों का मानना है कि कुछ पौधे ऐसे भी है जो जिंक, कॉपर, मैंगनीज और क्रोमियम को भी अवशोषित कर लेते हैं।

यद्यपि वर्षों से आस लगाए वैज्ञानिकों को यह सफलता मिली तो लेकिन जिन पौधों को धातुओं के अतिभक्षक के रूप में पहचाना गया है वे न केवल आकार में छोटे हैं बल्कि उनकी वृद्धि दर भी बहुत कम है। अब आनुवंशिक अभियांत्रिकी की मदद से इनकी यह क्षमता विकसित करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। तभी बड़े पैमाने पर भूमि को बढ़ते हुए प्रदूषण की चपेट से बचाया जा सकेगा।

इस उद्देश्य को लेकर किये गये अनुसंधानों से पता चला है कि 'एलीयम लेस्बियेकम' के पौधे में हिस्टिडीन नामक अम्ल की सहायता से निकिल की सफाई की जा सकती है। अमीनो अम्ल के नाइट्रोजन परमाणुओं में अतिरिक्त इलेक्ट्रान मौजूद होते हैं जिन्हें वह निकिल को देकर एक मजबूत बंध बनाते है।। इस प्रकार निकिल हिस्टिडीन के आण्विक पिंजरे में कैद हो जाता है और विषहीन भी हो जाता है। इन धातुभक्षी पौधों में हिस्टिडीन काफी मात्रा में पाया जाता है जो इसकी जड़ों में मुक्त रूप से घूमता रहता है।

धातुभक्षी पौधों पर हिस्टिडीन का छिड़काव करके उसके प्रभाव की जांच की गई है। हिस्टिडीन अवशोषित कर ये पौधे भी धातुओं की काफी बड़ी मात्रा को सह पाने में सक्षम हो गये। लेकिन हिस्टिडीन के तिरोहित होते ही यह प्रभाव समाप्त हो गया। इस अनुसंधान से यह संभावन उभर कर सामने आई है कि पौधों को अलग-अलग धातु भक्षण करने में सक्षम बनाया जा सकता है। अब यह पता लगाया जा रहा है कि कौन सी जीन अधिक मात्रा में हिस्टिडीन उत्पादन क्षमता के लिये उत्तरदायी है जिससे इस जीन को प्रत्यारोपित करके अन्य पौधों को भी हिस्टिडीन के उत्पादन के लिए आनुवांशिक रूप से रूपांतरित किया जा सके।

वस्तुतः मृदा में प्रदूषण केवल एक ही धातु से नहीं होता बल्कि अनेक रसायनों के मिश्रण के कारण होता है। जरूरी नहीं कि पौधों में सभी धातुओं को सहने की क्षमता हो। परिणामस्वरूप केवल एक धातु को सह सकने की क्षमता के कारण पौधा अन्य धातु के संपर्क में आने पर नष्ट हो जाता है। लेकिन आनुवंशिक इंजीनियरी द्वारा पौधों को अन्य धातुओं को सह सकने में सक्षम बनाया जा सकेगा और उन्हें अन्य धातुओं के भक्षण के भी योग्य बनाया जा सकेगा।

इन अनुसंधानों के आधार पर **डा० स्मिथ** का कहना है कि आने वाले दो तीन वर्षों में यह सभी यथावत संभव हो सकेगा।आज मृदा को साफ करने के लिए जो तकनीकें अपनाई जाती हैं उनमें मृदा को तेज अम्लों से उपचारित किया जाता है जिससे मिट्टी में मौजूद लाभदायक सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं और मिट्टी की उर्वरता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इन हानियों के साथ यह प्रक्रिया बहुत महंगी पड़ती है। अतः पौधों द्वारा प्रदूषण की समस्या को समाप्त करना पर्यावरण के अनुकूल होने के साथ–साथ सस्ता भी साबित होगा।

यद्यपि औद्योगिक रूप से व्यर्थ पड़ी भूमि पर उगाई गई बंदगोभी, फूलगोभी आदि सब्जियां धातुओं के विषैले प्रभाव के कारण खाने के काम में तो नहीं आ सकेंगी परन्तु ये हमारे पर्यावरण को सस्ते एवं सरल ढंग से सुधारने में अवश्य चमत्कारिक सिद्ध होंगी। भारत जैसे गरीब देश के लिए तो इस तकनीक की विशेष उपयोगिता है।

□□□

तकनीक

मानव अंगों की दुकानें खुलेंगी !

डॉ० जगदीप सक्सेना
अभियान, बी–2, वेलकम अपार्टमेण्ट,सेक्टर–9, रोहिणी, दिल्ली–110085

एक सुखी और आरामदायक जीवन जीने की मनुष्य की आकांक्षा की पूर्ति की तलाश में प्रौद्योगिकी ने अब शरीर के रोगी हो गए अंगों के स्थान पर प्रयुक्त करने के लिए कृत्रिम अंगों के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति की है। प्रस्तुत है एक लेखा जोखा।

आजकल कृत्रिम वस्तुओं का बोल बाला है। लगभग हर प्राकृतिक पदार्थ की जगह प्रयोगशाला में कृत्रिम पदार्थ बनने लगे हैं। फिर भी आमतौर पर कृत्रिमता को तिरस्कृत किया जाता हैं या धिक्कारा जाता है। पर एक क्षेत्र ऐसा है जहां नकल को न केवल सराहा जा रहा है, बल्कि बढ़ावा भी दिया जा रहा है। यह क्षेत्र है कृत्रिम मानव अंगों के निर्माण का। दुनिया की अनेक प्रयोगशालाओं में कृत्रिम हाथ, पैर, नाक, कान, आंख, दिल, जिगर फेफड़े, खून, शरीर के जोड़ वगैरह बनाये और परखे जा रहे हैं। इस दिशा में अब तक मिली कामयाबियां काफी आशाजनक रही है। कृत्रिम अंग बनने के अभियान में चिकित्सा वैज्ञानिक, पदार्थ वैज्ञानिक और इंजीनियर कंधो से कंधा मिलाकर काम कर रहे हैं।

इस क्षेत्र में हमारे देश की सबसे बड़ी सफलता जयपुर में बना कृत्रिम पैर है। यह दुनिया भर में "जयपुर फुट" के नाम से मशहूर है और इसके निर्माता डा० प्रमोद सेठी को अनेक राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुके हैं। इस कृत्रिम पैर को पहनकर दौड़ा जा सकता है, खेला जा सकता है और यहां तक कि नृत्य भी किया जा सकता है। प्रसिद्ध अभिनेत्री और नर्तकी सुधा चंद्रन "जयपुर फुट" के सहारे ही मंच पर अद्भुत नृत्य प्रस्तुत करती हैं। ऐसा ही करामाती कृत्रिम पैर अमेरिका के सीएटल शहर में भी बनाया गया है। यह कृत्रिम पैर ठीक असली पैर की तरह ही ऊर्जा को इकट्ठी करके बाद में खर्च करता है। पैरों की कही तरह बेहद दक्ष कृत्रिम हाथ भी बना लिए गए है। इनमें पाँचों उंगलियों समेत पूरा पंजा भी लगा होता है। इसे इलेक्ट्रोनिक ढंग से नियंत्रित करके लगभग हर काम किया जा सकता है। यहाँ तक कि इससे नाजुक कांच के बने गिलास उठाकर शर्बत भी पिया जा सकता है। उंगली, कोहनी, कमर कलाई, एड़ी वगैरह के एकदम असली जैसे जोड़ भी बना लिए गए हैं। इनहें बनाने के लिए प्लास्टिक, चीनी मिट्टी (सिरैमिक पदार्थ) और कई अनोखी मिश्र धातुओं का इस्तेमाल किया जाता है। हमारी देह में हड्डियाँ और पेशियाँ आपस में "टेन्डन" नामक लचीले धागों से जुड़ी रहती हैं। वैज्ञानिकों ने विशेष संश्लेषित धागों से नकली "टेन्डन" भी बना लिए हैं। इन धागों को "गोरे टैक्स पाईस" कहा जाता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि अब कोई व्यक्ति दुर्घटना में हाथ पैर गंवा देने या हड्डियों के टूट जाने से विकलांग जीवन जीने के लिए मजबूर नहीं होगा।

शरीर में "फिट" किए गए कृत्रिम जोड़ों के साथ यह समस्या रहती है कि ये हड्डियों के साथ "घुल–मिल" नहीं पाते। इसलिए वैज्ञानिक इन पर एक ऐसे पदार्थ का लेप करने की सोच रहे हैं, जिससे इनके ऊपर और अन्दर की हड्डी की कोशिकाएं पनप सकें। इसके लिए हाइड्राक्सी पेटाइट नामक पदार्थ को परखा जा रहा है। यह पदार्थ असली हड्डी में मौजूद रहता है। इससे बने कृत्रिम जोड़ों

में रक्त वाहिकाएं घुस जाएंगी और हड्डी की कोशिकाएं घुस जाएंगी और हड्डी की कोशिकाएं भी बनने लगेंगी। इससे कुछ समय बाद पता ही नहीं लगेगा कि व्यक्ति की देह में कोई कृत्रिम जोड़ भी फिट है। भविष्य में ऐसे कृत्रिम हाथ पैर बनाये जाने की भी योजना है जिन्हें कंप्यूटर द्वारा ठीक असली हाथ पैर जैसे नियंत्रित किया जा सके। इसके लिए एक ऐसा कंपयूटर चिप बनाया जा रहा है। जो दिमाग के संदेशों या कहे आदेशों को प्राप्त कर कंप्यूटर तक पहुंचाएगा और कंप्यूटर इसके मुताबिक नकली हाथ पैर को काम करने के लिए आदेश देगा। कंप्यूटर चिप को सीधे दिमाग का संदेश लाने वाली तंत्रिकाओं से जोड़ दिया जाएगा। अगर इसमें कामयाबी मिल गई तो नकली अंगों के निर्माण के क्षेत्र में एक क्रांति आ जाएगी। इसी सिद्धांत के आधार पर वैज्ञानिक एक ऐसी कृत्रिम आंख बनाने में जुटे है, जो दरअसल रोशनी की तीव्रता या कमी का एहसास करने वाली इलेक्ट्रोनिक युक्ति होगी। इसे उस तंत्रिका से जोड़ दिया जाएगा जो दिमाग में तस्वीर बनती है यानी नकली आंख का दिमाग से मेल कराकर अंधों को नेत्र ज्योति प्रदान की जाएगी।

इस तरह की करामाती इलेक्ट्रोनिक युक्ति कान के लिए बन चुकी है। इसे 'काक्लियर इम्प्लांट' कहा जाता है। इसमें एक सूक्ष्म माइक्रोफोन और इलैक्ट्रोड लगा होता है जो ध्वनि तरंगों को इलेक्ट्रोनिक सिगनल में बदल देता है फिर इन्हें आवाज को दिमाग तक पहुँचाने वाली तंत्रिका को सौंप दिया जाता है। बस यही तो असली कान का भी काम देता है। अगर किसी व्यक्ति का बाहरी कान किसी दुर्घटना में नष्ट हो गया हो तो इसके लिए सिलिकन से नकली कान बनाया गया है। इसका रंग बिल्कुल व्यक्ति की चमड़ी जैसा करके सही जगह पर 'फिट' कर दिया जाता है। इसी तरह दुर्घटना ग्रस्त नाक की जगह, आप ठीक असली नाक जैसी ही सुडौल नकली नाक भी चहेरे पर फिट करवा सकते है। सिलिकन से आंख का गोला भी बनाया जाता है। मोतियाबिंद से नष्ट हुए आंख के लेंस तो धड़ल्ले से लगाए जा रहे है।

दुनिया के कई स्थानों में कृत्रिम दिल या यांत्रिक दिल बनाये और परखे जा रहे है। "जारविक" नाम का ऐसा दिल काफी मशहूर भी हुआ है। पर नकली दिल अभी भी सौ फीसदी कामयाब नहीं हुए है। हां, दिल की धड़कन को बनाये रखने वाले "पेसमेकर" जरूर लोकप्रिय हो गए है। इसी तरह दिल के खराब वाल्वों को भी नकली वाल्वों से धड़ल्ले से बदला जा रहा है।

हमारे देश में "चित्रा वाल्व" के नाम से एक नकली हृदय वाल्व बनाया गया हैं। यह विदेशी वाल्वों की तुलना में सस्ता है और कुशलता में भी उनसे कम नही है। इसी तरह कृत्रिम फेफड़े भी बनाये और परखे जा रहे है। दिल और फेफड़े मोटे तौर पर यंत्रों की तरह काम करते है। इसलिए इनका निर्माण भी आसान है। पर विशेष कोशिकाओं से विशेष दैहिक काम करने वाले अंगों जैसे जिगर (लीवर),अग्नाशय (पैंक्रियास), वृक्क (किडनी) आदि से कृत्रिम रूप से तैयार करना बहुत कठिन है।

इन अंगों को बनाने के लिए वैज्ञानिकों ने दूसरा रास्ता चुना है। उसके लिए किसी स्पंज जैसे प्लास्टिक या पॉलीमर में उस अंग की कुछ विशेष कोशिकाएं किसी दाता व्यक्ति से प्राप्त कर रोप दी जाती है। फिर उस तथा कथित अंग को रोगी व्यक्ति के शरीर में "फिट" कर दिया जाता है। रोगी का असली खराब होता अंग भी लगा रहने दिया जाता है। कुछ समय में कोशिकाएं अपने आप विभाजित होकर अपनी तादाद बढ़ाने लगती है। इनमें खून लाने वाली वाहिकाएं भी घुस जाती है। धीरे-धीरे प्लास्टिक का ढांचा गल कर समाप्त हो जाता है और यह नकली अंग ठीक असली अंग की तरह काम करने लगता है। फिर खराब असली अंग शरीर से निकाल दिया जाता है।

फिलहाल वैज्ञानिक जिगर और अग्नाशय के लिए इस तरह के प्रयोग कर रहे है। पर उनका मनाना है कि इस तरह शरीर के लगभग सभी अंग बनाये जा सकते है। ऐसे अंगों को "आर्गेनाइड" कहा जाता है। प्रयोगशालाओं में चमड़ी की कोशिकाओं को उगाकर नकली चमड़ी भी बनाई जा रही है। नकली खून भी प्रयोगों की अंतिम अवस्था में पहुँच चुका है। वैसे कुछ वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि हम अगली सदी के अंत तक सिर से पांव तक नकली इंसान तैयार कर देंगें। **पर इनमें प्राण कौन फूंकेगा?** उम्मीद है इक्कीसवीं सदी के दूसरे तीसरे दशक तक देश–विदेश के महानगरों में कृत्रिम मानव अंगों की दूकानें खुल जाएगी। ठीक वैसे ही जैसे आजकल मोटर कारों के पुर्जो की दूकानें दिखाई देती है। इन पर बोर्ड लगा होगा "कृत्रिम अंग स्टोर हमारे यहां आधुनिक तकनीक से बने सिर से पांव तक के कृत्रिम अंग सस्ती दरों पर उपलब्ध है।"

□□□

पर्यावरण हितैषी पैकेजिंग फिल्म

सीएफटीआरआई में ताजे फल और सब्जियों की पैकिंग के लिए कृत्रिम पेट्रोलियम आधारित प्लास्टिक के स्थान पर प्राकृतिक रूप से गलनशील और पर्यावरण हितैषी फिल्म विकसित की जा रही है। बायोकेमिस्ट्री और न्यूट्रिशन विभाग में वैज्ञानिक, इस तरह की फिल्म बनाने के लिए पर्यावरण हितैषी पदार्थ जैसे स्टार्च, सेल्युलोज एवं काइटीन का प्रयोग कर रहे हैं। ये पदार्थ कृषि और समुद्री जीवों के प्रसंस्करण से प्राप्त ढेर सारे अपव्यर्थ से उपलब्ध होते हैं। रासायनिक उपचार से इनका रूपान्तरण और पायसीकरण करके फिल्म बनाई जाती है। चूँकि पायसीकरण के लिए प्राकृतिक रूप से गलनशील पदार्थों का ही उपयोग किया जाता है। इसलिए इस तरीके से निर्मित होने वाली फिल्म भी जैविक रूप से गलनशील होती है यह फिल्म मजबूत होने के साथ–साथ उतनी ही मोटाई के निम्न घनत्व की पॉलीथीन फिल्म की अपेक्षा इसकी बेहतर पारगम्यता होती है। इसलिए इसमें पैक किये हुए फल और सब्जियां अधिक समय तक ताजी रहती हैं।

संस्थान के सूक्ष्मजीवाणु विज्ञान विभाग में जैविक गलनशील फिल्म के निर्माण के लिए कुछ दूसरा ही तरीका अपनाया जा रहा है। बायोफिल्म बनाने के लिए विशेष आरोवेसीडियम पुलुलेन्स किस्म के काले यीस्ट के किण्डवन द्वारा प्राप्त कच्चेमाल का इस्तेमाल किया जाता है। ये यीस्ट बहुत अधिक मात्रा में पुलुलेन नामक पालीसेकराइड बनाता है, जो शुद्धिकरण के बाद फिल्म बनाने के काम आता है। पुलुलेन फिल्म व्यापारिक रूप से उपलब्ध पैकेजिंग फिल्मों की अपेक्षा आक्सीजन के लिए कम पारगम्य होती है। अतः इसमें पैक करने पर फल और सब्जियाँ ज्यादा समय तक ताजी बनी रहती है। इसके अलावा पुलुलेन को खाद्य पदार्थों में डालकर उनके गठन में सुधार किया जा सकता है।

काइटीन फिल्म की तरह पुलुलेन फिल्म का भी पूर्ण रूप से जैविक गलन होने के कारण पर्यावरण हितैषी है। दोनों तरह की फिल्म का प्रायोगिक सतर पर निर्मित करने की विधियों पर काम प्रगति पर है।

स्वास्थ्य

कुबड़े हो रहे हैं देश के ढाई करोड़ बाशिंदे

डा० डी० डी० ओझा

अभियान, बी–2, वेलकम अपार्टमेण्ट, सेक्टर–9, रोहिणी, दिल्ली–110085

हमारे देश के ढाई करोड़ बाशिंदे कुबड़ेपन और फ्लोरोसिस जनित अन्य प्रकार की विकलांगता का शिकार होकर असमय में ही अभिशप्त जीवन जीने को विवश है। कारण उनके इलाकों में फ्लोराइड की मात्रा आवश्यकता से अधिक घुली हुई हैं। विज्ञान, और प्रौद्योगिकी की अभूतपूर्व प्रगति के इस युग में कौन खोजेगा इन समस्याओं के मानवीय हल ?

रसायन विज्ञान ने मानव को असंख्य रसायन प्रदान किए हैं। इनमें से अनेक मानवोपयोगी हैं जबकि अन्य विध्वंसकारी हैं और कुछ हँसाने वाले तो कुछ आँसू निकालने वाले हैं। कई अमृत तुल्य और कई विष तुल्य है उदाहरण के तौर पर यदि जल में जो जीव जगत के लिए प्रकृति का अनुपम उपहार है, कुछ रसायनों की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है तो शरीर में कई विकार उत्पन्न हो जाते हैं जो कभी-कभी मृत्यु का कारण भी बन सकते हैं। हमारे आदि ग्रंथ यजुर्वेद में कहा गया है कि जल सब रोगों की एकमात्र दवा है। परन्तु जब इसमें नाइट्रेट, फ्लोराइड एवं अन्य रसायनों के यौगिकों का सान्द्रण अधिक मात्रा में हो जाता है तो यह कई जानलेवा बीमारियों का कारण बन जाता है। हमारे अपने देश के पंद्रह राज्यों में जल में फ्लोराइड की मात्रा अधिक होने के कारण फ्लोराइड जनित रोगों की समस्या जटिल होती जा रही है। इसके कारण मानव एवं मवेशी दोनों त्रस्त है। लेखक ने स्वयं राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्रों के भू–जल का विस्तृत भौतिक रासायनिक अध्ययन करके यह पाया है कि नागौर, बाड़मेर, जालोर, पाली, सिरोही, सीकर, झुंझनू तथा चुरु आदि के भू–जल में फ्लोराइड की अत्यधिक मात्रा होने से इन क्षेत्रों में फलोराइड की विषाक्तता हो चुकी है। राजस्थान के लगभग 6000 गाँव फ्लोरोसिस की बीमारी से ग्रसित है। कई ऐसे क्षेत्र भी बताए जाते हैं जहाँ तीन वर्ष में पूरे गाँव में एक बार भी शहनाई नहीं बजी हैं, अर्थात कोई विवाह आदि कार्य लोगों में होने वाली स्थाई विकलांगता के कारण नहीं हुए हैं। फ्लोराइड युक्त क्षेत्र को राजस्थान की स्थानीय भाषा में बांका पट्टी कहते हैं। यहाँ के बाशिंदे विगत चालीस वर्षों से फ्लोराइड युक्त पानी पीकर असहाय हो चुके हैं। अनुमानों के अनुसार हमारे देश के आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, दिल्ली तथा जम्मू कश्मीर के लगभग 150 जिलों के लगभग ढाई करोड़ व्यक्ति फ्लोरोसिस रोग से ग्रस्त हैं।

फ्लोराइड वास्तव में फ्लोरीन नामक गैस का एक प्रमुख यौगिक है जो प्राकृतिक अवस्था में स्वतंत्र रूप से नहीं पाया जाकर प्रकृति में मुख्यतः निम्न तीन अयस्कों के रूप में मिलता है। (i) फ्लोरस्पार (ii) क्रायोलाइट एवं (iiii) फ्लोरएपाटाइट। सामान्यतः फ्लोराइड के अयस्क पानी में अघुलनशील होते हैं, परन्तु कुछ भूभर्गीय परिस्थितियों में जल में घुलनशील हो जाते हैं। हमारे शरीर में मुख्यतः जल के माध्य से लगभग 60 प्रतिशत फ्लोराइड प्रविष्ट करता है, परन्तु अल्प मात्रा में भोजन, पनीर, चाय, तबाकू, सुपारी, फ्लोराइड युक्त टूथपेस्ट, माउथवाश तथा कुछ किस्म की मछलियों एवं औद्योगिक प्रदूषण के माध्यम से भी यह शरीर

में पहुँचाता है।

देश–विदेश के स्वास्थ्य संगठनों ने पेयजल के लिए फ्लोराइड की मात्रा 1.5 मिलीग्राम प्रति लीटर निर्धारित की है। किसी भी स्थिति में इसकी अधिकतम स्वीकार्य मात्रा 2.0 मिली ग्राम प्रति लीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। जबकि यह सही है कि अत्यल्प मात्रा में फ्लोराइड होना चाहिए, परन्तु इसकी बढ़ी हुई मात्रा पहले दाँतों में विकृतियाँ तत्पश्चात् अस्थियों में फ्लोरोसिस नामक भंयकर बीमारी उत्पन्न कर देती है। दंत फ्लोरोसिस में सफेद चमकीले दाँत अपनी चमक खोकर पीले, भूरे एवं काले रंग के हो जाते हैं। दंत फ्लोरोसिस से प्रभावित दाँत अपने पूर्वावस्था प्राप्त नहीं कर सकते, उनसे पपड़ियां उतरने लगती हैं तथा वे असमय ही गिर जाते हैं।

फ्लोराइड की सांद्रण अधिक बढ़ जाने से एवं कैल्शियम फ्लोरोएपेटाइट की तहें अस्थि संधियों पर जम जाने से हड्डियाँ कठोर हो जाती हैं जिसके कारण व्यक्ति बिना सहारे के चल फिर नहीं सकता उन्हें गर्दन घुमाकर देखने में भी अत्यन्त कठिनाई होती है।

फ्लोराइड की अधिकता वाले लोगों की दास्तान बड़ी करुणामय होती हैं। उनके तीन से पाँच वर्ष के बच्चों के दांत अपनी सफेद चमक खोकर पीले, भूरे एवं टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं तथा बच्चों के बड़े होते–होते उनके हाथ पाँव सूखते दिखाई देते है।। धीरे–धीरे उनकी कमर झुक जाती है और चालीस वर्ष तक पहुँचता हुआ व्यक्ति कुबड़ा हो जाता हैं। न केवल मानव वरन फ्लोराइड अधिकता वाला जल पीने से मवेशी जैसे गाय, भैंस, बैल, भेड़, बकरियाँ आदि सभी मरे हुए से लगते हैं तथा उनकी उत्पादन क्षमता भी क्षीण हो जाती है।

यद्यपि फ्लोरोसिस की बीमारी लाइलाज है, परन्तु, इसके प्रभाव की रोकथाम निश्चित रूप से की जा सकती है। फ्लोरोसिस के दुष्प्रभाव से बचने के लिए अधिक फ्लोराइड युक्त वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। कम फ्लोराइड युक्त क्षेत्रों में कुएं, नलकूप आदि की व्यवस्था करनी चाहिए, अत्यधिक मात्रा में विटामिन–सी एवं कैल्शियम अधिकता वाले खाद्य एवं पेय पदार्थों का सेवन करना चाहिए। घर पर ही बताई गई मात्रानुसार पानी में चूने तथा फिटकरी का घोल डालकर हिलाकर एक घंटे के लिए रख देना चाहिए, फिर निथारकर ऊपरी जल को काम में लेना चाहिए तथा अवशेष को फेंक देना चाहिए। इससे भी पानी में फ्लोराइड की मात्रा कम हो सकती हैं। इस प्रकार हम अपंगता लाने वाले रसायन के दुष्प्रभाव से बच सकते हैं।

□□□

शक्कर रहित बिस्कुट

केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान मैसूर ने शक्कर रहित बिस्कुट बनाने की प्रविधि विकसित की है जो मधुमेह पीड़ितों के लिए वरदान साबित हो सकता है। इन बिस्कुटों में शक्कर के स्थान पर अनुमत शक्कर विस्थापकों का इस्तेमाल किया गया है। इन बिस्कुटों का स्वाद एवं कणगठन शक्कर युक्त बिस्कुटों जैसा ही हैं

शक्कर रहित बिस्कुटों के निर्माण की विधि आम बिस्कुटों जैसी ही है और इसमें भी नरम गूंथे आटे का उपयोग किया जाता है। आटे को रोटरी मोल्डर में संसाधित करने के बाद निरंतर टनल टाइप अवन में बेक किया जता है। बेकरी में उपस्थित मशीन उपस्करों से इन बिस्कुटों का निर्माण किया जा सकता है।

कहाँ से आएगा इतना रक्त

संजय शर्मा
सम्प्रेषण, डी–753, सरस्वती विहार दिल्ली–110034

वैज्ञानिकों ने खून के प्रत्येक घटक का पता लगा लिया है पर कुदरत का करिश्मा है कि प्रत्येक घटक को समुचित मात्रा में मिलाने पर भी खून बनाने में वैज्ञानिकों को कामयाबी नहीं मिली है। लिहाजा आज भी कुदरती खून की एक–एक बूँद हमारे लिय अनमोल है।

हमारे रगों में दौड़ता गरम पिघलता लावा यानी लाल खून। इसके बगैर हम जिंदा रहने की कल्पना नहीं कर सकते। यूं तो देखने में खून लाल तरल सा दीखता है। पर असल में इस तरल उत्तक में लाल और सफेद रूधिर कणिकाओं के अलावा कई रासायनिक अपघटक होते हैं। वैज्ञानिकों ने खून के हरेक घटक का पता लगा लिया है पर कुदरत का करिश्मा है कि हरेक घटक को समुचित मात्रा में मिलाने पर भी खून बनाने में वैज्ञानिकों को कामयाबी नहीं मिली हैं। लिहाजा आज भी कुदरती खून की एक–एक बूंद हमारे लिए अनमोल है। इसकी अहमियत इस साल से तो और बढ़ गई है क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ने पहली जनवरी से अपना खून बेचने वालों पर पाबंदी लगा दी है। अब यह लाजिमी हो गया है कि जीवनदायी खून की किल्लत के मद्देनजर इसका इस्तेमाल कर हम एक यूनिट खून का भी ज्यादा से ज्यादा उद्योग पर कई जान बचा सकते हैं।

खून में दिखाई न देने वाले हल्के पीले तरल प्लाज्मा में प्रोटीन, हारमोन, अमीनों अम्ल, कार्बोहाइट्रेट,, लिपिडस, कई किस्म के विटामिनों के अलावा लौह, तांबा, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटैशियम वगैरह खनिज व लवण होते है। खून को लंबे समय तक महफूज रखना शुरू से ही काफी जटिल रहा हैं पर जब से खून के जमने में कैल्शियम की हिस्सेदारी का पता चला है तब से इसमें थोड़ी सफलता मिली है। बाद में पोटेशियम और अमोनियम के इस्तेमाल से भी आशा बंधी। इडीटीए यानी एथिलीन डाइएमीन टेट्रा एसीटिक ऐसिड के उपयोग से खून को सुरक्षित रखना तो मुमकिन हो गया पर वह केवल प्रयोगशाला तक ही सीमित रहा यानी उस तकनीक से संरक्षित खून चढ़ाने के काम नहीं आता था क्योंकि ऐसे संरक्षित खून में आक्सेलेट्स जैसे तीव्र और खतरनाक विष पैदा होना, लाल रक्त कणों का फूल जाना, ल्यूमकोलाइट्स और प्लेटलेट की संख्या घटना जैसे परिवर्तन हो जाते थे। हालांकि हीमोग्लोबीन को कई दिनों तक स्थिर रखा जा सकता था। यह हालत इस सदी के शुरूआती दशक तक रही।

सोडियम साइट्रेट के बारे में 1914 में यह नतीजा निकला कि यह बेहद सुरक्षित और बेहतर रक्त प्रतिरक्षी है। चिकित्सा वैज्ञानिकों की चौकड़ी यानी **डी वेकी, लुइस एगट, आर वील और रिचर्ड लिविसान** ने यही क्रांतिकारी खोज की। **लिविसान** ने 1915 में पहली बार 22 लोगों को इस तरह से संरक्षित किया खून चढ़ाया और प्रयोग पूरी तरह से कामयाब रहा। बाद में इसमें और अनुसंधान हुआ। ए सी डी के घोल या आइसोडाइज्ड साइट्रेट डेक्सट्रोज का इस्तेमाल होने लगा। इसमें मुख्यतः 1.32 ग्राम सोडियम साइट्रेट, 0.44 ग्राम साइट्रिक एसिड, 1.47 ग्राम डेक्सट्रोज और सौ मिलीमीटर तक पानी होता है। इस घोल की 75 मिलीलीटर खून का महफूज रखने में सक्षम होती है। यह रसायनीकृत खून पाँच डिग्री सेंटीग्रेट तापमान पर 21दिनों तक सुरक्षित रह सकता है। इस मियाद को एक सप्ताह और बढ़ाने में सफलता मिली चिकित्सा वैज्ञानिक **गिल्लसन** को

1947 में। इस घोल में फास्फेट मिलाकर साइट्रेट फास्फेट डेक्सट्रोज (सीपीडी) मिले खून को शून्य से सौ डिग्री कम तापमान पर जमा हुए प्लाज्मा को कई वर्षों तक बचा कर रखा जा सकता है।

इतनी मुश्किल से बचाकर रखे जाने वाले खून की किल्लत हमारे देश में बहुत ज्यादा हैं। क्योंकि लोग अंध मान्यताओं के चलते रक्तदान करना नहीं चाहते। ऐसा अशिक्षा और अंधविश्वास के चलते हैं। हमारे देश में गंभीर और जरूरतमंदों को पड़ने वाली खून की सालाना मांग साठ लाख यूनिट हैं। पहली जनवरी से पहले तक इसके 40 फीसदी हिस्से की आपूर्ति व्यावसायिक रक्तदाताओं से होती थी। बाकी का 60 फीसदी अंश रिप्लेसमेंट के जरिए पूरा होता था पर अब सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद पहली जनवरी से पूरी मांग की आपूर्ति रिप्लेसमेंट के जरिए ही हो रही है। एक अध्ययन के मुताबिक हरेक अस्पताल में साल में प्रति बिस्तर 11 इकाई खून की जरूरत होती हैं आपरेशनों में अमूमन 6 से 16 यूनिट खून की जरूरत पड़ जाती हैं। लेकिन स्वैच्छिक रक्तदान का समुचित प्रचार और लोगों के जेहन में इसके न बैठे पाने से खून की दिक्कत हो गई है। लोगों में स्वेच्छा से रक्तदान करने की आदत नहीं है और समय पर जब वे अपने खून के बदले जरूरत वाले ग्रुप के खून की मांग करते हैं तो अक्सर उस ग्रुप का खून नदारद होता है। वैसे भी कुछ दुर्लभ ग्रुप मसलन ए निगेटिव, बी निगेटिव और एबी पाजिटिव और निगेटिव की ऐसे भी काफी किल्लत रहती है।

इस समस्या से निबटने के बारे में इंडियन मेडिकल एसोसिऐशन के महासचिव **डा० प्रेम अग्रवाल** का सुझाव है कि लोग कंपोनेंट ट्रांस्फ्यूजन और सेल्फ ट्रांस्फ्यूजन को समझें व उस पर अमल करें। कंपोनेंट को समझाते हुए उन्होंने कहा कि एक यूनिट खून में कई घटक होते हैं। हरेक मरीज को अलग–अलग घटकों की जरूरत होती है। कई को सिर्फ प्लाज्मा, हीमोग्लोबीन या प्लेटलेट, आरबीसी या सफेद रक्त करण ही चढ़ाने की बजाए उसके लिए जरूरी घटक ही चढ़ाना बेहतर होता है। ये अपघटक पहले ही खून से अलग–अलग कर सुरक्षित रख लिए जाते हैं। तभी इस सूझबूझ की तकनीक को **रेशमॉनल यूज आफ ब्लड** भी कहते हैं।

सेल्फ डोनेशन या आटो ट्रांस्फ्यूजन के बारे में **डा० अग्रवाल** ने बताया कि इसका इस्तेमाल आपरेशन आदि में किया जाता है। आपरेशन से करीब एक महीने पहले मरीज से खून ले लिया जाता है। यह एक बार में एक यूनिट या हर सप्ताह भी ले कर सुरक्षित रखा जा सकता है। इस दौरान मरीज के शरीर में भी खून बनता रहता है। आपरेशन के वक्त मरीज को जरूरत के मुताबिक उसी का खून चढ़ा दिया जाता हैं। यह तकनीक सबसे ज्यादा सुरक्षित और स्वावलंबन की मिसाल है। लोगों को इसे अमल में लाना चाहिए।

स्वैच्छिक रक्तदान को बढ़ावा देने की गरज से बनाई गई नेशनल ब्लड ट्रांस्फ्यूजन काउंसिल के अध्यक्ष **जेवीआर प्रसादराव** का कहना है कि नई व्यवस्था के तहत अपने खून का धंधा करने वालों की जड़ें काट कर सुरक्षित व उत्तम गुणवत्ता वाला खून मुहैया करने के लिए सबसे पहले देश में हर जगह ब्लड बैंक सुलभ कराने होंगे। उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया कि अभी भी देश के कई जिलों में ब्लड बैंक है ही नहीं। देश में कुछ ब्लड बैंकों की तादाद फिलहाल 1050 हैं। इनमें से 565 निजी और 485 सरकारी हैं। अप्रैल 1997 तक 818 को लाइसेंस दिए जा चुके थे। सुप्रीम कोर्ट ने चार जनवरी 1997 को फैसला देते हुए व्यावसायिक रक्तदाताओं पर पाबंदी लगाने का हुक्म दिया और पहली जनवरी से इसे अमल में लाने के निर्देश दिए थे।

श्री प्रसादराव के मुताबिक हरेक जिला मुख्यालय में प्राथमिकता के आधार पर आधुनिकतम सुविधाओं वाला कम से कम एक ब्लड बैंक जरूर खोला जाएगा। इसके अलावा स्वेच्छा से रक्तदान करने वालों को एक खूबसूरत और आकर्षक प्रतीक चिह्न दिए जाने की योजना है। यह स्मृति चिह्न कैप, टाई पिन, कॉलर पिन या फिर बिल्ले की शक्ल में हो सकता हैं इससे युवाओं के मन में रक्तदान के प्रति 'क्रेज' बढ़ेगा। इसके अलावा लोगों को रक्तदान के फायदे और इसके न करने से होने वाले नुकसानों मसलन कोलेस्ट्रोल और रक्तचाप बढ़ने से दिल को होने वाले खतरों के बारे में बताया जाएगा। राष्ट्रीय रक्त अनुसंधान परिषद को अनुदान करने वालों को अनुदानित रकम पर आय कर में छूट भी मिलेगी। स्वयंसेवी, सरकारी और गैर सरकारी संगठनों व महकमों पर अब यह जिम्मेदारी है कि वे खून की इस किल्लत को अपने रक्तदान अभियानों से हल करने के लिए आगे आएं। आज अपनी जन्मभूमि और मानवता को हमारे खून की जरूरत है।

□□□

निगलने में तकलीफ हो तो तुरंत जांच करवाएं

डा० शिवशंकर राय
सम्प्रेषण, डी–753, सरस्वती विहार दिल्ली–110034

हमारे खाने के लिए उसे चबाना जरूरी होता है, और उसके लिए जरूरी होते हैं मजबूत दांत, वस्तु में लार की पर्याप्त मात्रा, और स्वस्थ आहार नलिका। आहार नलिका में थोड़ी सी गड़बड़ी से भोजन को निगलने में तकलीफ होती है। इसे नजरअंदाज न करें, क्योंकि थोड़ी-सी लापरवाही खतरनाक हो सकती है।

यदि निगलने में कठिनाई या किसी तरह की तकलीफ के अन्य लक्षण प्रकट होते हैं तो बेरियम और एंडोस्कोपी की तुरंत आवश्यकता होती हैं। ये दोनों जांच हालांकि आवश्यक होते हैं। लेकिन फिर भी रोगी का पूरा इतिहास अर्थात संपूर्ण जानकारी जानना निदान के लिए जरूरी होता है। रोगी के इतिहास से निदान में हर संभव सहायता ही नहीं मिलती; वरन उपचार में भी मदद मिलती है। चिकित्सकों को सामान्यतः शारीरिक जांच भी करनी पड़ती है, लेकिन यह रोगी की संपूर्ण जानकारी जितना महत्त्वपूर्ण नहीं है।

जो महिलाएं अक्सर चिंता या भयग्रस्त होती हैं, इन्हें निगल पाने में असमर्थता पैदा होती है, निगलने में कठिनाई की नहीं। एक तो ऐसी महिलाएं भावुक बहुत होती हैं। दूसरे मुँह में खुश्की भी हो सकती हैं। अगर गले में कोई छोटी सी गांठ हो जाए तो ऐसे रोगियों का भय बढ़ जाता है और इन्हें लगता है कि ये कुछ भी निगल नहीं पायेंगी। ध्यान रहें कि गिल्टी की वजह से न निगल पाना शायद ही कभी होता है। ऐसा तब होता है जब ग्रन्थि से अचानक रक्तस्राव होने लगता है।

मुँह और जीभ में जलन तथा असहनीय दर्द के कारण भी निगलने में कठिनाई होती हैं। इसका पता परीक्षण से लग सकता है। जीभ पर गठान और उसके कैंसरीय स्वरूप के कारण भी निगलने में कठिनाई होती है। जीभ में जलन के कारण विभिन्न पौष्टिक आहारों की कमी, आयरन, टांसिल, गले की सूजन आदि हो सकते हैं। निगलने में कठिनाई के कारण रोगी ठीक से भोजन नहीं कर पाता और परिणाम होता है उसके वजन में कमी। गले में कोई बाहरी चीज फंस जाए तो भी निगलने में कठिनाई होती है। अक्सर मछली का कांटा गले में अटक कर गले में सूजन पैदा कर देता हैं और परिणाम होता है निगलने में कष्ट अथवा कठिनाई। अन्य नलिका में कोई लक्षण हो तो उसका परिणाम सरसरी तौर पर नहीं करना चाहिए, क्योंकि मध्यम वय के बाद गले में विकिरण के कारण कई लक्षणात्मक परिवर्तन होते हैं।

गले में सूजन और नाड़ी तंत्र का भी अपरोक्ष संबंध हैं। निगलने में नाड़ी तंत्र द्वारा संतुलन जटिल प्रक्रिया हैं। चबाना, चाटना, खांसना, छींकना, कै करना, हिचकी लेना, सांस लेना, ये सारी क्रियाएं मस्तिष्क शिराओं से असंबंध नहीं है। हमें हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि निगलने के समय बोलने और श्वसन क्रिया पर नाड़ी तंत्र में विषमता के कारण संतुलन के कारण हमारी अन्य नलिका या श्वसन नलिका का मुँह अवरुद्ध हो सकता है। वैसे निगलने में कठिनाई कारणों में इनका समावेश नहीं किया जा सकता।

निगलने में कठिनाई के बहुत से कारणों में संक्रमण जैसे डिफ्थीरिया, पोलियो आदि भी शामिल हैं। मस्तिष्क शिरा संबंधी अनेक रोगों के अलावा मायस्थीनिया ग्रेविस जनित

कमजोरी भी इसके कारण हैं।

ऐसे में निगलने में कठिनाई जब आती है, तब द्रव एवं ठोस पदार्थ अन्न नलिका में न जाने की धमकी सी देने लगते हैं। भोजन अंदर तो जाता है पर नाक के जरिये या खाँसी के साथ वापस बाहर आ जाता है।

इसके अलावा कई बाहरी दबाव भी कारण बनते हैं। इस प्रकार का रोग मध्य अन्न नलिका अथवा मुख विवर में होता है। आहार लेने में रोग में में पूरी रुकावट नहीं आती। छाती में ग्रंथि वृद्धि भी सामान्यतः ऐसे लक्षण उत्पन्न करती है जिसमें मुख विवर का भी हाथ होता हैं। प्रदाह ग्रंथि यदि कभी रोगी को तपेदिक रहा हो तो मुख विवर से उत्कर्षन पैदा करती हैं। लेकिन आवश्यक नहीं कि इसके कारण निगलने में कष्ट हो यह गलत जगह पर धमनी के होने के कारण और उसकी कमानी पर सूजन आने के कारण भी होता है।

एचलेशिया एक ऐसा रोग है जिसके बारे में काफी देर से पता चलता है, अगर पता भी चल जाना है तो इसे आपरेशन के लायक बहुत समय के बाद समझा जाता हैं, जिससे रोगी की विशेष सहायता कर पाना संभव नहीं होता। यह रोग स्नायविक तंतुजाल कोशिकाओं के अकारण पतन की वजह से होता हैं।

इस रोग में विशेष कर शीतल पेय निगलने पर गले में पीड़ा होती हैं। यह दिन या रात को किसी भी समय हो सकती हैं। इस दर्द में गर्दन तक पहुँचने से हृदयाघात का भी भय हो सकता हैं। हालांकि इस रोग में ठोस और तरल पदार्थ गले के नीचे सामान्यतः उतर जाते हैं लेकिन अन्न नलिका का संकुचन शिथिल हो जाने से इन्हें आगे बढ़ने से रोक देता है। अतः आरंभिक अवस्था में रोगी ठोस और तरल पदार्थ जल्दी–जल्दी नहीं ले सकता, रोगी जब विकृत अन्न नलिका की अवस्था में पहुँचता हैं तो अन्न नलिका के दबाव क्षमता के कारण तरल पदार्थ लेना संभव हो जाता है।

कैंसर भी कारण हो सकता हैं

यह रोग अन्न नलिका के निचले हिस्से में होता है। यह रोग तब तक शांत रहता है जब तक निगलने में कष्ट होना आरंभ न हो जाये। इस रोग में शुरू के कुछ ग्रास निगलने में कठिनाई होती है। लेकिन बाद में यह कष्ट कम हो जाता है। मगर फिर अचानक ही स्थिति और भी बिगड़ जाती है।

इस रोग की कहानी अधिक पुरानी नहीं होती। यह तेजी से बढ़ता है। यह एक बार घट कर फिर तेजी से बढ़ता है। पाचन संकुचन से भिन्न यह रोग हर भोजन के बाद होता हैं। यहाँ तक की तरल पदार्थ के पीने में भी कष्ट होने लगता है। पेय आदि तुरंत कै के रूप में बाहर निकल आते हैं। इससे भी बेरियम परीक्षण से निदान किया जा सकता है। निगलने में कठिनाई से ग्रस्त व्यक्तियों को लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए। इसकी बाकायदा विशेषज्ञ द्वारा जांच करानी चाहिए क्योंकि निगलने में कठिनाई की बहुत ही वजह होती हैं। अगर रोग का पता प्रारंभिक अवस्था में ही चल जाये तो उपचार सरल हो जाता हैं। बढ़ती आयु में सूजन की वजह कैंसर की गांठ भी हो सकती हैं। अतः लापरवाही उचित नहीं है।

कृषि-विज्ञान

ट्रांसजेनिक फसलों पर क्यों है विवाद

विनय राणा
सम्प्रेषण, डी–753, सरस्वती विहार दिल्ली–110034

कृषि विज्ञान में ट्रांसजेनिक फसलें एक नवीन आयाम हैं। हालांकि वैज्ञानिकों ने इन फसलों को कई समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए ईजाद किया है, लेकिन यह खुद विवादों में घिर गई हैं। ये ट्रांसजेनिक फसलें क्या हैं? और उन पर इतना विवाद आखिर क्यों हैं? एक रपट।

बढ़ती आबादी की भूख मिटाने के लिए वैज्ञानिक फसलों की नई–नई सुपर किस्में सामने ला रहे हैं। अधिक से अधिक उपज देने वाली फसलों की खोज का सिलसिला अभी चल ही रहा है, क्योंकि आबादी भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही हैं। विकासशील देशों की आबादी में विशेष रूप से इजाफा हो रहा है, इसलिए फसलों की बेहतर किस्मों की आवश्यकता भी उन्हें ज्यादा हैं। हालांकि फसलों से भरपूर पैदावार लेने के लिए दुनिया भर में कीटनाशकों का जम कर इस्तेमाल किया जा रहा है लेकिन यह कीटनाशक हमारे स्वास्थ्य के लिए कई समस्याएं खड़ी कर रहे हैं।

पिछले कुछ वर्षों में कीटनाशकों के इस्तेमाल का जमकर पूरी दुनिया में विरोध हो रहा है। अब तो यह कहा जा रहा है कि यह कीटनाशक कीट पतंगे कम, इंसान को ज्यादा मार रहे हैं। 'वर्ल्ड वाच' का मानना है कि स्थिति काफी गंभीर है। कई समस्याओं के साथ–साथ कुछ कीटनाशकों का कैंसर जैसी बीमारी से सीधा–सीधा रिश्ता देखा जा रहा है। इस खतरनाक स्थिति को देखते हुए शोधकर्ता आज कल जैविक कीटनाशक पर अनुसंधान कर रहे हैं। कुछ सफलता भी मिली है। अभी कुछ कीट ही कीटनाशक का काम करने लगे हैं। लेकिन यह सब कुछ अभी प्रायोगिक तौर पर ही है।

पिछले व इस दशक में जैव प्रौद्योगिकी (बायो टेक्नोलाजी) का पूरी दुनिया में एक साथ गुणगान आरंभ हुआ। इसके आश्चर्यजनक कारनामे भी सामने आए है। जीवन के हर क्षेत्र में इसके चमत्कार आज दिख रहे हैं। कृषि में भी इसकी नई संभावनाओं ने शोधकर्ताओं सहित आम लोगों में नई आशा पैदा कर दी है। कई समस्याओं से छुटकारा तो मिलेगा ही, आश्चर्यजनक परिणाम भी मिलने की उम्मीद की जा रही है। लेकिन इस जैव प्रौद्योगिकी पर भी कुछ लोग सवाल उठा रहे हैं? सेहत पर उनके प्रभाव को लेकर, कुछ शोधकर्ताओं का भी मानना है कि कहीं सुरक्षा के लिए किए गए उपाय ही विपरीत प्रभाव के रूप में सामने न ले आएं। कहीं समाधान ही खुद समस्या न बन जाए ? ऐसा सोचने वालों के अपने–अपने तर्क हैं। फिलहाल तो कृषि विज्ञानी ट्रांसजेनिक विज्ञानी ट्रांसजेनिक फसलों को बड़े पैमाने पर सामने लाने में लगे हैं।

पहले यह जान लें कि यह ट्रांसजेनिक फसलें क्या हैं? आदमी की तरह फसलों को भी विषाणु (वायरस) कई तरह से बीमार बनाते हैं। इन विषाणुओं को पादप विषाणु (प्लांट वायरस) कहा जाता है। इन विषाणुओं को मारने के लिए ही कीटनाशकों का इस्तेमाल खेती में किया जाता है। अब कीटनाशकों के इस्तेमाल से बचने के लिए वैज्ञानिक ने बड़ा शक्तिशाली व प्रभावशाली तरीका खोजा है, पादप

विषाणुओं के जीनोम के विशेष भागों का, पौधों में प्रवेश करके ट्रांसजेनिक पौधे की उत्पत्ति करना, इन्हीं पौधों की खेती को ट्रांसजेनिक फसल कहते हैं। इससे उस विशेष विषाणु के प्रति पौधों में प्रतिरोधक शक्ति पैदा हो जाती है और खेतों में ये खतरनाक विषाणु फसलों का कुछ नहीं बिगाड़ पाते।

लेकिन नए शोधों से अभी हाल में ही पता चला है कि इससे नए विषाणु पैदा होने का खतरा तो बना ही हुआ है। दरअसल पौधे का ट्रांसजेनिक आर०एन०ए० और वायरस का जीनोमिक आर०एन०ए० पुनर्योजन के लिए तैयार रहते हैं। यह स्थिति ऐसी है कि इसमें नए विषाणु पैदा हो सकते हैं। वैज्ञानिकों ने इस कमी को दूर करने का प्रयास आरभ भी कर दिया है।

हमारे शरीर की तरह ही यह जरूरी नहीं है कि विषाणु पूरे पौधे को नुकसान पहुँचाए। हो सकता है कि विषाणु केवल पत्तियाँ या फलों को ही नुकसान पहुँचाए। अब यदि किसी ट्रांसजेनिक फसल के पौधे पर विषाणु आक्रमण करते है तो उन पौधों में अन्य विषाणुओं के जीन उपस्थित रहते हैं। आक्रमणकारी विषाणु और मौजूद जीन के इस मिलन से यह सम्भव है कि किसी नए विषाणु का जन्म हो जाए और वो विषाणु फसल के लिए हानिकारक सिद्ध हो। वैसे यह सब अनुक्रमों की समानता, आर०एन०ए० अणुओं की स्थिति और कोशिकीय द्रव की सांद्रता आदि बातों पर निर्भर करता है। यही कारण है कि ट्रांसजेनिक फसलों पर विवाद उठ खड़ा हुआ है।

शोधकर्ताओं ने कई तरह के जैविक कीटनाशक के इस्तेमाल पर अध्ययन आरंभ कर दिया है। उन्हें कुछ सफलता भी इसमें मिली है। उन्हें कुछ सफलता भी इसमें मिली हैं। मिट्टी में पाए जाने वाले एक बेक्टीरिया (जीवाणु) बेसिलस यूरिन्जिएसिंस से बड़ी आशा की जा रही है। इस जीवाणु में एक विशेष गुण यह है कि अपने डी०एन०ए० को पौधे में स्थापित कर उसके आनुवंशिकता का एक भाग बन जाते हैं। इससे इन जीवाणुओं को पौधे की कोशिका में किसी जीन को प्रविष्ट कराने के लिए, वाहक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। यह प्रयोग कई फसलों पर सफलतापूर्वक किया भी गया है।

दरअसल बेसिलस यूरिन्जिएसिस जीवाणुओं में टाक्सिन का एक विशेष गुण भी मौजूद है। खास बात तो यह है कि यह टाक्सिन गुण केवल कैटर पिलर, भ्रिंग व मक्खियों के लाखा आदि को ही क्षति पहुँचाता है, जो पौधे के विकास की बाधक हैं। पौधे को लाभ पहुँचाने वाले कीट पूरी तरह सुरक्षित रहते हैं। यह टाक्सिन कई प्रकार के हो सकते हैं।

अभी तक चार दर्जन से अधिक टाक्सिन का पता चला है। प्रत्येक टाक्सिन एक सुरक्षित हथियार की तरह है। जैसे कोई मिसाइल अपने लक्ष्य पर जा कर हमला करती है, वैसे ही प्रत्येक टाक्सिन केवल दुश्मन कीटों पर ही हमला बोलता है। मित्र कीट पूरी तरह से सुरक्षित रहते हैं।

वैसे इस दिशा में शोध अभी जारी है क्योंकि पता चला है कि कुछ कीटों ने इसके प्रति भी प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर ली है। इसके लिए अब शोध कर्ता टाक्सिन उत्पादन करने वाले जीन को ही पौधों में प्रत्यारोपित कर पौधों को और भी शक्तिशाली व सुरक्षित बनाने की दिशा में लगे हैं।

ट्रांसजेनिक फसलों के भविष्य को लेकर तरह–तरह के सवाल भले ही उठाए जा रहे हों, पर अभी भी विकसित देशों में किसान इनसे भरपूर अनाज पैदा करने में लगे हैं। एक शोधकर्ता कहते हैं कि हर समस्या का समाधान देर सबेर निकल ही आता है। अभी से क्यों इन फसलों को विवाद में डाला जाए?

□□□

खान-पान

विषाक्त भोजन : जान लेवा भी हो सकता है

राजेन्द्र कुमार राय
सम्प्रेषण, डी–753, सरस्वती विहार दिल्ली–110034

गर्मी व बरसात में भोजन विषाक्तता एक आम बात है। हालांकि यह कोई रोग नहीं बल्कि रोगों का कारण है। यहाँ तक कि मौत का भी। इस मौसम में अक्सर अखबारी सुर्खियों में भोजन विषाक्तता छाई रहती हैं। अगर सावधानी बरतें तो इससे बचा जा सकता हैं।

भोजन विषाक्तता का अर्थ है– भोजन में ऐसे जीवाणु मौजूद हैं जो सेहत के लिए सुरक्षित नहीं है।

भोजन विषाक्तता का प्रमुख कारण है– दूषित खाद्य पदार्थ, पीने के पानी में एसे जीवाणुओं और फंफूदों की उपस्थिति जिनसे अनेक विषैले रसायनों का स्राव होता है, जो इन्हें दूषित कर देती है। दूषित करने वाले कुछ रसायन तो अत्यधिक घातक होते हैं। कीट नाशकों का अंधाधुंध प्रयोग भी भोजन विषाक्तता का एक कारण है। अच्छी तरह और सफाई से पकाए गए भोजन में साधारणतया सभी जीवाणु फंफूदियां नष्ट हो जाती हैं। लेकिन खाना तैयार करने के बाद उसे ऐसे ही ठण्डा होने के लिए छोड़ दिया जाए तथा तैयार ठण्डे भोजन को कच्चे मांस, अथवा दूध उत्पादों के सम्पर्क में रखा जाए तो उसमें जीवाणु और फंफूदियों के जन्म की संभावनाएं बढ़ जाती है। अनेक प्रकार की फंफूदियों के बीज और कई किस्मों के जीवाणु वातावरण में हमारे चारों तरफ हर समय मौजूद रहते हैं। बस उन्हें अपने उगने, विकसित होने और फलने फूलने के लिए उपयुक्त अवसर और परिस्थितियों की तलाश होती है। ठण्डे और बासी भोजन में यह सारी परिस्थितियां उपलब्ध रहती हैं।

जीवाणुओं से होने वाली भोजन विषाक्तता दो प्रकार से होती हैं। एक प्रकार की भोजन विषाक्तता में भोजन के साथ पेट में पहुँचे जीवित इन जीवाणुओं के मरने के उपरान्त इनके शरीर से विषैला पदार्थ निकलता है। दूसरे प्रकार की विषाक्तता में खाए जाने से पूर्व ही जीवाणुओं के मर जाने से उत्पन्न विषैला रसायन, भोजन में मौजूद रहता है तथा खाना खाने के बाद शरीर पर विषाक्तता का प्रभाव होने में अधिक समय नहीं लगता। विषाक्तता से प्रभावित व्यक्ति में पहले तो सिरदर्द के साथ–साथ चक्कर आते हैं। फिर थोड़ी ही देर बाद उल्टी और दस्त प्रारम्भ हो जाते हे। इस स्थिति के पश्चात उपचार में थोड़ी सी देर जानलेवा साबित हो सकती हैं। क्योंकि उल्टी, दस्त, के कारण शरीर से पानी का क्षय हो जाता है। भोजन की विषाक्तता का असर आमाशय (पेट) आंत तथा तंत्रिका तंत्र पर प्रमुखता से होता है।

सालमोनेला, विब्रियो, पैराहिमोलिटिक्स, लिस्टेरिया, मोनकसाइटोजेनीस, कम्पाइलेबैक्टर, येरसीनिया तथा क्लोस्ट्रिडियम के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमें विब्रियो पैराहिमोलिटिक्स को छोड़कर अनय जीवाणु बासी खाने को अपना माध्यम बनाते हैं।

स्टेफाइलोकोक्कस नामक जीवाणु घाव तथा फोड़ों में पाया जाता है। घाव वाले हाथों से अथवा घाव के छूने के बाद बिना अच्छी तरह हाथ साफ किए खाना बनाने या खाने से ये भोजन के साथ पेट में पहुँच जाते हैं।

अर्ध तरल खाद्य पदार्थों जैसे कस्टर्ड आइसक्रीम, सलाद, कीमा आदि पर इस जीवाणु की संख्या तेजी से बढ़ती है। यदि इसका विष खाद्य पदार्थ में पहुँच गया तो वह सरलता से नष्ट नहीं होता है।

क्लोस्ट्रिडियम मुख्य रूप से [illegible] दलदल तथा समुद्रतटों पर पाया जाता है और उन स्थानों पर उगाई जाने वाली सब्जियों और इनके संपर्क में आने वाले जन्तुओं, मछलियों आदि के साथ हमारे पेट में पहुँचता है। क्लोस्ट्रिडियम स्पोर (बीज) मनुष्य के लिए बहुत घातक होता है। इन बीजों से एक प्रकार का विष निकलता है। जो हमारे स्नायुतंत्र को प्रभावित करता है।

भोजन विषाक्तता में सालमोनेला जीवाणु का सम्भवतः सबसे अधिक हाथ है। यह जीवाणु मनुष्य के पेट में मुख्यतः जन्तु खाद्यों के साथ पहुँचता है। विश्वभर में 25 से 65 प्रतिशत मांस में सालमोनेला जीवाणु उपस्थित रहते हैं।

लिस्टेरिया मोनोसाइटोजेनी मिट्टी, दलदल, नदियों, सब्जियों, जानवरों के चारे, कीटों, जन्तुओं तथा मानव ऊतकों, खाद्य उत्पादन गृहों और रसोइयों में मौजूद रहता है। इसलिए दूध, सब्जी, तथा मांस के साथ हमारे शरीर में इसका प्रवेश बहुत ही आसान है। रेडी टू ईट खाद्य पदार्थ इससे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं।

यह शून्य से लेकर 45 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर उग सकता है। 5 से 10 डिग्री सेल्सियस के तापमान (रेफ्रिजरेटर के भीतर का तापमान) पर कुछ ही दिनों में कुछ खाद्यों पर एक मिलीमीटर स्थान यह अपनी संख्या 10 लाख तक पहुँचा सकता है। रेफ्रिजरेटर में रखे चीज, मांस और सलाद इस जीवाणु के तेज विकास के लिए आदर्श खाद्य हैं। इसके प्रभाव के व्यक्ति फ्लू, दिमागी, बुखार, न्यूमोनिया, त्वचा के रोग, मानसिक मन्दता आदि का शिकार हो सकता है। गर्भवती महिलाओं में गर्भपात भी हो सकता है।

जीवाणुओं के पश्चात फंफूदियाँ भोजन विषाक्तता का दूसरा सबसे बड़ा कारण हैं। हमारे देश में इनका प्रकोप बरसात के दिनों में अधिक होता है, क्योंकि उस समय इन्हें तेजी से वृद्धि के लिए पर्याप्त नमी तथा उपयुक्त तापमान आसानी से उपलब्ध रहता है। फफूंदियों के बीज (स्पोर) वायुमण्डल में हर समय मौजूद रहते हैं। जैसे ही इन्हें बासी भोजनमिला, कुछ ही देर में तेजी से बढ़कर ये सारे भोजन पर फैल जाते हैं। 'एस्पराजिलस' नाम की फफूंद सबसे अधिक घातक होती हैं। इससे निकलने वाले एफलॉटक्सिन नामक विष के प्रभाव से अन्य कई प्रकार के रोगों के साथ–साथ यकृत का कैंसर भी होता पाया गया है। बरसात में भीगे तथा नम स्थानों पर रखे हुए अनाजों पर भी फफूंदियाँ उग आती हैं। जो भोजन विषाक्तता का कारण बनती हैं।

जीवाणुओं तथा फफूंदियों के पश्चात कीटनाशक रसायनों का भी भोजन विषाक्तता में बहुत बड़ा हाथ है। कीटनाशियों के उपयोग से अनाज की पैदावार तो जरूर बढ़ी है। लेकिन इनके आवश्यकता से अधिक उपयोग ने मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत बड़ा खतरा पैदा कर दिया है। ये कीटनाशी अनाज के साथ–साथ पेटमें पहुँचकर धीरे धीरे शरीर के ऊतकों में पहुँचकर इकट्ठे होते रहते हैं। और अनेक रोगों का कारण बनते हैं। परन्तु यदि अनाज में कीटनाशी की मात्रा अधिक हुई है तो वह भोजन विषाक्तता का कारण बनती हैं।

भोजन विषाक्तता जितनी ही अधिक घातक और आम है, इससे बचना उतना ही आसान है। बस जरूरत हैं तो केवल कुछ सावधानियाँ बरतने तथा स्वच्छता पर विशेष ध्यान देने की। खाना तैयार करने तथा खाने से पूर्व अपने हाथों को एवं प्रयोग से पूर्व सब्जियों को साफ पानी से अच्छी तरह धो लेना चाहिए। अच्छी तरह से पका हुआ भोजन ही खाएं, अधपके भोजन में अनेक जीवाणु मौजूद रहते हैं। जहाँ तक हो सके उतना ही खाना तैयार करना चाहिए जितना आवश्यक हों, जिससे बासी भोजन की समस्या न आए। परन्तु यदि खाना बच ही जाता है तो उसे या तो 60 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर ओवन में अथवा फ्रिज में काफी कम तापक्रम (2-5 डिग्री सेल्सियस) पर रखना चाहिए। इससे भोजन विषाक्तता का खतरा काफी कम हो जाता है। लेकिन उपयोग से पूर्व इस खाने को कम से कम 15 मिनट तक अच्छी तरह गर्म कर लेना चाहिए। इससे उसमें उपस्थित जीवाणु एवं फंफूदियाँ नष्ट हो जाती हैं। ☐☐☐

खेल और दुर्घटनाएं

सुभाष लखेड़ा
सम्प्रेषण, डी–753, सरस्वती विहार दिल्ली–110034

सम्भवतया किसी खिलाड़ी की शारीरिक सुरक्षा में कोचिंग तथा प्रतियोगिता से पूर्व किया गया अभ्यास महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि कोचिंग का स्तर ठीक नहीं है और खिलाड़ी पूर्ण रूप से प्रतियोगिता में पहुँचने के लिये उचित अभ्यास नहीं कर पाया है तो ऐसे खिलाड़ी को खेल के दौरान क्षति पहुँचने की अधिक सम्भावनायें रहती हैं।

इस तथ्य से हम सभी परिचित हैं कि विभिन्न खेलों में शरीर के क्षतिग्रस्त होने की संभावनाएं भी अलग–अलग है। फुटबाल तथा ऐसे सभी खेल जिनमें अक्सर खिलाड़ियों के शरीर आपस में एक दूसरे को स्पर्श करते हैं चोट पहुँचने की दृष्टि से अव्वल तथा खतरनाक माने जा सकते हैं। गोल्फ तथा निशानेबाजी के खेल में खिलाड़ी को सीधी शारीरिक चोट लगने की संभावनाएं काफी कम हैं। वैसे कुछ ऐसे खेल भी हैं जिनमें खिलाड़ी खेल के दौरान एक दूसरे को कतई स्पर्श नहीं करते किन्तु इसके बावजूद इन खेलों से जुड़े खिलाड़ियों को शारीरिक चोट पहुँचने की संभावनाएं काफी अधिक है। उदाहरणार्थ टेनिस और बैडमिंटन के खेलों में खिलाड़ियों के शरीर पेशियों और संधियों के दबाव, तनाव, ऐठन और खेल का बोझ निरन्तर झेलना पड़ता है। इन सभी से यद्यपि किसी खिलाड़ी को सीधे कोई शारीरिक चोट नहीं लगती हैं, किन्तु इनकी वजह से शरीर पर पहुँचने वाले मंद आघातों की निरंतरता के कारण पड़ने वाला प्रभाव उसे श्लेष पुटि शोथ (बरसाइटिस), कंडरा शोथ का घर बना सकता है।

किसी खिलाड़ी के दुर्घटनाग्रस्त हाने की संभावनाओं का उसकी शारीरिक बनावट से भी संबंध होता है। यदि उसके अस्थिपंजर में खेल के दौरान पड़ने वाले किसी भी दबाव या तनाव को बर्दाश्त करने की उच्चतम क्षमता नहीं है तो अस्थि भंग की संभावनाएँ बढ़ जाती है। अस्थियों के निर्माण एवं विकास में व्यायाम संबंधित दबावों के साथ–साथ पोषण, आनुवंशिकता, जीवरासायनिक प्रभावों तथा वाहिकाजन्य कारणों का भी योगदान रहता है। खैर यह एक सर्व विदित एवं स्थापित नियम है कि अस्थियों की शक्ति उपयोग से बढ़ती है। अच्छी तरह से अभ्यस्त खिलाड़ियों की अस्थियाँ स्वस्थ और मजबूत होती हैं तो दबावों, ऐंठनों तथा आघातों को काफी हद तक बर्दाश्त कर सकती हैं।

दरअसल, हमारी पेशियाँ केवल बचाव तथा गति की ही माध्यम नहीं है अपितु वे हमारे शरीर को बाहरी वस्तुओं पर बल आरोपित करने की योग्यता भी देती हैं। ऐसे सभी खेलों में जहाँ खिलाड़ी एक दूसरे के शारीरिक संपर्क में आते हैं, उनकी पेशी समूहों की शक्ति प्रतिबल, पैदा करके शरीर का बचाव करती है। अतः खेल प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा खेल क्रियाओं के लिए तथा उस खेल से जुड़े संभावित आघातों को झेलने अथवा उन्हें निष्क्रिय करने के लिए पर्याप्त शारीरिक शक्ति का विकास करना आवश्यक हैप्रशिक्षण से पेशियों के विकास के साथ साथ कंडराओं तथा स्नायुओं की शक्ति में वृद्धि होती हैं। फलस्वरूप पूर्ण विकसित अस्थि संधियां खेल प्रदर्शन तथा शारीरिक बचाव, दोनों ही दृष्टि से और अधिक प्रभावी भूमिकाएँ निभाती हैं।

यदि खेल प्रशिक्षण से पूर्व ही यह ज्ञात हो जाए कि खिलाड़ी उस खेल विशेष के लिए उपयुक्त नहीं है और सुध ार की भी कोई गुंजाइश न हो तो उस खिलाड़ी को उस खेल में भाग न लेने की सलाह देना आवश्यक है। हाँ, यदि ऐसा लगता है कि उस खिलाड़ी के तौर तरीकों में खेल दुर्घटनाओं

से बचाव संबंधी सुधार संभावी हैं तो उसके लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान वे सभी कदम उठाने चाहिए जिससे यह दुर्घटनाओं की दृष्टि से संवेदी न रहे।

दुर्भाग्य से शरीर अथवा अस्थि संधियों के लोच संबंधी तथ्यों का ठोस वर्गीकरण अभी उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में कोच अथवा खेल प्रशिक्षक को अपने सामान्य विवेक का उपयोग करते हुए निर्णय लेना चाहिए कि कौन सा बच्चा किस खेल विशेष के लिए अधिक उपयुक्त है।

वृद्धि काल के दौरान बच्चों को हाथ पैरों तथा रीढ़ की चोट लगने की संभावना रहती है। अतः यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उम्र के इस नाजुक दौर में वे किसी भी खेल को इतनी तीव्रता से न खेले जिससे उनकी विकसित हो रही अस्थियों तथा अस्थि संधियों को ऊँचे स्तर के आघातों तथा दबावों को झेलना पड़े। इस आयु में अधिक ध्यान उन बातों पर देना चाहिए जिनसे वे खेल से जुड़े मूल तथ्यों तथा बारीकियों से गहराई से परिचित हो सके।

भार प्रशिक्षण जैसे उपायों का कुशलतापूर्वक उपयोग करने से बच्चों की शारीरिक शक्ति में उनके द्वारा खेले जाने वाले खेलों के अनुरूप वृद्धि की जा सकती है। हाँ, अत्यधिक ऊँचे भार प्रशिक्षण के दबावों से बच्चों को बचाया जाना जरूरी है। दरअसल, ऊँचे भारों के कारण बच्चों की अस्थियों तथा पेशी कंदराओं के क्षतिग्रस्त होने की प्रबल संभावना रहती है। कुल मिलाकर युवा खिलाड़ियों को उचित अभ्यास द्वारा सम्भावित शारीरिक क्षतियों से बचाया जा सकता है।

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक– लेसर और उसके उपयोग

लेखक– **डॉ० श्रवण कुमार तिवारी तथा प्रो० देवेन्द्र कुमार राय**

प्रकाशक--वैवस्वत प्रकाशन बी 2/228, भदैनी, वाराणसी– 221001

(प्रथम संस्करण 1997)

'लेसर और उसके उपयोग' के लेखक द्वय डा० श्रवण कुमार तिवारी तथा प्रो० देवेन्द्र कुमार राय, ने इस पुस्तक में शताब्दी के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्वेषण को सहज और रोचक भाषा में प्रस्तुत किया है। पुस्तक की विशेषता विषय वस्तु की बारीकियों को ऐसी शैली में व्यक्त करना है, जो उन पाठकों के लिए भी सुगम हो जो गणित और भौतिकी के जटिल तथ्यों से पूरी तरह से परिचित न हों।

विद्वान लेखकों ने लेसर के सिद्धान्त से लेकर उसके अन्वेषण, निर्माण, विकास तथा उनके वैविध्य की विशेषताओं पर समुचित प्रकाश डाला है। आज लेसर का उपयोग अनेक क्षेत्रों में होता है। वे शुद्ध वैज्ञानिक शोध से लेकर तकनीकी तथा मानव के उपयोग में आने वाले विभिन्न कार्य कलापों में काम आते हैं; यथा स्वास्थ्य, संचार साधन, पर्यावरण मोनीटरीकरण, इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों के निर्माण, आइसोटोप पृथक्करण, नाभिकीय ऊर्जा, देश की सुरक्षा आदि। पुस्तक में इन सबकी विवेचना की गई है।

पुस्तक के प्रारम्भ में दिया गया विस्तृत अनुक्रम (विषय सूची) एक सीमा तक अनुक्रमणी (इण्डेक्स) की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। साथ ही पाठकों की विषय को विभिन्न दृष्टि कोणों से समझने की जिज्ञासा की दृष्टि से पुस्तक के अन्त में अन्य पठनीय पुस्तकों की सूची देना एक अतिरिक्त विशेषता है। इस रचना की विद्या और विषय का प्रस्तुतीकरण जहाँ सामान्य पाठकों को लेसर से परिचित कराने में सफल होगा वहीं उन विशेषज्ञों के लिए उपयोगी जो हिन्दी के माध्यम से विषय को समझ और आत्मसात करके अपने ज्ञान को एक सुदृढ़–भौतिक आधार देना चाहेंगे।

प्रो० देवेन्द्र शर्मा
पूर्व कुलपति
सी 1038 इन्दिरा नगर, लखनऊ– 226016

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हजार रुपयों का पुरस्कार

- ❑ लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- ❑ केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- ❑ लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता हैं।
- ❑ लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- ❑ इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- ❑ लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- ❑ विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- ❑ वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च 1999 है।
- ❑ पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार

'विज्ञान' में प्रकाशित रचनाओं में से वर्ष की सर्वश्रेष्ठ तीन रचनाओं को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार तथा प्रमाण-पत्र प्रदान किये जाते हैं।

लेख निम्न पते पर भेजें :

डॉ० दिनेश मणि, डी०एस०-सी०

संपादक **विज्ञान**

विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 400.00 रु०, आधा पृष्ठ 200.00 रु०, चौथाई पृष्ठ 100.00 रु०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 1000.00 रु०

भेजने का पता:

डॉ० दिनेश मणि, डी०एस०-सी०
संपादक **विज्ञान**
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थन, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 84 अंक 8

नवम्बर, 1998

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

एक प्रति : 5 रु०

प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी०एस-सी०

मुद्रक
उपेन्द्र त्रिपाठी
शाकुन्तल ऑफसेट, इलाहाबाद

सम्पर्क
विज्ञान परिषद प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

इस अंक में

1. सम्पादकीय — 1.
2. हिन्दी की विज्ञान विषयक पुस्तकें (डॉ० शिवगोपाल मिश्र) — 2- 4
3. प्रो० हरीशचन्द्रः एक ख्यातिलब्ध गणितज्ञ (प्रो० राम चरण मेहरोत्रा) — 5 - 8
4. इनसे सीखें मिलजुल कर रहना (सुश्री रूफिया) — 9
5. सागर तले छिपा रहस्य (विनय राणा) — 10 - 12
6. गंध के जरिये भी शरीर में घुसते हैं विषाणु (राजेन्द्र कुमार राय) — 13 - 15
7. रहस्यमय नहीं रही अब आकाशगंगा की कौंध (डॉ० गणेश कुमार पाठक) — 16
8. कम्प्यूटरः कुछ नवीनतम जानकारियां (इरफान ह्यूमन) — 17 - 18
9. खेल की दुनिया में चोट (राजेन्द्र कुमार राय) — 19 - 20
10. फलों, सब्जियों संरक्षण की माप विधि (सोम दत्त) — 21 - 22
11. छुट्टी मनाने के लिए स्वस्थ रहना जरूरी (दीप्ति भटनागर) — 23 - 24
12. हिन्दी की सामर्थ्य और उसका भविष्य (रामचरण मेहरोत्रा) — 25 - 28
13. हिन्दी सेवी रसायनज्ञ (डॉ० दिनेश मणि) — 29
14. पुस्तक समीक्षा (तुरशन पाल पाठक) — 30 - 31
15. परिषद की वाराणसी शाखा से (डॉ० श्रवण कुमार तिवारी) — 32

सम्पादकीय

जब बच्चे घर से बाहर निकलते हैं तो परिवार के परिवेश के अतिरिक्त बहुत सी नई–नई चीजें देखते हैं, जो उनके घर–परिवार में नहीं होती। ऐसी सभी वस्तुओं, घटनाओं अथवा क्रियाओं के बारे में बच्चों का जिज्ञासु होना भी स्वाभाविक है। बच्चों को माँ–बाप से अपने प्रश्नों के जो उत्तर मिलते है उनसे अनेक बार उनकी जिज्ञासा शान्त नहीं हो पाती। इस स्थिति में वे अपने निकट सम्बन्धियों, परिचितों अथवा जहाँ से उन्हें सही उत्तर की आशा होती है अपने ज्ञान की प्यास बुझाने का प्रयास अवश्य करते हैं। यदि यहाँ भी उन्हें समाधान नहीं मिलता तो बच्चे घर और बाहरी वातावरण के बाद स्कूल में अपने अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तर खोजते हैं। थोड़ा पढ़ना–लिखना आने पर वे ऐसी पुस्तकें अथवा पत्रिकायें पढ़ना चाहते हैं जिससे उन्हें आनन्द मिले और साथ ही जिनसे उन्हें नई जानकारी भी हो सके।

यह प्रसन्नता की बात है कि केन्द्र सरकार ने छात्रों में विज्ञान के प्रति जिज्ञासा और रुचि बढ़ाने के उद्देश्य से किशोर वैज्ञानिक प्रोत्साहन योजना शुरु की है। इस नई योजना के अन्तर्गत सेकंडरी से कालेज स्तर तक के विज्ञान के छात्रों में छिपी प्रतिभा को उभारने के प्रयास किये जायेगें। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा मानव संसाधन विकास मन्त्री डॉ० मुरली मनोहर जोशी के अनुसार वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एस.आई.आर.) के तत्वावधान में शुरु की जा रही इस योजना के अन्तर्गत देश के हर राज्य से विज्ञान विषय में 90 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने वाले 50 छात्रों का चयन किया जायेगा। इन छात्रों को छुट्टियों के दौरान अपनी इच्छानुसार किसी एक परियोजना पर कार्य करने के लिये देश में सी.एस.आई.आर. की 40 से अधिक प्रयोगशालाओं में सभी आवश्यक सुविधायें उपलब्ध कराई जायेगी। इन छात्रों को स्नातक स्तर तक की परीक्षा पूरी करने तक तीन वर्ष के लिये यह सुविधा दी जायेगी। इस दौरान ऐसे छात्रों को प्रति सप्ताह पाँच सौ रूपये दिये जायेंगे। इसके अलावा सी.एस.आई.आर. उनके अन्य सम्बन्धित व्यय भी वहन करेगा। इन छात्रों को सी.एस.आई.आर. स्टूडेण्ट एसोसियेट कहा जायेगा।

निःसन्देह, यह एक सराहनीय निर्णय कहा जायेगा लेकिन इसके साथ ही हमें अपनी व्यवस्था सुधारनी होगी और नीतियों का क्रियान्वयन इस तरह से करना होगा कि हमें अपने उद्देश्यों के अनुरूप परिणाम प्राप्त हों। योजनाएं तो अनगिनत बनती हैं किन्तु व्यवस्था की खामियों की वजह से हमें आशानुरूप सफलता नहीं मिल पाती है।

आइये, संकल्प ले कि हम किसी किशोर/युवा वैज्ञानिक का हश्र देव ज्योति बंद्योपाध्याय जैसा नहीं होने देंगे और देव ज्योति बंद्योपाध्याय को अविलम्ब प्रशासन की उपेक्षा और अपराधियों के आंतक से बचायेंगे। तभी 'जय विज्ञान' का नारा सार्थक होगा

सहज साँस चलने दो,
शब्द–शब्द खिलने दो।
लय, गति के अनुक्रम से,
गंध को बिखरने दो।

दिनेश मणि

(डॉ० दिनेश मणि)

हिन्दी की विज्ञान विषयक पुस्तकें

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

कतिपय स्फुट निर्देशों से पता चलता है कि 1900 ई. पूर्व हिन्दी में विज्ञान विषयक पुस्तकें लिखी तो जा रहीं थीं और प्रकाशित भी हो रही थीं किन्तु उनकी भाषा कैसी थी, उनमें कितना ज्ञान भरा था और वे किस पाठक वर्ग के लिये रची जा रही थी इन सबकी प्रामाणिक जानकारी मिलती है प्रस्तुत आलेख से।

पुस्तकें ज्ञान की पिटारी होती है। वे अति प्राचीन काल से मिट्टी की पट्टियों, भोज–पत्रों, ताम्रपत्रों, चमड़े, कागज आदि पर लिखी जाती रही है और बड़े–बड़े पुस्तकालयों में उन्हें संग्रह किया जाता रहा है। उनकी रचना देश काल के अनुसार विभिन्न भाषाओं में होती रही है। हमारे देश में खड़ी बोली (हिन्दी) का विकास उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में होने लगा था। पहले जो धार्मिक तथा साहित्यिक पुस्तकें हस्तलिखित प्रतियों के रूप में उपलब्ध थीं वे ब्रिटिश काल में छापाखाना खुलने से मुद्रित रूप में प्रकाशित होने लगी। मजे की बात यह है कि विज्ञान विषयक पुस्तकें भी तभी से छपने लगी किन्तु 1900 ई. के पूर्व कितनी पुस्तकें छपी इसकी कोई प्रामणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। कतिपय स्फुट निर्देशों से पता चलता है कि हिन्दी में विज्ञान विषयक पुस्तकें लिखी तो जा रही थी और प्रकाशित भी हो रही थी किन्तु उनकी भाषा कैसी थी और उनमें कितना ज्ञान भरा था और वे किस पाठक वर्ग के लिए रची जा रही थी। यह ठीक से ज्ञात नहीं हो पाया स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विज्ञान विषयक पुस्तकों की रचना तेजी से हुई पर 1900 से 1947 ई. (चाहें तो 1950 को निर्णायक तिथि मान लें) के बीच की अवधि में रची गई पुस्तकों की संख्या काफी अधिक है।

हमारे देश में पुस्तकालयों की स्थिति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। उनमें न तो विषयवार पुस्तक सूचियाँ मिलती हैं न पुस्तकालय प्रभारी किसी पुस्तक विशेष की उपलब्धता के बारे में सही सूचना दे पाते हैं। हिन्दी में विज्ञान की जो पुस्तकें हैं भी, उनके प्रति उदासीनता पाई जाती है। किसी भी शोधार्थी या जिज्ञासु का विज्ञान की पुस्तकों की पूरी सूची बना पाना लोहे के चने चबाना है।

प्राचीन पुस्तकों के नाम जानने का सर्वोत्तम साधन कुछ उल्लेख है। पं० श्री नारायण चतुर्वेदी ने "आधुनिक हिन्दी का आदि काल" में 1857–1908 के बीच 200 पुस्तकों की उपलब्धि का उल्लेख किया है। उन्होंने 34 पुस्तकों की सूची भी दी है किन्तु सबसे प्रामाणिक विवरण डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित "हिन्दी पुस्तक साहित्य" (1867-1942) में मिलता है इसमें विज्ञान विषयक 269 पुस्तकों के नाम मिलते हैं। डॉ० सत्य प्रकाश ने भी "विज्ञान" के रजत जयन्ती अंक में विज्ञान पुस्तकों की जो सूची दी है उसमें 1908 ई. तक 110 पुस्तकों की सूचना मिलती है। ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलता है कि प्रारम्भ में अन्य भाषाओं की पुस्तकों के अनुवाद हुये। उदाहरणार्थ

पं० श्री नारायण चतुर्वेदी ने एडवर्ड क्लाड की अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद "प्राणि शास्त्र" नाम से 1882 में विनायक राव द्वारा किये जाने का उल्लेख किया है। डॉ० माता प्रसाद द्वारा सम्पादित पुस्तक में 15 अनूदित ग्रन्थों के नाम सम्मिलित हैं जिनमे से आयुर्वेद के 6 ज्योतिष के 2 कृषि के 2, प्राणि शास्त्र के 2, प्रौद्योगिकी का एक तथा सामान्य विज्ञान का एक ग्रन्थ है। आयुर्वेद का सबसे पुराना अनुवाद 1887 में तथा कृषि का 1883 में हुआ।

हिन्दी में मौलिक लेखन पाठ्य पुस्तकों के रूप मे ही शुरु हुआ जिनमें गणित, ज्योतिष, रसायन, भौतिकी, कृषि आदि की पुस्तकें मुख्य है। इनकी शब्दावली के बारे में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता। इनमें शास्त्रीय ज्ञान पर बल था। 1900 के पूर्व लोकप्रिय पुस्तकें नहीं ही लिखी गई। अंकगणित या ज्योतिष की सबसे प्राचीन कृति 1840 की मिलती है रसायन शास्त्र की 1847 की, कृषि की 1856 की, भौतिकी की 1862 की आयुर्वेद की 1882 की, वनस्पति शास्त्र की 1890 की और प्राप्ति विज्ञान की 1882 की। इस तरह 1900 के पूर्व हिन्दी में विज्ञान की 100 पुस्तकें की उपलब्ध नहीं थी किन्तु सम्प्रति उनकी संख्या 7000 है।

1900 के पूर्व की उपलब्ध कुछ प्रकाशित पुस्तकें

1. पदार्थ विज्ञान सागर	कलकत्ता बुकं सोसाइटी	1846
2. कृषि कौमुदी	लाल प्रताप सिंह,बम्बई	1856
3. सरल विज्ञान विटप (अनुवाद)	बलदेवराय झा, आरा	1860
4. रसायन संग्रह	विश्वम्भर नाथ	1868
5. पदार्थ विज्ञान	महेन्द्र नाथ भट्टाचार्य	1873
6. सरल त्रिकोणमिति	लक्ष्मी शंकर मिश्र	1873
7. व्यक्तगणित	बापूदेव शास्त्री	1875
8. पदार्थ विज्ञान	लक्ष्मी शंकर मिश्र	1875
9. दौतबिजली	मोहन लाल	1875
10. क्षेत्र संहिता	प्रताप सिंह	1880
11.खेती बारी	राधारमण	1880
12.होमियोपैथीसार	केदारनाथ चटर्जी	1882
13.प्राणि शास्त्र (अनुवाद)	विनायक राव	1882
14.वैद्यक रत्न	जनार्दन भट्ट	1882
15.निर्माण विद्या	नवीन चन्द्र राय	1882
16.जलस्थिति और जलगति	नवीन चन्द्र राय	1882
17.स्थितितत्व और गतितत्व	नवीन चन्द्र राय	1882
18.वैज्ञानिक खेती	हेमन्त कुमारी देवी	1884
19. शिल्पचमत्कार चिन्तामणि	चन्द्रप्रभा मिश्रा	1884
20.क्षेत्रमापप्रक्रिया	जकाउल्ला मौलवी	1888
21.गति विज्ञान	लक्ष्मीशंकर मिश्र	1885
22.चलनकलन	सुधाकर द्विवेदी	1886
23.चलनराशिकलन	सुधाकर द्विवेदी	1886
24.शिल्प संग्रह	रामचरण पाठक	1886
25.मैटीरिया मेडिका	मुकुन्दलाल	1886
26.प्रश्नोत्तर जड़त्वविज्ञान	मथुरादास	1887
27.मसिदर्पण	राम प्रताप शर्मा	1890
28.उद्यान मालिनी	नन्दलाल शर्मा	1890
29.पशुचिकित्सा	शिवचन्द्र मिश्र	1895
30.कीमिया	बलदेव प्रसाद मिश्र	1899
31.ढोरों का दरवाजा	लक्ष्मण सिंह	1900
32.कृषि विद्या	गंगाशंकर नागर पंचौली	1900

1874 में रिबनड्राप की पुस्तक का अनुवाद उर्दू हिन्दी मिश्रित भाषा में इशारात नख्लबन्दी शीर्षक से लाहौर के हेडमास्टर ठाकुर दास द्वारा हुआ।

हमें एक अन्य स्रोत से भी कतिपय प्राचीन हिन्दी की विज्ञान पुस्तकों की जानकारी प्राप्त होती है। गासी द तासी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में कई अनुदित तथा मौखिक पाठ्य पुस्तकों के नाम दिये—

1. अर्थमेटिक	1807
2. लहरों का बयान	1826
3. भूगोल तथा ज्योतिष	1825
4. रिसालाः मोती की जौ	1835
निकालने का	1836
5. माप प्रबन्धः रिसाला पैमाइश का	1854
6. क्षेत्र प्रकाशः क्षेत्र चन्द्रिका	1854
7. गणित प्रकाश	1855
8. गणित के सिद्धान्त	1854
9. दशमलव दीपिका	1854
10.खगोल विज्ञान दीपिका	1857

स्पष्ट है कि 19वीं सदी के प्रारम्भ से ही छात्रों के लिये पाठ्य पुस्तकें तथा उद्योग, चिकित्सा से सम्बद्ध पुस्तकें लिखने के प्रयास जारी थे। उनकी भाषा, शब्दावली तथा प्रामाणिकता के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि हिन्दी में लेखन की शुरुआत हो चुकी थी। डगमगे पग से चलकर हिन्दी अब काफी आत्म निर्भर बन चुकी है।

❑❑❑

कैसे बने खाना बनाने के नॉन स्टिक बर्तन

अरुण कांत जिंदल

पाली टेट्राफ्लुओरोएथिलीन (पी.टी.एफ.ई.) का आविष्कार 1938 में अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ० राय प्लंकेट ने किया था। यह एक अच्छा विद्युत एवं ताप रोधक तो है ही साथ ही यह दुनिया का सबसे अधिक फिसलने वाला पदार्थ भी है। 1948 में टेफ्लान नाम से पी.टी.एफ.ई. को पेटेंट करा लिया गया।

एक बार मार्क ग्रेगायर नाम के एक फ्रांसीसी मछेरे ने यह सोचा कि अगर मै टेफ्लान को अपने मछली पकड़ने की डोर में लगा लूं तो शायद उसमें गांठें नहीं पड़ेगी और बिल्कुल हुआ भी वैसा ही, बहुत अधिक चिकना होने के कारण उसके कांटे की डोर आपस में उलझने से बच गई। ग्रेगायर की पत्नी ने कुछ सोचकर टेफ्लान को अपनी कढ़ाई में भी पोत लिया और जब उसमें कोई भी चीज तली गई तो ग्रेगायर दंपत्ति यह देखकर आश्चर्यकित हो गए कि उसमें कोई भी चीज चिपकती नहीं थी। तब मार्क ग्रेगायर ने टेफ्लान पुते बर्तन बेचने का व्यवसाय शुरू कर डाला, बाद में यही बर्तन नान स्टिक बर्तनों के नाम से मशहूर हुए जो आज घर—घर में इस्तेमाल किये जाते हैं।

(अभियान)

संस्मरण

प्रो० हरीशचन्द्र; एक ख्यातिलब्ध गणितज्ञ

प्रो० राम चरण मेहरोत्रा

पूर्व कुलपति एवं एमेरिटस प्रोफेसर,रसायन विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर

प्रो० हरीशचन्द्र एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त गणितज्ञ थे किन्तु दुर्भाग्यवश उनके बारे में कम लोगों को ही कुछ जानकारी है। यदि भौतिक एवं रसायन शास्त्र की भाँति गणित के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया जाता तो प्रो. हरीशचन्द्र की गिनती अमरीका में बसे भारतीय भौतिक शास्त्री प्रो० एस. चन्द्रशेखर और रसायनज्ञ डॉ० हरगोविन्द खुराना के साथ होती। प्रो० हरीशचन्द्र के जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी दी गई है उन्हीं के एक सहपाठी द्वारा लिखित इस संस्मरणात्मक आलेख में।

संसार में इस शताब्दी के महानतम गणितज्ञों में अग्रणी माने जाने वाले प्रोफेसर हरीशचन्द्र का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर में 11 अक्टूबर 1923 को हुआ था। अभाग्यवश उनका स्वर्गवास केवल 60 वर्ष की उम्र में 16 अक्टूबर 1983 को अमरीका के प्रिसंटन नगर मे हो गया था परन्तु अपने इस छोटे से जीवन काल ही में उन्होंने वैज्ञानिक जगत में अद्वितीय ख्याति अर्जित कर ली थी। यदि भौतिक एवं रसायन शास्त्र की भाँति गणित के विषय में जगत प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार प्रदान किया जाता तो हरीशचन्द्र की भी गिनती अमरीका में बसे भारतीय भौतिक शास्त्री प्रो० एस. चन्द्रशेखर और रसायनज्ञ हरगोविन्द खुराना के साथ होती, परन्तु शायद इसी कारण हमारे देशवासियों को उसी स्तर के गणितज्ञ हरीशचन्द्रके बारे में बहुत कम जानकारी है। सन् 1998 प्रो० हरीशचन्द्र के जीवन का प्लैटिनम जुबली वर्ष होता, इसीलिए मैं इस समय उनके बारे में एक छोटा सा लेख लिख रहा हूँ। व्यक्तिगत रूप में नवम्बर 1936 में क्राइस्ट चर्च स्कूल, कानपुर में दसवीं कक्षा के सह–विद्यार्थी के रूप में उनके सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, खेल–कूद के क्षेत्र में अग्रणी परन्तु पारम्परिक शिक्षा में मध्यम श्रेणी के स्कूल में इस मेधावी बालक के आगमन ने ही प्रतिस्पर्द्धा का अनूठा वातावरण उत्पन्न कर दिया था, जिसके कारण उसके सहपाठी भी इन दिशाओं में इतनी प्रगति कर सके।

हरीशचन्द्र के पिता श्री चन्द्र किशोर मेहरोत्रा उत्तर प्रदेश के सिंचाई विभाग में कार्यरत थे और उनका स्थानान्तरण होता रहता था। फलस्वरूप हरीश की सातवीं से नवीं कक्षा की शिक्षा ओरई नामक एक कस्बे में हुई और दसवीं कक्षा के मध्य में वे क्राइस्ट चर्च स्कूल, कानपुर में भरती हुए। फिर इण्टरमीडिएट की शिक्षा गणित–शिक्षक आचार्य हीरालाल खन्ना के सान्निध्य में बी.एन.एस.डी. कालेज कानपुर में हुई। सभी सार्वजनिक परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी और योग्यता सूची में उच्च–स्थान प्राप्त होना तो हरीश ऐसे मेधावी छात्र के लिए अतिसाधारण बात थी, परन्तु उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा का निखार सन 1939 से आरम्भ हुआ जब उन्होंने देश के तत्कालीन शिक्षा संस्थाओं में अग्रणी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। यद्यपि सन् 1939 तक प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री प्रो० मेघनाद साहा तो इलाहाबाद से कलकत्ता चले गए थे, तथापि अपनी ख्याति के बल पर विश्वविद्यालय पहले तो नोबेल पुरस्कार विजेता श्राडिंञ्जर को आकर्षित कर सका और युद्ध के कारण उनके न आने पर नोबेल पुस्कार विजेता रमन के सहयोगी प्रो० के.एस. कृष्णन को भौतिक शास्त्र के अध्यक्ष

के रूप में आंमत्रित करने में सफल हो गया। मेधावी गुणों के पारखी, मृदु भाव कृष्णन ने आरम्भ से ही हरीश को बहुत प्रोत्साहित किया और उन्हें कैम्ब्रिज के प्रसिद्ध भौतिक–शास्त्र नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो० डिरॉक की पुस्तक "प्रिंसिपिल्स ऑफ क्वॉटम मेकेनिक्स" पढ़ने को दी। इस पुस्तक ने स्वभावतः ही हरीश को अत्यन्त प्रभावित किया और उन्हें एम.एस–सी अध्ययन के लिये भौतिक शास्त्र चुनने के लिये प्रेरित किया। एम.एस–सी. अध्ययन के दो वर्षों में तो वे अपने विभागाध्यक्ष सरल स्वभाव तथा संस्कृति प्रेमी प्रो० कृष्णन के बहुत ही प्रिय पात्र हो गये। उस समय की एक घटना याद आती है सन् 1943 में प्रो० रमन एम.एस–सी. की प्रायोगिक परीक्षा लेने इलाहाबाद आये और वे भी हरीश से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे 200/200 अंक दे दिए। इसकी खबर मिलने पर अन्य विषयों के एम.एस.सी. विद्यार्थियों जिनमें मैं भी था, बहुत एतराज किया क्योंकि स्तर ऊँचा रखने के लिए एम. एस–सी. प्रायोगिक परीक्षा में 200 में 150 से अधिक अंक देने की परम्परा ही विश्वविद्यालय में नहीं थी और 200 में 200 अंक पाने वाले विद्यार्थी को विज्ञान संकाय का स्वर्ण पदक प्राप्त होना बहुत सरल हो सकता था। आज हँसी आती है अपनी मूर्खता पर कि इन शंकाओं को व्यक्त करने वालों में मैं भी था जिसने विगत सब सार्वजनिक परीक्षाओं में हरीश से ऊँचा स्थान प्राप्त किया था और हम दोनों के सहपाठी गणित के विद्यार्थी स्वर्गीय सुनील कुमार राय भी थे जिन्होंने इण्टरमीडिएट के स्तर पर ही आइन्स्टाइन के सापेक्षवाद का अध्ययन करके सबको चकित कर दिया था।

एम.एस–सी. उत्तीर्ण करने के बाद सन् 1943 में हरीशचन्द्र प्रो० कृष्णन की ही सिफारिश पर शोध कार्य के लिए डॉ० होमी जे. भाभा के पास बँगलौर चले गये जो उस समय इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ सांइस में रीडर थे। वहाँ सन् 1944 ही में भाभा जी के साथ उनका प्रथम शोध–निबन्ध "ऑन दि थ्योरी ऑफ प्वान्ट पार्टकिल्स" विषय पर प्रसिद्ध पंत्रिका "प्रोसीडिंग्स ऑफ रॉयल सोसाइटी" में प्रकाशित हुआ। सन् 1944 से 1946 में हरीश ने आठ शोध पत्र प्रकाशित किए जिनमें से केवल दो ही डॉ० भाभा के साथ थे। सच तो यह है हरीश को डॉ० भाभा अपने इलाहाबाद के गुरु कृष्णन की तरह नहीं भाए, जिसका कारण शायद भाभा का तड़क–भड़क से रहने का ढंग था। कुछ भी हो हरीश के शोध–निबनधों ने कैम्ब्रिज के सर्वोच्च प्रतिष्ठा वाले गणितीय–भौतिक शास्त्री "डिरॉक" को बहुत प्रभावित किया, फलस्वरूप सन् 1945 ही मे ही हरीश डिरॉक के साथ शोध के लिए कैम्ब्रिज पहुँच गए। डिरॉक उसी वर्ष "लॉरेञ्ज समूह के अति–सूक्ष्म विवेचन" की ओर आकर्षित हुए थे और यही विषय हरीश की 1946 की डॉक्टरेट थीसिस का केन्द्र–बिन्दु हो गया। सन् 1947 में ही डिरॉक अमरीका में प्रिंसटन की "इंस्टीट्यूट ऑफ ऐडवान्सड स्टडीज" में प्रोफेसर पद पर चले गए जो आइन्सटाइन ऐसे मूर्धन्य वैज्ञानिकों के सम्पर्क के कारण जगत प्रसिद्ध हो चुका था, सौभाग्य से हरीश को भी अपने सहयोगी के रूप मे डिरॉक ने नियुक्त कर लिया। लगभग इसी समय से हरीश का रुझान भौतिक शास्त्र से अधिक गणित की ओर होने लगा था। हरीश को ऐसा लग रहा था कि अपनी कैम्ब्रिज थीसिस में भी कुछ निष्कर्षों को सिद्ध करने के प्रयास में पूर्णतया सफल नहीं हो पाये थे। जब हरीश ने अपने संदेह डिरॉक को बतलाए, तो उनकी भौतिक शास्त्रियों वाली प्रतिक्रिया थी कि "मुझे सिद्धियों से अधिक रुचि इस ओर है कि प्रकृति क्या करती है"। हरीश चन्द्र कहा करते थे कि डिरॉक के इस वक्तव्य ने मेरे इस निजी संदेह की पुष्टि कर दी कि मुझमें भौतिक आभास की क्षमता कुछ कम है और इसीलिए तभी से मेरी रुचि गणित की ओर बढ़ती चली गयी।

यद्यपि अपनी कैम्ब्रिज की डाक्टरेट थीसिस में हरीश ने अपने प्रोफेसर डिरॉक के विचारों से थोड़ी असहमति व्यक्त की थी, तथापि डिरॉक ने भी हरीश को शुद्ध गणित की ओर जाने के लिए प्रोत्साहित ही किया था। सौभाग्यवश लगभग उन्हीं दिनों गणित की एक नई शोध–दिशा "ली–ग्रुप्स" पर शेवाली की नवीन पुस्तक प्रकाशित हो

चुकी थी और हरीश जी पूरे मनोयोग से इस नवीनतम विषय के अध्ययन में लग गए। उनके इन प्रयासों में उस समय प्रिसंटन में उपस्थित गणितज्ञों हरमान,वेल, शेवाली और उनके हमउम्र जार्ज डी. मैटो से बहुत प्रोत्साहन मिला, मैटो ने तो लगभग उसी समय ली–बीजगणित पर अपनी थीसिस ही लिखी थी। अपने स्वभाव के अनुकूल ही हरीश ने इस जटिल विषय का गूढ़ता से अध्ययन किया और शीघ्र ही उन्होंने इस दिशा मे नवीनतम ऐजे की थ्योरेम की बिल्कुल नए ढंग विस्तृति सिद्धि पर "एनाल्स ऑफ मैथ मैटिक्स" नामक प्रसिद्ध पत्रिका में एक शोध–लेख प्रकाशित किया, फिर तो इस जटिल विषय के विभिन्न आयामों पर घोर अध्ययन करके वह इतने पारंगत हो गए कि 1948 ही में इसी विषय पर 5 अन्य अत्यन्त गूढ़ शोध–लेख प्रकाशित किए और इस प्रकार कुछ महीनों के प्रयास से ही वे इस विषय के अग्रणी विद्वानों में गिने जाने लगे। तत्पश्चात् 1951 से 1976 के बीच प्रकाशित अपने लगभग 70 शोध–प्रबन्धों में प्रोफेसर हरीशचन्द्र ने इस विषय की कायापलट ही कर दी और संसार के सर्वोच्च गणितज्ञों में वे अग्रणी माने जाने लगे। इस सरल लेख में इस जटिल विषय का अधिक वर्णन न करके विशेषज्ञ पाठकों का ध्यान रॉयल सोसाइटी के बायोग्रॉफिकल मेम्वार्स में 1985 में 197 से 225 पृष्ठ पर आर.पी. लैप लैण्ड्स द्वारा लिखी श्रद्धाञ्जलि की ओर आकर्षित करुँगा जिनमें विद्वान लेखक ने इन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। उपर्युक्त लेख में हरीश की गणित की अनूठी उपलब्धियों के अतिरिक्त उस काल के प्रसिद्ध गणितज्ञों बोरेल, क्लोजेल, हॉवे, ली, ल्यूलिंग, सेगल, वार्दाराजन और वाइटमान एवं हरीश की धर्मपत्नी लिली–हरीशचन्द्र तथा उनकी सास श्रीमती काले से सहायता लेकर हरीशचन्द्र के व्यक्तित्व के एक सजग चित्र को भी प्रस्तुत किया है, लेख के अन्त में स्प्रिग्ङर वरलाग द्वारा 1984 में प्रकाशित प्रोफेसर हरीशचन्द्र के शोध–लेखों की सूची भी दी है। इसके अतिरिक्त "करेण्ट सांइस" के 25 मई 1998 के अंक में हरीश चन्द्र के सहयोगी हेलगासन द्वारा लिखित वर्णन में भी हरीश के कृतित्व और व्यक्तित्व की झांकी उपलब्ध है।

प्रोफेसर हरीशचन्द्र के व्यक्तित्व की सरलता का आभास इसी से मिल जाता है कि वे अपने शोध–लेख स्वयं ही लिखा करते थे। उनके लगभग सभी शोध लेखों में बिल्कुल मौलिक दिशा होते हुए भी अधिकांश अपने ही पिछले लेखों की चर्चा होती थी, परन्तु वह प्रस्तुत विषय के स्पष्टीकरण में कहीं भी कमी नहीं छोड़ते थे जिससे पाठकों को उनके प्रत्येक लेख में विषय के नवीनतम पक्ष का पूर्ण वृतान्त मिल जाता था और पाठक को अधिकतर किसी पहले प्रकाशित संदर्भ लेख या ग्रन्थ की देखने की आवश्यकता नहीं होती थी। स्वावलम्बी हरीशचन्द्र ने शायद कभी भी पी.एच.डी. के लिए शोध विद्यार्थी नहीं लिया। अपने शोध लेखन के समय भी पूर्ण तन्मयता से धीमे स्वर में गुनगुनाने का उनका स्वभाव ही बन गया था। प्रायः उनकी गुनगुनाहट को सुनकर उनके वरिष्ठ सहयोगी उनके कमरे में आ जाते थे, तो वे बड़े चाव से वर्तमान विषय की गुत्थियों को उनको समझाने में अत्यन्त प्रसन्न हो उठते थे।

कानपुर में उनका प्रारम्भिक जीवन अपने नाना श्री रामसनेही सेठ के यहाँ बीता और यहीं उनकी भारतीय गायन से सुरुचि आरम्भ हुई जिसमे बाद में पश्चिमी गायन का शौक भी जुड़ गया। लम्बे दुबले पतले शरीर में प्रायः वह बीमार रहा करते थे एक बार वे टाइफायड बुखार में पड़े थे, संयोगवश मैं उन्हें देखने उनका हाल पूछने तभी चला गया जब डाक्टर उनकी नब्ज देख रहे थे और वे डाक्टर को टाइफाइड रोग पर पिछले दो तीन दिन में पढ़ी पुस्तकों पर भाषण सा दे रहे थे। सन् 1960 से तो उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया और उनको बराबर सलाह दी गयी कि वह अपने परिश्रम में थोड़ी कमी कर दे परन्तु वे इस तरह की बातों की सदैव अनसुनी कर देते थे। सन् 1969 में उनको पहला दिल का दौरा पड़ा। संयोग से उसके कुछ दिन पहले ही मैं एक रात प्रिंसटन में उन्हीं के घर पर ठहरा था, जब मैंने भी उनको कुछ कम परिश्रम करने की सलाह दी, तो तपाक से उन्होंने मुझ से सवाल कर दिया कि क्या मैं रसायन विज्ञान में अपनी लगन को कम करके प्रसन्नचित रह सकता हूँ। उनकी चिरसंगिनी

पत्नी श्रीमती लिली ने उनकी जो तन–मन से सेवा की, वह तो अविस्मरणीय रहेगी। 1982 होते–होते उनका स्वास्थ्य बहुत ही गिर गया था। उनके परिवार के समस्त सदस्य उनका बहुत ध्यान रखते थे, यहाँ तक कि जब वह पैदल सैर को जाते थे, तो उनकी सुपुत्रियों प्रेमी (प्रमिला) और दीनी (देविका) में से एक उनके साथ अवश्य जाती थी। 16 अक्टूबर 1983 को उनके निवास–स्थान पर प्रिंसटन में होने वाली गोष्ठी के बहुत से सहयोगी खाने पर आए हुए थे। उनसे तो वह बहुत तपाक और प्रसन्न मुद्रा में बात करते रहे और जब उसके बाद टहलने निकले, तो गृहकार्यो को समेटने में व्यस्तता उनकी बेटियाँ उनके साथ नहीं जा पाई। परन्तु थोड़ी ही देर बाद उनके घर वालों को यह अत्यन्त दुखदायी समाचार मिला कि घर से कुछ दूर ही प्रोफेसर हरीशचन्द्र का मृत शरीर देखा गया है। उनकी राख का एक भाग तो प्रयाग में संगम में प्रवाहित किया गया परन्तु थोड़ी सी राख प्रिंसटन के प्रांगण में भी छितरा दी गयी थी जिसके बारे में उनके सहयोगी प्रोफेसर मास्टो लिखा है कि उनकी इस राख के कण गणितज्ञों को बराबर चिरकाल तक प्रोत्साहित करते रहेगें।

यद्यपि गणितज्ञों के जगत में प्रोफेसर हरीशचन्द्र की प्रतिष्ठा अद्वितीय थी और 1954 ही में अमेरिकन मैथमेटिकल सोसाइटी ने अपना "कोल" पुस्कार दिया था और सन् 1973 में वे रॉयल सोसाइटी के फेलो भी निर्वाचित हो गये, तथापि भारतवर्ष में उसके बाद ही 1974 में इंडियन नेशनल सांइस एकेडेमी ने उनको अपना रामानुजम् पुस्कार प्रदान किया और 1975 में अपना फेलो चुना। अपने देश के प्रति हरीशचन्द्र के ह्रदय में विशेष अनुराग था जिसके फलस्वरूप सन् 1952 में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेन्टल रिसर्च, बम्बई में आए भी थे परन्तु दुर्भाग्य है कि हम उनको स्वदेश में आकर्षित करके वापस नहीं ला पाए। जैसा ऊपर के संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रोफेसर हरीशचन्द्र तो "एकला चलो" प्रवृत्ति वाले अनूठे व्यक्ति थे जिनको अपने मष्तिष्क के अतिरिक्त किसी साधन की भी आवश्यकता नहीं थी। हमारी प्रतिष्ठा के लिए कैसे गौरव की बात होती यदि हम उनको अपने देश में ही अपना अलौकिक कार्य करने के लिए रोक पाते। प्रसन्ता की बात है कि 10 अक्टूबर 1993 को उनके 70वें जन्म दिवस पर इलाहाबाद के मेहता इंस्टीट्यूट में उनकी एक प्रतिमा तो स्थापित की गई जो दीर्घकाल तक हमारे वैज्ञानिकों को प्रोत्साहित करती हरेगी। इसी प्रतिमा–स्थापन के अवसर पर प्रो० हरीशचन्द्र के एक सहयोगी प्रोफेसर बोरेल के श्रद्धा शब्द इस क्षण भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं "प्रोफेसर हरीशचन्द्र का जीवन ही गणित की मौलिक प्रमेयों की खोज में बीता क्योंकि इन प्रमेयों के सौन्दर्य में उनका अटूट विश्वास था"।

❑❑❑

खून सोखने वाला पंप

आपरेशन के दौरान निकलने वाले खून तथा अन्य तरल पदार्थो के कारण अक्सर दुर्घटनाएं हो जाती है। इस समस्या से निपटने के लिए अमेरिका के इलियोनिस स्थित एवांस्टन विश्वविद्यालय में मैकेनिकल इंजिनियरिंग के एसोसिएट प्रोफेसर राबर्ट लियूप्टो तथा उनके छात्रों ने एक डिवाइस का विकास किया है जो आपरेशन वाले क्षेत्र से निकलने वाले खून तथा तरल पदार्थो को तुरंत सोख सकती है। उन्होंने एक छोटा सा वैक्यूम पम्प बनाया, जिसमें एक बैटरी लगी है। इसे फिर से चार्ज होने के बाद यह छः घण्टे तक काम कर सकता है। पंप के साथ एक कंटेनर लगा है, जिसकी क्षमता आधा लीटर तक द्रव पदार्थ इकट्ठा करने की है। इस डिवाइस के वे सभी हिस्से जो आपरेशन के दौरान निकलने वाले तरल पदार्थ के संपर्क में आते हैं, फिर से प्रयोग में लाये जा सकते हैं। यह डिवाइस पूरी तरह पोर्टेबल है और इसका आकार थिएटर के अलावा एम्बुलेंस के अंदर भी उपयोग में लाया जा सकता है।

(सम्प्रेषण)

बाल-विज्ञान

इनसे सीखें मिलजुल कर रहना

सुश्री रूफिया

जन विज्ञान मिशन, 67 अण्टा, शाहजहाँपुर – 242001

बच्चों के लिये विशेष रूप से लिखित प्रस्तुत आलेख में लेखिका ने बड़ी ही सरल, सरस और रोचक शैली में सहजीवन के विषय में आवश्यक जानकारी दी है।

राम, रहीम, गुरदीप और पीटर भले ही अलग–अलग धर्म–जातियों के थे लेकिन उनकी एकता पूरे स्कूल में एक मिसाल थी। वे स्कूल में जो भी चीज लाते, मध्यान्तर में आपस में बैठ कर मिल–बांट कर खा लेते। इस प्रकार का प्रेम भाव और मिल–जुल कर रहना हम लोगों में ही नहीं बल्कि जीव–जन्तुओं में भी होता है जिसे "सहजीवन" (Commensalism) कहते हैं।

सहजीवी किन्हीं विभिन्न जातियों के दो या दो से अधिक जन्तुओं के बीच वह सम्बन्ध है जिसमें एक या दो जन्तु लाभान्वित होते हैं किन्तु इसमें किसी को हानि नहीं होती। Commensalism का अर्थ है eating the same table इसमें एक जन्तु दूसरे के भोजन में हिस्सा बांटता है और इसके बदले में उसे रक्षा व शरण प्रदान करता है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें जन्तुओं का आपस में कोई जैविक या फिजियोलॉजिकल सम्बन्ध नहीं होता। सहजीवन लगभग समस्त श्रेणियों के जन्तुओं में पाया जाता है।

अब वनस्पतियों में लाइकेन को ही ले लीजिए। लाइकेन पौधो की छाल या चट्टानों पर उगते हैं। इनमें प्रतिकूल वातावरण को सहन करने की अपार शक्ति होती है। लाइकेन पौधों का वह समूह है जिसके शरीर का निर्माण शैवाल या कवक द्वारा होता है अर्थात लाइकेन शैवाल तथा कवक का मिश्रित रूप है यह दोनों एक दूसरे के लिए बहुत उपयोगी होते है। कवक पानी का अवशोषण करता है जबकि शैवाल प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन पदार्थ का निर्माण करता है अर्थात एक दूसरे के सहयोग से इनका जीवन चलता रहता है।

स्पंज की कुछ जातियां कुछ केकड़ों की पीठ या टांगों पर उग आती है। इसमे केकड़ों की अपने शत्रुओं से रक्षा होती है तथा स्पंज केकड़े द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जाते हैं जिससे उन्हें अधिक ऑक्सीजन तथा भोजन प्राप्त हो जाता है।

हाइड्रेक्टीनिया (Hydractinia) तथा हरमिट क्रेब का आपसी सम्बन्ध सहजीवन का उदाहरण है क्योंकि इसमें हाइड्रेक्टीनिया हरमिट क्रेब के भोजन के बचे हुए छोटे–छोटे टुकड़ों को खाता है तथा इसके बदले में हरमिट क्रेब की उसके शत्रुओं से रक्षा करता है।

सी–एनीमोन गैस्ट्रोपोड खोल के ऊपर उग आता है और उस खाली खोल में हरमिट क्रेब रहने लगता है। हरमिट क्रेब द्वारा सी–एनीमोन एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जाता हे जिससे उसे अधिक मात्रा में तथा विभिन्न प्रकार का भोजन प्राप्त होता है। सी–एनीमोन की उपस्थिति के कारण समुद्री शिकारी मछलियां क्रेब पर आक्रमण नहीं करती। क्रेब अपने को खोल के अन्दर खींच लेता है, अतः उसकी रक्षा होती है। इस प्रकार अनेक जीवों में सहजीवता के लक्षण पाये जाते हैं।

तो क्या समझे बच्चों। अच्छा लगा न जीव जन्तुओं का सहजीवन। हमें भी इनसे सीख लेना चाहिए। हमें हमेशा मिल जुल कर रहना चाहिए यही तो प्रकृति और विज्ञान का संदेश है।

□□□

समुद्र-विज्ञान

सागर तले छिपा रहस्य

विनय राणा

सम्प्रेषण, डी. 753 सरस्वती विहार, दिल्ली – 110034

अभी तक दुनिया भर में ज्यादातर शोधकार्य अंतरिक्ष पर बड़े उत्साह व तेजी से चल रहे थे, लेकिन इन दिनों दुनिया भर के वैज्ञानिकों का ध्यान समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले शोध कार्यो की तरफ है। नए–नए रहस्यों का खुलासा हो रहा है और नई–नई जानकरियां मिल रही है।। शोधों से जो कुछ पता लग रहा है, प्रस्तुत है उसका एक संक्षिप्त व्यौरा।

समुद्र की तलहटी में भारी मात्रा मे एक अनुछआ ईधन जमा है जिसका नाम है 'क्लैथरेट'। इस ईधन से कारें भी चलाई जा सकती है और बिजली भी बनाई जा सकती है। उम्मीद प्रकट की जा रही है कि अगले सदी का यह प्रमुख ईधन होगा क्योंकि तेल, कोयला, और प्राकृतिक गैस 2040 में खत्म के कगार पर पहुँच चुकेगा।

वैज्ञानिकों का आकलन है कि क्लैथरेट की समुद्र के नीचे दबी मात्रा अब तक ज्ञात समस्त जीवाश्म (फॉसिल) ईधन से दो गुनी है। इस ईधन के दोहन के लिए भारतीय गैस प्राधिकरण और अमरीका के नौ सैनिक अनुसंधान प्रयोगशाला मिलजुलकर अनुसंधान कार्य में लगे हैं।

यह ईधन बर्फ की शक्ल का है, एकदम पारदर्शी। मूलरूप से यह पानी के अणुओं में फंसी मेथेन गैस है। मेथेन गैस अत्यन्त ज्वलनशील होती है और अच्छा ईधन होती है। मजे की बात यह है कि जब पानी की अतल गहराई में दबाव बहुत बढ़ जाता है। और तापमान भी उपयुक्त होता है तो एक आयतन पानी 270 आयतन तक मेथेन को जकड़ लेता है हाइड्रोजन बॉड की वजह से यह मेथेन आसानी से मुक्त नहीं होती।

यही वजह है कि 35 डिग्री तापमान पर भी यह बर्फनुमा क्लैथरेट पिघलता नहीं। वैज्ञानिकों के अनुसार समुद्र में 10 मीटर की गहराई पर क्लैथरेट के भंडार मिलने शुरू हो जाते हैं। समुद्र की तलहटी में नीचे तापमान चूंकि इससे अधिक होता है तो ये क्लैथरेट पिघल जाते हैं। और वहां भारी मात्रा में मेथेन के भंडार बन जाते हैं। अनुमान है कि समुद्र की तलहटी मे इस किस्म की अनछुई और अज्ञात मेथेन के विशाल भंडार हो सकते हैं।

दसियों साल पहले बायोजैनिक प्रक्रिया से क्लैथरेट का निर्माण हुआ होगा। जैव पदार्थ जीववैज्ञानिक प्रक्रिया में मेथेन का निर्माण करते हैं, सही ताप और दबाव में ये पानी के अणु से संयुक्त हो जाते हैं। इस मणिभ (क्रिस्टल) रूप ईधन के आकलन और दोहन को जरूरी बताते हुए भारतीय वैज्ञानिकों ने कहा कि भारत को अपने स्रोतों पर अभी से तेजी से काम करना चाहिए।

पिछले कुछ वर्षो में वैज्ञानिकों को पता चला है कि समुद्र के एक बूंद पानी में असंख्य वाइरस (विषाणु) पाये जाते हैं। लेकिन ये वाइरस समुद्र की खाद्य श्रृंखला में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इस बात का पता वैज्ञानिकों को हाल ही में चला। अमेरिका के यू.सी.एल.ए. यानी यूनीवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, लास एन्जिल्स के

समुद्री बायो तकनीकी (जैव विज्ञान) के क्षेत्र में शोध कर रही एक वैज्ञानिक लीटा प्राक्टर ने पाया कि समुद्र की सतह से लेकर अथाह गहराइयों तक के एक बूंद पानी में अरबों–खरबों वाइरस पाये जाते हैं। यही नहीं, इनमें से प्रत्येक वाइरस समुद्री वनस्पतियों और जीवों को ध्वंस करने में सक्षम है। समुद्र की एककोशीय प्राणियों से लेकर भारी–भरकम जन्तुओं का ये वाइरस विनाश कर सकते हैं।

जीव वैज्ञानिक अभी तक यह मानते हैं कि सागरों और महासागरों की ऊपरी सतहपर कुछ एक मीटर तक की गहराईयों में ही सूर्य की रोशनी पहुंच जाती है। और जहां तक सूर्य की रोशनी पहुंच जाती है, वहीं तक प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया नहीं होती इसलिए वहां कोई वनस्पति नहीं पनपती, वहां केवल ऐसे जीव रह सकते हैं जो ऊपरी सतहों से गिरनेवाले जैविक पदार्थों पर प्रक्रिया कर अपना भोजन तैयार कर सकें।

सत्तर और अस्सी के दशक में शोधपत्रों ने समुद्र के पनपनेवाले बैक्टीरिया (जीवाणु) के अन्दर वाइरस की मौजूदगी के बारे में अपनी जानकारी प्रस्तुत की। जॉन सौबर्थ रोड आएलैण्ड विश्वविद्यालय के एक समुद्र वैज्ञानिक ने 1979 में प्रकाशित अपनी पुस्तक में समुद्र के कई जीवों में पाये जाने वाले इस वाइरसों की तस्वीरें दी थी। ये वाइरस अपनी वृद्धि करके किस तरह कोशिकाओं का विध्वंस करते हैं, इस बारे में कई चौंका देनेवाली तस्वीरें भी उनकी इस पुस्तक में थी। लेकिन फिर भी वैज्ञानिकों को यह भनक नहीं लगी कि वाइरस समुद्री परिस्थितिकी में कितनी अहम भूमिका निभाते हैं।

समुद्र की गहराईयों में पाये जानेवाले अजीबो गरीब जीव जन्तु सिर्फ पृथ्वी की बढ़ती जनसंख्या के लिए भोजन जुटाने के काम आ सकते बल्कि उनपर किये गये अध्ययनों से यह पता चला है कि उनमें से कई जीव जन्तु महत्वपूर्ण रसायनों का स्राव करते है। इस तरह के कई रसायनों के औषधियों को जो प्रतिरोध हमारे शरीर में पैदा होता है उस समस्या का हल इन नये रसायनों के इस्तेमाल से किया जा सकता है।

अब तक समुद्र की गहराईयों से मिले जितने रसायनों का विश्लेषण किया गया है उनमे ज्यादातर रसायन शरीर की किसी भी भाग की कोशिकाओं के अनियन्त्रित विभाजन को रोकने की क्षमता रखते हैं यानी की कैंसर के उपचार में वे उपयोगी हो सकते हैं। वास्तव में इन रसायनों से लगभग 12 ऐसी औषधियां तैयार की गयी है जिसका परीक्षण केवल मनुष्यों पर होना बाकी है शुरू के चरणों के सभी प्रयोग उत्साहजनक रहे है।

अन्तर्राष्ट्रीय भूमंडल जैवमण्डल कार्यक्रम के अन्तर्गत किये गये अध्ययनों से पता चला है कि अरब सागर से काफी भारी तादाद में नाइट्रस आक्साइड वायुमण्डल में निरन्तर जाता रहता है। यही नहीं, जीवाश्मों के अध्ययन-से पता चला है कि पिछले 14,500 वर्षों में समुद्र स्तर में 100 मीटर से भी ज्यादा वृद्धि हुई है जबकि फोरेमिनोफेराके अध्ययनों से पता चला है कि पिछले 450 वर्षों में 77 वर्षीय चक्रीयता रही होगी और इसका सम्बन्ध सूर्य से चल रही प्रक्रियाओं के साथ है। इस तरह के कई सारे अध्ययनों का क्या महत्व है, यह तो आनेवाला समय ही बताएगा।

एक नया रहस्य

अभी तक वैज्ञानिक यह मानते रहे हैं कि जीवन की शुरूआत पृथ्वी के जल में से निकल आने के बाद पृथ्वी पर ही हुई किंतु अब वैज्ञानिक इसे गलत ठहरा रहे हैं। इनका कहना है कि असल में जीवन की शुरूआत गहरे पानी में हुई। इसके तर्क प्रस्तुत करने के लिए अमरीका के कार्नेगी भू–भौतिकी प्रयोगशाला में अनेक प्रयोग किए

गए हैं। सागर की गहराई में प्रयोग के दौरान अचानक हुई रासायनिक प्रक्रियाओं से इस तर्क को और अधिक बल मिला है। वैज्ञानिकों को पता चला कि जीवन की शुरूआत का पहला चरण सागर तल के गरम जल के खनिज लवणों के रासायनिक विलय के परिणामस्वरूप नाइट्रोजन के अमोनिया में बदलने से हुआ। यह जीवन की शुरूआत के लिए पहली आवश्यक प्रक्रिया मानी गई। वैज्ञानिकों के अनुसार गहरे सागर तल में स्थित ये गरम जल से स्रोत जीवणु, झींगा व क्लाम्स जैसे सजीवों के फलने फूलने की उपयुक्त जगह हो सकती है। यहां ये सूर्य की बजाय इन स्रोतो से ऊर्जा प्राप्त करते है।

नाइट्रोजन जीवन का निर्माण करने वाले अमीनो एसिड व न्यूक्लिक एसिड जैसे आणविक ब्लॉक का आवश्यक घटक हैं। साधारण रूप से पाई जाने वाली नाइट्रोजन इतनी निष्क्रिय होती है कि इससे जीवन का उद्‌भव संभव नहीं।

ज्यादातर वैज्ञानिकों का मानना है कि जीवन की शुरूआत करने में सहायता देने में अमोनिया की जरूरत पड़ती है। इसमें हाइड्रोजन के तीन अणुओं के साथ नाइट्रोजन का एक अणु संलग्न रहता है पंरतु वैज्ञानिकों के सामने प्रश्न यह था कि नाइट्रोजन कैसे अमोनिया में बदल जाती है? कार्नेगी भू–भौतिक प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों के अनुसार अमोनिया निर्माण की सबसे उपयुक्त जगह नवजात पृथ्वी की सतह और समुद्र के जलतापीय स्रोत हैं। इससे इन्होंने जीवन की शुरूआत व प्राचीन वातावरण के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की होगी। समुद्र विज्ञान आज शोध का एक रोचक व महत्वपूर्ण विषय बना हुआ है। शोधकर्त्ताओं को विश्वास है कि भविष्य में कई रहस्यों से पर्दा हटेगा।

□□□

कैसे खोजी गई स्टेनलैस स्टील

अरुण कांत जिंदल

अंग्रेज वैज्ञानिक हार्वे बेअरली बंदूकों का बहुत शौकीन था। 1913 की बात है बेअरली ने सोचा क्यों न विभिन्न धातुओं के मिश्रण से बहुत मजबूत धातु तैयार करूं और उससे बंदूक की नली बनाऊं। बेअरली ने बहुत सारी मिश्र धातुएं तैयार की। लेकिन उसे मनचाही सफलता नहीं मिली। अंततः हार एक उसने अपना प्रयोग बंद कर दिया।

कुछ दिनों बाद जब बेअरली उस ढेर के पास पहुँचा जहाँ उसने तैयार की गई धातुएं बेकार जानकर फेंक दी थी, तो वह यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि लगभग सभी धातुओं पर बुरी तरह जंग लग चुका था लेकिन उस कूड़े के ढेर में धातु के कुछ टुकड़े अभी भी चमचमा रहे थे। ये वे धातु के टुकड़े थे जिन्हें बनाने में बेअरली ने इस्पात, निकिल और क्रोमियम का उपयोग किया था। अनजाने में ही बेअरली स्टेनलैस स्टील का आविष्कार कर चुका था। आजकल उपयोग किए जाने वाले स्टेनलैस स्टील में 11 प्रतिशत क्रोमियम होता है, इसकी विशेषता यह है कि यह चमकता बहुत है।

(अभियान)

स्वास्थ्य

गंध के जरिए भी शरीर में घुसते हैं विषाणु

राजेन्द्र कुमार राय

सम्प्रेषण, डी. 753, सरस्वती विहार, दिल्ली – 110034

पूरी दुनिया में आज कई जानलेवा बीमारियों का विषाणु कारण बने हैं। यह हमारे शरीर में कई तरह से प्रवेश कर जाते हैं, इनमें गंध के जरिए भी शामिल है। विषाणु पर दुनिया भर में शोधकार्य जारी है। विषाणुओं के गुणों की खोज–खबर करता आलेख।

देश की राजधानी दिल्ली में वायु के जरिए वायरल तेजी से फैल रहा है। वायरल के प्रतिरोधी शक्ति कम होने के कारण बच्चे इसके सबसे ज्यादा शिकार हो रहे है। जाने–माने बाल रोग विशेषज्ञों का कहना है कि यह वायरस गन्ध में जरिए आपके शरीर में प्रवेश कर सकता है। इस वायरस का पीड़ित व्यक्ति जब आपके पास आता है तो उसके मुंह से आने वाली हवा आपको पीड़ित कर सकती है। पर इन दिनों दिल्ली में इसका ज्यादा बुरा असर बच्चों पर हो रहा है। आमतौर पर घनी आबादी, बसो, स्कूलों और सामुदायिक केन्द्रों के माध्यम से यह बीमारी अन्य लोगों तक पहुंच रही है। बच्चों को वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए जरूरी है कि उनमें प्रतिरोधक शक्ति ज्यादा होनी चाहिए और बच्चों को उचित माहौल और भोजन दिया जाना चाहिए। इतना ही नहीं, बच्चों का तनावमुक्त वातावरण होना भी जरूरी है। इस समय बच्चों पर कई तरह के दबाव हैं। इनमें टेलीविजन का भी दबाव है। विशेषज्ञों का कहना है कि यह परिवार की जिम्मेदारी है वह बच्चों को तनावमुक्त रखें। कई कारणों से कि बच्चों पर नियंत्रण करना आसान नहीं है। सामान्य परिवारों में तो एक–दो कमरे होते हैं। टेलीविजन चलता रहता है और इस कारण बच्चे अपना काम पूरा नहीं कर पाते।

आजकल बच्चों में हेपिटाइटिस बी. का रोग भी बढ़ रहा है। यह रोग पीलिया के साथ भी हो सकता है और उससे अलग भी हो सकता है। बच्चों को कई बीमारियों से बचाव के टीके दिए जाते हैं। इसमे हेपिटाइटिस बी. की निरोधक दवाइयां भी दी जाती हैं। इस बीमारी का वायरस पसीने, रक्त और आंसू के साथ शरीर में प्रवेश कर सकता है। दांत के चिकित्सक के यहां जाकर नियमित इलाज कराने और रक्त जांच से भी यह बीमारी हो सकती है। इसका वायरस सूखी त्वचा पर ज्यादा होता है। यह बीमारी गर्भस्थित शिशुओं को हो सकती है। इस बीमारी का समय पर इलाज नहीं किया गया तो इससे कैंसर जैसी बीमारी भी हो सकती है।

वास्तव में कई जानलेवा बीमारियों का कारण है विषाणु। यह जब हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं, तो शरीर इनका स्वागत किसी विशेष मेहमान की तरह करता है। फिर तो विषाणु ऐसा व्यवहार करने लगते हैं जैसे किसी अपराधी को किसी कारखाने की चाबी मिल जाए और वह चोरी छिपे कारखाने में घुसकर उसकी मशीनरी चलाने लगे या सारा माल लूटकर ले जाए। दुनिया भर में इन विषाणुओं पर शोधकार्य जारी है। विषाणु अपने लातीनी भाषायी नाम वायरस से अधिक प्रसिद्ध हैं और इसका अर्थ है पतला तरल दुर्गन्धकारी और विषयुक्त पदार्थ।

वास्तव मे विषाणु अपने नाम के अनुरूप ही होते हैं। आक्रमणकारी विषाणु अत्यत सूक्ष्म, छोटे से पिन के

सिरे के लगभग सोलह हजारवें भाग के बराबर आकार के होते हैं। विषाणु की सरंचना में मूलतः दोहरी सतह वाला एक खोल होता है जिसमें थोड़े से आर.एन.ए. (आनुंवशिक पदार्थ) को सब ओर से घेरे प्रोटीन युक्त पदार्थ होता है जिसमें एक तंतु अनुवांशिक अणु का होता है।

जब कोई विषाणु मानव कोशिका में प्रवेश करता है तो उसकी स्थिति किसी तालाब में पांव मारते शिशु जैसी होती है। यह कोशिका से हजारों गुणा छोटा होता है, लेकिन प्रोटीन के आवरण में लिपटे आनुवंशिक पिंड होने के कारण शीघ्र ही स्थिति पर काबू पा लेता है। विषाणु के आनुवंशिक द्रव्य में आर.एन.ए. होता है जो कोशिका में भी होता है, अतः कोशिका विषाणु हो हमलावर नहीं मानती।

फिर तो विषाणु का वशंतत्व भी वही भाषा बोलता है जो मानवीय वंशतत्व बोलता है। दोनों ही वंश तत्वों की भाषा की वर्णमाला समान है पर उनके वर्णक्रम भिन्न हैं। विषाणु इस प्रकार कोशिका के संसाधनों का खुलकर उपयोग कर पाते हैं।

वास्तव में आरम्भ में विषाणु अपने आनुवंशिक द्रव्य की सौ–या अधिक नकलें तैयार करते हैं, फिर ये नकली द्रव्य कोशिका का प्रोटीन लूट लेते हैं और विषाणुओं की एक बहुत बड़ी सेना तैयार कर लेते हैं, लेकिन शरीर की प्रतिरक्षा व्यवस्था भी बड़ी गुप्तचर है। शरीर में बड़ी कोशिकाएं इस छोटे से बाहरी तत्व को शीघ्र भॉप लेती हैं और फौरन प्रतिरक्षा व्यवस्था कोशिकाओं के प्रभावशाली समूह को संगठित करना शुरू कर देती हैं।

आजकल पूरे विश्व में तहलका मचा देने वाले रोग एड्स का विषाणु प्रायः शारीरिक संसर्ग या रक्त के द्वारा व्यक्ति के रक्त के द्वारा व्यक्ति की रक्त धारा में प्रवेश कर जाता है। एड्स विषाणुओं का सबसे विशेष गुण यह है कि यह रास्ते में आने वाली कई रक्त कोशिकाओं की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए बड़ी तेजी से साथ प्रतिरक्षा व्यवस्था से बचते हुए "टी" कोशिकाओं के साथ बस जाता है। यहां विषाणुओं को एक अभिग्राहक भी मिल जाता है। इस अभिग्राहक का प्रोटीन आवरण पूरी तरह उनसे मेल खाता है।

कोशिकाओं के साथ लगे हुए विषाणु कोशिका कह झिल्ली में घुसकर सुरक्षात्मक कवक निरावृत कर देते हैं। आधे घंटे के भीतर आर.एन.ए. का तन्तु तथा एक एन्जाइम जो विषाणु के साथ होता है कोशिका में तैरने लगता है। फिर एक आश्यर्चजनक परिर्वतन होता है। एन्जाइम की सहायता से अनावृत्त "एड्स" का विषाणु अपना आर.एन.ए. में परिर्वन कर लेता है। फिर यह कोशिका के न्यूक्लियस (केन्द्र) में घुस जाता है और गुणसूत्र (क्रोमासोम) में मिलकर कोशिकीय प्रक्रिया के भाग पर अधिकार लेता है। फिर तो एड्स के विषाणुओं की एक बहुत ही बड़ी सेना तैयार हो जाती है। अंततः बाहरी तत्वों से पराजित हो कोशिका सूज जाती है और निर्जीव होकर रह जाती है। शरीर की प्रशिक्षा व्यवस्था महत्वपूर्ण "टी" कोशिकाओं की व्यवस्था संख्या से वंचित हो जाने के कारण संक्रमण से लड़ने में असमर्थ हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप बहुत से अवसरवादी संक्रमणकारी जिनसे सामान्यतः स्वास्थ्य प्रतिरक्षा व्यवस्था पहले बचाव करती थी, कमजोर शरीर पर आक्रमण कर देते है।

केवल एड्स के विषाणु ही नहीं बल्कि अन्य कई विषाणु भी मनुष्य जाति के धरती पर प्रकट होने से पहले से जीव, जन्तुओं तथा पौधों का शिकार करते आये हैं। एड्स एवं फ्लू के अलावा विषाणु,चेचक, पोलियो, खसरा तथा कई साधारण बीमारियों जैसे जुकाम, दाद, मोनोक्लोनिसस इत्यादि के लिए भी उत्तरदायी हैं।

जहां तक विषाणुओं के आकार–प्रकार का सवाल है, एक चिकित्सा वैज्ञानिक डी स्टीपेन स्ट्रास का कहना है कि विषाणु एक शानदार लघु संरचना है, जिसका कोई भी खण्ड बेकार नहीं है। अगर कुछ विषाणु रेडियो लैरियन प्राणियों की तरह दिखते हैं तो कुछ फुटबाल की उबड़ खाबड़ त्रिकोणीय फलिका वाले गोल सतह की तरह दिखते हैं। सबसे विशेष बात तो यह है कि इनकी आकृति कैसी भी हो, इनमें कुछ विशेषताएं समान हैं। शारीरिक संरचना में अत्यन्त सूक्ष्म और सुरक्षात्मक आवरण वाले ये विषाणु आकार में स्वयं नहीं बढ़ते और न ही अतिथेय की सहायता के बिना अपनी संख्या में वृद्धि कर सकते हैं। वास्तव में विषाणु मुख्यतः पूर्णरुप से परजीवी हैं। ये अपने अतिथेय का चुनाव बड़ी सावधानी से करते हैं। अधिकांश विषाणु कोशिका विशेष को ही संक्रमित करते हैं जैसे एड्स का विषाणु 'टी' कोशिकाओं में जाता है, और पोलियो का मेरूरज्जु नाड़ी तंत्र की विशिष्ट उप कोशिकाओं में।

लेकिन चिकित्सा विज्ञानियों को जो बात सबसे ज्यादा परेशान कर रही है वह विषाणु की विभेद करने की क्षमता है। आखिर कैसे कुत्ते द्वारा बांह या टांग में काटे जाने पर रैबीज का विषाणु मांसपेशियों में प्रवेश कर नाड़ियों के साथ मस्तिष्क की विशेष कोशिका में चला जाता है। शायद ऐसा होना कोशिका के आकार पर निर्भर करता है। वास्तव मे रैबीज के विषाणु अपने आवरण के अन्दर जो प्रोटीन लिए रहते हैं, उसे इस तरह का आकार दे देते हैं कि वह मस्तिष्क की विशेष कोशिकाओं की सतह के अनुकूल बन जाती है तथा उसमें समन्वित हो जाती है। शरीर में प्रवेश करने के बाद विषाणु के जीन कोशिका द्रव्य में क्रियाशील होकर प्रोटीन उत्पन्न करते हैं जो गुण सूत्र में मिलकर कोशिकीय यंत्र को विषाणु उत्पन्न करने का आदेश देते हैं।

❑❑❑

क्यों लुप्त हुआ डोडो

अरुण कांत जिंदल

डोडो मारीशस में पाया जाने वाला, देखने में मुर्गी जैसा परन्तु उससे बड़े आकार का पक्षी था। इसके पंख काफी छोटे थे, यह तो न उड़ सकता था और न ही दौड़ पाता था। इसीलिए पुर्तगाली नाविक उसे डोडो अर्थात मूर्ख पक्षी के नाम से पुकारते थे। नाविक इसे पकड़कर माने का प्रयत्न करते थे, डोडो उड़ने या भागने का प्रयास भी नहीं करता, इसीलिए पुर्तगाली नाविक इसका मांस खाने के आदी हो गए।

अंततः 1680 ई० तक डोडो अन्य जानवरों से अस्तित्व की लड़ाई मे हार गए और धीरे–धीरे संपूर्ण डोडो वंश पृथ्वी से समाप्त हो गया।

(अभियान)

रहस्यमय

रहस्यमय नहीं रही अब आकाशगंगा की कौंध

डॉ० गणेश कुमार पाठक

अभियान, बी. 2 वैलकम अपार्टमन्ट, सेक्टर 9, रोहिणी, दिल्ली – 110085

सम्पूर्ण विश्व में आकाशगंगा में प्रतिदिन सूर्य से भी करोड़ों गुना अधिक चमकीली कौंध दृष्टिगोचर होती है किन्तु यह कौंध दस सेकेन्ड से अधिक देर तक नहीं रहती। परम्परागत टेलिस्कोपों से आज तक इस कौंध को समझने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी, किन्तु अब खगोलशास्त्री इस रहस्य पर से पर्दा उठाने का दावा कर रहे हैं।

अभी तक आकाशगंगा की कौंध को रहस्यमय माना जाता था, किन्तु भारतीय मूल के एक अमेरिकी खगोलशास्त्री डा० श्रीनिवास कुलकर्णी ने नेतृत्व में वैज्ञानिकों के एक दल ने इस रहस्य का उद्घाटन करने में सफलता प्राप्त की है। विश्व के खगोलशास्त्री विगत तीन दशक से इस रहस्य को समझने में लगे हुए थे।

कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलाजी के खगोलशास्त्रियों के इस दल ने, जिसका नेतृत्व डा० श्री निवास कुलकर्णी ने किया, का कहना है कि सम्पूर्ण विश्व में आकाशगंगा में प्रतिदिन सूर्य से भी करोड़ों गुना अधिक चमकीली कौंध दृष्टिगोचर होती है। किन्तु यह कौंध दस सेकेण्ड से अधिक देर तक नहीं रहती। परम्परगत टैलिस्कोपों से आज तक इस कौंध को समझने में सफलता नहीं प्राप्त हो सकी थी, अभी तक इसके विषय में मात्र इतना ही ज्ञात था कि गामा किरणों के टूटने के कारण ये कौंध दृष्टिगोचर होती हैं। ये किरणें एक्सरे से अधिक शक्तिशाली होती हैं। खगोलशास्त्री अभी तक इन कौंधों के उत्पत्ति स्थल का पता नहीं लगा सके थे, किन्तु डा० श्री निवास कुलकर्णी, डा० जार्ज जार्गवोस्की, डा० मार्क मेजर एवं केलटेक स्नातकों की सहायता से सबसे चतुर दूरबीन (जो विश्व की सबसे बड़ी टेलिस्कोप है) 'किक' के माध्यम से आकाशगंगा की चमकीली कौंधों के संभावित स्रोत का पता लगाने में सफल हुए हैं। डा० कुलकर्णी इस मान्यता को भी स्थापित करने में सफल रहे हैं कि यह चमक ब्रह्माण्ड के अंतिम आखिरी एवं दूर के किनारे से होती है। डा० कुलकर्णी ने कैलीफोर्निया से प्रकाशित समाचार पत्र 'इंडिया वेस्ट' को बताया कि यह एक बहुत बड़ा रहस्य है जिसके मात्र एक पहलू का ही रहस्योद्घाटन अभी तक किया जा सका है। यह चमक पृथ्वी से कम से कम 2 अरब एवं अधिक से अधिक 7 अरब प्रकाश वर्ष दूर उत्पन्न होती है। डा० कुलकर्णी एवं उनके दल के सहयोगियों ने माउंट पालोमर पर 60 एवं 200 इंच के टेलिस्कोप के माध्यम से इस चमक को कैद करने मे सफलता प्राप्त की है।

चमक के विभिन्न रंगों के मध्य काली रेखाओं से यह पता चला है कि धरती एवं इस चमक के बीच बादलों का एक बड़ा समूह है। डा० कुलकर्णी के अनुसार यह बादल लगभग दो अरब प्रकाश वर्ष दूर है। इसका तात्पर्य यह है कि चमक का स्रोत बादल से भी आगे है।

डा० कुलकर्णी ने प्रकृति के इस सबसे बड़े रहस्य का पता लगाने का कार्य 5 वर्ष पहले प्रारम्भ किया था जब वे जापान के 'इंस्टीटयूट ऑफ स्पेस एस्ट्रोनाटिक्स एण्ड 'साइंस' देखने गए थे। वे तब से लेकर अब तक अनवरत इस कार्य में लगे रहे और अन्ततः उन्हें सफलता मिली।

कम्प्यूटर-प्रोद्यौगिकी

कम्प्यूटर: कुछ नवीनतम जानकारियां

इरफान ह्यूमन
जन विज्ञान मिशन, 67 अण्टा, शाहजहाँपुर – 242001

डी.वी.डी. : मल्टीमीडिया की शक्ति वृद्धि

डी.वी.डी. का पूरा रूप डिजिटल वर्सेटाइल डिस्क (Digital Versatile Disk) है जिसको शुरु–शुरु में डिजिटल वीडियो डिस्क के नाम से जाना जाता था। अब तक सी. डी. फिल्म देखते समय बीच में डिस्क बछलने में जो व्यवधान पड़ता था वह अब डी.वी.डी. आ जाने से समाप्त हो जायेगा और इस तकनीक के आ जाने से सीड़ी रॉम पर मल्टीमीडिया की क्षमता बढ़ जायेगी।

एच.पी. डब्ल्यू 200 ई.सी. : हथेली में कम्प्यूटर

विश्व का सबसे पहला सफल इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटर सन् 1946 में पैन्सिलवानिया विश्वविद्यालय के इलेक्ट्रानिक इंजिनियर जे.पी. एकर्ट और जे. डब्ल्यू मौचले ने बनाया था। "एनिआक" नामक इस विशाल कम्प्यूटर में 18,000 के लगभग इलेक्ट्रानिक ट्यूब, 70,000 प्रतिरोध, 10,000 कैपिस्टर और 60,000 स्विच लगे थे जिसे एक बड़े कमरे में स्थापित किया गया था। इसके पश्चात् कम्प्यूटर में विकास होते–होते आज जो छोटा रूप निखर कर आया है वह आपके सामने है, लेकिन वैज्ञानिक अभी इससे भी संतुष्ट नहीं हैं, इसे अभी और छोटा करने की जुगाड़ में लगे हैं।

हाल ही में हिटैची नामक कम्पनी ने एच.पी.डब्ल्यू. 200 ईसी. नामक कम्प्यूटर का निर्माण किया है जो इतना छोटा है कि आपकी हथेली में समा जायेगा। इसमें 100 मेगाहट्र्ज क्षमता का प्रोसेसर लगा है और 16 एम.बी. (मेगाबाइट) आंकड़े डाले जा सकते हैं। इसके साथ 33.6 के.बी.पी.एस. (किलो बाइट्स प्रति सेकेण्ड) गति का मोडम लगा है।

आई.एस.डी.एन. : संचार की नई छलांग

संचार के क्षेत्र में दिन प्रतिदिन नए अनुसंधान हो रहे हैं। अब आपको संचार की दुनिया में और आगे ले जाने की तकनीक आ चुकी है जिसका नाम है आई.एस.डी. एन. यानी इंटीग्रेटेड सर्विस डिजिटल नेटवर्क। इंटीग्रेटेड सर्विस जिसका अर्थ है एकीकृत सेवाएं यानी कई सेवाएं एक साथ। अब देखिए न, पहले आप फोन पर सिर्फ बातचीत कर सकते थे लेकिन आई.एस.डी.एन. तकनीक के माध्यम से आवाज, आंकड़ा (डाटा) और छवियों का संचरण टेलीफोन नेटवर्क के जरिए टेलीफोन लाइन पर हो सकता है।

आई.एस.डी.एन. लाइन नई तकनीक के एक्सचेंज से जुड़ी एक ऐसी टेलीफोन लाइन है जिसमें उपयोक्ता की ध्वनि, आंकड़ो और छवियो को अलग–अलग या फिर एक साथ उसके परिसर से ही डिजीटल रूप में भेजा जाता है या फिर ग्रहण किया जा सकता है। इस सेवा का इस्तेमाल कर आप टेलीफोन लाइन की मौजूद तारों पर ही एक साथ दो अलग–अलग कॉल कर सकते हैं।

मॉनीटयूटर : छोटे मियाँ सुबहान अल्लाह

कंजस्टेड! टू कंजस्टेड! स्थानाभाव की समस्या बढ़ती जा रही है फिर भला प्रौद्योगिकीविद् इस समस्या को कैसे नजरअंदाज कर दें। आज कम जगह घेरने वाली छोटी वस्तुओं का महत्व बढ़ता जा रहा था तो भला मल्टीमीडिया पीसी पीछे क्यों रहे। संचयनी कंप्यूटर्स और लियो कम्पनी ने मिलकर एक ऐसा ही मल्टीमीडिया पीसी 'मॉनीटयूटर' बनाया है।

इस मॉनीटयूटर की एक खास खूबी यह है कि इसमें कोई अलग से बाक्स नहीं है। इस पीसी सिस्टम मे संगीत प्रेमियों के लिए जहां पांच वाट के हाई–फाई सब–वूफर स्पीकर्स लगाने की सुविधा है वहीं टेलीविजन ट्यूनर, वीडियो कैप्चर एम.पी.ई.जी. कार्ड भी इस सिस्टम में लगाए जा सकते हैं।

❑❑❑

कैनः पर्यावरणविदों की बढ़ती चिन्ता

कैलिफोर्निया, अमेरिका में सार्फ्ट ड्रिंक्स बनाने वाली एक कंपनी है मिशैल। इस ने एक "कैन" बनाया है तो बिना फ्रिज में रखे या बर्फ मिलाए ही ठंडा हो जाता है। गर्मी के दिनों में इस तरह का कैन वास्तव में काफी आनन्द दे सकता है हम सभी को। संभावना भी है कि यह अद्भुत "कैन" बाजार में शीघ्र ही आ जाएगा। अनुमान है कि तीन साल के अन्दर 80 करोड़ कैन बिकने लग जायेंगे।

इस अद्भुत कैन को ठंडा करने के लिए सिर्फ उसके निचले हिस्से में लगे बटन को दबाने की जरूरत पड़ती है। बटन दबाते ही एक गैस निकलती है जो ठंडा करती है। यह कैन में मौजूद गुनगुनी बियर या सॉफ्ट ड्रिंक मिनट भर में ठंडा कर देती है।

कैन में भरी जाने वाली गैस है "एच.एफ.सी. 134 ए. जो कार्बन डाइआक्साइड से 3400 गुना अधिक ताकतवर है। गैस के छूटते ही कैन का तापमान दो मिनट के भीतर काफी कम हो जाता है। मिशैल कंपनी के प्रमुख मिशैल जोसेफ का कहना है कि इन नए कैन को हासिल करने के लिए विश्व भर की प्रमुख ड्रिंक कंपनियां उनसे संपर्क कर रही है। अपने आप ठंडे होने वाले इस डिब्बे के निर्माण के लिए अमेरिका और ब्रिटेन में फैक्ट्रियां स्थापित की जा रही है।

इसमें संदेह नहीं कि बिना किसी झंझट के शीतल पेय पदार्थ उपलब्ध कराने वाले ये कैन उपभोक्ताओं में बेहद लोकप्रिय होंगे लेकिन इस नये आविष्कार की खबर से उन वैज्ञानिकों एवं पर्यावरणविदों को गहरा सदमा लगा है जो पृथ्वी को प्रदूषण से बचाने के उपाय खोज रहे हैं। नया कैन गर्मी को तो शांत कर सकता है लेकिन पृथ्वी के मिजाज को गरम कर देगा। कैन से छूटने वाली गैस विश्वव्यापी गर्माहट को बढ़ावा देकर हमारे पर्यावरण के लिए नये खतरे उत्पन्न करेगी।

उद्योगों व मोटर वाहनों से निकलने वाली गैसें तथा धुआं वायुमण्डल के कार्बन डाइआक्साइड की उपस्थिति को लगातार बढ़ा रहीं हैं और इधर नए कैन से निकलने वाली गैस कार्बन डाइआक्साइड से भी 3400 गुना अधिक शक्तिशाली है। वायुमण्डल पर इसके प्रतिकूल प्रभाव का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

विश्व के पर्यावरणविदों का मानना है कि कैन के विकास से ग्लोबल वार्मिंग को नियंत्रित करने के अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों को गंभीर धक्का लगा है। चिंतित वैज्ञानिकों ने समूचे यूरोप में इस पर प्रतिबंध लगाने की जोरदार मांग की है। वैसे अधिकांश का मानना है कि इसमें सफलता बहुत नहीं मिल सकती, फिर भी प्रयास जारी है।

(अभियान)

खेल-जगत

खेल की दुनिया में चोट

राजेन्द्र कुमार राय
सम्प्रेषण, डी. 753, सरस्वती विहार, दिल्ली – 110034

आज खेलकूद हमारी जिदंगी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए हैं। क्रिकेट, फुटबाल या टेनिस जैसे खेलों के पीछे तो करोड़ो दीवानों की चाहत देखते बनती है। अपने देश में भी क्रिकेट के ही करोड़ों दीवानें हैं। हांलाकि हाकी व फुटबाल भी कम लोकप्रिय नहीं हैं। इनके अंतर्राष्ट्रीय मैचों में भी स्टेडियम भरा रहता है और यदि खेलों में चोट लग जाए तो?

खेलकूद की दुनिया मे चोट लगना भी बड़ा स्वाभाविक है। अक्सर चोट लगने की घटनाएं समाचार पत्रों में छाई रहती हैं। आज यदि किसी उच्च श्रेणी के खिलाड़ी को चोट लग जाती है तो उसका खेल कैरियर बहुत प्रभावित होता हैं, क्योंकि आज खेलों में बड़ी स्पर्धा बढ़ गई है। और यदि किसी नए खिलाड़ी को चोट लग जाए तो उसके कैरियर पर काफी गंभीर प्रभाव पड़ता है। यह भी संभव है कि उसका खेल कैरियर समाप्त हो जाए।

लेकिन चिकित्सा विज्ञान की नई खोजों ने खिलाड़ियों के लिए बड़ी आसानी कर दी है। अलग–अलग खेलों में शरीर के विभिन्न अंगों में चोट लगती है। जैसे फुटबाल में खिलाड़ी आपस में टकराकर गिरते हैं, उससे उन्हें चोट लग सकती है। फुटबाल में कमर या घुटने के मुड़ जाने जैसी भी चोट लग सकती है। घुड़सवारी करने वालों को रीढ़ की हड्डी में चोट लग सकती है। क्रिकेट में बॉल का लग जाना आम बात है।

खेलों में यदि चोट लग ही जाए तो? इन्द्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल सरिता विहार, नई दिल्ली अस्थि रोग विशेषज्ञ व खेलों में चोट लगने के इलाज के विशेषज्ञ डा० यश गुलाटी कहते हैं कि कुछ वर्षों पहले तक हमारे देश में इन रोगों का ठीक से पता लगाना भी संभव नहीं था। इसलिए संतोषजनक तरीके से इलाज नहीं हो पाता था। लेकिन आज यह सब संभव है। अब बिना किसी चीड़–फाड़ के दूरबीन विधि, यानी आर्थोस्कोपी (इसकी मोटाई केवल चार–पांच मिली मीटर है) से जोड़ों की जांच कर बीमारी का पता कर उसका इलाज भी हम करते हैं।

डा० गुलाटी के अनुसार आर्थोस्कोपी जोड़ों की जांच और इलाज की एक नई और बेहतर पद्धति है जिसका विकास एवं प्रचलन गत कुछ दशकों में हुआ है। देश के कई बड़े अस्पतालों में यह सुविधा उपलब्ध है। दिल्ली का अपोलो अस्पताल इनमें प्रमुख है। डॉ० गुलाटी कहते हैं कि आर्थोस्कोपी विधि से काफी बेहतर परिणाम आते हैं इस लिए इससे पूरा चिकित्सा जगत प्रभावित है।

देश के जाने–माने आर्थोस्कोपी विशेषज्ञ डा. यश गुलाटी कहते हैं कि इस दूरबीन विधि से केवल चार इंच के चीर द्वारा हम दूरबीन से घुटने के सभी आंतरिक हिस्सों की जांच पड़ताल कर लेते हैं। इस विधि से घुटने के सभी हिस्सों की जांच हो जाती है। फिर आवश्यकतानुसार बड़े ही सूक्ष्म औजारों की मदद से घुटने की शल्य क्रिया कर दी जाती है। डा. गुलाटी कहते हैं कि यहीं पर चिकित्सक की विशेषज्ञता सिद्ध होती है क्योंकि हाथ में यंत्र होते हैं और आँख सामने रखे टीवी स्क्रीन पर होती है। दूरबीन में संलग्न बहुत ही सूक्ष्म कैमरे घुटनों की स्थिति को टीवी स्क्रीन पर सामने दिखाता है। इसे मरीज भी देख सकता है चिकित्सक सामने स्क्रीन पर आँखें लगा कर हाथों से घुटने की अंदर की तकलीफों से निजात दिला देता है।

विदेशों से आर्थोस्कोपी का विशेष प्रशिक्षण लेकर लौटे डा. यश गुलाटी कहते हैं कि इस विधि में न तो किसी चीर–फाड़ की आवश्यकता होती है और न ही मरीज को किसी प्रकार का दर्द होता है। रक्त भी इस आपरेशन में नाम मात्र का ही निकलता है, इसलिए अतिरिक्त रक्त की व्यवस्था नहीं करनी पड़ती है। इसलिए आपरेशन के लिए मरीज को केवल आधा या एक दिन ही अस्पताल में रहना पड़ता है। आपरेशन के बाद चलने–फिरने या घुटने मोड़ने की रोगी को पूरी स्वतन्त्रता रहती है। आर्थोस्कोपी को सामान्यता कोई दुष्प्रभाव नहीं होता है। यह विधि घुटने के अन्य परम्परागत आपरेशनों से काफी किफायती,बेहतर एवं विश्वसनीय है। डा. गुलाटी स्वयं हजारों मरीजों को घुटने की इस तकलीफ से छुटकारा दिला सकते हैं।

आर्थोस्कोपी द्वारा कंधे का भी इलाज किया जाता है। कई बार खिलाड़ी का कंधा उतर जाता है। ऐसे में कंधा बाहर की तरफ लटक जाता है। ऐसी स्थिति में आर्थोस्कोपी द्वारा यह देखा है कि वास्तव में चोट कहां लगी है। फिर इसके दो–तीन छोटे–छोटे चीरे लगाकर इसको सही ढंग पर हम ला देते हैं। ऐसा डा. यश गुलाटी का कहना है।

आर्थोस्कोपी द्वारा घुटने के सभी तकलीफों की जांच व इलाज आज संभव है। खासकर चोट के मामले में लेकिन किसी कारण बस घुटना एकदम बेकार हो जाता है। तो आजकल एकदम कृत्रिम रूप नया घुटना लग जाता है। इसे टोटल नी रिप्लेसमेन्ट कहते हैं।

यश गुलाटी कहते हैं कि हालांकि अब खिलाडियों के चोट लगने पर उचित इलाज की पूरी व्यवस्था है। लेकिन हमें उनकों ऐसे प्रशिक्षण दिये जाने चाहिए कि वे चोट के प्रति पूर्णतया सावधान रहें। और खान–पान के स्तर को सुधारें।

❑❑❑

कृषि प्रौद्योगिकी

फलों, सब्जियों के संरक्षण की भाप विधि

सोमदत्त

अभियान, बी–2 वैलकम अपार्टमेण्ट, सेक्टर–9 रोहिणी, दिल्ली–110085

देश में विकसित फलों सब्जियों के संरक्षण की भाप विधि हमारे देश के लिए सर्वथा उपयुक्त तो है पर अभी थोड़ी महंगी है। इस पर कार्य जारी है। आशा करनी चाहिए कि जल्द ही यह स्वयं किसानों द्वारा उपयोग किए जाने के स्तर पर आ जायेगी।

फलों और सब्जियों को नष्ट कर डालने वाला "फ्रूटफ्लाई" नामक कीट सही मायनों में हमारे किसानों का दुश्मन ही है। इसके उत्पात से हमारे निर्यात को काफी झटका लगा है, कई देशों ने हमारे देश से फल सब्जियां मँगाना बंद कर दिया है।

इस कीट द्वारा होने वाले नुकसान को कम करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इसके लिए भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय ने एक नई प्रयोगशाला की स्थापना की है। इस प्रयोगशाला में फलों व सब्जियों को सभी विनाशकारी कीट पतंगों से रोगमुक्त करा कर बिक्री के लिए उपलब्ध कराने से सम्बंधित विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। आशा है कि इस संस्थान के प्रयत्नों से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में फल एवं सब्जियों के मामले में देश की खोई प्रतिष्ठा को दोबारा हासिल किया जा सकेगा। डा. पी. लाल के नेतृत्व में यह नई प्रयोगशाला भारतीय अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली परिसर में सन् 1996 से कार्यरत है।

फलों व सब्जियों को कीटरहित करने के लिए विकसित की गई–तकनीक साफ सुथरी एवं रसायन मुक्त है। इस तक़नीक में किसी रसायन का उपयोग नहीं किया जाता। इस तकनीक द्वारा उपचारित फल एवं सब्जियां न केवल हमारे स्वास्थ्य के लिए उपयोगी बनी रहती हैं बल्कि पर्यावरण के लिए भी निरापद हैं।

यह तकनीक सिर्फ पानी से उत्पन्न वाष्पीय ताप पर आधारित है। इसमें उपयोग की जाने वाली मशीन में पानी भर दिया जाता है तथा मशीन को चालू कर दिया जाता है। जैसे ही मशीन में पानी का वाष्पीकरण शुरु होता है, अच्छी गुणवत्ता वाले एक संवेदी के जरिए नमीयुक्त वाष्प फलों, सब्जियों, फूलों आदि से होनो वाले वाष्पीकरण को नियंत्रित करती है। वाष्पीकरण का नियंत्रण मशीन में लगे "माइक्रोकंप्यूटर" द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया मे फलों तथा सब्जियों की उपरी सतह पर पानी की तह सी बन जाती है जो इनसे स्वतः होने वाले वाष्पीकरण को रोकती है। भाप या वाष्प की गति तेज होने के कारण फल सब्जियां चमकने लगती है। अर्थात इनकी उपरी सतह वाष्प से अच्छी तरह धुल जाती है तथा ये सभी काफी आकर्षक हो जाती है।

साथ ही साथ पानी के वाष्पीकरण से ऊपरी तापमान बढ़ने से आर्द्रता भी बढ़ जाती है। यह वातावरण जहां इनके लिए अनुकूल होता है, फलों सब्जियों व फूलों में

लगे कीटाणुओं के लिए घातक होता है। इस प्रकार यह मशीन वाष्पीकरण के सिद्धान्त पर कार्य करती है। चूंकि वाष्पीकरण में तापमान तेजी से बढ़ता है इसलिए अन्य विधियों की तुलना में यह विधि ज्यादा प्रभावी और सार्थक है।

इस अत्याधुनिक प्रयोगशाला के निदेशक डा. बी. लाल के अनुसार यह तकनीक शीघ्र ही काफी लोकप्रिय हो जाएगी। परीक्षणों के नतीजे बहुत ही सफल हैं। अभी तक 45 परीक्षण किए जा चुके हैं जिनमें 9 परीक्षण आम की 'एलफान्सो', 'चौसा', 'बंगनपल्ली', 'दशहरी', 'केसर', 'मलिका', 'नीलम' तथा 'तोतापुरी' किस्मों पर किए गए है। ये सभी किस्में हमारे देश के विभिन्न हिस्सों से लाई गई, उनका उपचार किया गया और पाया गया कि ये फ्रूट—फ्लाई संक्रमण रहित हो गई हैं। यही नहीं अन्य कीट—पतंगों, फफूंदी आदि के प्रभाव से भी इन्हें मुक्त पाया गया। आम की इन सभी किस्मों के फलों की भौतिक, रासायनिक स्थिति ज्यों की त्यों पाई गयी अर्थात स्वाद में कोई अंतर नहीं हुआ। उपचार के बाद आम के फलों की शैल्फ लाइफ का सात से दस दिन तक बढ़ी पाई गई। तकनीक की एक और विषेशता यह है कि आम के फलों में भंडारण के दौर होने वाले रोगों का प्रकोप उपचार बाद खत्म हो जाता है।

हालांकि अभी तक अनुसंधान सिर्फ आम, पपीता, सेब आदि पर किये गये हैं लेकिन डा. लाल का कहना है कि यह तकनीक अन्य फलों व सब्जियों पर भी इसी तरह सफल होगी। इसे हमारे देश की स्थितियों के लिए अत्यन्त सार्थक तकनीक बताया जा रहा है।

इस तकनीक द्वारा उपचारित फूलों, फलों एवं सब्जियों में रासायनिक पदार्थों अथवा कीटनाशियों के अवशेष की मात्रा कम हो जाती है जो हम स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। उपचारित फलों एव सब्जियों में एक चमक पैदा हो जाती है क्योंकि उपचार के दौरान इन्हें कई बार धोया जाता है। मशीन चालक के स्वास्थ्य को कोई खतरा नहीं होता न ही इस विधि में इस्तेमाल किए जाने वाला पानी तालाबों, नदियों, पोखरों आदि के पानी को प्रदूषित करता है।

यह विधि उन देशों के लिए ज्यादा लाभप्रद है जिनमें विभिन्न रसायनों के इस्तेमाल पर प्रतिबन्ध लगा है। फल एवं सब्जियां सभी सात से दस दिन तक सामान्य तापमान पर रखी जा सकती है।

अपनी इन सभी खूबियों के बावजूद इस विधि में अभी कुछ खामियां हैं। इसमें उपचार में समय ज्यादा लगता है, उपयोग की जाने वाली मशीन विद्युत चालित है तथा महंगी है। करीब 1.5 टन क्षमता वाली मशीन की कीमत 2.2 करोड़ रुपये है। मशीनों को लगाने के लिए सुविकसित प्रयोगशाला की जरूरत होती है। मशीन में अच्छी गुणवत्ता वाले महंगे आधुनिकतम 'सेन्सर' तथा माइक्रोकंप्यूटर लगे हैं।

इसके अलावा संचालक को उपचार की जाने वाली सभी सब्जियों फलों आदि की तापमान सहने की क्षमता का ज्ञान होना अति आवश्यक है। फलों व सब्जियों में कटे—फटे निशान नहीं होने चाहिए वरना यह विधि सफल नहीं होती। कभी फलों सब्जियों आदि की भौतिक रासायनिक अवस्था का पूर्ण ज्ञान तथा उनके बारे में अन्य जानकारी का पहले से होना भी तकनीक की सफलता के लिए अति आवश्यक है।

❑❑❑

स्वास्थ्य

छुट्टी मनाने के लिये स्वस्थ रहना जरूरी

दीप्ति भटनागर

अभियान, बी–2 वैलकम अपार्टमेण्ट, सेक्टर–9 रोहिणी, दिल्ली–110085

सैर का आनंद उठाने के लिए सबसे जरूरी तैयारी है आपकी अच्छी सेहत। सैर की भागदौड़ में सेहत को अच्छा बनाए रखने के लिए जरूरी हैं कुछ सावधानियां।

अपनी रोज मर्रा की जिन्दगी में नौकरी और घरेलू कामों के गिर्द भागते इंसान समय–समय पर विश्राम तलाशते हैं। तब उन्हें कुछ ऐसे क्षणों की अपेक्षा होती है, जिन्हें वह चिन्तामुक्त होकर अपने परिवार और प्रियजनों के साथ बेखटके जी सके। इसके लिए किसी पर्यटन स्थल के रमणीक और रोमांचकारी वातावरण से अच्छा भला क्या हो सकता है? और आर्थिक बंधन न होने पर जो अपना अवकाश विदेशों में बिता सकते हैं उनका तो कहना ही क्या?

विदेशों में अवकाश की कल्पना बड़ी मधुर है, नए–नए स्थान, नए–नए लोग, खाना पीना किसे नहीं लुभाता? पर इसका आनंद तभी मिल सकता है जब आपकी सेहत आपका साथ दे रही हो।

यात्रा में नये स्थान पर खान–पान और जलवायु परिवर्तन का सबसे अधिक प्रभाव स्वास्थ्य पर ही पड़ता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि यदि स्वास्थ्य बिगड़ जाय तो छुट्टियों का मजा किरकिरा होते देर नहीं लगती। परन्तु स्वास्थ्य संबंधी छोटी–छोटी बातों का ख्याल रख कर इन परेशानियों से बचने का उपाय किया जा सकता।

यात्रा पर निकलने से पहले जरूरी है कि गंतव्य स्थान की आबोहवा के विषय में पूरी जानकारी पहले से हासिल कर ली जाए। संभव है विदेश में यात्री वहां फैलने वाले कुछ आम रोगों का शिकार हो जाएं। इसलिए इन रोगों से बचाव का टीका लगवाकर ही यात्रा पर निकलना उचित है। यही नहीं, अवकाश के लिए घर से निकलने से पूर्व हर व्यक्ति को अपनी खास दवाओं को भी अपने साथ रखना चाहिए। डाक्टर का नुस्खा, किसी खास दवा या फिर इंजेक्शन का हिदायतनामा रखा जाना भी जरूरी है, जिससे वायुयान में या विदेश में जांच पड़ताल के दौरान किसी प्रकार की परेशानी का सामना न करना पड़े इसके अतिरिक्त यात्रा की तैयारी यात्रा की तारीख से करीब एक दो दिन पहले ही पूरी कर लेनी चाहिए जिससे आखिर समय की भागदौड़ से बचा जा सके। इससे यात्री घर से निकलने से पूर्व एकदम तरोताजा रह सकते हैं। इन अवकाश के मूल्यवान क्षणों का कुछ समय केवल थकान उतारने में ही बीत जाना स्वाभाविक है।

यात्रा से समय वायुयान में खाली पेट रहना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इसलिए वहां सही मात्रा में खाना और पानी पीना आवश्यक है। जहां तक हो सके वायुयान में शराब और काफी जैसे पेय से परहेज करना चाहिए। फलों के रस और सादे पानी के सेवन की सर्वथा उचित है। इसके अलावा यात्रा के बीच के पड़ावों पर वायुयान से उतरकर खुली हवा में टहलना भी सेहत के लिए लाभकारी होता है। इससे पेट तो हल्का रहता ही है, आगे की यात्रा के लिए ताजगी भी मिलती है।

अपने गंतव्य पर पहुंचने के बाद भी यात्रियों को अनेक सावधानियां बरतनी चाहिए। चूंकि हर स्थान का खाना पानी हर व्यक्ति को रास नहीं आता, इसलिए जहां तक हो सके सैलानियों को नए स्थान पर बन्द बोतलों में उपलब्ध शुद्ध पानी ही पीना चाहिए इसी तरह भोजन भी किसी अच्छे रेस्तरां या होटल में खाना चाहिए।

देश हो या विदेश—स्वस्थ और आनन्दमय अवकाश के क्षण बिताने के लिए स्वच्छ और खुले वातावरण में विचरण करना तन और मन दोनों को ही प्रफुल्लित करता है। विदेश में स्वास्थ्य संबंधी परेशानी होने पर होटल के प्रबंधकों की मदद से यात्री वहां की स्वास्थ्य सेवाओं से संपर्क कर अपने उचित इलाज का प्रबंध करवा सकते हैं।

अवकाश के क्षणों का पूरा आनन्द उठाने के लिए अवकाश बिताने की सही रुपरेखा पहले से तैयार कर लें। इससे आपको असंतोष का सामना नहीं करना पड़ेगा।

❑❑❑

घोंघे से कैंसर का इलाज

क्या घोंघें भी बच्चों में ब्लड कैंसर रोकने में कुछ मदद कर सकते हैं, जी हां। इंडियन इंस्टीट्यूट आफ केमिकल बायोलाजी के वैज्ञानिक घोघे के रक्त से ऐसा पदार्थ प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं, जिससे बच्चों में प्रमुख रूप से पाये जाने वाले ब्लड कैंसर एक्यूट लिम्फोब्लास्टिक ल्यूकेमिया (ए.एल.एल.) पर काबू पाने में मदद मिलेगी। पूर्वी भारत मे पाये जाने वाले घोंघे की एक प्रजाति "अचातिना फ्यूलिका" के रक्त से प्राप्त प्रोटीन अचातिनिन में विशेष शुगर मालीक्यूल्स को नियंत्रित करने की अद्‌भुत क्षमता है। ये मालीक्यूल्स ब्लड कैंसर के रोगी की सफेद रक्त कणिकाओं में मिल जाते हैं। कई वर्षो से इस विषय पर शोध कर रही डाक्टर चित्रा मंडल ने बताया कि अचातिनिन के मरीजों पर किये गये अब तक के प्रयोग उत्साहवर्धक रहे हैं। परीक्षण के दौरान यह बात सिद्ध हो गयी कि इसमें कोशिकाओं को आपस में जोड़े रखने की काफी क्षमता है।

(सम्प्रेषण)

हिन्दी की सामर्थ्य और उसका भविष्य

प्रो० रामचरण मेहरोत्रा

पूर्व कुलपति एवं एमेरिटस प्रोफेसर, रसायन विज्ञान, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

हिन्दी एक अत्यन्त सुगम्य और ध्वन्यात्मक भाषा है। हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा ही नहीं वरन् संसार की प्रमुख भाषाओं में से एक है। अमरीका के वाशिंगटन विश्वविद्यालय के विद्वान प्रोफेसर सिडनी कुलबर्ट के निर्देशन में किए गए एक गहन अध्ययन के आधार पर इस विषय पर जो निष्कर्ष निकाला गया उसे "वर्ल्ड एलमनायक एण्ड बुक ऑफ फैक्ट्स" में सम्मिलित किया गया है। इसके अनुसार संसार में 15.2 प्रतिशत लोग चीन समूह की भाषाएं बोलते हैं 7.6 प्रतिशत अंग्रेजी, 6.4 प्रतिशत हिन्दी, 6.1 प्रतिशत प्रतिशत स्पैनिश, 4.9 प्रतिशत रूसी और 3.5 प्रतिशत लोग अरबी भाषा बोलते हैं। परन्तु इन ऑकड़ों में मारीशस, टोबेगो, ट्निीडॉड, सूरीनाम, फिजी, ब्रिटिश गयाना आदि के वे लोग सम्मिलित नहीं हैं जो प्रधानतः हिन्दी बोलने वाले हैं। सन् 1918 में इन्दौर के ऑठवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन में महात्मा गांधी द्वारा व्यक्त किए गए विचार के अनुसार तो "पाकिस्तान में बोली जाने वाली उर्दू भाषा भी हिन्दी का एक रूपान्तर है जिसमें केवल लिपि का अन्तर है और साधारण हिन्दी से अरबी या फारसी स्रोत् के शब्द कुछ अधिक हैं"। यदि इन सब को सम्मिलित कर लिया जाए तो हिन्दी बोलने वालों की प्रतिशतता कम से कम अंग्रेजी बोलने वालों की प्रतिशतता से बहुत बढ़ जाएगी– अंग्रेजी तो केवल ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड जैसे देशों की भाषा है जिनमें से कनाडा में तो अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी भाषा के प्रभुत्व के आधार पर 3-4 वर्षों पहले बिल्कुल विभाजन ही हो गया था। इतने लोगों और देशों की प्रमुख भाषा होते हुए भी भारत के एक प्रतिशत से कम अंग्रेजीदाँ प्रभावशाली लोग हिन्दी भाषी प्रदेशों में अंग्रेजी लादे हुए हैं और अपने (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम के अन्तर्गत आमंत्रित भाषण का सारांश) प्रभुत्व में ठेस लग जाने के डर के कारण इन क्षेत्रों के भीतर अंग्रेजी की अनिवार्यता सिद्ध करने में स्वार्थवश जुटे हुए हैं। इसमें तो सन्देह नहीं है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विज्ञान की भाषा अंग्रेजी हो गयी है।

अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान की कांफ्रेसों में जापानी या चीनी भी प्रायः टूटी–फूटी अंग्रेजी में अपने विचार प्रस्तुत करने में लज्जा का अनुभव नहीं करते जिसके विपरीत हमारे देश के अंग्रेजी–समर्थक देश के अन्दर भी अपनी फर्राटेदार अंग्रेजी भाषा के सामर्थ्य पर गर्व करते हैं और राष्ट्रीय भाषाओं में अपने विचारों को व्यक्त करने वाले ही हीनता की दृष्टि से देखते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने वाले को उच्चतम स्तर की अंग्रेजी अवश्य सीखनी चाहिए, प्रश्न तो केवल उस मानसिकता का है जिसके कारण वह अपने देश में भी अपने केवल अंग्रेजी के ज्ञान के आधार पर श्रेष्ठ कहलाने का प्रयास करते हैं।

प्रसन्नता की बात है कि देश के परतन्त्रता काल तथा उसके बाद की विरोधाभासी परिस्थितियों में भी गद्य एवं पद्य दोनों दिशाओं में हिन्दी साहित्य की प्रगति उत्साहवर्द्धक रही है। यद्यपि अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दियों में हुए संसार की आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक के पुनर्जागरण में हमारा देश परतन्त्रता के कारण सक्रिय योगदान नहीं दे पाया, तथापि वैदिक काल से ही विज्ञान तथा गणित में अंग्रेजी रहने के कारण इस नवीन आधुनिक विज्ञान को ग्रहण करने में हमारे देशवासियों को विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। उदाहरण के लिए बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में प्रकाशित राहुल

सांस्कृत्यायन की पुस्तक "दर्शन–दिग्दर्शन" में भी आधुनिकतम विज्ञान विषयों का इतना सुगम्य वर्णन मुझे पढ़ने को मिला था कि जटिलतम कल्पनाओं को समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं प्रतीत हुई, वरन् मेरे जैसे स्नातक स्तर के विद्यार्थियों को अपने अंग्रेजी माध्यम की पाठ्य–पुस्तकों से भी अधिक सुगमता से समझ में आ गयी। अब जब उस पुस्तक को दुबारा पढ़ता हूँ तो विज्ञान के नवीन ज्ञान को व्यक्त करने के लिए तत्सम, तद्भव एवं देशज–विदेशज–लोकज तीनों पद्धतियों से नए उपयुक्त एवं सरल ग्राह्य शब्दों को गढ़ने की स्वाभाविक क्षमता पर आश्चर्य होता है, जिसकी सहायता से पिछले 5 दशकों में मैं भी रसायन विज्ञान के सहस्त्रों नए शब्द गढ़ चुका हूँ।

स्वतंत्रता के बहुत पहले हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग के सन् 1910 में श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, पण्डित मदन मोहन मालवीय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी एवं श्रीयुत् काका कालेलकर जैसे मनीषियों की दूरदर्शिता से हिन्दी के प्रोत्साहन के लिए स्थापित " हिन्दी साहित्य सम्मेलन" द्वारा किए प्रयासों से हिन्दी की राष्ट्रीय अस्मिता सुरक्षित ही नहीं रही वरन् वह हमारे स्वतंत्रता संग्राम की एक अस्त्र बन गयी थी। सन् 1913 से इलाहाबाद में "विज्ञान परिषद" और लगभग इसी काल से वाराणसी में "नागरी प्रचारणी सभा" द्वारा विज्ञान तथा तकनीक के लिए हजारों नए शब्द गढ़े गए और वैज्ञानिक विषयों पर बहुत उच्च कोटि के साहित्य प्रकाशित किया गया, जिसका केवल एक छोटा सा उदाहरण मासिक 'विज्ञान' पत्रिका का है जो सन् 1915 से आज तक बराबर प्रकाशित हो रही है और जिसके मानद सम्पादक के रूप में 1947 से 1950 तक हिन्दी की विशेष सेवा का अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ।

सन् 1918 में गांधी जी ने इंदौर में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सत्र में दक्षिण भारत में भी हिन्दी के प्रचार–प्रसार का प्रस्ताव रखा और अपने छोटे पुत्र श्री देवदास गांधी तथा स्वामी सत्यदेव को इस कार्य के लिए मद्रास भेजा। इस दिशा में प्राप्त सफलता के आधार पर सन् 1935 में महात्मा गांधी ने वर्धा में "राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" की स्थापना की जिसके प्रयासों से हिन्दी का राष्ट्र के कोने–कोने में सुगमता से विस्तार होता गया और हिन्दी राष्ट्रीयता की एक सर्वमान्य प्रतीक बन गई।

यद्यपि अनगिनत उत्साही मनीषियों और अनेक संस्थाओं के प्रयत्नों से विज्ञान तथा तकनीक के विषयों पर उच्च कोटि के साहित्य का सृजन हो चुका था, परन्तु पठन–पाठन का माध्यम बनाने के लिए सन् 1961 में भारत सरकार द्वारा "वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग" का गठन किया गया जिसके प्रथम अध्यक्ष प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० दौलत सिंह जी कोठारी थे। यद्यपि डॉ० रघुबीर जैसे संस्कृत के विद्वानों द्वारा संस्कृत के माध्यम से बहुत बड़ी संख्या में तकनीकी शब्दों का गठन किया जा चुका था, यद्यपि इस आयोग ने इस ओर अधिक व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाया जिससे हिन्दी के माध्यम से पढ़े वैज्ञानिकों को आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में विज्ञान के विषयों को समझने में अधिक कठिनाई का सामना न करना पड़े। रसायन विज्ञान के क्षेत्र में इसका एक सरल उदाहरण प्रायः सब लोग दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। कुछ विद्वानों का सुझाव था कि दीर्धकाल से आवष्कृत तत्वों जैसे ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, स्कैण्डियम, मेण्डेलेवियम आदि के नाम भी बदल कर औषजन या नलजन आदि कर दिए जाएँ। बहुत वादविवाद के बाद यह बात सर्वमान्य हो पायी कि अधिकतर तत्वों का नाम तो इनके आविष्कारकों ने अपनी पसन्द से रखे हैं। जैसे बालक के जनक माता–पिता अपने बच्चों को जो नाम देते हैं वे सर्वमान्य रहते हैं। इसी तरह से गम्भीर, विचार –विमर्श के बाद हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दों को गढ़ने की एक उदार नीति बनाई गयी और शीघ्र

ही लाखों नए शब्द गढ़ लिए गये जिससे हिन्दी में प्रकाशित वैज्ञानिक साहित्य में एकरूपता भी आ गयी और उनकी स्वीकारिता में भी वृद्धि हुई। सन् 1968-69 में पाँचों हिन्दी प्रधान प्रदेशों में अकादमियों के गठन के बाद अब तो लगभग पारम्परिक विज्ञान के लगभग सभी विषयों पर उच्चतम स्तर की पाठ्य–पुस्तकें उपलब्ध हैं। शोध–स्तर पर भी विज्ञान परिषद इलाहाबाद द्वारा एक "अनुसंधान पत्रिका" कई दशकों से प्रकाशित हो रही है। हिन्दी की सामर्थ्य–सिद्धि के लिये राजस्थान ग्रंथ अकादमी ने "रसायन–समीक्षा" नामक पत्रिका का प्रकाशन सफलता से आरम्भ किया था, इसका उद्देश्य था कि अमरीका से प्रकाशित "केमिकल रिव्यूज" की ही भाँति रसायन विज्ञान के आधुनिकतम विषयों पर समीक्षाएं प्रकाशित की जाएं जिनमें सब संदर्भों सहित शोधकर्त्ताओं को अपने अपेक्षित विषय की कुल सामग्री एक स्थान पर ही मिल जाए। "रसायन–समीक्षा" को और अधिक उपयोगी और ग्राह्य बनाने के लिए तो यह अन्त में दी गई संदर्भ–सूची हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में छापी जाने लगी जिससे पाठकों को तनिक भी कठिनाई न हो–सच्चाई तो यह है कि इस अंतिम निर्णय से तो इस पत्रिका की विदेशों में भी कुछ माँग होने लगी क्योंकि शोधकर्त्ता के लिए संदर्भ–सूची का महत्व सर्वोपरि होता है। हिन्दी के उच्चतम सामर्थ्य का प्रमाण इससे अधिक क्या हो सकता है ?

दुख की बात है कि यद्यपि पारस्परिक मौलिक विज्ञान की लगभग समस्त शाखाओं में उच्चतम कोटि का इतना साहित्य उपलब्ध हो गया है कि किसी भी स्तर के पठन–पाठन में हिन्दी माध्यम सुगमता से अपनाया जा सकता है– आवश्यकता केवल मानसिकता की है। हर्ष की बात है कि इधर कुछ वर्षो से हमारा ध्यान अभियांत्रिकी, तथा चिकित्सा शास्त्र की ओर भी गया है। साथ ही अभी अगस्त 1998 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के नए अध्यक्ष ने एक समिति बुला कर हमारा ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया है कि पिछले कुछ दशकों में तीव्रता से प्रगति किए विषयों जैसे कम्प्यूटर टेक्नोलोजी, बायो टेक्नोलोजी की शब्दावली की ओर तो कोई ध्यान ही नहीं दिया गया है। प्रसन्नता है कि वर्तमान शिक्षा मंत्री ने हमारे इन प्रयासों की सराहना की है।

हिन्दी की सामर्थ्य के इतने संतोषप्रद वर्णन के बाद जब हिन्दी के भविष्य की ओर देखते हैं तो पिछले एक–दो दशकों से निराशा का ही आभास होता है। यह ठीक है कि हमने हिन्दी के प्रचार के लिए तीन–चार अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी सफलता से आयोजित कर लिए। अभी 24 सितम्बर 1998 को ही हमारे प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र परिषद (यू.एन.ओ.) को हिन्दी में सम्बोधित किया। इससे लगभग 20 वर्ष पहले देश के विदेश मंत्री के रूप में पहली बार हिन्दी में सम्बोधित करके उसकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिए थे शायद कुछ प्रयत्न तो उस समय यह भी हुए थे कि यू.एन.ओ. की वर्तमान 5 विभिन्न भाषाओं के अतिरिक्त "हिन्दी" को भी मान्यता दी जाए जिससे हिन्दी के उद्‌बोधनों का तुरन्त अनुवाद करके अन्य पाँच भाषा वालों को भी वह साथ ही साथ समझ में आ सके।

परन्तु इस प्रकार के प्रतीकों से ही हिन्दी का भविष्य नहीं आँका जा सकता। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक हिन्दी का हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में इतना महत्व था कि हिन्दी हमारी अस्तिमा की प्रतीक बन गयी थी। हर्ष है कि संविधान में हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा माना भी गया। परन्तु उसके बाद विभिन्न प्रकार के स्वार्थो के आधार पर सन् 1965 तक हिन्दी का ऐसा मुखर विरोध आरम्भ हुआ कि उसे "सम्पर्क भाषा" के रूप में स्वीकार किया जाने लगा और अब तो यह बात हो

रही है कि राष्ट्रभाषा मानी जाने वाली "हिन्दी" को सब क्षेत्रीय भाषाओं के समकक्ष ही देश की 15-16 राष्ट्रीय भाषाओं में एक भाषा मान लिया जाए।

बाबू पुरूषोत्तमदास टण्डन जैसे हिन्दी समर्थक केवल इससे संतुष्ट होकर नहीं बैठ गए कि भारतीय संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सिद्धान्त रूप से स्वीकार करके इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए 15 वर्ष का समय निर्धारित किया गया। याद आता है सन् 1953 में इलाहाबाद की भीषण गरमी में साइकिल रिक्शा से टण्डन जी का मेरे जैसे क्षुद्र अध्यापक के घर पर "भौतिक रसायन" की स्नातक स्तर की पुस्तक के लेखन के लिए आना जिसको उन्होंने उत्तर प्रदेश साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित कराया।

स्वाभाविक ही था कि ऐसे मनीषियों के प्रोत्साहन और अथक परिश्रम के फलस्वरूप सन् 1965 तक स्नातक स्तर तक तो समाज विज्ञान और भौतिक विज्ञानों की समस्त शाखाओं का साहित्य हिन्दी में उपलब्ध हो गया था। 1968-69 से 5 साहित्य अकादमियों की सहायता से तो इसे कार्य को विशेष बल मिला है, परन्तु शासन एवं शिक्षकों की ढील के कारण कम से कम विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं चिकित्सा शास्त्र में हिन्दी पठन–पाठन का माध्यम पूर्ण रूप से नहीं बन पायी है।

हिन्दी भाषा ने अपने सामर्थ्य से वैज्ञानिक विषयों के लाखों नए शब्द गढ़ कर और उच्चतम साहित्य उपलब्ध करवा के पठन–पाठन में हिन्दी को अपनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है, परन्तु अपनी संकीर्ण मानसिकता के कारण हम इस दिशा में व्यवहारिक प्रगति के स्थान पर शायद पिछड़ते ही जा रहे हैं। इसके बहुत से कारण हो सकते हैं: परन्तु मुख्य कारण तो यह प्रतीत होता है कि समाज अपनी नई पीढ़ी को अपने अर्जित ज्ञान द्वारा राष्ट्र सेवा की ओर प्रेरित न करके अमरीका ऐसे धनवान देशों को प्रवेश के लिए अधिक प्रोत्साहित करना चाहता है, जिसके लिए अंग्रेजी का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक होता है। यद्यपि बहुत नगण्य प्रतिशत प्रत्याशी अपने इस ध्येय में सफल हो पाते हैं, तथापि स्कूलों में बहुत निचली कक्षाओं में अंग्रेजी की पढ़ाई का रिवाज शुरू होता जा रहा है। भाषाविदों के मतानुसार अपनी मातृभाषा को आसानी से सीख लेने के बाद किसी भी दूसरी भाषा का ज्ञान अधिक सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। अंग्रेजी की ओर इस प्रकार से बढ़ते हुए मोह से तो अभाग्यवश हम स्वतंत्रता के पहले युग की ओर पीछे जा रहे हैं, जब 15-16 साल की उम्र तक विद्यार्थी का लगभग सम्पूर्ण समय अंग्रेजी सीखने में चला जाता था और अन्य विषयों के लिए थोड़ा सा समय ही बचता था। तब तो यह है जटिल विषयों का ज्ञान अपनी मातृभाषा में पठन एवं मनन से अधिक सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। यह बात मैंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मिर्जापुर (1961) में विज्ञान–सत्र के अध्यक्ष पद से व्यक्त की थी कि विदेशी भाषा के माध्यम से हमारी ज्ञानार्जन गति और क्षमता बहुत कम हो जाती है। विज्ञान तथा तकनीक में धीमी प्रगति के कारण हमारी नयी पीढ़ी में विदेश प्रवास की प्रवृति बढ़ रही है, जिसके लिए अंग्रेजी के प्रति मोह में वृद्धि हो रहीं है और फलतः विज्ञान तथा तकनीक में हम अपनी भाषाओं से ज्ञान प्राप्त करने वाले अन्य समृद्ध देशों के समकक्ष नहीं बन पाते। स्पष्ट है कि इस त्रुटिपूर्ण मानसिकता को छोड़े बिना न तो राष्ट्रभाषा हिन्दी की अनूठी सामर्थ्य के सहारे तीव्र–गति से ज्ञान–वृद्धि हो सकेगी और न देश समृद्धशाली देशों की पंक्ति में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेगा।

❑❑❑

हिन्दी सेवी रसायनज्ञ

प्रो0 ओम प्रभात अग्रवाल

भारतीय विज्ञान कांग्रेस सम्मेलन के 86वें अधिवेशन हेतु रसायन खण्ड का अध्यक्ष डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल को निर्वाचित किये जाने पर विज्ञान परिषद प्रयाग की ओर से डॉ० अग्रवाल को हार्दिक बधाई। महर्षिदयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक में रसायन के प्रोफेसर डॉ० अग्रवाल हिन्दी के प्रति पूरी तरह समर्पित है। 28 अक्टूबर 1939 को इलाहाबाद में जन्में डॉ० अग्रवाल ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी. एस–सी. (1957) एम.एस–सी. (1959) तथा डी.फिल. (1962) की उपाधियाँ ग्रहण की। तत्पश्चात कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा से 1962 में अपने कैरियर की शुरूआत करते हुए रोहतक विश्वविद्यालय (बाद में महर्षिदयानन्द विश्वविद्यालय) में क्रमशः रीडर व प्रोफेसर बने। आपने यहाँ के रसायन विभाग के अध्यक्ष पद को भी 1989 से 1991 तक सुशोभित किया।

"पोलेरोग्राफिक स्टडीज ऑफ सम ट्रांजीसन एलीमेण्टस" विषय पर आपको डी.फिल. उपाधि प्रदान की गई थी किन्तु आपने अधिकांश समय "एम्पेरोमेट्रिक डिटर्मिनेशन ऑफ मेटल्स" पर अनुसंधान करने में लगाया। डॉ० अग्रवाल ने विभिन्न राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनारों, सम्मेलनों में भाग लेकर तथा चेयरपर्सन के रूप में अपना योगदान दिया। विभिन्न स्थानों पर कई लोकप्रिय व्याख्यान भी दिये। विभिन्न राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल्स में डॉ० अग्रवाल के 60 से अधिक शोधपत्र एवं समीक्षाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। आप द्वारा लिखित स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर की तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं इनमें से "केमिकल बॉडिंग" पुस्तक के चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

डॉ० अग्रवाल "एशियन जर्नल्स ऑफ केमिस्ट्री" "एशियन जर्नल्स ऑफ केमिस्ट्री रिव्यूज" "रिसर्च जर्नल ऑफ कैमिस्ट्री एण्ड इन्वायर्नमेन्ट" "भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका" के सम्पादकीय मण्डल के सदस्य हैं। डॉ० अग्रवाल विभिन्न वैज्ञानिक संगठनों, परिषदों के आजीवन सदस्य हैं। विज्ञान परिषद प्रयाग के आजीवन सदस्य होने के साथ–साथ आप परिषद से हिन्दी में विज्ञान लेखन के क्षेत्र में दीर्घकालीन सेवा के लिये सम्मानित हो चुके हैं। आपको प्रतिष्ठित डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

हिन्दी में एक सौ से अधिक लोकप्रिय विज्ञान आलेखों के प्रकाशित होने के अतिरिक्त आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा अपने संयोजकत्व में कई हिन्दी, वैज्ञानिक संगोष्ठियाँ आयोजित कर हिन्दी तथा विज्ञान दोनों की अविस्मरणीय सेवा की है। इनमें से कुछ संगोष्ठियाँ उल्लेखनीय हैं–

1. "विज्ञान की उच्च शिक्षा का माध्यम अविलम्ब हिन्दी एवं प्रादेशिक भाषाएं हो जानी चाहिए"
(3 मई 1988 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा इलाहाबाद में आयोजित)
2. "संकुल रसायन : विभिन्न आयाम"
(7-8 अप्रैल 1989 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा विज्ञान परिषद प्रयाग में आयोजित)
3. "द्रव्यों की ठोसावस्था"
(9-10 मार्च 1991 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा रोहतक में आयोजित)

निःसन्देह, डॉ० अग्रवाल की हिन्दी के प्रति जो निष्ठा है, वह सराहनीय है। भारतीय विज्ञान कांग्रेस सम्मेलन के 86वें अधिवेशन के अवसर पर रसायन खण्ड के अध्यक्ष चयनित होने पर न सिर्फ डॉ० अग्रवाल का सम्मान हुआ है बल्कि हिन्दी की प्रतिष्ठा एवं विज्ञान परिषद प्रयाग के गौरव में भी वृद्धि हुई है।

प्रस्तुति : डॉ० दिनेश मणि, सम्पादक 'विज्ञान'

❑❑❑

पुस्तक समीक्षा

रामचरितमानस में वैज्ञानिक तत्व

समीक्षक: **तुरशन पाल पाठक**, पूर्व वैज्ञानिक एवं
सम्पादक: भारत की सम्पदा–वैज्ञानिक विश्वकोश, निस्काम, (C.S.I.R.) नई दिल्ली
सी 4 एच/56 जनकपुरी, नई दिल्ली– 110058

***रामचरितमानस में वैज्ञानिक तत्व, लेखक:** डॉ० विष्णु दत्त शर्मा **प्रकाशक:** शोध प्रकाशन अकादमी, 5/48 वैशाली, गाजियाबाद (उ.प्र.) **मुद्रक:** त्रिवेणी ऑफसेट नवीन शाहदरा, दिल्ली– 32, एकमात्र वितरक: किताब घर, 24 अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली– 110002, वर्ष 1998 पृष्ठ– 320 सचित्र, मूल्य: 250/ रूपये केवल।*
मूलतः यह पुस्तक प्रो० रमाशंकर तिवारी (पूर्व प्राचार्य, साकेत कालेज, फैजाबाद) के निर्देशन में अवध विश्व विद्यालय, फैजाबाद द्वारा विद्यावारिधि उपाधि से अलंकृत शोध ग्रंथ है।

रामचरितमानस को आम आदमी रामायण के नाम से जानता है तो एक तरह से आदर्श जीवन के मापदण्डों के उल्लेखों से ओतप्रोत ऐसी कथा है जिसे संसार का प्रत्येक मानव चाहे वह अमीर हो या गरीब लगभग समान भाव से सुनता, पढ़ता और अंगीकार करने की सोचता है। इसे आप रोजमर्रा के दैनिक बाजार में घटती बढ़ती कीमतों को मापने के सुपर बाजार की तरह मानव जीवन और उसके चरित्र को "मानक" कह सकते हैं। सामान्य व्यक्ति तो इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता है और इसमें विज्ञान अथवा वैज्ञानिक तत्वों के विद्यमान होने की कल्पना भी नहीं करता है। उसके लिए तो सारे कौतूहल केवल ईश्वर के प्रताप के अलावा अन्य कुछ भी नहीं है।

आज का युग अन्य बातों के अलावा वैज्ञानिक युग भी कहलाता है। विज्ञान ने लोगों के जीवन और उनके विचारों में एक नयी जान पैदा कर दी है। दुनिया में रहने–सहने, खाने–पीने, बोलने–चालने से लेकर आचार–विचारों को भी एक नई दिशा दे दी है। अतः आज के संदर्भ में रामायण का पठन–पाठन करते समय उसमें वर्णित घटनाओं को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का विचार आना भी स्वाभाविक है। इस संदर्भ में डॉ० विष्णु दत्त शर्मा द्वारा रामचरितमानस का शोधपरक दृष्टि से अध्ययन किया जाना एक समीचीन सराहनीय कार्य है जो हमें यह मानने पर मजबूर कर देता है कि हमारे पूर्वज विज्ञान के क्षेत्र में भी बहुत आगे थे।

मानस में उल्लेख है तैरने वाले पत्थरों का, सूर्योदय से पूर्व मूर्छा दूर करने वाली जड़ी–बूटियों का, शिव जी के नेत्र से निकली कामदेव को भस्म करने वाली किरण का, हजारों योद्धाओ द्वारा धनुष को उठाने के असफल प्रयास तथा श्रीराम द्वारा उसे अकेले ही तोड़ देने का, तथा पुष्पक विमान का अकेले ही मानव रहित लौट आने आदि का डॉ० शर्मा जी ने इन घटनाओं को जो आज की वैज्ञानिक उपलब्धियों से मेल खाती हैं मानस में इनके वैज्ञानिक पहलुओं का सफल वैज्ञानिक पक्ष प्रस्तुत किया है।

विज्ञान की विधाओं की दृष्टि से देखें तो डॉ० शर्मा जी को मानस में आज की विद्यमान वैज्ञानिक विधाओं में से भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, आयुर्विज्ञान , भू–विज्ञान, अपराध विज्ञान, मनोविज्ञान तथा आनुवंशिकी जैसी अनेक विधाएं दृष्टिगोचर हुई हैं। संभवतः इसीलिए डॉ० शर्मा जी ने अपने इस ग्रंथ को इन्हीं के अनुसार लगभग नव अध्यायों में विभक्त किया है जिसमे पहला अध्याय विषय परिचय और दूसरा अध्याय साहित्य और विज्ञान से सम्बन्धित है और शेष सात अध्याय क्रमशः मानस में भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, आयुर्विज्ञान, आनुवंशिकी, मनोविज्ञान, अपराध विज्ञान और भू–विज्ञान से सम्बन्धित है। इन अध्यायों के बाद ग्रंथ में आठ परिशिष्ट दिए गये हैं जो क्रमशः भ्रांति भंजन, वैदिक कालीन वैज्ञानिक, श्रृंखला प्रतिक्रिया, अट्ठारह पुराण, समयान्तराल सारणी, रासायनिक तत्व, परमाणु घटकों का स्थिरांक और रेडियोधर्मी तत्वों का अर्धआयु काल आदि से सम्बन्धित है। इन परिशिष्टों के बाद हिन्दी अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली और अंत में संदर्भिका दी गई है जो इस ग्रंथ के अध्ययन स्रोतों के अध्ययन के लिए प्रबुद्ध पाठकों के लिए उपयोगी है। जैसा ऊपर शिव के नेत्र से निकली किरण से कामदेव के भस्म करने का उल्लेखमानस में किया गया है इसका अध्ययन करते हुए डॉ० शर्मा जी इस घटना की तुलना जर्मनी में विकसित "शिव लैसर" नाम के अदृश्य प्रकाश–पुंज से करते हैं यह बात कभी आश्चर्य लगती होगी लेकिन आज एकदम सत्य है और जनमानस के सामने एक वैज्ञानिक उपलब्धि के रूप में विद्यमान है, ठीक इसी तरह चालक रहित विमान भी आज की वैज्ञानिक सच्चाई है जिसे मानस में मानवरहित विमान के वापस आने के उल्लेख के समान कहा जा सकता है। मानस में कई सुखद अवसरों पर देवताओं द्वारा पुष्पवर्षा किए जाने का उल्लेख आता है, निश्चय ही यह पुष्पवर्षा विमानों द्वारा कराई जाती होगी। आज भी हम गणतंत्र दिवस जैसे अवसरों पर ऐसी पुष्प वर्षा विमानों अथवा हेलीकॉप्टरों से होती देखते ही हैं और रोमांचित हो उठते हैं।

यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि इस ग्रंथ के लेखक डॉ० विष्णु दत्त शर्मा जी ने ग्रन्थ में जो कुछ भी लिखा है वह अपनी स्वयं की ओर से न लिख कर प्राच्य भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करके उनके उल्लेख के साथ किया है। इससे इस बात का तो पता चलता है कि डॉ० शर्मा जी ने इस ग्रंथ की रचना करने से पहले प्राचीन ग्रंथों का भरपूर अध्ययन किया है साथ ही साथ यह भी बात स्वतः ही बलवती हो जाती है कि मानस के लेखक "तुलसी" भी लेखन से पूर्व गहन अध्ययनशील रहते थे। तभी तो उनके ज्ञान, विज्ञान, अध्ययन, और अनुभव आदि के मेल से रचा गया "रामचरितामानस" एक तरह से कालजयी रचना है जिसे पढ़ने के लिए कोई भी नहीं कहता फिर भी वह बार–बार पढ़ी जाती है। ऐसी रचना में विज्ञान के पहलुओं को ससंदर्भ उजागर कर डॉ० विष्णु दत्त शर्मा जीयने एक उल्लेखनीय कार्य किया है। इसके लिए वे और इस ग्रंथ से जुड़े सभी कर्मी बधाई और साधुवाद के पात्र हैं। आशा है यह ग्रंथ मानस के पाठको को रूढ़िवादी चिंतन से हटकर सही सोच–विचार तथा चिंतन–मनन करने की और प्रेरित करता रहेगा।

☐☐☐

परिषद की वाराणसी शाखा से

हिन्दी दिवस व्याख्यान

विज्ञान परिषद की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शाखा द्वारा आयोजित हिन्दी–दिवस के अवसर पर "विज्ञान और समाज" विषय पर गम्भीर विचार प्रस्तुत करते हुए प्रसिद्ध भौतिकीविद प्रो० देवेन्द्र कुमार राय ने कहा कि विज्ञान मनुष्य की जिज्ञासा का ही प्रतिफल है। प्राचीन काल के विद्वान प्रकृति की घटनाओं की व्याख्या अपनी–अपनी परिकल्पनाओं के आधार पर करते थे अतः वे दार्शनिक भी थे और वैज्ञानिक भी कहे जा सकते थे। कालान्तर में प्रत्यक्ष प्रयोगों के आधार पर विज्ञान का अलग विकास होने लगा। आरम्भ में समाज ने इस नए विज्ञान को स्वीकार नही किया जिसके चलते गैलीलियो जैसे अनेक वैज्ञानिकों को यातनाएं झेलनी पड़ी। परन्तु यह स्थिति अधिक काल तक नहीं रही। थोड़े ही समय में विज्ञान ने समाज को प्रलोभित कर लिया। पश्चिम में पुनर्जागरण काल के बाद जो वैज्ञानिक प्रगति हुई उसने सारे संसार को प्रभावित कर लिया। विज्ञान से समाज को प्रगति के अनेक आयाम मिले। वर्तमान वैज्ञानिक युग आते–आते पुनः नई समस्याएं उठने लगी है। प्रदूषण की विभीषिका, रेडियोसक्रिय मलबे का निस्तारण और ऊर्जा–संकटयें सभी समस्याएं आज समाज को विज्ञान से भयग्रस्त बना रही है, इतना ही नहीं, आज विज्ञान को अपसंस्कृति को बढ़ावा देने का भी दोषी ठहराया जा रहा है। प्रो० राय का मानना है कि इन समस्याओं के लिए केवल विज्ञान ही नहीं, मनुष्य भी दोषी है। विज्ञान तो ज्ञान की एक विधा है। विज्ञान के सिद्धान्त प्रयोगों की सीमाओं में ही सही होते है जिससे यह कहा जा सकता है कि कोई भी वैज्ञानिक किसी सिद्धान्त को सर्वथा सत्य मानने का दम्भ नहीं कर सकता है। न्यूटन के सिद्धान्त परमाणुओं के सूक्ष्म क्षेत्र में या विशाल नीहारिकाओं के निःसीमित क्षेत्र में लागू नहीं होते है। इस आधार पर विज्ञान हमें विनम्रता का संदेश देता है। उसकी उपलब्धियों से चिंतनीय समस्याएं उभरने का कारण तो मानव की अनियंत्रित अभिलाषाएं ही है। इस संदर्भ में हमें महात्मा गांधी और अल्बर्ट आइन्स्टीन के विचारों को याद करना चाहिए। महात्मा गांधी ने कहा था कि हमारा प्रत्येक कार्य समाज के सबसे अधिक साधनहीन व्यक्ति को लाभ पहुँचाने के लिए किया जाना चाहिए। आइन्स्टीन ने भी कहा था कि हमारे शोध कार्य और वैज्ञानिक आविष्कार तभी सार्थक हैं जब वे समाज के निर्धनतम व्यक्ति को भी लाभ पहुँचा सके। यदि ऐसा हो सके तो निश्चय ही विज्ञान समाज में वही स्थिति प्राप्त कर सकता है जो कला, संस्कृति और संगीत को प्राप्त है।

कार्यक्रम के आरम्भ में परिषद के मंत्री डा. श्रवण कुम तिवारी ने विज्ञान परिषद के क्रिया–कलापों का व्यौरा दिया और परिषद के अध्यक्ष प्रो. ब्रजरतन दास गुप्त ने आज के व्याख्याता का परिचय दिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता भौमिकी विभाग के निवर्तमान अध्यक्ष प्रो. महाराज नारायण मेहरोत्रा ने की जिन्होंने कार्यक्रम का समापन करते हुए आज के अध्यापकों एवं वैज्ञानिकों से निवेदन किया कि वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन के लिए तथा इसके माध्यम से विज्ञान के प्रचार–प्रसार के लिए हिन्दी में लिखें, हिन्दी में बोलें और हिन्दी में व्याख्यान दें। अंत में अध्यक्ष, व्याख्याता, तथा श्रोताओं को धन्यवाद देते हुए विज्ञान संकाय के प्रमुख एवं विज्ञान परिषद के उपाध्यक्ष प्रो० सूर्यनारायण ठाकुर ने छात्रों को विशेष रूप से उद्‌बोधित करते हुए कहा कि इस प्रकार के कार्यक्रमों में छात्रों का रूचि लेना विशेष महत्व रखता है क्योंकि कल के कर्णधार वही हैं और हिन्दी तथा विज्ञान दोनों का भविष्य उन्हीं के हाथों में है।

• प्रस्तुति डॉ0 *श्रवण कुमार तिवारी*

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

हिटेकर पुरस्कार

श्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हजार रुपयों का पुरस्कार

- ❑ लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- ❑ केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- ❑ लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता हैं।
- ❑ लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- ❑ इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- ❑ लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- ❑ विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- ❑ वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च 1999 है।
- ❑ पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

डॉ0 गोरख प्रसाद पुरस्कार

'विज्ञान' में प्रकाशित रचनाओं में से वर्ष की सर्वश्रेष्ठ तीन रचनाओं को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार तथा प्रमाण-पत्र प्रदान किये जाते हैं।

लेख निम्न पते पर भेजें :

डॉ० दिनेश मणि, डी०एस०-सी०

संपादक **विज्ञान**

विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 400.00 रु०, आधा पृष्ठ 200.00 रु०, चौथाई पृष्ठ 100.00 रु०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 1000.00 रु०

भेजने का पता:

डॉ० दिनेश मणि, डी०एस०-सी०

संपादक **विज्ञान**

विज्ञान परिषद् प्रयाग,

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थन, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 84 अंक 9

दिसम्बर, 1998

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत,
1000 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०
एक प्रति : 5 रु०

प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

सम्पादक
डॉ० दिनेश मणि, डी०एस-सी०

मुद्रक
उपेन्द्र त्रिपाठी
शाकुन्तल ऑफसेट, इलाहाबाद

सम्पर्क
विज्ञान परिषद प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

इस अंक में

1. सम्पादकीय — 1.
2. हिन्दी साहित्य और विज्ञान गल्प:एक दृष्टि (डॉ० शिवगोपाल मिश्र) — 2- 4
3. लोक विज्ञान और संचार माध्यम : नये संदर्भ, नयी चुनौतियाँ (डॉ० अरविन्द मिश्र) — 5- 6
4. हिन्दी साहित्य में विज्ञान कथा का संक्षिप्त इतिहास (अजय सिंह) — 7-21
5. कहानी, नई कहानी के आगे की कहानी (डॉ अरविन्द सिंह एवं अजय सिंह) — 22-24
6. कुछ अँग्रेजी वैज्ञानिक उपन्यासों पर आधारित फिल्में एवं मानव भविष्य (डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय) — 25-27
7. संचार माध्यम और विज्ञान कथा साहित्य: एक सूक्ष्मावलोकन (मनीष मोहन गोरे) — 28-29
8. विज्ञान प्रचार-प्रसार पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रभाव (डॉ० दिनेश मणि) — 30-31
9. मीडिया में विज्ञान (कमलेश कुमार श्रीवास्तव) — 32-33
10. संचार माध्यमों में विज्ञान कथा (जीशान हैदर अली) — 34-36
11. विज्ञान के लोकप्रियकरण में वैज्ञानिक पत्रिकाओं का योगदान (प्रेमचन्द श्रीवास्तव) — 37-39
12. सफल प्रेरक प्रसंगों के माध्यम से कृषि तकनीकी प्रसारण (डॉ. गिरीश पांडेय) — 40-42

सम्पादकीय

मानव मन में एक सहज कौतूहल होता है यह जानने का-कि मैं क्या हूँ ? मेरा कल कैसा होगा? मानवजाति के लिये भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है ? और यदि आशंकाएं हैं तो उनको मार्ग से दूर करने के उपाय (यदि हों तो) क्या हो सकते हैं ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर विज्ञान कथाएं प्रदान कर सकती हैं, क्योंकि वैज्ञानिक और तकनीकी प्रत्ययों के साथ सामाजिक चेतना को गुंफित कर, मनुष्य को एक नये युग में प्रवेश की दिशा दे सके, यही तो विज्ञान कथा की समूची यात्रा है। इन्हीं कारणों से आज के समाज को हमेशा से अधिक विज्ञान कथा की आवश्यकता है। ये हमारी प्रगति को तो निस्सन्देह प्रतिबिम्बित करती हैं, आज के विश्व और समाज की जटिलताओं की प्रच्छिवि भी पेश करती हैं। इनकी उपेक्षा करना, इनके प्रति उदासीनता का भाव या इन्हें दूसरे दर्जे का साहित्य समझने की खतरनाक प्रवृत्ति से तो हम अपना परिप्रेक्ष्य ही खो बैठेंगे। इस तरह विज्ञान-कथाएं नये युग, नये समाज, नये घटना-चक्रों के निर्माण के साथ-साथ नई वैज्ञानिक मनोवृत्ति का भी सर्जन करती हैं।

विज्ञान कथाओं के इसी महत्त्व को ध्यान में रखते हुए विज्ञान परिषद प्रयाग एवं भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति, फैजाबाद के संयुक्त तत्वावधान में 14 नवम्बर 1998 को विज्ञान परिषद् परिसर में एक संगोष्ठी आयोजित की गई। संगोष्ठी का विषय था– "लोक विज्ञान और संचार माध्यम : नये संदर्भ, नई चुनौतियाँ। इस संगोष्ठी में एक दर्जन से अधिक लोगों ने अपने आलेख पढ़े। इस अवसर पर विज्ञान परिषद प्रयाग के प्रधानमंत्री एवं सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक डॉ० शिव गोपाल मिश्र द्वारा डॉ० अरविन्द मिश्र के विज्ञान कथा संग्रह **'एक और क्रौंच वध'** एवं श्री देवेन्द्र मेवाड़ी के विज्ञान कथा संग्रह **'कोख '** का विमोचन किया गया।

वास्तव में इस नई विधा के सिद्धान्तों, संयोजन, सार और विशिष्टताओं के सम्बन्ध में अभी बहुत अध्ययन, विवेचन की आवश्यकता है। इसके द्वारा आधुनिक युग के मानव की इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं और समस्याओं की संतुलित समीक्षा की जा सकती है।

"कभी-कभी छोड़ जाता है कोई आदमी चीजें नहीं बातें,
काट देते हैं जिसके सहारे, बाद के लोग अंधेरी से अंधेरी रातें।"

दिनेश मणि

(डॉ० दिनेश मणि)

विज्ञान-साहित्य

हिन्दी साहित्य और विज्ञान गल्प : एक दृष्टि

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत गल्पों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे कथा-कहानी-उपन्यास साहित्य कहा जाता है। यह साहित्य समाज की आन्तरिक संरचना का दर्पण माना जाता है। यद्यपि विज्ञान ने प्रारम्भ से ही मानव समाज की सर्जना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में विज्ञान कथाओं को सम्मिलित नहीं किया जाता-शायद यह समझ कर कि विज्ञान तो कोरे भौतिक सिद्धान्तों, रासायनिक सूत्रों, गणितीय प्रमेयों, प्राणि जगत की स्थूल रचनाओं का विवरण प्रस्तुत करने वाला शास्त्र है। उसमें अनुभूति के लिए कोई स्थान नहीं है। फलतः वह साहित्य से सर्वथा भिन्न है। इसीलिए विज्ञान के लेखक साहित्यकारों की बिरादरी में नहीं आते।

यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में जिन चौंसठ कलाओं का उल्लेख हुआ है उनमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसे विषयों का समावेश है किन्तु कालान्तर में विशुद्ध साहित्य पर वैसा ही बल दिया जाने लगा जैसा कि वर्तमान काल में राजनीति पर और समाज के असली निर्माता विज्ञान को हाशिये पर डाल दिया गया।

यह सर्वविदित तथ्य है कि हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक विकास में कविवचन सुधा, हिन्दी प्रदीप, सरस्वती, माधुरी, सुधा, विशाल भारत, वीणा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सम्मेलन पत्रिका तथा हिन्दुस्तानी जैसी पत्रिकाओं का प्रचुर योगदान रहा है। यदि इन पत्रिकाओं के शुरू-शुरू के बीस-पच्चीस वर्षों के अंकों को उठाकर देखा जाय तो पता चलेगा कि इनमें हर अंक में साहित्य के साथ-साथ विज्ञान के लोकप्रियकरण की दिशा में पर्याप्त लेखन होता रहा जिसमें हिन्दी के विशुद्ध साहित्यकार भी जोश–खरोश के साथ अपना-अपना सहयोग दे रहे थे। हिन्दी के स्वनामधन्य कथाकार गुलेरी जी सरस्वती में विशुद्ध वैज्ञानिक विषयों पर लगातार निबन्ध लिख रहे थे। यहाँ तक कि सरस्वती के सम्पादक पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी स्वयं एवं आचार्य चतुरसेन शास्त्री, महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रभृति विद्वान भी हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लिखते हुए हिन्दी के भण्डार को समृद्ध कर रहे थे। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। इन लोगों के अन्तःकरण में अवश्य ही हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत वैज्ञानिक साहित्य को समेटने, एवं उसे प्रतिष्ठित करने की उत्कट अभिलाषा थी।

किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ऐसी प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती। यही कारण है कि हिन्दी में विज्ञान लेखन अलग-थलग पड़ गया है और शुद्ध-साहित्य से एक तरह बहिष्कृत भी।

हमें इसका खेद नहीं है कि हिन्दी में उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य का मूल्यांकन क्यों नहीं हुआ ? होता भी कैसे ? हमारे विज्ञान लेखक ही यदि अन्यमनस्क रहेंगे तो यह कार्य दूसरा क्यों करेगा और मेरे विचार से शुद्ध साहित्यिक जन ऐसा कर भी नहीं सकते।

अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य को जिस तरह साहित्य की परिधि में रखकर विज्ञान लेखकों का आदर-सम्मान किया जाता है, दुर्भाग्यवश वह हिन्दी में नहीं ही दिखाई दे रहा। कारण स्पष्ट है। हिन्दी वाले अपने प्रारम्भिक इतिहास को नहीं देखते जब विज्ञान के तमाम लेखकों को मंगला प्रसाद जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कार से सम्मानित किया जाता रहा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों की विज्ञान परिषदों के सभाध्यक्षों के रूप में विज्ञान के वरिष्ठ

लेखकों को सम्बोधित करने का अवसर दिया जाता रहा। स्वतन्त्रता के पूर्व विज्ञान और विशुद्ध साहित्य के लेखकों में कोई भेदभाव नहीं था। हम उसी एकरसता एवं भाई-चारे की बात कर रहे हैं और हिन्दी वालों पर उसी के विस्मरण का आरोप लगाते हुए यह कहना चाहते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी वांगमय की परिपूर्णता के लिए वैज्ञानिक साहित्य को सम्मिलित किया जाय। इसके बिना हिन्दी साहित्य एक अमूल्य निधि से वंचित रह जावेगा। तब हिन्दी वाले गर्वपूर्वक यह नहीं कह सकेंगे कि उनका साहित्य सर्वांगीण है और विश्व साहित्य में उसका प्रतिनिधित्व है। सुना जाता है कि डॉ० नगेन्द्र अपने हिन्दी साहित्य के परिवर्धित संस्करण में विज्ञान के समृद्ध साहित्य का समावेश करने जा रहे हैं। यह हम सबों के लिए सुखद समाचार होगा।

आइये ! अब विज्ञान गल्प पर कुछ बातें कही जायं। मैं अपने व्याख्यान में हिन्दी में लिखे गये विज्ञान गल्प तक ही अपने को सीमित रखूंगा।

आजकल कथा-कहानी-गल्प-उपन्यास गद्यलेखन की शैली विशेष के द्योतक शब्द हैं। इन सबकी उपयोगिता का मूल्यांकन शैली, भाव एवं भाषा के विचार से किया जाता है। अब तो हिन्दी में नई कहानी का भी प्रचलन है।

हिन्दी के विज्ञान कथा लेखकों के समक्ष हिन्दी कहानी तथा उपन्यास जैसी शैलियाँ सदैव रही हैं किन्तु उनकी कथावस्तु परम्परागत या आधुनिक कहानियों से सर्वथा भिन्न रही है। यदि दुर्गा प्रसाद खत्री (1861-1913) के उपन्यासों को हिन्दी साहित्य में स्थान नहीं दिया गया तो उसका कारण यह नहीं था कि उन उपन्यासों के पाठक कम थे, वरन् हिन्दी आलोचकों की दृष्टि में उन उपन्यासों की कथावस्तु में जीवन दर्शन न होकर मात्र कुतूहल, आश्चर्य या भावी कल्पनाएँ रही हैं। हमें यह ठीक से ज्ञात नहीं कि आजकल विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में जितनी विज्ञान कथाएँ लिखी जा रही हैं उनके विषय में हिन्दी आलोचक क्या सोचते हैं किन्तु एक विज्ञान प्रेमी इन कथाओं को अपनी विचारधारा के अनुकूल पाता है और विश्व के विभिन्न भागों में जिस प्रकार विज्ञान कथाएँ लिखी जा रही हैं, उनका हिन्दी में चाहे अनुकरण या रूपान्तर ही क्यों न होता हो, उससे वे प्रफुल्लित होते हैं । वे विज्ञान सम्बन्धी पत्रिकाओं को छान मारते हैं कि कुछ नई कथाएं पढ़ने को मिलें।

इतने पर हमारे समक्ष यह यक्ष प्रश्न है कि विज्ञान गल्प शब्द **'साइंस फिक्शन'** का पर्याय हो सकता है अथवा नहीं ? क्या विज्ञान कथा ऐसा पारिभाषिक शब्द नहीं हो सकता कि उसमें कहानी तथा उपन्यास दोनों का समावेश हो सके ? कुछ लेखक विज्ञान गल्प और विज्ञान फंतासी में अन्तर मानते हैं। फिर भी यदि हम विज्ञान कथा को सर्वसम्मत से स्वीकार करें तो इसमें छोटी कहानी, बड़ी कहानी, गल्प उपन्यास सभी समा सकते हैं। यही नहीं, इसमें वे तमाम शैलियाँ और विधाएँ भी आ जावेंगी जिनसे होकर विज्ञान कथा का क्रमिक विकास होता रहा है।

फिर भी 'कहानी' शब्द का प्रयोग शिथिलतापूर्वक होता रहा है। धातुओं की कहानी वृत्तान्त का ही सूचक रहा है-रोचक शैली में वैज्ञानिक तथ्यों के प्रस्तुतीकरण का ही द्योतक है न कि कहानी तत्वों से युक्त विशुद्ध कहानी के लिए। उदाहरणार्थ **डॉ० राजीव रंजन** की वैज्ञानिक लघु कथाएं (1989) वास्तविक कहानियाँ न होकर झलकियाँ हैं। आज की विज्ञान कथाओं में आत्मकथा, रिपोर्ताज या डायरी विधाओं का अजीबोगरीब मिश्रण मिलता है। साहित्यिक दृष्टि से आप इन्हें कहानी, कथा या उपन्यास भले न कहें किन्तु हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की दिशा में जो नवोन्मेष हुआ है उसमें इन सभी विधाओं का योगदान है। खत्री जी के उपन्यास आज भी विज्ञान कथा लेखन की दिशा में प्रथम प्रयास माने जा सकते हैं।

स्मरण रहे कि **एच.जी. वेल्स** ने जिस समय अपने वैज्ञानिक उपन्यासों का लेखन समाप्त किया, ठीक उसी समय **दुर्गा प्रसाद खत्री** हिन्दी में वैज्ञानिक उपन्यास लेकर अवतरित हुए। यूँ तो पहली विज्ञान कथा 1900 में सरस्वती

में (भाग 1, संख्या 7) **"चन्द्रलोक की यात्रा"** नाम से छपी। इसके बाद विज्ञान परिषद प्रयाग के स्वनामधन्य **स्व. रामदास गौड़** ने **"भुनगा पुराण"** लिखने की योजना बनाई और विज्ञान में उसकी कुछ किश्तें छापीं भी। 1930 के दशक में **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** (1901-1978) **यमुनादत्त वैष्णव अशोक** तथा **डॉ० ब्रजमोहन गुप्त** ने विज्ञान कथा साहित्य को पल्लवित किया। **नवल बिहारी मिश्र 'सरस्वती'** तथा **'त्रिपथगा'** में विज्ञान कथाएं लिखते रहे। **यमुनादत्त वैष्णव** की पहली विज्ञान कथा **"वैज्ञानिक की पत्नी"** 1937 में लिखी गई। उनके बाद 1953 में **डॉ० सम्पूर्णानन्द** ने एक छोटा सा उपन्यास **"पृथ्वी से सप्तर्षि मंडल"** लिखा। इसमें उन्होंने अपने ज्योतिष ज्ञान के आधार पर दूरस्थ यात्रा का वर्णन है वह करोड़ों कोस की है जो 7 वर्षों में पूरी हुई।

इसके बाद 1956 में एक वृहद उपन्यास लेकर उपस्थित हुए **ओउम प्रकाश शर्मा**। उन्होंने वैज्ञानिक सूचनाओं का प्रामाणिक संकलन करके **"मंगल यात्रा"** नामक उपन्यास लिखा। मेरी दृष्टि में यह पहला उपन्यास है जो विदेशी लेखकों के टक्कर का है। इसमें कथा का संयोजन, पात्रों का चुनाव, भाषा, शैली सभी कुछ खरा-खरा है।

'विज्ञान लोक' तथा **'विज्ञान जगत'** मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होने के साथ ही अंग्रेजी और फ्रांसीसी वैज्ञानिक कथा साहित्य की ओर **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** का ध्यान आकृष्ट हुआ। पहले उन्होंने कुछ एक अनुवाद किये और फिर मौलिक लेखन भी किया। विज्ञान कथा को लोकप्रिय बनाने में मिश्र जी का योगदान अनूठा है। उन्होंने पाताल लोक की यात्रा, अदृश्य शत्रु, अपराध का पुरस्कार, उड़ती मोटरों का रहस्य जैसे उपन्यास लिखे और एक कथा संग्रह **"अधूरा आविष्कार"** भी लिखा। 1963 में **रमेश वर्मा** ने **"आन्तरिक स्पर्श"** नामक उपन्यास लिखा।

इधर उच्चस्तर की विज्ञान कथाएँ **'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'**, **'धर्म युग** तथा **'विज्ञान प्रगति'** में लगातार प्रकाशित हुई हैं। विशेषकर जबसे मराठी कथा लेखक एवं खगोल विज्ञानी **डॉ० जयन्त विष्णु नार्लिकर** की अनेक मराठी कहानियाँ हिन्दी में छपने लगीं तबसे हिन्दी के विज्ञान कथा लेखकों में भी स्फुरण दिखा हैं फलतः राजेश्वर गंगवार, कैलाश साह, डॉ० रमेश दत्त शर्मा, हरीश गोयल, प्रेमानन्द चन्दोला, हरि कृष्ण देवसरे, देवेन्द्र मेवाड़ी, माया प्रसाद त्रिपाठी, डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय तथा डॉ० अरविन्द मिश्र ने इस दिशा में श्लाघनीय प्रयास किये हैं।

1970 के पश्चात बालोपयोगी विज्ञान कहानियों एवं उपन्यासों के लेखन में त्वरा दिखाई पड़ती है। **'पराग'** और **'मेला'** के विशेषांकों में अनेक कहानियाँ छपी हैं।

आश्चर्य की बात तो यह है कि **"सारिका"** जैसी शुद्ध साहित्यिक पत्रिका ने सितम्बर 1985 में **विज्ञान कथा अंक** निकाला। **'विज्ञान'** का भी नवम्बर 84, फरवरी 1985 अंक **'विज्ञान कथा अंक'** के रूप में छपा। इस तरह लगभग 100 वर्ष की यात्रा के बाद भी विज्ञान कथा साहित्य अपने बालपन में है। यदि इसका ठीक से संवर्धन नहीं किया जाता तो भय है कि कहीं यह इसी प्रकार बौना न रह जावे। अभी जुलाई मास में जब मैंने **डॉ० नार्लिकर** से भेंट की थी तो चर्चा के दौरान मैंने उनसे पूछा कि क्या आप हिन्दी की विज्ञान कथाएँ पढ़ते हैं तो उनका उत्तर था कि पढ़ता हूँ किन्तु वे उच्चस्तरीय नहीं होतीं। निश्चय ही विज्ञान कथा लेखन कोई हँसी–ठट्ठा नहीं है। जब तक लेखक विज्ञान के किसी विशेष क्षेत्र में पूर्णतया पटु न हो, विज्ञान कथा लेखन में पदार्पण करना खतरे से खाली नहीं है।

मुझे प्रसन्नता है कि **डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय** जो स्वयं कथाकार हैं उन्होंने गत वर्ष भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति की स्थापना की है और उससे भी बढ़कर प्रसन्नता इस बात की है कि इस वर्ष विज्ञान परिषद में उन्होंने अपना द्वितीय सम्मेलन करने का निश्चय किया। परिषद के लिए यह सुअवसर है कि इस मंच से विज्ञान कथा लेखन पर जो सार्थक विचार-विमर्श होगा, उससे उसके सारे सभ्य भी लाभान्वित होंगे।

मुझे विश्वास है कि लेखकों की युवा पीढ़ी अवश्य ही विज्ञान गल्प लेखन की ओर आकृष्ट होगी और इसे शीर्ष तक ले जाने के लिए भरसक प्रयास करेगी। मैं स्वयं विज्ञान कथा लेखक नहीं हूँ किन्तु विज्ञान लेखन की गतिविधियों से अपने को परिचित रखता हूँ। मेरी समस्त शुभ कामनाएं इस सम्मेलन के साथ हैं।

□□□

लोक विज्ञान और संचार माध्यम : नये संदर्भ, नयी चुनौतियाँ

डा० अरविन्द मिश्र

सचिव, भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति, ए-2 (21), संजय एपार्टमेन्ट काटनमिल कम्पाउन्ड, चौकघाट, वाराणसी-221002

आज से ठीक एक दशक पूर्व जब विज्ञान प्रेमी एक पत्रकार तिकड़ी–**मुकुल शर्मा, चन्दन मित्रा** और **जग सुरैया** ने यहाँ भारत में ही बैठे-बिठाये "सूदूर संभाषण" (टेली कान्फ्रेंसिंग) तकनीक के सहारे विज्ञान गल्प के मसीहा आसिमोव से बतरस का आनन्द उठाया था ("2001-साइंस टुडे नवम्बर, 1988) तो एक सवाल बरबस ही उठ गया था कि आधुनिक भौतिकी , खासकर क्वाण्टम फिजिक्स और "प्राच्य रहस्यवाद" में सभ्यता के दावे किस हद तक सही या गलत हैं। आइजक आसिमोव का जवाब था कि "प्राच्य रहस्यवाद" की कई धारणाओं-अवधारणाओं, प्रेक्षणों और निष्कर्षों में बौद्धिकता के दर्शन तो होते हैं किन्तु वे उन्हें पूरी तरह से प्रभावित नहीं कर पाते। दरअसल, आधुनिक भौतिकी के सिद्धान्त भी मानव चिन्तन के बहुत ही उलझाव वाले रास्ते पर जा पहुँचे हैं जहाँ उनकी प्राच्य या उपनिषदीय चिन्तन से साम्यता की प्रतीति होती हैं-फलतः **"द डांसिंग वू लि मास्टर्स एण्ड". द टाओ आफ फिजिक्स" जैसे "बेस्ट सेलर"** कृतियों का प्रणयन हुआ है।

इन कृतियों . बड़े हो प्रभावपूर्ण ढंग से यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि हमारा प्राच्य चिन्तन (आध्यात्मवाद/ रहस्यवाद) पहले ही उन निष्कर्षों पर पहुँच चुका है, जहाँ आधुनिक भौतिकी की अवधारणायें अब संस्पर्श कर रही हैं। मसलन सापेक्षवाद, अनिश्चयवाद (नेति-नेति) शून्यवाद जैसे अनेक प्राच्य अवधारणाओं के आधुनिक प्रतिरूपों का आज की भौतिकी में पदार्पण हो चुका है। **आसिमोव** का कहना था कि वे इस विचारधारा कि "हमारे आदि चिन्तक भौतिकी के नवोद्घटित रहस्यों/तथ्यों को पहले से ही जानते थे" ऐसे ही नहीं मानेंगे बल्कि इसे विज्ञान की ही पद्धति (कसौटी) पर रखेंगे। यानि हमें वर्तमान से अतीत में जाने के बजाय यह देखना होगा कि अतीत से "दूर की कौड़ी" लाकर कैसे भविष्य दर्शन किया जा सकता है। यदि हमारे प्राच्य रहस्यवाद का कोई गूढ़ार्थ कोई रहस्य भविष्य का खाका खींचता है और कालान्तर में सचमुच वही कुछ चरितार्थ भी हो जाता है तो यह बेहिचक माना जा सकता है कि हमारे प्राच्य चिन्तकों ने वाकई भविष्य का खाका खींच रखा है या "अन्तिम सत्य" जैसी स्थिति का पहले से ही जायजा ले रखा है। हम प्रायः नयी गवेषणाओं के बाद जोर शोर से यह दावा करने लग जाते हैं कि अरे, यह तो हमारे पुरा-मनीषियों ने पहले ही कह डाला था... या उन्हें यह सब ज्ञात था"....। हमें यह ढर्रा बदलना होगा। अब हमें मिथकों–प्राच्य अवधारणाओं में गहरे पैठ कर यह देखना होगा कि भविष्य के बारे में हमारे पास नया क्या कुछ कहने को शेष है। हम क्या-क्या ठोस भविष्यवाणियाँ कर सकते हैं और फिर प्रतीक्षारत हो उनका सत्यापन करना होगा। यही वह लिटमस परीक्षण होगा जो हमारे प्राच्य चिन्तन की असली स्थित सामने ला रखेगा।

हमारे मिथक, तत्वचिन्तन, या "ब्रह्म जिज्ञासा" जो भी आप कह लें, भले ही भविष्य के स्वरूप को निश्चयात्मक रूप से न उद्घाटित कर पायें हो। यह तो एक आनुभूमिक सच है कि वे भविष्य दर्शन या भविष्य के "जीवन दर्शन" की चिन्ता अवश्य करते प्रतीत होते हैं। चाहे वह स्वयं व्यक्ति का अथवा समूची समष्टि का प्रश्न हो, हमारे पुरा मनीषी सोच के स्तर पर बहुत समृद्ध दिखाई देते हैं। एक-दो उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

मानव के अन्तिम अभीष्ट या पुरुषार्थ (उद्देश्य) को लेकर

खूब चिन्तन-मनन हुआ है। वह (मानव) जन्म-मरण का अनवरत दु:खदायी जीवन चक्र चाहता है या फिर वह मोक्ष/ निर्वाण का आकांक्षी है। वह चिरन्तन यौवन (ययाति, च्यवन ऋषि प्रसंग आदि) या अमरता। (देवता अमर हैं, राक्षस अमरता के चिरआकांक्षी हैं-संदर्भ देवासुर संग्राम में अमृतपान की घटना का) अभिलाषी है ? यही नहीं, जनन–प्रजनन के अनेकों प्रसंग मानव कल्पना के कई अद्भुत आयाम प्रस्तुत करते हैं। अयोनिज जनन (क्लोनिंग) के कई दृष्टान्त पुरागाथाओं में दृष्टव्य है। पृथु-नहुष की कथा हमें अयोनिज प्रजनन की ओर संकेत करती दिखायी देती हैं। बहुजनन (कौरव !) या गर्भ के बाहर जनन (परखनली शिशु !) के सुन्दर उदाहरण (सीता भूप्रसूता हैं) अवलोकनीय हैं। मानव और मानवेतर जीवों के संसर्ग (मकरध्वज, घटोत्कच) के कथानक भी हैं। आशय यह है कि मानव चिन्तन ने मानव जीवन की हर सम्भावनाओं का उत्खनन किया है, उनकी भरपूर खोज खबर ली है। शायद हमारे पुरा मनीषी की यही चाह रही हो कि यह सब एक दिन अवश्य चरितार्थ हो और प्रौद्योगिकी का कमाल देखिये कि कई कल्पनायें मूर्तरूप ले रही हैं और कई तो रोजमर्रा के जीवन का अंग बन चुकी हैं। आज, चिरयौवन, अयोनिज जनन आदि घटनाये मानव के दैनन्दिन जीवन के कार्य-व्यापार बनने की राह पर हैं।

हमारी पुराकथाओं में कहीं उम्र न बढ़ने की ख्वाहिश (ययाति) है तो कहीं उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को तीव्रतर (प्रद्युम्न) किया जा रहा है। प्रसंगवश यह उल्लेख यहाँ जरूरी है कि हमारा आधुनिक विज्ञान उम्र बढ़ने की प्रक्रिया पर नियंत्रण/ अंकुश रखने की जुगत में तो हैं किन्तु मानवीय संदर्भ में ऐसी क्या स्थितियाँ-परिस्थितियाँ हो सकती हैं कि मनुजों की उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया जाना अभीष्ट हो और फिर यह उपलब्धि कैसे हासिल हो-इस बिन्दु पर अभी भी विज्ञान जगत में सन्नाटा है। मानव शिशुओं के लालन-पालन पर अत्यधिक ध्यान, संसाधनों के व्यय को देखते हुये क्या यह उचित नहीं कि उनकी शैशवास्था को उम्र की प्रक्रिया तीव्र कर घटा दी जाय। क्या पता प्रद्युम्न से जुड़ा यह कथा प्रसंग कभी चरितार्थ हो ही जाय। फिर तो यह कहा जायेगा कि यह सूझ हमारे यहाँ पहले से ही विद्यमान थी। हाँ, अभी तक यह संभव नहीं हुआ है किन्तु चिन्तन के स्तर पर यह घटित हो चुका है।

हम प्राय: यही भूल करते हैं कि पुराण प्रसंगों के मर्म को न समझकर उनके स्थूलभाव को ग्रहण कर लेते हैं–वर्णन को यथावत सच मान बैठते हैं। राम-रावण के पुराणोक्त युद्ध वर्णन को शब्दश: सच मान बैठते हैं। नारायणास्त्र-ब्रह्मास्त्र और माया (वी) युद्धों को यथार्थ मान लेते हैं। हम पुरा मनीषी की उस अद्भुत उर्वरकल्पनाशक्ति की अनदेखी कर जाते हैं जिसके सहारे वह भविष्य दर्शन कर रहा होता है। हम **"संजयदृष्टि"** की सूझ को न समझ कर यह कुतर्क करते हैं कि महाभारत काल में टेलीविजन मौजूद था। "संजय दृष्टि" की सूझ से पुरा मनीषी ने हमें दूरदर्शन के खोज की ही राह दिखायी थी, हम अपनी हठधर्मिता के कारण यह साधारण सी बात भी नहीं समझ पाते।

पुराणों में पग-पग पर भविष्य दर्शन है। भविष्य दर्शन के साथ ही मानव के लिये श्रेय जीवन दर्शन की भी प्रस्तावना है। बस नीर-क्षीर विवेक चाहिये। पुराकथाओं, मिथकों या ब्रह्म चर्चा से हमें विज्ञान कथाओं के लिये चिर नवीन विचार सूत्र मिल सकते हैं। आइये, हम अपनी पुराकथाओं का गहराई से अवगाहन करें और आसिमोव की चुनौती स्वीकार कर भविष्य दर्शन/ कथन की जिम्मेवारी वहन करें। विज्ञान कथाओं का प्रणयन करें। जो कुछ हमारे महान मनीषियों ने सोच रखा था उसे फलीभूत करें, चरितार्थ करें।

इसके पहले कि हम भविष्य के हाथों की कठपुतली बन बैठें, अपने मनीषियों की चिन्तन परम्परा में आगे बढ़ते हुये खुद भविष्य जेता बनकर मानवता की विजय पताका को फहराते चलें।

□□□

ऐतिहासिकी

हिन्दी साहित्य में विज्ञान कथा का संक्षिप्त इतिहास

अजय सिंह

शोध छात्र, सी 102/683 राय कॉलोनी, मोहद्दीपुर, गोरखपुर

कथा-कहानियों को सुनने तथा सुनाने यानि किस्सागोई का शौक समूची धरती पर निवास करने वाले लगभग सभी मनुष्यों में पाया जाता है। भारतवर्ष में भी कथा-कहानियों का इतिहास सहस्त्रों वर्ष पुराना है। समय-समय पर इसके स्वरूप, शैली तथा उद्देश्य में परिवर्तन आता गया है। प्राचीनकाल में इसे गल्प, आख्यायिका, लघुकथा आदि विविध नामों से पुकारा जाता था। इसका प्रारम्भ उपनिषदों की रूपक-कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा बौद्ध साहित्य की जातक कथाओं से होता है। ये कथाएं अपने मौखिक एवं वाचिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी निरन्तर संचालित होती रहीं। 'वासवदत्ता', 'कादम्बरी', 'दशकुमार चरित' जैसे संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधियों के अलावा विक्रमादित्य , भरथरी (भर्तहरी), मुंज, उदयन और राजा भोज की कथाएं बहुत दिनों तक सामान्य जनता में सुनी और सुनायी जाती रहीं, जिनके स्मृति अवशेष विभिन्न मुद्रित एवं अन्य स्वरूपों में आज भी विद्यमान हैं। लेकिन आज की सामान्य जनता 'कहानी' का जो भाव ग्रहण करती है उसमें मनोरंजन नामक तत्त्व ही प्रमुख एवं व्यापक हुआ करता है। ओर इस अर्थ में ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उन पुरा-कथाओं का महत्त्व उतना अधिक नहीं है, क्योंकि उन कहानियों का उद्देश्य मात्र मनोरंजन न होकर किसी गम्भीर तत्त्व की आलोचना, विवेचना या नीति और धर्म की शिक्षा और उपदेश देना था।

इस कसौटी पर पूरी तौर से हमारे मध्य युग की कहानियां खरी उतरती हैं, और ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के किस्से-कहानियों के व्यापक प्रसार तथा गहन प्रभाव क्षमता के आधार पर ही "कहानी" शब्द ने अपना मूल भाव निर्मित कराया है, जिसका संचरण पीढ़ी दर पीढ़ी आज तक सामान्य जनमानस में होता चला आया है। मुख्य रूप से इस्लामी आधिपत्य के उपरान्त धर्म, कला, समाज और संस्कृति जैसे सभी क्षेत्रों में हिन्दू और मुसलमान दो महान जातियों के परस्पर सम्पर्क और आदान-प्रदान ने एक-दूसरे को काफी प्रभावित किया। हम इतर विषयों पर न जाते हुए केवल कथा-कहानी के क्षेत्र पर पड़े प्रभाव को देखें तो इस युग के कथा-कहानियों को प्राचीन युग के कथा-कहानियों से स्पष्ट तौर पर अलग कर सकते हैं या दोनों में अन्तर कर सकते हैं। मध्य युग की कहानियों में प्रेममार्गी सूफी कवियों के प्रभाव के कारण प्रेम का चित्रण प्रमुख विशेषता बन जाती हैं। दूसरी विशेषता हास्य और विनोद के अवतरणं की है, जिसका मुख्य उदाहरण अकबर और बीरबल की कहानियाँ हैं और तीसरी प्रमुख विशेषता कथा को मनोरंजक बनाने के लिए और कथा को कभी-कभी आगे बढ़ाने के लिए अस्वाभाविक, अतिप्राकृतिक और अतिमानुषिक प्रसंगों की कल्पना है जैसे उड़ने वाला घोड़ा, बातचीत करने वाले पशु-पक्षी, प्रेत, राक्षस, परी इत्यादि की कल्पना है।

लेकिन सही अर्थो में कहानी ने अपना स्वरूप ओर अर्थ बीसवीं शताब्दी में ग्रहण किया, और इसका कारण था अंग्रेजों के साम्राज्य स्थापित करने के बाद पाश्चात्य साहित्य, संस्कृति वैज्ञानिक दृष्टिकोण और भौतिक विचारधारा का समाज पर प्रभाव। इस बुद्धिवादी वैज्ञानिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण के कारण समाज में जो नवीन जागृति और चेतना जगी उसका प्रभाव कथा क्षेत्र पर भी पड़ा। फलस्वरूप बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से कहानी की एक बिल्कुल नयी परम्परा चल निकली जिसे **"आधुनिक कहानी"** कहते हैं और यह "आधुनिक कहानी" अपने अन्तर्वस्तु और वातावरण के अतिरिक्त रूप और

शैली में भी प्राचीन कहानियों से नितान्त भिन्न है। प्राचीन काल में कहानियों की प्रायः मौखिक सृष्टि हुआ करती थी परन्तु आज प्रेस के प्रसार से कहानियां लिखित या मुद्रित रूप में सर्वसुलभ हैं। प्राचीन काल में मानव की वाह्य प्रकृति का चित्रण हुआ करता था। केवल आकस्मिक घटनाओं एवं संयोगों से कहानी की सृष्टि हुआ करती थी जिसमें मनोरंजन के साथ-साथ कथा को आगे बढ़ाने के लिए अभौतिक सत्ताओं का उपयोग होता था लेकिन आधुनिक कहानियों में अतिभौतिक, अप्राकृतिक जैसी अविश्वसनीय सत्ताओं का लोप कर दिया गया। (क्योंकि आधुनिक युग तार्किकता प्रधान बौद्धिक युग है) और मानव की बाह्य प्रकृति के अलावा आन्तरिक पक्ष अर्थात् मानव मस्तिष्क एवं मन की सूक्ष्म बातों का भी चित्रण होने लगा। **मुंशी प्रेमचन्द** ने लिखा है—"आधुनिक कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ चित्रण को अपना ध्येय समझती है।" प्राचीन काल में राजा-रानी जैसे लोगों का ही कथा में ज्यादातर चित्रण होता था, परन्तु आधुनिक कहानियों में इनके स्थान पर मानव मात्र का चित्रण होता है जो कुछ भी हो सकता है अर्थात् किसी भी वर्ग का, किसी भी धर्म का, कोई भी पद धारण करने वाला। प्राचीन काल में अधिकांश प्रेम का ही चित्रण होता था परन्तु अब प्रेम के अतिरिक्त अन्य भावों एवं मनोभावों का भी चित्रण होने लगा है।

कुल मिलाकर **डॉ० श्रीकृष्ण लाल** के शब्दों में—"आधुनिक कहानी, साहित्य का विकसित कलात्मक रूप है जिसमें लेखक अपनी कल्पना शक्ति के सहारे, कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से मनोवांछित, कथानक, चरित्र, वातावरण दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है" और इन आधुनिक कहानियों का प्रारम्भ (लगभग) 1900 ई० से शुरू होता है। इनके विकास में "सरस्वती" और "सुदर्शन" जैसी पत्रिकाओं का अमूल्य योगदान है। जिन्हें उनके योगदान के आधार पर इस विकास क्रम में मील के पत्थर की उपमा दी जा सकती है। वैसे तो इन पत्रिकाओं में संस्कृत और पाश्चात्य नाटकों, कहानियों के हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित होते ही थे परन्तु जून 1900 ई० में **"सरस्वती"** में **किशोरी लाल गोस्वामी** जी की हिन्दी की आधुनिक कहानी **"इन्दुमती"** प्रकाशित हुई जिसे **आचार्य शुक्ल** ने हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है। हलाँकि इस कहानी पर **शेक्सपियर** के नाटक **"द टेम्पेस्ट" (The Tempest)** की छाप बहुत स्पष्ट हैं, परन्तु लेखक गोस्वामी जी ने कथावस्तु एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से इसे पूर्णरूप से भारतीय वातावरण के अनुरूप ही प्रस्तुत किया है। इसीलिए इसे हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानना उचित जान पड़ता है। कोई भी विधा धीरे-धीरे विकसित होने के उपरान्त ही मानक रूप ग्रहण करती है। उसके प्रारम्भ का समय प्रयोगात्मक स्तर का ही होता है। यही बात कहानी के संदर्भ में भी कही जा सकती है। 1900 ई० से 1910 ई० तक का समय आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रयोगात्मक युग था जब कि कहानी की न तो कोई विशेषता परम्परा थी और न तो उनके साहित्यिक रूप तथा शैली के सम्बन्ध में कोई निश्चित आदर्श। फिर भी मई 1907 ई० में **सरस्वती में बंग महिला की "दुलाई वाली"** कहानी प्रकाशित हुई, जो साधारण घटना के स्थानीय रंग तथा यथार्थवादी चित्रण के द्वारा उकेरती हुई एक महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली कहानी बन पड़ी है। सन् 1911 ई० में काशी से **"इन्दु"** पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। हम कह सकते है कि तब से कहानियों की एक अविछिन्न धारा और परम्परा चल निकली। 1911 ई० में ही **जयशंकर प्रसाद** की सर्वप्रथम कहानी **"ग्राम" 'इन्दु'** पत्रिका में ही प्रकाशित हुई। इसके बाद हिन्दी कहानी निरन्तर अपने स्वरूप में निखार गई। नित प्रति हर दिशा में नवीन रूप से विकसित एवं पल्लवित होती गई।

हिन्दी में आधुनिक कहानी विधा रूपी वृक्ष अपने अंकुरण के बाद से ही नित-प्रति कई शाखाओं-प्रशाखाओं में बँटते हुए निरन्तर पल्लवित-पुष्पित होता चला आया है। कथानक के विविध परिप्रेक्ष्य में कहानियों को कई वर्गो में बाँटा जा सकता है— जैसे सामाजिक कहानियाँ, राजनीतिक कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, सांस्कृतिक कहानियाँ तथा मनोवैज्ञानिक कहानियाँ इत्यादि और इसी क्रम में एक वर्ग वैज्ञानिक

कहानियों (विज्ञान कथाओं) का भी रहा है जो इन सबसे सम्बद्ध होते हुए भी अपने आप में महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट है। **'विज्ञान कथा'** का तात्पर्य ऐसी कहानियों से है जो मात्र कल्पना के आधार पर नहीं, अपितु वैज्ञानिक परिकल्पनाओं के ताने-बाने के आधार पर गढ़ी जाती है। यहाँ **'विज्ञान'** शब्द से यह भ्रम नहीं उत्पन्न होना चाहिए कि विज्ञान कथाएँ नीरस, निर्जीव, वैज्ञानिक तथ्यों का उद्‌घाटन करने वाली मात्र यांत्रिकतापूर्ण तार्किक कथाएं हैं। बल्कि विज्ञान कथा में भी कहानी के सारे मूल तत्त्व सजीव रूप में अपनी पूरी जीवंतता के साथ पाये जाते हैं। इसमें भी कौतुहल, रहस्य, रोमांच के साथ-साथ मानव मन को प्रभावित करने वाले सारे भाव प्रेम, करूणा, हास्य, विनोद, व्यंग्य, विस्मय या यों कहें कि मनुष्य के आपसी सम्बन्धों को निर्धारित-प्रभावित करने वाले षडरिपु—काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और ईर्ष्या अपनी पूरी प्रभाव क्षमता के साथ विद्यमान रहते हैं और विज्ञान कथा को सरस, सजीव, आकर्षक तथा लुभावना बनाते हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि एक आदर्श विज्ञान कथा में **'विज्ञान का तत्त्व'** और **'कथा का तत्त्व'** दोनों का अनुपात बहुत संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण होता है। इसमें किसी भी पक्ष का अतिशय/ प्राधान्य अथवा किसी पक्ष का लोप इसे **'विज्ञान कथा'** की श्रेणी से वंचित कर सकता है।

विज्ञान रूपी केन्द्र तथा वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप समाज पर पड़ने वाले प्रभाव रूपी त्रिज्या के सहयोग से जिस कथा वृत्त का निर्माण होता है उसे हम **'विज्ञान कथा'** कह सकते हैं।

'विज्ञान कथा' के बारे में **ह्यूगो गर्न्सवेक** ने बड़े सटीक शब्दों में कहा है—"साइंस फिक्शन से मेरा अभिप्राय **जूल्स वर्न, एच.जी. वेल्स** और **एडगर एलन पो** द्वारा लिखी गई ऐसी कहानियों से है, जिसमें आकर्षक रोमांस के साथ वैज्ञानिक तथ्य और युगद्रष्टा की दूरदर्शिता का सम्मिश्रण हो। ये आश्चर्यजनक कहानियाँ न केवल पढ़ने में अति रोचक वरन् शिक्षाप्रद भी होती है"। यह ज्ञान को बहुत ही सुग्रह्य रूप में प्रस्तुत करती है। आज विज्ञान कथा साहित्य में चित्रित किये गये किसी आविष्कार के कल सत्य होने में असंभव जैसा कुछ नहीं है।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि **'विज्ञान कथा साहित्य'** एक ऐसी कहानी है जो मानव के चारों ओर किसी मानवीय समस्या उसके स्वरूप चित्रण और उसके समाधान के ऐसे ताने-बाने से गढ़ी जाती है, जो वैज्ञानिक विषय वस्तु के बिना घटित नहीं हो सकती हैं। अर्थात् **'विज्ञान कथा'** में विज्ञान और कथा-साहित्य दोनों के तत्त्व पाये जाते हैं। विज्ञान की तार्किकता और यांत्रिकता को कथा साहित्य अपने कल्पनाशीलता, भावावेश एवं संवेदनशील मानवीयता से लपेटकर जब ऐसे प्रस्तुत करती है कि दोनों एक-दूसरे को अवियोजनीय आधार देते हुए मानव समाज को उसकी भावी दशा एवं दिशा की ओर इंगित करते हैं तो ऐसी कथा को **"विज्ञान कथा"** की संज्ञा दी जा सकती है और ऐसे कथा साहित्य की महत्ता एवं प्रासंगिकता स्वतः ही सुस्पष्ट हो जाती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि **विज्ञान कथा** विज्ञान की जड़ों को तो अपनाती है है, कहानी के बुनियादी अंगों को भी नहीं भूलती। अर्थात् **विज्ञान कथा** पहले कहानी होती है भले ही उसकी आत्मा विज्ञान हो। वह कहानी की हर जरूरत को, हर माँग को पूरा करती है साथ ही विज्ञान के जिस बीज से कथावृक्ष का विकास होता है उसे भी विकलांग या विकृत नहीं होने देती। विज्ञान और कथा साहित्य का यह प्रशंसनीय एकीकरण जिस निर्दिष्ट को लक्षित करता है, वह है नित प्रति वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप होने वाली भावी समाज की कल्पना के आधार पर चित्रण करना। इसके द्वारा यह लोगों को वैज्ञानिक प्रगति के बारे में जानकारी उपलब्ध कराती है, जागरूक बनाती है। इसके अलावा वैज्ञानिकों को सतर्क, सचेत कल्पना के द्वारा दिशा दिखाने के साथ प्रोत्साहन देती है और जनसाधारण का उन्हें समर्थन भी दिलाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विज्ञान कथा में कथा का आकर्षक रोमांस,

वैज्ञानिक तथ्य के साथ-साथ युगदृष्टा की दूरदर्शिता का सम्मिश्रण होता है।

विज्ञान कथा लेखक **देवेन्द्र मेवाड़ी जी** ने विज्ञान कथा के आशय को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है—"विज्ञान कथा साहित्य की वह विधा है जिसके माध्यम से लेखक मानव जीवन पर वैज्ञानिक खोजों, तकनीकी प्रगति, भावी घटनाओं और सामाजिक परिवर्तनों के संभावित प्रभाव को दर्शाता है। वह भविष्य में झाँकता है और अपनी लेखनी से भविष्य की तस्वीर खींचता है। अपनी कल्पना और वैज्ञानिक तथ्यों के ताने-बाने से संभावनाओं का संसार बुनता है कि कैसी होगी कल की दुनिया ? मानव का भविष्य क्या है ? विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास कल मनुष्य को क्या देगा ? क्या मानव सुदूर अंतरिक्ष के ग्रह नक्षत्रों में जा बसेगा ? या जनसंख्या विस्फोट से वह अकाल और भुखमरी में निरीह होकर अपना ही सर्वनाश होते देखेगा ? क्या मशीनों. रोबोटों और कम्प्यूटरों के हाथों में खेलेगा ? या धरती के गर्भ अथवा सागरों की पेंदी में रहने लगेगा ? या अपने ही आविष्कारों से विध्वंस करके अपनी सभ्यता को नेस्तनाबूद कर इसके अवशेषों पर अपनी नई दुनिया बसाएगा ? क्या वह प्रदूषण से पूरी मानव जाति का दम घोंट देगा या जीवाणुओं अथवा रसायनों से स्वयं नष्ट होकर अपनी महान सभ्यता के सभी चिन्ह सुरक्षित छोड़ जायेगा ? क्या कल समर्थ लोग अपनी प्रतिलिपियाँ तैयारी करेंगे ? क्या मादा भ्रूण को नष्ट करते-करते कल केवल पुरुष समाज रह जायेगा ? कैसी होगी कल की दुनिया ? इसी संभावना को कथा के रूप में विज्ञान कथा प्रस्तुत करती हैं।

विज्ञान का विकास बहुत तेजी के साथ हुआ है। भविष्य में भी इसी तरह या इससे भी तेज गति से इसके विकास की संभावना है। अतः यह विकास अनिवार्य रूप से मानव समाज के स्वरूप को प्रभावित करेगा तथा उसकी दशा एवं दिशा तय करेगा, क्योंकि मनुष्य के जीवन में विज्ञान का किस कदर हस्तक्षेप कर रहा है या मनुष्य किस तरह विज्ञान पर निर्भर है यह सर्वविदित है। लेकिन समाज पर पड़ने वाला यह प्रभाव उस समाज की वस्तुस्थिति एवं दशा पर निर्भर करेगा। विज्ञान भले ही एक नियम पर, सार्वभौमिक या वैश्विक हो सकता है परन्तु समाज दैशिक होता है। कहने का आशय यह है कि विभिन्न स्थानों पर निवास करने वाला मानव समाज भिन्न-भिन्न होता है। इससे समाज पर पड़ने वाला प्रभाव भी अलग-अलग होगा और इस प्रभाव को वर्णित करने वाली विज्ञान कथा भी अलग-अलग स्थान, काल में अलग-अलग स्वरूप में सामने आती है। वह अमेरिकी विज्ञान कथा भी हो सकती है, यूरोपीय विज्ञान कथा या भारतीय विज्ञान कथा भी।

हिन्दी में विज्ञान कथा के उद्भव को लेकर सम्प्रति दो विचारधाराएं हैं। एक विचारधारा जिसके अग्रनायक **डॉ० शिवगोपाल मिश्र** हैं, का मानना है कि हिन्दी में विज्ञान कथा का उद्भव **बाबू देवी नन्दन खत्री** और उनके पुत्र **दुर्गा प्रसाद खत्री** द्वारा रचित तिलस्म साहित्य से होता है। दूसरी विचारधारा, जिसके प्रमुख पक्षधरों में **डॉ० राजकुमारी उपाध्याय** एवं **डॉ० अरविन्द मिश्र** प्रभृत रचनाकार है, तिलस्म साहित्य का विज्ञान कथा से दूर-दराज का भी रिश्ता नहीं मानती। भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन विषय पर **'विज्ञान परिषद् प्रयाग'** द्वारा आयोजित राष्ट्रीय विचार गोष्ठी में **डॉ० अरविन्द मिश्र** द्वारा व्यक्त यह विचार सहज ही ध्यान आकर्षित करता है कि "तिलस्म साहित्य में .... भविष्य दर्शन का सर्वथा अभाव है।" **डॉ० शिव गोपाल मिश्र** के शब्दों में **"एच. जी. वेल्स** ने जिस समय अपने वैज्ञानिक उपन्यासों का लेखन समाप्त किया ठीक उसी समय **दुर्गा प्रसाद खत्री** ने हिन्दी में वैज्ञानिक उपन्यासों की धूम मचा दी। लेकिन चूँकि उनके पिता **तिलस्म** तथा **ऐयारी** के सर्वश्रेष्ठ लेखक थे अतः पढ़ने वालों ने कहने को **दुर्गा प्रसाद खत्री** के उपन्यास पढ़ लिए किन्तु यदि कोई पूछे कि हिन्दी में **विज्ञान कथा** का लेखन कब से प्रारम्भ हुआ तो सभी लोग सिर खुजलाने लगेंगे, किन्तु मैं उन्हें ही हिन्दी में **विज्ञान कथा** का जन्मदाता मानता हूँ और यह भी मानता हूँ कि उसी तिलस्म में से वैज्ञानिक कथाएं जन्मी हैं।" परन्तु **डॉ० मिश्र** की मान्यता

से पूरी तरह सहमत नहीं हुआ जा सकता। **डॉ० बाबू देवकी नन्दन खत्री** एवं उनके पुत्र **दुर्गा प्रसाद खत्री** जी ने रोमांचक व लोकरंजक उपन्यास लिखे और उसमें तत्कालीन वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग अपने तिलिस्म सृजन में किया। **बाबू देवकी नन्दन खत्री** ने अपनी रचनाओं में यंत्रों और गैस तथा बिजली के चमत्कार पैदा किए। शस्त्रों की करेंट से मनुष्य को बेहोश किया और गोलों के धुएँ से आँखों से आँसू गिराए। सूत कातने और वस्त्र बुनने के कल, धुँआचक्की, पनचक्की, गैस की रोशनी, फोटोग्राफ आदि का वर्णन अपने साहित्य में किया और बाबू दुर्गा प्रसाद खत्री जी ने उन सबके अतिरिक्त अपने उपन्यासों में पूर्णतः कल्पना सृजित कुछ ऐसे यंत्रों का उल्लेख तथा वर्णन किया है जो उसक विज्ञान कथा होने का आभास कराते हैं। जैसे **'रक्तमण्डल'** उपन्यास में **"मृत्यु किरण", "चालकविहीन यान"** और **परमाणु "परमाणु पिस्तौल"** की जैसी कल्पनाएं।

परन्तु ध्यान रहे कि **'विज्ञान'** शब्द स्वयं में बहुत व्यापक है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जन्तु विज्ञान इत्यादि इसकी अनेक शाखाएँ हैं और इन सभी से सम्बन्धित कोई भी विषय कथा की विषयवस्तु बन सकता है। लेकिन सभी को **विज्ञान कथा** की परिधि में नहीं समेटा जा सकता सकता। हम सभी दिन भर में लगभग सैकड़ों ऐसी वस्तुओं का उपयोग करते है जो विज्ञान ही की देन है यथा—कलम, गिलास, पंखा, बल्ब, टेलीफोन, रेडियो इत्यादि। ये सभी वैज्ञानिक उपकरण हैं या विज्ञान की ही देन हैं परन्तु कथा में मात्र इनके प्रयोग या वर्णन होने से कोई कथा **विज्ञान कथा** की संज्ञा की अधिकारी नहीं हो जायेगी। **विज्ञान कथा** न तो सामान्य दैनिक व्यवहार में आने वाले वैज्ञानिक उपकरणों के उपयोग से सृजित कोई कथा है और न तो कपोल कल्पना के आधार पर ही वर्णित कोई कहानी। बल्कि **विज्ञान कथा** विशुद्ध वैज्ञानिक सत्यों, तथ्यों एवं परिकल्पनाओं अथवा वैज्ञानिक संभावनाओं की अपेक्षा रखती है। हम यह नहीं कहना चाहते कि **विज्ञान कथा** में कल्पना का उपयोग नहीं है बल्कि **'विज्ञान कथा' 'कथा'** रूपी जो महल है वह तो कल्पना के ही उपयोग से बनता है, लेकिन वह कथा रूपी महल टिका होता है **'विज्ञान'** रूपी नींव पर ही।

इस प्रकार हम पाते हैं कि खत्री पिता-पुत्र के उपन्यासों में वैज्ञानिक तथ्यों अथवा वैज्ञानिक संभावनाओं के आधार पर कथा की रचना नहीं की गई है। वस्तुतः ध्यान दिया जाय तो इन्होंने केवल मनोरंजन हेतु तिलिस्म, ऐयारी और जासूसी से भरे उपन्यास लिखे हैं, जिसमें कथा को आकर्षक तथा रोमांचक बनाने के लिए कुछ वैज्ञानिक आविष्कारों का वर्णन किया है जो कथा में जासूसी चमत्कार पैदा करने में सहायक है। कथा का **'विज्ञान'** सम्मत अकादमीय आधार न होने के कारण इन्हें विशुद्ध **विज्ञान कथा** की परिधि में नहीं रखा जा सकता।

जैसे चन्द्रमा स्वयं प्रकाशवान न होते हुए भी अपने प्रकाशित होने का आभास करता है वैसे ही **दुर्गा प्रसाद खत्री** जी के कुछ उपन्यास जैसे **'रक्तमण्डल, 'स्वर्गपुरी, 'सुफेद शैतान'** आदि वस्तुतः **विज्ञान कथा** न होते हुए भी **विज्ञान कथा** होने का आभास करती है, और ऐसी बहुत सी कथाएं हिन्दी साहित्य में भी है। वैज्ञानिक आधार न रखते हुए भी ये कथाएँ विज्ञानावलम्ब का आभास करती हैं। इन्हें हम **"विज्ञानाभास कथाएँ"** कह सकते हैं। चूँकि ये कथायें विशुद्ध कल्पना पर आधारित होती है और **"विज्ञान कथा"** होने का भ्रम पैदा करती है। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण बात इन **'विज्ञानाभास कथाओं'** के बारे में यह है कि ये कथाएं **विज्ञान कथा** के कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य को पूरा करती हैं और वह है विज्ञान कथा लेखकों द्वारा भविष्य की अनुमति तस्वीर खींचने में उर्वर कल्पना द्वारा विज्ञान और तकनीकी को नयी दिशाएं सुझाना, जिनमें से कुछ कल्पनायें एक दिन तकनीकी के सहारे साकार हो उठती हैं और इस दृष्टि से **'विज्ञानाभास कथाओं'** के महत्त्व को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता।

पीछे मैंने कहा कि हिन्दी में **विज्ञान कथा** के उद्‌भव को

लेकर सम्मांते दो विचारधारा हैं। दूसरी विचारधारा के अनुसार हिन्दी की आधुनिक **विज्ञान कथा** पाश्चात्य विज्ञान गल्प से प्रभावित होकर शुरू हुई।

हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन की शुरूआत इस सदी के प्रारम्भ में ही हिन्दी की आधुनिक कहानियों के साथ ही लगभग एक ही समय हुई। हिन्दी की पहली कहानी **"इन्दुमती"** के प्रकाशन के वर्ष सन् 1900 ई० में ही उसी सुप्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका **"सरस्वती"** के भाग-1, संख्या-7 में **बाबू केशव प्रसाद सिंह** की **विज्ञान कथा "चन्द्रलोक की यात्रा"** प्रकाशित हुई। इसमें बैलून के सहारे चंद्रमा तक की यात्रा का वर्णन किया गया है। यह हिन्दी की पहली **विज्ञान कथा** है हालाँकि इस पर **जूल्स बर्न** की कहानी **"फाइव वीक्स इन ए वैलून"** से ली गई प्रेरणा को सुस्पष्ट परिलक्षित किया जा सकता है और कुछ लोगों ने मात्र इसी आधार पर इसे हिन्दी की पहली विज्ञान कथा मानने से इंकार किया है, जो उचित नहीं। क्योंकि कोई भी विधा अचानक शून्य से उत्पन्न नहीं होती। बाद में उसका अपना स्वरूप चाहे जैसा हो, किन्तु शुरूआत में वह या तो वह विरासत की ऋणी होती है या तो अपने अगल-बगल कहीं से प्रभावित होती है और यदि **"चन्द्रलोक की यात्रा"** कहानी पाश्चात्य विज्ञान कथा से प्रभावित होकर लिखी गई है तो मात्र इस आधार पर उसे हिन्दी की **विज्ञान कथा** की श्रेणी से खारिज करना सही नहीं है। यह कहानी कदाचित मात्र पाश्चात्य कथा का प्रभाव लिए हुए है न कि **"फाइव वीक्स इन ए वैलून"** का शब्दशः अनुवाद है। दरअसल इस कहानी का पूरा परिवेश भारतीय है जो हिन्दी के पाठक को अपने से जोड़ता है और कहीं भी अलगाव का बोध (यानी पाश्चात्य होने का बोध) नहीं होने देता।

अतः **डॉ० राजकुमारी उपाध्याय** की इस मान्यता **"चन्द्रलोक की यात्रा"** और **"आश्चर्यजनक घंटी"** को हिन्दी में प्रारम्भिक वैज्ञानिक कहानियाँ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये दोनों ही विदेशी साहित्य-फ्रांसीसी और अमेरिकन साहित्य से उधार ली गई हैं" से सहमत नहीं हुआ जा सकता। जैसे किसी भाषा में निर्झर जल प्रपात के सौंदर्य का वर्णन कवित्वपूर्ण शैली में किया गया है और किसी अन्य भाषा में भी प्रेरित होकर उस जल प्रपात के ही सौंदर्य का वर्णन किया गया हो तो वर्णन साम्यता होने के कारण वह रचना दूसरी भाषा की मौलिक सम्पत्ति होने से वंचित नहीं की जा सकती। हाँ यदि दूसरे भाषा की रचना पहली रचना की मात्र **शब्दशः** अनुवाद है तो यह बात दीगर है और ऐसी पाश्चात्य वैज्ञानिक कथाओं के अनेक अनुवाद हिन्दी साहित्य में है जिन पर हम अलग से विचार करेंगे। इस प्रकार **बाबू केशव प्रसाद सिंह** की **विज्ञान कथा "चन्द्रलोक की यात्रा" जूल्स बर्न** की **"फाइव वीक्स इन ए वैलून"** से प्रभावित प्रेरित होने के बावजूद हिन्दी की अपनी मौलिक सम्पत्ति है और जब मौलिक है तो निर्विवाद रूप से इसे हिन्दी की पहली **विज्ञान कथा** माना जाना चाहिए।

इसके बाद सन् 1908 में **"सरस्वती"** पत्रिका में ही **सत्यदेव परिव्राजक** की **विज्ञान कथा "आश्चर्यजनक घंटी"** प्रकाशित हुई जिसकी बुनावट भौतिक विज्ञान के अनुवाद नियम के उपयोग से की गई है।

इस प्रकार देखा जाय तो हिन्दी में विज्ञान कथाओं की शुरुआत इस सदी के प्रारम्भ से ही हो गई थी, लेकिन साथ ही शुरू हुए हिन्दी की **"आधुनिक कहानियों"** ने विकास करते हुए जितने व्यापक क्षेत्र में प्रसार एवं जिन ऊँचाइयों को छुआ है अथवा **पाश्चात्य विज्ञान कथा साहित्य** ने वर्तमान शताब्दी में अपने को जिस सुदृढ़ता के साथ स्थापित करते हुए अपनी जो एक विशिष्ट पहचान बनाई है, उसकी तुलना में हिन्दी के **विज्ञान कथा साहित्य** को वह अपेक्षित स्तर अभी प्राप्त नहीं हो सका हैं यह खेद की बात अवश्य है परन्तु इसके भी अपने कारण रहे हैं। मोटे तौर पर देखा जाय तो इस विधा के रचनाकार के लिए यह अनिवार्य है कि उसके पास न केवल संवेदनशील साहित्यकार का रूप हो, बल्कि उसे विज्ञान के उपलब्धियों के बारे में भी जानकारी होनी चाहिए। और इस

सदी के शुरुआत में इन शर्तों का पूरा होना अगर बहुत कठिन नहीं तो सामान्य भी नहीं था। क्योंकि संवेदनशील साहित्यकार होने की शर्त यदि आसानी से पूरी होती है तो उन्हीं के विज्ञान के क्षेत्र में भी पूरी घुसपैठ रखने की अनिवार्य शर्त कुछ कठिन अवश्य है। पहली बात तो वर्तमान सदी के शुरू के चार-पाँच दशकों तक भारत पराधीन रहा जिसकी अपनी वह वैज्ञानिक प्रगति नहीं दिखाई पड़ती जो पश्चिम में मिलती है। दूसरे यदि पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रगति को ही आधार बनाये (जैसा कि कुछ लोग आरोप लगा सकते हैं कि वर्तमान समय में भी पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रगतियाँ को आधार बनाकर हिन्दी में विज्ञान कथाएँ लिखी जा रहीं हैं जैसे क्लोन आदि) तो उनके भारत में विशेषकर हिन्दी क्षेत्रों में जानकारी होने अथवा प्रसार की उतनी संभावना नहीं थी जैसी की आज सूचना प्रौद्योगिकी के क्रांतिकारी कदम के कारण संभव हो गई है। तीसरे यदि किसी तरह अति महत्वाकांक्षी पत्र-पत्रिकाओं अथवा महानुभावों द्वारा जानकारी आई भी होगी तो भाषा की समस्या के आड़े आने से इंकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि उस समय खड़ी बोली स्वयं अपने स्वरूप निर्धारण, विकास एवं क्षमतावान् होने हेतु संघर्षरत थी। इन सबसके अलावा उस समय के भारतीय जन की साक्षरता के स्तर पर भी ध्यान देना होगा क्योंकि निरक्षरों की फौज से वह प्रोत्साहन, वह मनोबल उस प्रेरणा की अपेक्षा करना ठीक नहीं जँचता, जिसकी किसी भी विधा के रचनाकार को अपेक्षा होती है और जो उसके अलावा अन्य लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित कर उस विधा को समृद्ध एवं सम्पन्न करती है। इसके अलावा और भी कई कारण है जिनकी यथास्थान चर्चा होगी।

मैं यह कहना चाह रहा था कि इधर के एक दो दशकों को छोड़ दिया जाय तो हिन्दी में **विज्ञान कथा**' की रचना 50-60 सालों तक बहुत छिट-पुट रूप से मिलती है। हाँ बीच-बीच में बिजली के चमक के समान तेज प्रकाश फैलाते हुए कुछ विज्ञान कथाकारों यथा **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"**, **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** एवं **कैलाश शाह प्रभृत** लोगों ने इस विधा में प्राण संचार बनाये रखा। यह प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान दशक में इस विधा की ओर रचनाकारों के साथ-साथ पाठकों का झुकाव भी बड़ी तीव्र गति से हुआ है जिसका श्रेय **प्रो० राजीव रंजन उपाध्याय, देवेन्द्र मेवाड़ी, डॉ० अरविन्द मिश्र** जैसे रचनाधर्मियों को दिया जाना चाहिए जिन्होंने न केवल महत्त्वपूर्ण स्मरणीय रचनाओं से इस विधा को समृद्ध किया है बल्कि नई पीढ़ी के कई रचनाकारों की **"कलम"** के रोपण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

हिन्दी साहित्य में **विज्ञान कथा** के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि इस विधा के उद्‌भव (सन् 1900 ई०) से लगभग 20-25 वर्षों तक **पश्चिमी विज्ञान-कथा** से प्रेरित प्रभावित कहानियाँ लिखी गई। इस आरम्भिक काल में **अनुदित विज्ञान कथा साहित्य** भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। चूँकि इस समय तक हिन्दी के अपने **विज्ञान-कथा** का स्वरूप कुछ निश्चित नहीं था, शायद इसलिए भी **अनुदित विज्ञान कथा साहित्य** से प्रभावित होकर उन्हीं के मॉडल पर हिन्दी में **विज्ञान कथाएँ** लिखी गई, और इस आच्छादन को सर्वप्रथम तोड़ते हैं **पं० राहुल सांकृत्यायन** सन् 1924 ई० में **"बाइसवीं सदी"** लिखकर प्रबन्ध की दृष्टि से यह एक लघुकाय उपन्यास है जिसमें उन्होंने सन् 2124 ई० में भारतीय समाज का स्वरूप कैसा होगा ? इस कल्पना को, संभावना को कथा रूप में अपने साम्यवादी चेतना के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। हलाँकि **सांकृत्यायन** जी समाजवादी विचारधारा से गहरे प्रभावित हैं और इसी के अनुरूप उन्होंने सन् 2124 ई० के समाज के स्वरूप को प्रस्तुत किया है यथा— "भूमण्डल में सभी जगह अब समता का राज्य है। अब मनुष्य बराबर है, स्त्री-पुरुष बराबर हैं। सभी जगह श्रम और भोग का समत्व मूल-मंत्र रखा गया है। न अब भूमण्डल में जमींदार हैं, न सेठ-साहूकार हैं, न राजा हैं, न प्रजा, न धनी, न निर्धन, न ऊँच हैं न नीच। सारे भूमण्डल निवासियों का एक कुटुम्ब है। पृथ्वी की सभी स्थावर जंगम सम्पत्ति उसी कुटुम्ब की सम्पत्ति हैं" और इस सारी उन्नति का कारण वह वैज्ञानिक प्रगति को दिखाते हैं जिसकी सहायता से ऐसे यंत्रों एवं मशीनों का आविष्कार हुआ

जिसने मनुष्य के सारे श्रम का दायित्व अपने ऊपर ले लिया और मनुष्य "कुल चार घंटे काम करके भी ? मनुष्य सारी आवश्यकताओं को प्राप्त कर बाकी बीस घंटे जीवन के अन्य आनन्दों के उपभोग में लगाता है।" इस विज्ञान गल्प **"बाइसवीं सदी"** का पूरा परिवेश भारतीय है जिसमें भारत के ग्राम, ग्रामीणों, विद्यालय, शहरों, शासन प्रणाली, शिक्षा पद्धति आदि का वर्णन किया है। अपनी मौलिकता एवं नवीनता के नाते कुछ रचनाकार समीक्षकों ने **हिन्दी विज्ञान कथा** का वास्तविक प्रादुर्भाव इसी **विज्ञान गल्प** से माना है।

सन् 1930 के दशक में **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** और **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** का कइस क्षेत्र में पदार्पण इस विधा के लिए वरदान बन गया। **हिन्दी विज्ञान कथा साहित्य** को उसका मौलिक आधुनिक स्वरूप देने में इन विज्ञान कथाकारों का अविस्मरणीय तथा अमूल्य योगदान है। पेशे से चिकित्सक, **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** ने **डॉ० सम्पूर्णानन्द** की प्रेरणा से विज्ञान कथाएँ लिखना शुरू किया और इसे तिलस्म, ऐयारी तथा जासूसी की परम्परा से अलग कर एक नई विधा के रूप में स्थाई पहचान दी। **डॉ० मिश्र** के बहुमूल्य योगदान को देखते हुए **डॉ० बाल फोंडके** ने **विज्ञान कथा** क्षेत्र में इनकी महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि **"डॉ० नवल बिहारी मिश्र** ने विशुद्ध **विज्ञान कथाओं** की रचना की और **हिन्दी विज्ञान कथा** के सही स्वरूप को प्राण-प्रतिष्ठा दी। भाषा शिल्प, कथानक और विज्ञान की आत्मा के कारण इनकी कहानियाँ वास्तविक विज्ञान कथाएं हैं।"

यदि **डॉ० मिश्र** जी ने हिन्दी विज्ञान कथा के सही स्वरूप को प्राण प्रतिष्ठा दी तो इसे भारतीय वातावरण एवं धरातल पर गतिशील बनाया **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** जी ने। इस विधा में **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** जी की रचनाएँ **आदर्श विज्ञान-कथा** के अत्यधिक निकट हैं, परन्तु इनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान इन **विज्ञान कथाओं** के **भारतीयकरण** में **है जो पाश्चात्य प्रभाव से पूरी तरह मुक्त है। डॉ० अरविन्द मिश्र के शब्दों में**—"यदि भावी **विज्ञान कथा** का स्वरूप निर्धारण करने में **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** का अमूल्य योगदान है तो **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** ने इसे देशज स्वरूप प्रदान किया।"

"हिन्दी विज्ञान कथा साहित्य को उसके देशज मौलिक स्वरूप में प्राणप्रतिष्ठा दिलाने में **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** की भूमिका अग्रणी रही जिन्होंने कहानी कला की विकसित होती अपनी देशीय मौलिक स्वरूप के अनुरूप ही विज्ञान कथाओं/उपन्यासों का प्रणयन किया है। उनकी कहानियों के कथानक उनके कथापात्र और वातावरण हिन्दी के पाठकों के लिए बहुत सहज अपने से और जाने पहचाने लगते हैं। फलतः उनकी कहानियाँ/उपन्यास पाठकों के मन पर एक गहरा प्रभाव डालते हैं।"

डॉ० नवल बिहारी मिश्र का उपन्यास **"अपराध का पुरस्कार"** इंडियन प्रेस इलाहाबाद से 1962 में प्रकाशित **'विज्ञान जगत'** में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुआ था। इनकी प्रमुख वैज्ञानिक कहानियाँ **'अधूरा आविष्कार' 'आकाश का रास्ता'** तथा **'हत्या का उद्देश्य'** नामक कथा संग्रहों में संग्रहित हैं।, जिसमें **'हत्या का उद्देश्य'**, **'मातृत्व की तृष्णा'**, **'अन्तर्यामी'**, **'प्रेम रसायन'**, **'शान्ता की शादी'**, **'सहज ज्ञान'**, **'अधूरा आविष्कार'**, **'मंगल ग्रह की पहली यात्रा'**, **'भूत और प्रेत'**, **'हिम समाधि'**, **'पथभ्रष्ट'**, **'अपराध और अपराधी'**, **'अस्पष्ट सीमा'**, **'काल भ्रंश**, **'दूसरी दुनिया'** , **'पुर्नजन्म'**, **'सफर का साथी'**, **'ऊँची उड़ान' 'शुक्रगह की यात्रा'**, **'अदृश्य शत्रु'**, **'उड़ती मोटरों का रहस्य** और **'सितारों के आगे जहाँ और भी है'** आदि उनकी उल्लेखनीय **विज्ञान कथाएँ** हैं।

हिन्दी विज्ञान कथा इतिहास के उल्लेखनीय आधार स्तम्भ **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** जी की पहली **विज्ञान कथा "वैज्ञानिक की पत्नी"** है, जिसे 1937 में प्रयाग विश्वविद्यालय की कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला था। इस **विज्ञान कथा** में मार्मिकता के साथ विज्ञान

की अति बौद्धिकता के प्रति भय एवं व्यंग्य का आद्योपांत ऐसा संगुफन है कि पाठक अभिभूत एवं भावार्द्र हुए बिना नहीं रह पाता। **"अशोक"** जी की **विज्ञान कथाएँ "सरस्वती", "विशाल भारत"** आदि पत्रिकाओं में छपती रहीं। आँखों के प्रतिरोपण पर आधारित उपन्यास **"चक्षुदान"** (1949), कृत्रिम गेहूँ बनाने के प्रयोग पर आधारित उपन्यास **"अन्न का आविष्कार"** (1956), **'अपराधी वैज्ञानिक** (1968), **"हिमसुन्दरी"** (1971) के अलावा **"नियोगिता नारी"** (1987) **"अशोक"** जी के प्रमुख वैज्ञानिक उपन्यास हैं। इसमें नायिका प्रधान **"नियोगिता नारी"** वैज्ञानिक उपन्यास अपनी भाषा, शिल्प संरचना, भावप्रवणता एवं मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म चित्रण के साथ-साथ विज्ञान, रोमांस, इतिहास,, सामाजिक रीतिरिवाज के समन्वित रूप की सहज संप्रेक्षणीयता के नाते अत्यन्त प्रशंसनीय है। तथ्य की दृष्टि से विज्ञान का आधार लिए, गर्भधारण में असमर्थ एक स्त्री के डिम्ब एवं उसके पति के स्पर्म के निषेचित शिशु (भ्रूण) को दूसरे स्त्री के, बिना कौमार्य भंग हुए, गर्भ में पालन को एवं तत्सम्बन्धी जुड़े लोगों के मानसिक चित्रण को कथानक बनाया गया है।

यमुनादत्त वैष्णव "अशोक" जी की विज्ञान कथाएँ **"अस्थि पिंजर"** (1947), **"अप्सरा का सम्मोहन"** (1967), **"श्रेष्ठ वैज्ञानिक कहानियाँ** (1984) तथा **"पुरस्कृत विज्ञान कथा-साहित्य"** (1990) नामक संग्रह में संकलित हैं। इनमें **"अस्थिपिंजर", "दो रेखाएँ", "साँवली", "वैज्ञानिक का निमंत्रण", "अप्सरा का सम्मोहन", "रेडियोरोग", "न्यूटनिया का यात्री", "नील के धब्बे", "अपना प्रतिरूप", "कौन खाँसता था", "संदेह का लाभ", "कोदो की रोटी", "प्रोफेसर की भूल" "पेड़ की चिड़िया", "अनुगामिनी"** तथा **"भूत की वेदना"** आदि उनकी उल्लेखनीय विज्ञान कथाएँ हैं।

इस प्रकार कमजोर जड़ों के कारण अनियत, अस्थिर, अविकसित तथा हिचकोले खाती इस उपेक्षणीय विधा को स्थिर करने, इसके स्वरूप को निश्चित करने तथा दृढ़ता के साथ पैर टिका कर साहित्य के क्षेत्र में अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराने में सहायक इन दो शिल्पियों अर्थात् **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** और **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** के अप्रतिम योगदान की **हिन्दी विज्ञान-कथा** सदैव ऋणी रहेगी। इन्होंने इस विधा की जड़ों को सींचकर न केवल अत्याधिक गहराई तक पहुँचने में सहायता की, बल्कि ऊपर भी वृक्ष के पल्लवित पुष्पित होने में योगदान दिया। वर्तमान सदी के तीसरे दशक से आठवें दशक तक लगातार अपने को इस विधा के प्रति समर्पित कर इन रचनाकारों ने इस विधा की **"दशा"** को ही नहीं सुधारा बल्कि **"दिशा"** का भी मार्गदर्शन करते रहे। अतः यदि इन्हें **हिन्दी विज्ञान कथा** का **वटवृक्ष** कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इसमें **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** ने न केवल हिन्दी में **विज्ञान कथाओं** की रचना की बल्कि अन्य भाषाओं के **विज्ञान कथाओं** का हिन्दी में अनुवाद करने में महत्त्वपूर्ण सहयोग किया। **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** के अंग्रेजी एवं फ्रेंच भाषाओं के 17 विज्ञान कथाओं का अनुवाद इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से **किशोर सीरीज** में प्रकाशित है ; उदाहरणार्थ **"समुद्र गर्भ की यात्रा"** (मूल लेखक **जूल्स बर्न**/अनु. **श्रीमती जयन्ती देवी ; "आकाश में युद्ध"** (मूल लेखक **एच.जी. वेल्स**/अनु. **श्री सत्य प्रकाश पाण्डेय**)।

नई-नई वैज्ञानिक खोजों, आविष्कारों, विज्ञानवादी युग की शुद्ध वैज्ञानिक समस्याओं, संवेदनाओं और जीवन की कहानियों में अभिव्यक्ति देने वाले **डॉ० मिश्र** और **"अशोक"** जी के क्रम में ही एक और नाम उभर कर सामने आता है और वह नाम है **डॉ० ब्रजमोहन गुप्त** का। **"गुप्त"** जी के दो वैज्ञानिक कथा संग्रह है — **"स्वप्न और सत्य"** और **"दीवार कब गिरेगी"** जिनमें **"वैज्ञानिक की साधना", "प्रेम कीटाणु, "विज्ञानशाला" "किसके लिए", "दो प्रश्न"** तथा **"षडयंत्र"** जैसी उल्लेखनीय विज्ञान-कथाएँ संकलित हैं। इन महत्त्वपूर्ण रचनाकारों को छोड़ दिया जाय तो 1950 के दशक तक हिन्दीमें गुणात्मक ही नहीं बल्कि परिमाणात्मक स्तर पर भी **विज्ञान कथाओं** की संख्या अल्पत्य है हिन्दी में

गुणात्मक ही नहीं बल्कि परिमाणात्मक स्तर पर भी विज्ञान कथाओं की संख्या अत्यल्प है और इस कमी को अनेक विद्वानों ने शिद्दत के साथ महसूस किया और समय-समय पर अभिव्यक्त भी किया है। जैसे **"आधुनिक हिन्दी का आदिकाल"** नामक अपनी पुस्तक में **श्री नारायण चतुर्वेदी** ने कहते हैं—"हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान की अच्छी पुस्तकों के अभाव के अनेक कारण हैं किन्तु उनमें एक बड़ा कारण यह भी है कि हमारे साहित्य जगत में उनके लेखकों का समुचित आदर नहीं है।" तो **डॉ० सम्पूर्णानन्द** को भी यह अभाव खटका। वे 1953 ई० में लिखते हैं—साइंस फिक्शन (वैज्ञानिक कहानी) लिखने का अभी चलन नहीं हैं और यह बड़ी कमी है...... इससे बांगमय की एक त्रुटि दूर होगी और रोचक भाषा में विज्ञान के गम्भीर तत्त्वों से परिचय होगा।"

इस अभाव को भरने के लिए लोगों को प्रेरित करने के लिए **डॉ० साहब** ने अपने वक्तव्य के प्रति जिम्मेदारी महसूस करते हुए स्वयं पहल पर एक छोटा सा उपन्यास **"पृथ्वी से सप्तर्षि मण्डल"** (1953) लिखा। इसमें उन्होंने अपने ज्योतिष ज्ञान के आधार पर दूरस्थ पिंडों में प्राचीन संस्कृति की झलक दिखाई है, भारतीयता की छाप वाह्य पिण्डों पर छोड़ी है। परन्तु **डॉ० साहब** ने दूसरा उपन्यास नहीं लिखा। **उमेश चन्द्र मिश्र** ने 1949 में **"सफलता"** नामक **विज्ञान कथा** लिखी।

1950 ई० में **विष्णुदत्त शर्मा** ने **"अपकर्षण"** नामक **विज्ञान कथा** लिखी।। उनकी अन्य विज्ञान कथाएँ **"प्रतिध्वनि"** तथा **"साइंस"** है। इसी दशक के वैज्ञानिक सूचनाओं का प्रामाणिक संकलन पर पौराणिक परिकल्पनाओं के ताने बाने से **डॉ० ओम प्रकाश शर्मा** ने **"मंगल यात्रा"** (1959) नामक वैज्ञानिक उपन्यास लिखा। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने **"जीवन और मानव"** (1980), **"असंयमित जीवन का दंड"** (1981) तथा **"युगमानव"** (1981) लिखकर इस विधा की उन्नति में सहयोग दिया। 1960 ई० में **आचार्य चतुरसेन** ने "खग्रास" उपन्यास लिखा, जिसमें विज्ञान कथा के एक पक्ष अर्थात् **"विज्ञान"** पर अत्यधिक जोर देने से कथा का संतुलन बिगड़ गया है। **आचार्य** जी ने इस उपन्यास में वैज्ञानिकता का कट्टर निर्वाह करते हुए उस समय तक की सभी प्रमुख राजनीतिक एवं वैज्ञानिक गतिविधियों सम्बन्धी अपने समूचे ज्ञान को इसके कथानमक में पिरोने का प्रयास किया है जिससे कथानक का सूत्र अत्यनत विश्रृंखल हो गया है। लेकिन **हिन्दी विज्ञान कथा** के इतिहास में इस रचना का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

हालाँकि 1960 के दशक में **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** एवं **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** का ही स्थान प्रमुख रहा। परन्तु इस दशक में विज्ञान कथा लेखन में **रमेश वर्मा** का नाम बहुत तेजी से उभर कर सामने आया, जिन्होंने **विज्ञान कथा** लेखन को गम्भीरता से लिया और इस विधा के सशक्त हस्ताक्षर साबित हुए। इन्होंने **"अंतरिक्ष स्पर्श"** (1963), **"सिन्दूरी ग्रह की यात्रा", नये चाँद का जन्म"** तथा **"चाँद के बीराने में"** नामक वैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की। इसके अलावा **"साप्ताहिक हिन्दुस्तान"** के **अंतरिक्ष विशेषांक** (1969) में उनकी उपन्यासिका **"अंतरिक्ष के कीड़े"** छपी। इसी दशक में **"ज्ञानोदय"** पत्रिका के **शेष शताब्दी अंग** (1967) में **रमेश दत्त शर्मा** की **"प्रयोगशाला में उगते प्राण"** विज्ञान कथा छपी। इनकी दो अन्य विज्ञान कथाएँ **"हरा मानव"** (1981) **"हिन्दुस्तान"** में तथा **"हँसोड़जीन"** (1984) **"विज्ञान प्रगति"** में प्रकाशित हुई।

1970 का दशक हिन्दी विज्ञान कथा के क्षेत्र में काफी समृद्धवान रहा। इस दशक में न केवल परिमाण की दृष्टि से अपितु उल्लेखनीय विज्ञान कथाएँ लिखी गईं। वैसे तो 70 के दशक ने हिन्दी विज्ञान कथा को अनेक लोकप्रिय लेखक दिये लेकिन उनमें **कैलाश शाह, देवेंद्र मेवाड़ी** और **शुकदेव प्रसाद** जैसे जाज्वल्यमान नक्षत्रों को हिन्दी विज्ञान कथाकाश में दूर से ही चमकते, अपनी आभा बिखेरते देखा जा सकता है। ये इस दशक के प्रतिनिधि रचनाकार है जिन्होंने विज्ञान कथा साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

विज्ञान कथा लेखन को चुनौती के रूप में स्वीकार कर **कैलाश शाह** ने इस क्षेत्र में नई ऊर्जा के साथ कदम रखा। **डॉ० नवल बिहारी मिश्र** की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए **शाह जी** की लगभग सभी विज्ञान कथाएँ सुदूर भविष्य की संभावित वैज्ञानिक उन्नति का कल्पनात्मक सुन्दर वर्णन करती हैं। वैज्ञानिक प्रगति के साथ मानवीय विवेक के प्रति तीव्र आग्रह इनमें सर्वत्र विद्यमान हैं और भाषा, शिल्प तथा कथानक के स्तर पर उनकी कहानियों की अपनी अलग पहचान है। **कैलाश शाह** की प्रसिद्ध विज्ञान कथा **"मृत्युंजयी"** 1976 में राजकमल प्रकाशन , दिल्ली से छपा, इसमें उनकी प्रसिद्ध विज्ञान कथा **"मृत्युंजयी"** के अलावा **"पूर्वजों की खोज"**, **"टोनी"**, **"असफल विश्वामित्र"**, **"सर्वोच्च मानव"**, **"मैंने तो ऐसा कुछ भी नहीं किया"**, **"मशीनों का मसीहा"**, **"जहाज का पंछी"** और अधूरी कहानी नामक विज्ञान कथाएं संकलित हैं। अपने इस संगह तथा विज्ञान कथाओं के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए **कैलाश साह** कहते हैं कि "इससे हमारा जन मानस विज्ञान और उसकी सम्भावनाओं से परिचित होता है.......विज्ञान की समझ से अंधविश्वास दूर होते हैं .... विज्ञान कथाएँ संभावित भविष्य की ओर संकेत करती हैं और आदमी को भविष्य के गर्भ में छुपे **"शॉक"** से भी बचाती है।" **साह जी** की अन्य विज्ञान कथा **"प्रलय के बाद"** 1978 **"विज्ञान भारती" में प्रकाशित हुई।**

विज्ञान कथा लेखन के एक प्रमुख स्तम्भ **देवेन्द्र मेवाड़ी** ने इसी दशक में अपना लेखन कार्य शुरू किया और आज तक अनवरत अपनी लेखनी से इस विधा का पोषण कर रहे है। **मेवाड़ी जी** की उपन्यासिका **"सभ्यता की खोज"** (1979) **"साप्ताहिक हिन्दुस्तान"** में प्रकाशित हुई जिसमें बुद्धिमान मशीनों पर अति निर्भरता के संकट की ओर संकेत किया गया है। इसके बाद विज्ञान कथा **"भविष्य"** (1985) भी **"साप्ताहिक हिन्दुस्तान"** में छपी। इनके विज्ञान कथाओं का संग्रह **"भविष्य"** 1994 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में **मेवाड़ी जी** की तीन उपन्यासिकाएं **"सभ्यता की खोज"**, **"खेम ऐंथानी की डायरी"**, **"डॉ० गजानन के आविष्कार"** और तीन कहानियाँ—**"एक और युद्ध"**, **"गुडबाई मि. खन्ना, "भविष्य"** संकलित है। इनके अलावा **"विज्ञान प्रगति"** अतिरिक्तांक 1995 में **"अलौकिक प्रेम"** तथा **"विज्ञान प्रगति"** पत्रिका के अक्टूबर 97 अंक में **"दिल्ली मेरी दिल्ली"** नामक विज्ञान कथा प्रकाशित हुई।

इस दशक (70) के बहुप्रशंसित लेखक **शुकदेव प्रसाद** की रचनाएँ भी सहज ही आकर्षित करती हैं। **शुकदेव जी** ने विज्ञान कथाओं की रचना सातवें दशक में ही शुरु कर दी थी तथा विज्ञान कथा के क्षेत्र में इनका योगदान है—**"वसुधैव कुटुम्बकम"** (1977), **"रोबो मेरा दोस्त"** (1979), **"अंतरिक्ष के मित्र"** (1984), **"हिमीभूत"** (1990) और **"आंगतुक"** (1991)।

इसी क्रम में **प्रो० दिवाकर** नामक विज्ञान लेखक **हिन्द पाकेट बुक्स** के माध्यम से सामने आते हैं जिनकी प्रामाणिकता में **डॉ० राजकुमारी उपाध्याय** ने संशय व्यक्त किया है। चाहे जो हो, इनकी रचनाओं में **"सूरज की भेंट, "दिमागो का अपहरण"**, **"शुक्र ग्रह पर धावा"**, **"नक्षत्रों का युद्ध"**, **"समय के स्वामी"**, **"किरणों के चोर"** और **"लेडी रोबोट"** आदि महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त **डॉ० रामदेव शुक्ल** का उपन्यास **"ग्राम देवता"** भी उल्लेखनीय कृति है।

सत्तर के दशक में इन रचनाकारों के अलावा **प्रेमानन्द चंदोला** तथा **राजेश्वर गंगवार** का नाम भी काफी महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने विज्ञान कथाओं के साथ-साथ विज्ञान नाटकों का प्रणयन कर इस क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया। **"विज्ञान लोक"** पत्रिका में इनका नाटक **"बैक्टीरिया अदालत में"** (1979) और दूसरा विज्ञान कथा का — **"चीखती टप-टप और खामोश आहट"।** "बैक्टीरिया अदालत में" संग्रह में इसके अलावा दो विज्ञान नाटक —**"गंदगीमल पर मुकदमा"** और **"नाइट्रोजन की पेशी"** भी संकलित है। **"चीखती**

टप-टप और खामोश आहट" संग्रह में **"सफेद और काला"**, **"शरीर का महत्त्वपूर्ण अंग"** तथा **"तितली"** विज्ञान कथाएँ संकलित हैं। **प्रेमानंद जी** की एक और विज्ञान कथा **"वनस्पति मानव"** (1984) **" विज्ञान प्रगति"** पत्रिका में प्रकाशित हुई।

राजेश्वर गंगवार की प्रमुख विज्ञान कथाओं में **"शीशियों में बंद दिमाग"** (1975), **"केसर ग्रह"**, **"साढ़े तैंतीस वर्ष"** (1979) और **"सप्तबाहु"** (1984) प्रमुख है। ये सुप्रसिद्ध पत्रिका **"पराग"** तथा **"विज्ञान भारती"** में प्रकाशित हैं।

इसी दशक में **रामलखन सिंह "मौत एक पेड़ की"** (1970) (विज्ञान पत्रिका में) **विष्णु शर्मा** ने हरे कृष्ण देश के **"शीर्षस्थ वैज्ञानिक कैसे बने"** (1979) (धर्मयुग में), **राममूर्ति** ने **"हरे जीवों के चंगुल में"** (1975) आदि विज्ञान कथाएँ लिखीं।

समय के साथ विज्ञान कथाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी होती गई और अनवरत होती जा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा के विकास के साथ हर क्षेत्र में हमारे कदम पूरे दृढ़ आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़े हैं। जीवन के लगभग हर क्षेत्र यथा कृषि, चिकित्सा, उद्योग, अंतरिक्ष एवं परमाणु इत्यादि में नये-नये अनुसंधान एवं विकास के क्रांतिकारी कदमों से पूरा देश जागृति एवं उत्साह से भर उठा, जिसे सूचना प्रौद्योगिकी क्राति ने न केवल बनाये रखा बल्कि जन-जन को आन्दोलित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। पहले विज्ञान जादूगरी के बारे में लोगों ने सुन रखा था। पर अब नितप्रति के जीवन में उससे रूबरू होने पर लोग आश्चर्यचकित या प्रफुल्लित ही नहीं हुए बल्कि लोगों ने जीवन में उसकी अनिवार्य आवश्यकता को महसूस करते हुए उसके महत्त्व को समझा। इस समझ को और विस्तृत करते हुए विज्ञान कथाओं ने लोगों में अपनी जबर्दस्त घुसपैठ बनाई। अब विज्ञान कथाओं का महत्त्व और प्रासंगिकता लोगों के सम्मुख खुलकर स्पष्ट हुई और लोगों में इस विधा के लेखन की अनिवार्यता अधिक गम्भीरता पूर्वक अनुभव की जाने लगी।

1980 के दशक में इस चुनौतीपूर्ण गम्भीर दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह करने वालों में **डॉ० अरविन्द मिश्र** का नाम सर्वप्रमुख हैं **डॉ० मिश्र** ने केवल कुछ विज्ञान कथाओं की रचना को अपने कर्तव्यों की इतिश्री न मानते हुए समय-समय पर तमाम पत्र-पत्रिकाओं में इस विधा के ऊपर अपने लेखों तथा समीक्षा कर्म से इस विधा रूपी ज्योति की अखण्डता को बनाये रखने का न केवल प्रशंसनीय कार्य किया है बल्कि आभामय क्षेत्र का दायरा और विस्तृत करने का स्तुत्य प्रयास किया है, जो अनवरत जारी है। **"नवभारत टाइम्स"** के 22 फरवरी 1990 के अंक में **"हिन्दी कहानी की एक विस्मृत परम्परा"**, **"शिशिरा"** पत्रिका के फरवरी 90 के अंक में **"विज्ञान कथाओं में आने वाला कल"**, **"आविष्कार"** के अगस्त 1992 के अंक में आइसक आसिमोव एक श्रद्धांजलि पर **"महज मनोरंजन नहीं है विज्ञान कथाएँ"** तथा **"हमारी विज्ञान कथाओं में वैज्ञानिकता"** (भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन, राष्ट्रीय विचार गोष्ठी, 1988 **"विज्ञान परिषद् प्रयाग"** प्रकाशन) **डॉ० मिश्र** की इस विधा के प्रति समर्पण एवं मनोवांछित विकास न होने की चिन्ता को रेखांकित करती है। **डॉ० मिश्र** की पहली विज्ञान कथा **"गुरु दक्षिणा" "अमृत प्रभात" (दीपावली विशेषांक)** (1985) में प्रकाशित हुई जिसमें अन्य ग्रह के रोबोट शोधार्थी के अन्दर भी अपने बीमार प्रोफेसर के प्रति मानवीय संवेदनाओं से प्रभावित एवं परिचालित होते दिखाया गया है। भाषा पर सशक्त नियंत्रण रखने वाले **डॉ० मिश्र** की विज्ञान कथाएँ प्रायः मानवीय मूल्यों के संरक्षण में संलिप्त दिखाई पड़ती हैं। विज्ञान के विकास के नाते अतिशय भौतिकता के कारण संवेदनाओं का जो क्षरण हो रहा है उसी संवेदना, मनावता के लिए **डॉ० मिश्र** की चिन्ता है और वह इनके विज्ञान कथाओं में स्पष्ट देखी जा सकती है। धर्मयुग में आपकी "एक और क्रौंच वध" विज्ञान कथा में वैज्ञानिक शोधों के संदर्भ में प्राणिमात्र के प्रति संवेदनशन्यता का मार्मिक वर्णन है तो **"जनसत्ता"** के वार्षिक अंक 97 में प्रकाशित **"आपरेशन कामदामन "** में मन-शरीर सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में यह बताने का प्रयास किया गया है कि मनुष्य अलग-अलग

स्वतंत्र कोशाओं का संग्रह न होकर समान रूप से महत्ववान बुद्धि तथा हृदय रखने वाला स्वयं एक एकीकृत इकाई है इसलिए उसके किसी पक्ष के साथ की गई छेड़छाड़ पूरी इकाई की कार्यपद्धति को प्रभावित करेगा जैसे किसी घड़ी के अवयव के निकाल देने का प्रभाव घड़ी पर पड़ता है। इस प्रकार इस विज्ञान कथा में संवदेना के स्रोतों को समाप्त कर मानव के बौद्धिक मात्र बनाने के दुष्परिणामों की ओर संकेत किया गया है। उनके अतिरिक्त **मिश्र जी** की **"अंतरिक्ष कोकिला"** (1992), **"कायान्तरण"** (1992), **"धर्मपुत्र"** (1994), **"भूतदर्शन"** (1993), **"सम्मोहन"** (1996), **"अन्तिम दृश्य"** (1995) **"अन्तिम इच्छा"** (1998), **"अमरावयम"**, **"एक छोटी सी मुलाकात यम से** आदि अन्य विज्ञान कथाएँ हैं।

1980 के दशक के अन्य महत्त्वपूर्ण विज्ञान कथाकारों में **प्रोफेसर माया प्रसाद त्रिपाठी, हरीश गोयल** तथा **डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय** प्रमुख हैं। **प्रो० माया प्रसाद त्रिपाठी** के अनुसार उनकी कहानियों में भविष्य की सर्जनाएँ विकास एवं मानवस संस्कृति के आकर्षण-विकर्षण, भय, कुंठाएँ, समस्याएँ, नये से नये भावी मुखौटे, उनकी परिकल्पानाएँ और साहित्य के सामान्य आह्लादन आदि सभी समाविष्ट है। **त्रिपाठी जी** की कहानियों की बुनावट अद्भुत है और लेखनी पूरी तरह से उनके वशवर्ती जान पड़ती है। उनके दो संग्रह हैं जिसमें पहला **"साढ़े सात फुट की तीन औरतें"** 1980 में तथा **"आकाश की जोड़ी"** 1981 में भारती प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ जिनमें **"साढ़े सात फुट की तीन औरतें" "उस क्लब के लोग", "खिलौना", "आदमी सब भागे", "सब जातियों से परे का मनुष्य, "चार सौ वर्ष पुराना जीवित भ्रूण", "मृत्यु की दो कसमें", "आकाश की जोड़ी"** आदि विज्ञान कथाएं संकलित हैं।

इसी दशक के विज्ञान कथा लेखक **हरीश गोयल** इस विधा के सशक्त हस्ताक्षर हैं। अप्रतिमा मेधा के धनी **गोयल जी** एकदम नवीनतम वैज्ञानिक खोजों एवं तकनीकी प्रगतियों पर सूक्ष्म नजर रखते हुए उसे अपने कथानक का आधार बनाते हैं। इन्होंने **"कालजयी यात्रा"** नामक एक वैज्ञानिक उपन्यास लिखा और इसके अलावा इनकी महत्त्वपूर्ण विज्ञान कथाएं **"अज्ञात ग्रह की ओर तीसरी आँख", "परखनली डाइनासोर", "शुक्र लोक में एक राजकुमारी", "अमानुष", "काम्प्लैक्स 39", "डूमा", "कालपात्र"** (1996) तथा **"आपरेशन पुर्नजन्म"** तो तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति **"क्लोनिंग"** और मानव भविष्य की संभावना को आधार बनाकर रचा गया है।

इसी दशक के एक अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाकार **डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय** हैं। फैजाबाद में कैंसर संस्थान के निदेशक **डा० उपाध्याय** की हिन्दी विज्ञान कथा साहित्य विधा सदैव ऋणी रहेगी और वह केवल उनके इस विधा में सृजनात्मक योगदान के लिए नहीं है बल्कि उनके अद्भुत लगन, कठोर मेहनत द्वारा सितम्बर 1996 में हिन्दी विज्ञान कथाकारों की पहली समिति **'भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति'** गठित कर इस विधा की लोकप्रियता को और गति प्रदान करने के नाते भी है। डॉ० उपाध्याय के इस प्रशंसनीय प्रयास के लिए उन्हें सदैव याद किया जायेगा। **डॉ० उपाध्याय** जी का एक विज्ञान कथा संग्रह **"आधुनिक विज्ञान कथाएँ"** 1991 में ग्रंथ अकादमी दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इनकी लगभग सभी विज्ञान कथाओं का परिवेश पश्चिमी है। **डॉ० अरविन्द मिश्र** के अनुसार इस संगह में "वैज्ञानिक समाज और परिवेश की आत्मकथात्मक शैली में लिखी नैराश्यपूर्ण पहलू की कहानियाँ है।" इस संग्रह में **"अतिमानव", "अफ्रीका का वाइरस", "नारंगी", "यूक्का", "सूप", "विषकन्या", "फोबोस", "एक्स-रे", "दोल्मे", "एड्स की छाया में", "नशालु", "आधी रात का सूर्य" "एपर्थिड", "आक्सीजन मास्क", "विमान", "परा मानव"** नामक विज्ञान कथाएं संकलित हैं।

डॉ० उपाध्याय का एक और संग्रह **"वैज्ञानिक लघु कथाएँ"** (1989) नाम से है परन्तु इसमें छोटी-छोटी वैज्ञानिक बातों/तथ्यों को आपसी वार्तालाप के जरिये उजागर किया

गया है। **"विज्ञान कथा"** होने की शर्तो को पूरा न करने के कारण इस **"वैज्ञानिक लघु कथाएँ"** संग्रह को विज्ञान कथा के अन्तर्गत् नहीं रखा जा सकता।

अस्सी के दशक में **रणवीर सिंह** की **"अन्तरिक्ष वायरस"**, **"रंग जीनों का दान"** और **"हमशक्ल"** विज्ञान कथाएं प्रकाशित हुई।

वर्तमान दशक (1990) के अर्थात् समकालीन विज्ञान कथा साहित्य कोदेखने पर हम पाते हैं कि इस समय विगत दशकों के कुछ सिद्धहस्त विज्ञान कथाकार जैसे **डा० अरविन्द मिश्र, हरीश गोयल, देवेन्द्र मे** **और प्रो० राजीव रंजन उपाध्याय, जाकिर अली 'रजनीश'** जैसे रचनाकार अभी भी इस विधा के उन्नयन एवं पोषण पोषण में अनवरत संघर्षरत हैं ही साथ ही अनेक नये प्रतिभावान, जागरूक एवं संभावनायुक्त रचनाकार भी समकालीन परिदृश्य पर उभर कर सामने आये हैं और आते जा रहें हैं। विगत दशक से जो रचनाकार विज्ञानकथाओं को विविध रंग अपनी तूलिका से दे रहे थें उसके **"कैनवास"** को और विस्तृत करते हुए ये रचनाकार नित प्रति नूतन रंगों का प्रयोग करते देखे जा सकते हैं। शिल्प, कथानक तकनीक, आदि को लेकर नये-नये विलक्षण प्रयोग किये जा रहे हैं। यह इस विधा के लिए शुभ संकेत है क्योंकि ऐसे प्रयोग इस विधा के बहुआयामी विकास की ओर इंगित करते हैं। सम्प्रति इन नई प्रतिभाओं में **जीशान हैदर "जैदी", मनीष मोहन गोरे** और विशेषकर **जाकिर अली "रजनीश"** की ऊर्जा एवं प्रतिभा को देखते हुए इस विधा को इनसे बड़ी आशाएँ हैं। बहुत कम उम्र में **जाकिर अली "रजनीश"** की विज्ञान कथा **"निर्णय"**, **"इण्डिया टूडे"** पत्रिका (30 नवम्बर 1995) के युवा कथाकर प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुई थी। बहुत सटीक एवं कम शब्दों द्वारा भावों के पूर्ण संप्रेषण में समर्थ **"रजनीश"** की रचनाएँ पाठक को अभिभूत कर देती है। **जाकिर अली 'रजनीश'** की अन्य विज्ञान कथाएं **"चश्मदीद गवाह"** (97 **"विज्ञान प्रगति"**), **"एक कहानी (धर्मयुग)**, **"कयामत आने वाली है"** तथा **"विस्फोट"** आदि है। **मनीष मोहन गोरे** नवोदित विज्ञान कथाकार हैं। इनकी रचनाएं अक्सर सुप्रसिद्ध पत्रिका **"विज्ञान प्रगति"** में छपती रहती हैं। **गोरे** की कहानियों की एक खास बात है कि उनकी कहानियों की शुरुआत में कथाक्रम प्रायः उथली नदियों के जलप्रवाह की भाँति आराम से व्यापक दायरे में फैलता हुआ चलता है और अंत तक पहुँचने पर अचानक पहाड़ी नदी की भाँति बड़ी तेजी से गतिवान होकर खत्म हो जाता है। **मनीष मोहन गोरे** की विज्ञान कथाओं में **"सुपर कम्प्यूटर"** (94 **"विज्ञान प्रगति"**), **"स्वप्नोहार"** (96 **"जलधर्म"**), **"स्वर्गरथ"** (97 **"विज्ञान प्रगति"** में **डा० अरविन्द मिश्र** के साथ), **"प्रदूषण प्रलय"** (97 **"जनधर्म"**) और **"जीवन की पुर्नउत्पत्ति** (97 **"विज्ञान प्रगति"**), **"पृथ्वी पुत्र"** (98 **"विज्ञान प्रगति"**) है। **जीशान हैदर जैदी** भी युवा प्रतिभाओं में प्रमुख स्थान रखने वालों में से एक हैं। इनकी कहानियों में वैज्ञानिक तथ्य पर्याप्त मात्रा में समाहित पाये जाते हैं। इनकी प्रमुख विज्ञान कथाओं में **"सिलिकिन मैन"** (जनवरी 1993 **"राष्ट्रीय सहारा"**), **"पागल वैज्ञानिक"** (20 मार्च, 1994 **"स्वतंत्र भारत"**) तथा **"कम्प्यूटर की मौत"** (जनवरी 98 **"विज्ञान प्रगति"**) मुख्य है।

इस समकालीन विज्ञान कथा साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं **श्रीमती कल्पना कुलश्रेष्ठ**, जो अपने कहानियों में कथावस्तु चयन की विलक्षणता, उसके गठन एवं प्रस्तुति के कारण अलग ही पहचान रखती हैं। इनकी विज्ञान कथा **"अपराधी"** (97, **"विज्ञान प्रगति"**) मानव जीवन के लिए अनिवार्य संवेदनात्मक अवलम्ब तथा विज्ञान द्वारा पूर्णतः मानव सदृश रोबोट बनाने के बावजूद कृत्रिम मस्तिष्क में प्राकृतिक मस्तिष्क के समान उर्वरता न पैदा करने की विज्ञान की सीमा दिखाने को लेकर गढ़ी गई है। कुलश्रेष्ठ जी की एक अन्य विज्ञान कथा **"उस सदी की बात"** (1996 **"विज्ञान प्रगति"**) है।

इस वर्तमान दशक के अन्य छिटपुट विज्ञान कथाओं का विवरण निम्नलिखित है : **सुनील कुमार** की विज्ञान कथा

"स्विफ्ट थर्ड" (अप्रैल 96, **"विज्ञान प्रगति"** में); **स्वप्निल भारतीय** की **"यू.बी.आ.जी.-1"** (अगस्त 96 , **"विज्ञान प्रगति"** में) ; **जीशान हैदर अली** की **"अनजान पड़ोसी"** (अक्टूबर 96, **"विज्ञान प्रगति"** में) ; **राकेश कुमार सिंह** की **"रक्तबीज"** (97 **"हंस"** अर्धशती विशेषांक में) ; **गौतम सान्याल** की **"रात"** (मई 97 **"हंस"** में) ; **उमर सैफ** की **"नर्व मेटल कनेक्टर"** (अप्रैल 97 **"विज्ञान प्रगति"** में); **वंकटेशन दल** की **"प्रोजेक्ट माइग्रेशन - 2006"** (जनवरी 97 , **"विज्ञान प्रगति"**) ; **अशोक साह** की **"आसमानी होता आकाश"** फरवरी 98 **"विज्ञान प्रगति"** में) ; **संयोगिता लखेड़ा** की **"सफलता की कीमत"** (मार्च 98 **"विज्ञान प्रगति"** में) ; **रामजी लाल दास** की **"टी.एस.एस.ई. रामास्वामी और वे अनजान लोग"** (जून 98 **"विज्ञान प्रगति"**) ; **विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी** की **"याद्दाश्त की चोरी"** (जुलाई 98 **"विज्ञान प्रगति"**) उल्लेखनीय विज्ञान कथाएं हैं।

यह हिन्दी साहित्य में विज्ञान कथा का संक्षिप्त इतिहास है। वैज्ञानिक उपकरणों के उपयोग के साथ-साथ उत्पन्न जन जागरूकता के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाएं भी अब हिन्दी विज्ञान कथा साहित्य को महत्त्व दे रही हैं। अगर **"स्वतंत्र भारत, "राष्ट्रीय सहारा, "धर्मयुग", "जनसत्ता", "हंस", "जनधर्म", "शिविरा"** जैसी पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर विज्ञान कथाओं का प्रकाशन हुआ है तो सुप्रसिद्ध पत्रिका **"विज्ञान प्रगति"** के प्रत्येक अंक में हिन्दी की मौलिक अथवा अन्य भाषा से अनुदित विज्ञान कथा नियमित रूप से अनवरत प्रकाशित की जा रही है। इससे इस विधा के लेखकों को जहाँ प्रोत्साहन मिल रहा है वहीं एक पाठक वर्ग भी तैयार हो रहा है। अन्य भाषा के विज्ञान कथाओं का कभी-कभी परिचय तो पाठकों के लिए **"बाइप्रोडक्ट"** रूप में उपलब्ध हो जा रहा है। किन्तु अभी भी हिन्दी जगत में विज्ञान कथाओं को वह अपेक्षित स्तर प्राप्त नहीं हो सका है, जो पाश्चात्य जगत में विज्ञान कथा को प्राप्त है और यह महत्त्व तथा स्थान दान अथवा दया में पाने के बजाय इस विधा को अपने को इतना क्षमतावान—अर्थात् उत्कृष्ट रचनाओं से सम्पन्न होना पड़ेगा कि इसके वास्तविक स्थान को प्रदान करने को साहित्य को बाध्य होना पड़े। इसकी पूरी जिम्मेदारी रचनाकारों के कंधों पर है और विगत दशकों से संलग्न तथा वर्तमान दशक के प्रतिभावान रचनाकारों के लगन, निष्ठा को देखते हुए हम उम्मीद कर सकते हैं कि 21वीं सदी में यह विधा अपनी प्रांसगिकता के नाते, अपना उचित स्थान पा लेगी।

❐❐❐

"यह ध्यान रहे कि जो उत्कृष्ट विषय आप अपने विद्यालयों में सीखते हैं वे दुनियाँ के हर देश में उत्साहपूर्वक प्रयास तथा तथा असीम परिश्रम द्वारा प्राप्त कई पीढ़ियों की उपलब्धियाँ हैं। यह सब आपको विरासत के रूप में सौप दिया जाता है ताकि आप उसका स्वागत करें, उसका सम्मान करें, उसकी वृद्धि करें, और एक दिन पूरी ईमानदारी के साथ उसे अपने बच्चों के सुपुर्द कर दें। इस प्रकार हम मानव इन स्थायी वस्तुओं में अमरत्व प्राप्त करते हैं जिनकी सृष्टि हम सम्मिलित रूप से करते हैं।"

-आइन्सटाइन

समीक्षा

कहानी, नई कहानी के आगे की कहानी

डॉ० अरविन्द मिश्र एवं अजय सिंह

21 ए (2) संजय एपार्टमेन्ट, कॉटन मिल कम्पाउन्ड, वाराणसी-221002

हिन्दी कहानी के अपने प्रामाणिक दस्तावेज, कहानी, नई कहानी, में श्रद्धेय **नामवर सिंह** ने विज्ञान गल्प का जिक्र तक नहीं किया है। वे तिलिस्म के रहस्य लोक में तो जरूर खो गये से लगते हैं, किन्तु विज्ञान गल्प के कल्पना संसार की खबर तक उन्होंने नहीं ली है। यह समझ में न आने वाली बात है। खास तौर पर इसलिए भी कि विज्ञान गल्प समकालीन पश्चिमी साहित्य ही नहीं भारतीय साहित्य की भी एक प्रतिष्ठित विधा है। साहित्य की यह लोकप्रिय विधा मानव समाज के भविष्य से सीधा सरोकार रखती है और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभावों से तेजी से बदलती मानवी दुनिया की भावी तस्वीर से हमें रूबरू कराती है।

यदि विज्ञान कथायें वैश्विक साहित्य की एक समृद्ध विधा का प्रतिनिधित्व करती हैं तो फिर उनकी पूछ हिन्दी (साहित्य) में क्यों नहीं है ? उनके लिए हमारे हिन्दी साहित्य जगत् में एक लम्बी चुप्पी क्यों बनी हुई है ? क्या हिन्दी में वैज्ञानिक कहानियों का सचमुच इतना अभाव है कि उनकी कोई पहचान ही उभर नहीं पाती है ? और वे अस्मिता के संकट से गुजर रही हैं ? नहीं तो यह कैसे हो सकता है कि **"दूर की कौड़ी"** खोज लाने वाले हमारे स्वनाधन्य साहित्यकारों को इस विधा की भनक तक न हो, या फिर हिन्दी जगत् के पुरोधाओं ने इस विधा को "स्तरीय" न माना हो और इसलिए हिन्दी साहित्य में विज्ञान गल्प को हाशिये पर भी जगह न मिली हो ? लेकिन ये सारे सवाल बेमानी लगने लगते हैं, जब हम हिन्दी साहित्य के अतीत में **"जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ"** वाले अन्दाज में उतरते हैं। फिर तो कहानी / नयी कहानी के आगे भी एक अपनी इन्द्रधनुषी आभा बिखेरने लगती है।

बाबू देवकीनन्दन खत्री की अमर कृतियों **"चन्द्रकान्ता"** (1987) और **"चन्द्रकान्ता सन्तति"** तथा उनके पुत्र **दुर्गा प्रसाद खत्री** की कई औपन्यासिक कृतियों यथा **"भूतनाथ"**, **"रक्तमण्डल"**, **"रोहतास"**, **"मठ"** और **"सफेद शैतान"** को यदि हम आधुनिक वैज्ञानिक गल्प की कोटि का न भी माने तो भी पिछली सदी में ही हमें **"सरस्वती"** के कुछ सुनहले पन्नों पर विज्ञान कथाओं की झिलमिलाहट दिखायी दे जाती है। उल्लेखनीय है, सरस्वती के पहले ही खण्ड के सातवें क्रमांक में सन् 1900 में प्रकाशित **केशव प्रसाद सिंह** की कहानी, **"चन्द्रलोक की यात्रा"**। हिन्दी विज्ञान कथाओं के स्थापित हस्ताक्षर **देवेन्द्र मेवाड़ी** का मानना है कि विज्ञान कथाओं के लिए सबसे पहले **"सरस्वती"** ने ही **"लाचिंग पैड"** की भूमिका निभायी थी।

"सरस्वती" ने आगे भी विज्ञान कथाओं को सहेजा संवारा। 1908 में **स्वामी सत्यदेव परिव्राजक** की कहानी **"आश्चर्यजनक घन्टी"** **"सरस्वती"** के पाठकों में काफी चर्चित हुई थी। **"सरस्वती"** की पहल से उत्साहित एक दूसरी तत्कालीन ख्यातिलब्ध पत्रिका **"विशाल भारत"** में **श्रीराम शर्मा, पं० बनारसी दास चतुर्वेदी** ने भी विज्ञान कथायें लिखीं। इन दोनों की हमसफर पत्रिकाओं में इस शती के शुरुआती दशकों में उत्कृष्ट विज्ञान कथायें छपीं। 1930

के दशक में विज्ञान कथाओं के त्रिदेव के रूप में **डॉ० नवल बिहारी मिश्र, डॉ० ब्रजमोहन गुप्त** और **यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** का धमाकेदार पदार्पण हुआ। **"सरस्वती** और **"विशाल भारत"** ने इन लेखकों की रचनाओं को समुचित **'कवरेज'** दिया। इन त्रिदेवों के एक **"देव" यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"** की रचनात्मक ऊर्जा आज भी यथावत है— पिछले वर्षों **"नियोगिता नारी"** वैज्ञानिक उपन्यास का नायाब तोहफा उन्होंने विज्ञान कथा प्रेमी पाठकों को सौंपा है। इनकी एक कथा **"वैज्ञानिक की पत्नी"** को स्वर्गीय **जैनेन्द्र जी** ने भी सराहा था, जिसे इलाहाबाद विश्वविद्यालय की कथा स्पर्धा में पहला पुरस्कार मिला था।

राहुल सांस्कृत्यायन ने भी एक वैज्ञानिक उपन्यास (संभवतः हिन्दी का पहला वैज्ञानिक उपन्यास ?) (1924), जिसमें बाइसवीं सदी की मानव सभ्यता का रोचक पूर्वानुमान है। विज्ञान कथाओं-उपन्यासों के लिए उर्वर परिवेश तैयार करने में **आचार्य चतुरसेन** और **डॉ० सम्पूर्णानन्द** जैसे प्रसिद्ध रचनाधर्मियों ने भी योगदान दिया। **डॉ० सम्पूर्णानन्द** ने (1950) **"पृथ्वी से सप्तर्षि मण्डल"** में भारतीय मिथकों को जहाँ वैज्ञानिक जामा पहनाया वहीं **आचार्य चतुरसेन** की चतुर लेखनी से 'खग्रास' और 'अन्टाकर्टिका के जीवन पर' दो रोचक उपन्यासों का प्रणयन हुआ।

कैलाश साह के रूप में एक आभायुक्त सितारे का उदय विज्ञान कथाओं के साहित्याकाश में हुआ। उनके बारे में **मनोहर श्याम जोशी** ने कहा था कि विज्ञान कथा प्रणयन की चुनौती को यदि किसी ने सहज ही स्वीकारा और उसका सफल निर्वहन किया तो वे **कैलाश साह** ही थे। दुःख है कि इस अप्रतिम रचनाकार के असामयिक निधन से विज्ञान कथाओं के क्षेत्र में सहसा जो रिक्तता आ गयी थी, वह सिमटने के बजाय विस्तार पाती जा रही है। क्योंकि आठवें-नवें दशक में विज्ञान कथाओं के क्षेत्र में उत्तरोत्तर गुणवत्ता और नवागन्तुक कथाकारों के लिहाज से एक ठहराव सा आ गया लगता है।

सबसे बड़ी विसंगति यह है कि साहित्यकारों की ओर से जो सहिष्णुता इस नयी विधा को लेकर पहले (काफी पहले) भी हुई थी वह भी ह्रसोन्मुख है। आज शायद ही साहित्य का कोई स्थापित हस्ताक्षर इस विधा को प्रोत्साहन देना चाहता हो। विज्ञान कथायें **"साहित्य"** हैं भी या नहीं यह **"आधारहीन"** मुद्दा बहस मुबाहिसों का दुःखद पहलू बना रहा हैं। हिन्दी की कुछेक बची रह गयी ख्यातिलब्ध पत्र-पत्रिकाओं और नित नया कलेवर बदलती इन्द्रधनुषी व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं के उत्साही अल्पवयी सम्पादकों की टोली के लिए तो शायद यह विधा ही अनजानी, अनचीन्हीं सी है, वे इस ओर सर खपाने का **"रिस्क"** नहीं लेना चाहते। जबकि अन्य भारतीय भाषाओं में स्थिति इतनी बदतर नहीं है, वहाँ लेखक, पाठक, प्रकाशक और सम्पादक—सभी स्तरों पर विज्ञान कथाओं को लेकर रुचिकर सुगबुगाहट बनी रहती हैं **श्रीधर राव, जयंत नार्लीकर, बाल फोण्डके, अरुण साधू, दिलीप साल्वी, सत्यजीत राय, प्रेमेन्द्र मिश्र, समीर गांगुली, समरचितकरये**—सभी नाम हिन्दी में उनकी अनूदित रचनाओं के कारण जाने जा रहे हैं। किन्तु हमें अपनी थाती —हिन्दी विज्ञान गल्प को पुष्पित-पल्लवित करने के लिए समर्पित भाव से जुटना होगा। हिन्दी में विज्ञान कथाओं की रिक्तता को दूरा करने का आह्वान साहित्य के स्थापित कलाकारों से भी है। विज्ञान कथाकारों को यदि वे अधिक कुछ नहीं तो अपना स्नेहाशीष तो दे ही सकते हैं। इस विधा के प्रति सहिष्णुता तो बनाये ही रख सकते हैं।

विज्ञान कथाओं को **'हाईलाइट'** करने में छिट-पुट किन्तु श्लाघनीय प्रयास कुछेक पत्र-पत्रिकाओं ने किया भी है।

सितम्बर 1985 में **"सारिका"** का विज्ञान कथा विशेषांक देखने को मिला, पर उसमें ज्यादातर कहानियाँ विदेशी विज्ञान फंतासी का अनुवाद मात्र थी। **"अमृत प्रभात"** ने दीपावली विशेषांक (1985) के रूप में एक भरापूरा विज्ञान कथा विशेषांक पाठकों को देकर मानों एक बड़ा अनुष्ठान ही कर डाला था। **"विज्ञान परिषद् प्रयाग" (इलाहाबाद)** की आमुख पत्रिका **"विज्ञान"** का विज्ञान कथा विशेषांक (नवम्बर 84, जनवरी 85) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बच्चों की पत्रिका **"पराग"** ने कई रोचक विज्ञान कथा विशेषांक निकाले, किन्तु यह सब तो अब बीते दिनों की बातें रह गयी हैं। "नवनीत" **में** प्रेमानन्द चन्दोला **कृत** "खामोश बसन्त" **राशेल कार्सन** की बहुश्रुत कृति **"द साइलेंट स्प्रिंग"** का रूपान्तरण वर्षों पहले प्रकाशित हुआ था, जिसकी याद आज भी ताजा है। हमारे सुश्री सम्पादकों को उदारता पूर्वक ऐसे और **"अनुष्ठान"** आयोजित कर हिन्दी सेवा का पुण्य अर्जित करना होगा।

हिन्दी (विज्ञान) कहानी के सम्प्रति क्रियाशील प्रमुख हस्ताक्षरों में **देवेन्द्र मेवाड़ी, प्रोफेसर राजीव रंजन उपाध्याय, हरीश गोयल, जाकिर अली रजनीश** आदि हैं ; **देवेन्द्र मेवाड़ी** ने कथाकार प्रेमेन्द्र मिश्र के केन्द्रीय पात्र **"घना दा"** की तर्ज पर हिन्दी के पाठकों को **"डॉ० गिंगो"** से साक्षात्कार कराने का बीड़ा उठाया।

अमेरिकी और ब्रितानी साइंस फिक्शन की दुनिया में नई पीढ़ी के के लेखकों की कई नई लहरें भी आ चुकी हैं। पर हमारे यहाँ **"न्यू बेव"** दूर क्षितिज पर भी उभरती नहीं दिखायी दे रही है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि हिन्दी विज्ञान कथाओं के बासीपन के चलते ही नये पीढ़ी के साहित्यकारों-कथाकारों ने इस विधा से मुँह मोड़ लिया हो। **यमुना दत्त वैष्णव "अशोक"** और अनुवर्ती विज्ञान कथाकारों की छिट-पुट रचनायें भी अब उन्हें शायद **"बासी खमीर में ऊफान"** जैसी लगती हैं। हिन्दी (साहित्य) के नयी पीढ़ी के कथाकारों को संभवतः उनके ही समानान्तर प्रयोग धर्मी विज्ञान कथाकारों की चाहत है— जो विज्ञान कथाओं के शिल्प, कथानक और प्रस्तुतीकरण में स्थापित पुराने फैशन के दबाव से मुक्त हो कुछ बिल्कुल नयी पेशकर कर सकें।

किन्तु कहाँ है वह "न्यू बेव" ?

□□□

" केवल कर्म ही वह अनुकूल पवन है जो मानव जीवन की नौका को महासमुद्रों के पार कराता है, और इस कर्म के महत्त्व के मूल्य- निर्धारण के विषय में एक अचूक, चिरसम्मानित मापदंड है, एक ऐसी सूक्ति जो चिरकाल के लिए अंतिम, प्रामाणिक निर्णय उच्चारित करती है : आपको उनके परिणामों के द्वारा उनका ज्ञान होगा।"

मेक्स प्लांक

कुछ अंग्रेजी वैज्ञानिक उपन्यासों पर आधारित फिल्में एवम् मानव भविष्य

डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय,अध्यक्ष , भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति
परिसर कोठी काके बाबू, देवकाली मार्ग, फैजाबाद-224001

इधर बहुचर्चित, विज्ञान कथा का संवल लिए, टेलीविजन पर प्रसारित हो रही X-Files दर्शकों को प्रभावित और आकृष्ट कर रही है। यह एक तथ्य है कि विज्ञान और विज्ञान कथा को जन मानस तक पहुँचाने में जितना प्रभावी दूरदर्शन अथवा टेलीविजन रहा है उतना कोई अन्य संचार माध्यम नहीं। टेलीविजन पर प्रसारित/संदेश सूचना त्वरित ग्राह्य बन कर दर्शक के मानस पटल पर प्रभाव जमा लेती हैं।

X-Files में अनेक दृष्टान्त जहाँ पर Supra-natural और Paranormal तथ्यों को सत्यापित करते हुये दिखाये गये हैं- वहीं पर मानव मस्तिष्क विकृतियों को भी प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस सीरियल में मात्र Real Politik और राजनीति अथवा उससे घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध ब्यूरोक्रेसी का जो चित्रण-तथ्यों के खोज/ शोध में, व्यवधान उत्पन्न करते दर्शाया गया है, वह अपने में एक महत्त्वपूर्ण संदेश प्रसारित करता हैं यही संदेश **जार्ज ओरवेल** के उपन्यास 1984" में भी प्रतिविम्बित किया गया हैं परन्तु एक प्रश्न बारम्बार मन को उद्वेलित करते है कि इन कथानकों से क्या कहीं भी मानव के भविष्य के विषय में भी संकेत मिलता है ?

Michael Radford ने **जार्ज ओरवेल** के **"1984"** नामक उपन्यास का सफल निर्देशन फिल्म के माध्यम से किया है। इसमें मानव के भविष्य का जो चित्रण है वह आंशिक रूप से Big Brother के निरूपण में, राजनीति के मलिन परिवेश में सत्यापित तो होता है- पर मूलभूत प्रश्न- क्या यही भविष्य होगा मानव का, अनुत्तरित रह जाता है।

विख्यात चिन्तक और विज्ञान कथा लेखक **Philip K. Dick** ने मानव के भविष्य-भविष्यों के विषय में, जो गवेषणा की उससे वे अनेक वर्षों के चिन्तनोपरान्त इस परिणाम पर पहुँचे कि विज्ञान कथाओं और आधारित फिल्मों में मानव के मात्र दो भविष्य प्रतिपादित किये गये हैं वे हैं :- Utopia & Dystopia। इसमें से चित्रण के अनुसार 83% प्रथम और 13% द्वितीय है। शेष में मात्र यदि कुछ चित्रित किया गया है तो वह है मानव मन की अनिश्चयात्मकता परन्तु यह वर्गीकरण स्वतः में कितना वैज्ञानिक तथ्य युक्त है कहने की आवश्यकता नहीं। इसी संदर्भ में Hollywood की दो प्रसिद्ध फिल्में जो मानव भविष्य से सम्बंधित थी इनमें से Blade Runner-Do androids Dream of Electric sheep (1982) & Total Recall (1990)- जो कि We can remember it for you wholesale - नामक विज्ञान-उपन्यासों पर आधारित थी उनमें भी मानव भविष्य पर अनिश्चयात्मक स्थिति बनी ही रहती है।

जब हम नवीन रचित वैज्ञानिक आधार युक्त फिल्मों की चर्चा करते हैं तो योरप में इस शताब्दी के प्रारम्भ में जो नवीन वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे थे उस समय के **ज्यूल्सवर्न** के उपन्यास **Around the World in 80 days** की चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा। पृथ्वी के अपनी धुरी पर पूर्व से पश्चिम जाने में समय, दिन रात मिलाकर 24 घंटों से कम समय में यह दूरी तय कर ली जाती है। इस प्रकार के गति के कारण पृथ्वी की परिक्रमा कर आने वाले के काल खण्ड का एक दिन बच जाता है। इसी तथ्य का उपयोग कर **ज्यूल्सवर्न** ने अपना अमर-वैज्ञानिक उपन्यास लिखा था। परन्तु यह एक शुद्ध वैज्ञानिक गल्प है- मानव के भविष्य से इसका कुछ सम्बंध नहीं है- यह तो मात्र मानव मन के कल्पना के सत्यापित तथ्यों के उड़ान पर आधारित उपन्यास है। इसी नाम से बनी फिल्म दर्शकों के द्वारा खूब सराही गयी थी- कारण था उसमें निहित

रहस्य- रोमांच जिसका दर्शन हमें **ज्यूल्सवर्न** की **Journey to the centre of the Earth** नामक उपन्यास और फिल्म में भी मिलता है। **ज्यूल्सवर्न** के दूसरे उपन्यास में जो चित्रण चन्द्रमा पर मानव द्वारा आक्रमण करने का जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह उनकी दूरदर्शिता और भविष्य दृष्टा होने का परिचायक है- क्योंकि वह मानव अपोलो अभियानों से बहुत ही साम्यता रखता है।

इसी संदर्भ में आर्थर क्लार्क की **घोषणा** जो उन्होंने भू–स्थिर उपग्रहों के विषय में की थी और संकेत दिया था कि इनका उपयोग संचार माध्यमों के लिये किया जा सकता है- अंतरिक्ष युग के प्रारम्भ होने के पूर्व की कल्पना थी। इसी प्रकार का चित्रण **प्रो. फ्रेड होयल** ने कृष्ण मेघों के विषय में किया था- यह कल्पना कालान्तर में सत्यापित हुयी। कल्पना शक्ति का सहारा लेकर मानव ने भूत-से भविष्य में झांकने का प्रयास किया है। इसका दर्शन **Derek Jerman** के **जुबली** (Jubilee) (1978) नामक फिल्म उपन्यास में किया गया है। इसमें साम्राज्ञी Elisabeth-I को अपना भविष्य देखता हुआ चित्रित किया गया है। जो हमारा वर्तमान समय है। इसमें कभी-कभी हमें फुटबाल के मैचों में विजयी अथवा पराजित टीमों द्वारा किया जाता दिखता है। यह मानव का भविष्य नहीं अव्यवस्था-असंतोष, मानसिक संतुलन में कमी का द्योतक है।

Volker Scholondorff की **Handmaide Tale (1990)** नामक उपन्यास में बनी फिल्म में स्त्रियों की एक ऐसी दुनिया का काल्पनिक चित्रण है जो पूर्ण रूपेण मर्यादा विहीन है। भविष्य का यह समाज जिसे लेखक ने **Gileade** नाम से सम्बोधित किया है, में जो घटित होता है व किसी पुरुष के लिये ही नहीं। किसी विचारवान व्यक्ति के लिये भी स्वीकार कर पाना असम्भव है। मानव पूर्व पाषाण युग में अब जा नहीं सकता।

ललित विज्ञान कथा लेखक **Ray Bradbury** की औपन्यासिक कृति **Farenheit-451-** पर आधारित किसी नाम की फिल्म एक विचित्र रचना है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति जो उस काल खण्ड में रहता है अपने पास कुछ भी संग्रहणीय सामग्री नहीं रख सकता उसे यदि कुछ उसके पास है, तो जला देना पड़ता है। वास्तव में 451°F कागज के जलने का तापक्रम है। इस उपन्यास में और फिल्म में मात्र उटोपिया Utopia और Utopian समाज है, जिसके पात्र कुछ जलाकर ही स्वर्गिक अनुभूति करते है। वास्तव में यह **Ray Bradbury** के ही शब्दों में "A Good allegory, a worning, not a prophecy" है।

Ray Bradbury के उपन्यास **Martian Chronicle (1950)** पर आधारित फिल्म में तथ्यों को इस प्रकार तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है, कि Rock Hudson की परिष्कृत ऐक्टिंग के बाद भी इसमें जीवन्तता नहीं आ पाती है। यह फिल्म उपन्यास की मुख्य विचार धारा से हट जाने के कारण- तर्कहीन सी हो गयी है। इसी लेखक की औपन्यासिक कृति **It Came from Outer Space** में, धरा पर अन्तरिक्ष से आये एक समूह से बचता-बचाता मानव समुदाय, अपनीसुरक्षा के लिये क्या-क्या विकल्प तलाशता है, का चित्रण तो बड़ी सहजता से किया गया है, पर यह भविष्य में कितना सम्भव हो सकता है- इस विषय पर न तो लेखक ही चर्चा करता है और न ही फिल्म का निर्देशक ही।

रुस और अमेरिका के शीत युद्ध के काल की दर्शाती पारस्परिक स्पर्धा को चित्रित करती Ice Station Zabra नामक फिल्म उत्तरी ध्रुव प्रदेश में गुम हो गये एक कैप्सयूल जिसमें युद्ध से सम्बन्धित सूचनायें हैं, को प्राप्त करने में जासूसों के प्रयासों को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करती है। **ऐलेस्टेयर-मैकलिन** की यह विज्ञान कथा रॉक-हडसन और एरनेस्ट बोरीन के प्रभावी अभिनय के कारण दर्शकों में लोक प्रिय हो गयी थी। इस चलचित्र में भीतराघात होड़ और विश्व शक्ति बने रहने की आकांक्षा का ही प्रस्तुतीकरण हुआ है।

मृत्यु की कामना को मानव भविष्य से जोड़ने के अनेक प्रयास विज्ञान लेखकों द्वारा किये गये हैं। इस विषय पर अनेक फिल्मों का भी निर्माण हुआ है। इनमें मानसिक रूप से

असामान्य विकृत समाज का चित्रण है जो भविष्य में कभी विकसित हो सकता है। नृशंसता, हत्या, हिंसा ही इनका मूल उत्स है। इस शृंखला में Death race- 2000, (1975), Death sport (1978) Death watch (1980), Death breath (1984) आदि चर्चित फिल्में हैं।

T.V. Serial Star Treek से सभी परिचित हैं। यह T.V. सीरियल बहुचर्चित इस कारण रहा है कि इसमें मानव मस्तिष्क के नियंत्रण पक्ष के विविधता से दर्शाया गया हैं अनेक ग्रहों-उपग्रहों की यात्रा के बाद भी मानव-नियंत्रण सबसे अमोघ्र प्रणाली इस सीरियल में दर्शायी गयी है। इसके सम्भाव्य होने के विषय में अभी कुछ कह पाना कठिन एवं दुष्कर है।

ठीक इसी प्रकार Close Encounter of the third kind, Steven Spielberg की फिल्म में जो जीवन्त चित्रण है- वह यथार्थ से दूर काल्पनिक और Utopin ही है। कुछ अंशों में चित्रण तर्क की सीमा को पार कर जाता है और मात्र कल्पना की उड़ान सा लगता है। कारण है सुदूर अन्तरिक्ष से धरा पर आने वाले विचारवान जीव जो मानवतर हैं और धरा पर नियन्त्रण चाहते हैं। भारतीय हिन्दी फिल्मों में वैज्ञानिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने की परम्परा के समानान्तर न जाने क्यों हालीवुड-अमेरिका में बन रही "साइंस फिक्शन" के नाम का उपहास करती, फिल्मों का निर्माण एवं प्रदर्शन हो रहा है। अभी पिछले वर्ष प्रदर्शित हालीवुड की एक फिल्म "अनाकोण्डा" में एक विशालकाय सर्प प्रजाति जो इसी नाम का होता है, की पूर्णतयः विपरीत छवि प्रस्तुत की गयी थी। इसमें न तो कल्पना में ही विज्ञान के तथ्यों की समीपता थी और न ही इस विशेष प्रकार के सर्प प्रजाति के सामान्य जीव-विज्ञान पर आधारित तथ्यों के भांति अनुरूपता ही।

इसी प्रकार मात्र भय को सचारी भाव-स्वरूप देने का प्रयास हालीवुड की सद्य प्रर्दशित फिल्म "गॉडजिला" में किया गया है। इसमें एक विशाल काय छिपकली जो "इंगुआना" प्रजाति की होती है, रेडिऐशन के परिणाम स्वरूप अपने नवीन स्वरूप "गॉडजिला" में परिवर्तित होकर, विशालकाय रूप धारण कर अपने मूल स्थान प्रशान्त महासागर में स्थित फ्रेंच पोलोनीशिया द्वीप समूह से एनकेन प्रकारेण चलकर न्यूयार्क -मैनहट्टन-अमेरिका में पहुँच कर अण्डे देकर प्रजातियों को उत्पन्न कर, जो विनाश लीला का प्रारम्भ करती है वह भय उत्पन्न करने में परम प्रभावी होने के बाद भी पूर्णतः काल्पनिक एवं अवैज्ञानिक चित्रण है। यह तो भारतीय फिल्मों में चित्रित- नाग-नागिन के बदले की भाँति ही है। परमाणु बमों के विस्फोट के द्वारा मानव विनाश की कल्पना तो बहुतों ने की है उसी पक्ष से जुड़ी है Panice in the year Zero (1962) की कथा। इस फिल्म में विनाश के बाद बचे हुये मानवों का समाज कैसे टूट जाता है, स्वकेन्द्रित हो जाता है और पशुओं की भाँति मात्र उदर पूर्ति में लगा रहता है, का प्रभावी चित्रण है। मानव क्लोन को आधार बनाकर Robocop (1987)-I और Robocop- II (1990) में जो चित्रण हुआ है वह पुलिस, हत्यारों, समाज को प्रताड़ित-पीड़ित करने वाले गिरोहों का है। जो तथ्य से दूर तो नहीं है परन्तु इन क्लोनों के द्वारा समाज का नियन्त्रण और हत्या कर अपने को गौरवान्वित करना, अटपटा सा लगता है। पर दूसरी तरफ समाज में बढ़ती निरंकुशता और हत्या के आनन्द की अनुभूति के आभास का ध्यान रखते हुये यह असम्भव भी नहीं है। योरप और अमेरिका के नगरों में हत्या-काण्डों को देखते हुये, अपने देश के महानगरों में हत्या से सम्बंधित आंकड़ों का विश्लेषण करते हुये- ऐसा लगता है कि मानव समाज को चाहे वह धरा अथवा अन्तरिक्ष पर वास करे, यह हिंसा की प्रवृत्ति नाश के कगार पर खड़ा कर देने में सक्षम है। इस पर नियन्त्रण की आवश्यकता है। इस प्रवृत्ति से मानव समाज को ग्रसित करने से बचाना होगा, तभी मानव का भविष्य सुरक्षित रह सकता है। भारतीय परिवेश में हिंसात्मक प्रवृत्तियों को न दर्शाते हुये विज्ञान कथाओं का सृजन, भविष्य में मानव को निश्चय ही सुरक्षा प्रदान करने का सशक्त माध्यम बन कर उभर सकता है। हिंसा रहित विज्ञान कथा-सृजन समय की आवश्यकता है।

☐☐☐

विवेचन

संचार माध्यम और विज्ञान कथा साहित्य : एक सूक्ष्मावलोकन

मनीष मोहन गोरे

22/2, स्टेशन रोड, देवरिया (उ.प्र.)

वैश्विक स्तर पर विज्ञान कथा कोई नयी साहित्यिक विधा नहीं हैं। यह विधा एक समृद्ध अतीत समेटे हुए है। इसका इतिहास करीब पांच सौ वर्ष पुराना है। विज्ञान कथाओं का जन्म इटली के महान चित्रकर **लियोनार्दो दा विन्सी** के समय में ही हो चुका था। लियोनार्दो पन्द्रहवीं शताब्दी के चित्रकार थे। वे न सिर्फ एक महान चित्रकार थे, अपितु उनके भीतर एक सृजनशील विज्ञान कथाकार के साथ-साथ एक बुद्धिमान वैज्ञानिक के सभी गुण विद्यमान थे। उन्होंने अपनी नोटबुक में भविष्य के विविध रोचक पहलुओं की चित्रमय झाँकी प्रस्तुत की थी। उनकी ये रचनाएँ विज्ञान कथाओं की ही श्रेणी में आती हैं। पाश्चात्य दुनिया की तुलना में भारतीय विज्ञान कथा का अतीत ज्यादा पुराना नहीं है। भारत में विज्ञान कथा लेखन का इतिहास लगभग 100 वर्ष पुराना है।

आज पश्चिमी देशों में विज्ञान कथा एक समादृत साहित्यिक विधा है। वहाँ धीरे-धीरे विज्ञान कथा को साहित्य में स्थान दिया जाने लगा। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में साहित्य की इस विधा का सिलैबस तैयार कर इसके अतीत और वर्तमान के बारे में पढ़ाया जाने लगा है। अन्य देशों में भी इस विधा को गम्भीरता से लिया गया है और सम्मान मिला है — वहीं भारत में इसकी यथास्थिति को देखकर दुःख होता है। **'भविष्य का दर्पण'** कही जाने वाली ये विज्ञान कथाएं आज अपना ही भविष्य अंधेरे में पाकर छटपटा रही हैं। अपने अस्तित्व के सौ वर्ष पूरे कर लेने के बाद भी यह विधा अपने उषाकाल में नहीं पहुँच पायी है। अफसोस होता है कि डॉ० सम्पूर्णानन्द, आचार्य चतुरसेन और महापंडित राहुल सांकृत्यायन जैसे बड़े नाम इस विधा से जुड़ने के बाद भी इसका कल्याण नहीं हो सका। कोई विज्ञान कथा लेखक इसके सुखद भविष्य को लेकर आशवादी हो भी तो कैसे ? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

कितनी विचित्र बात है कि हिन्दी साहित्य में पहली हिन्दी कहानी और पहली विज्ञान कथा का रचनाकाल एक होते हुए भी और तदन्तर समृद्ध विज्ञान कथा साहित्य रचनाधार्मिता के बावजूद आज तक हम विज्ञान कथा लेखकों को वह दर्जा नहीं मिल सका है जो दर्जा हिन्दी को अन्य साहित्यिक विधाओं के लेखकों को मिला है। यह सरासर अन्याय है और इसके पीछे साहित्य के वर्तमान मठाधीशों की सोची-समझी रणनीति काम कर रही है। आरम्भ के दशकों में इन आत्ममुग्ध और स्वनामधन्य साहित्यकारों ने **'विज्ञान कथा'** को विलायती विधा ठहराकर इसे तिरस्कृत कर दिया था। वर्तमान में, इस साहित्य की लोकप्रियता, स्तरीयता और बहुप्रशंसा को देख-सुनकर वही साहित्यकार सहम गए हैं और कोई तीखी टिप्पणी करने से कतरा रहे हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान कथा का लोहा अब वे भी मानने लग गए हैं। उनके लिए भले ही यह बुरी और सफोकेटिव खबर हो, मगर हम विज्ञान कथाकारों के लिए यह एक शुभ संकेत है।

हिन्दी साहित्य में विज्ञान कथाकारों को उनका निश्चित स्थान दिलाना विज्ञान कथाकारों का लक्ष्य है। हिन्दी के साहित्यकारों ने भले ही इस विधा की निरंतर उपेक्षा की हो, पर यह तो उन्हें मानना ही पड़ेगा कि हिन्दी के प्रकाण्ड साहित्यकार **राहुल सांकृत्यायन** की पहली रचना एक विज्ञान कथा **'इक्कीसवीं सदी'** ही थी और **आचार्य चतुरसेन** ने **'खग्रास'** नामक वैज्ञानिक उपन्यास लिखकर रचनाकारों को इस विधा को अपनाने का आग्रह किया था।

अब हम जरा मुख्य विषय पर ध्यान केंद्रित करें। आज की संगोष्ठी भी इसी पर आधारित है अर्थात् संचार माध्यमों में विज्ञान कथा : संकल्पना, स्वरूप और सम्भावना। पाश्चात्य

देशों में हॉलीवुड की अन्य फिल्मों से अपेक्षाकृत कई गुना अधिक व्यवसाय करने वाली फिल्में विज्ञान कथा पर आधारित होती है। वहाँ साइंस फिक्शन फिल्मों की जोरदार मांग है और इससे निर्माता-निर्देशक उम्मीद से अधिक आय भी कर रहे हैं। 'टर्मिनेटर टू', '2001 : ए स्पेस ओडिसी', 'जुरासिक पार्क', 'द लास्ट वर्ल्ड' हॉलीवुड की बेहतरीन और सुपरहिट साइंस फिक्शन फिल्मों के उदाहरण हैं।

हॉलीवुड में विज्ञान कथा पर आधारित फिल्मों का **'स्वर्ण युग'** चल रहा है पर भारत के बालीवुड में स्थिति ठीक विपरीत है। यहाँ अभी ऐसी फिल्मों का कांस्य युग भी नहीं आया है। या यूँ कह लें कि यहाँ ऐसी एक भी फिल्म नहीं बन पायी है ... **सत्यजीत रे** की इस विधा पर केंद्रित फिल्म **'एलियन'** अधूरी रह गयी और ठण्डे बस्ते में चली गयी.... बाद में उन्होंने या अन्य किसी भारतीय फिल्मकार ने इस ओर कोई पहल ही नहीं की .... रजत पट पर इस विधा का प्रचलन विधिवत नहीं हो सका, इसके पीछे यहाँ के निर्माता-निर्देशकों का उपेक्षा पूर्ण रवैया जिम्मेदार है। मौजूदा समय में एक सिने निर्देशक **केतन मेहता** साइंस फिक्शन फिल्म बनाने की तैयारी में हैं। उनका एक विज्ञान कथा पर आधारित धारावाहिक **'कैप्टन व्योम'** दूरदर्शन पर भी प्रसारित किया जा रहा है। यह मेहता जी की दूरदर्शितापूर्ण पहल है। इसकी सराहना होनी चाहिए।

प्रिंट मीडिया में विज्ञान कथा की स्थिति बहुत कुछ इलेक्ट्रानिक मीडिया के ही जैसी है। मराठी में जैसी धूम विज्ञान कथाकार के रूप में **डॉ० जयन्त विष्णु नारलीकर** की है वैसी स्थिति हिन्दी विज्ञान कथा साहित्य में किसी की क्यों नहीं बन पायी है ? मराठी पत्र-पत्रिकाओं में 'विज्ञान कथा' आज एक नियमित और स्थायी स्तम्भ के अंतर्गत प्रकाशित की जाती है। हिन्दी में सी.एस.आई.आर. द्वारा प्रकाशित मासिक **'विज्ञान प्रगति'** के अतिरिक्त दूसरी कोई पत्र-पत्रिका के प्रकाशक विज्ञान कथा को प्रकाशित करने से क्यों कतराते हैं ? सम्पादकों की विज्ञान कथा को लेकर उपेक्षापूर्ण रवैया भी हिन्दी में इसकी अतिन्यून लोकप्रियता के लिए जिम्मेदार है। मेरी सभी सहृदयी संपादकगण से निवेदन है कि वे अपना दृष्टिकोण बदलें और विज्ञान कथा की महत्ता को महसूस करें तथा इसे तरज़ीह दें।

आज के अत्याधुनिक समय में प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में परस्पर होड़ और प्रतिस्पर्धा कायम है। यह बात किसी से छिपी नहीं है। आज के परिदृश्य में यह बात भी सत्य है कि प्रिंट मीडिया का साहित्यिकता और स्तरीयता से कोई लेना-देना नहीं रह गया है। उसका सारा दिमाग **'सर्कुलेशन'** पर आकर टिक गया है। अधिकांश पत्र-पत्रिकायें इस रोग से पीड़ित है। कुछेक ने साहित्यिक स्वभाव को परिलक्षित कर रखा है मगर इस रोग की अतिशय संक्रमणता को देखते हुए ऐसा लगता है कि उनके भी रोगग्रस्त हो जाने में बहुत कम फासला रह गया है वर्तमान में, आधुनिकता के सामने साहित्यिकता दम तोड़ती नजर आ रही है।

आज साहित्यिकता की स्थिति डांवा-डोल तो है ही, इधर एक और समस्या आ खड़ी हुयी है। वह है मुद्रित साहित्य के प्रति पाठकों की रुझान में तीव्रतर होती कमी। यह स्थिति हिन्दी के क्षेत्र में ज्यादा ही सोचनीय है। लोग **'फास्ट फूड'** के समान **'फास्ट लिटरेचर'** की मांग कर रहे हैं ... स्वाभाविक है, कालजयी साहित्य को फास्ट लिटरेचर की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता ... लुगदी साहित्य ही यह जिम्मा बखूबी निभा सकती है .... विज्ञान कथाओं के लुगदी साहित्य के रूप में कई पॉकेट बुक्स के कॉमिक्स बुक स्टालों पर भरे पड़े हैं ... विज्ञान कथाओं के लुगदी साहित्य के रूप में कई पॉकेट बुक्स के कॉमिक्स बुक स्टालों पर भरे पड़े हैं ... विज्ञान कथाओं के नाम पर यह सब चटपटा बिकाऊ माल वास्तव में, भारत में स्वस्थ और परिष्कृत विज्ञान कथा साहित्य की सम्भावनाओं पर पानी फेर रहा है। अतः विज्ञान कथा के सही स्वरूप को बचाने के लिए संस्थागत प्रयास अब अपरिहार्य हो गये हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युग में विज्ञान कथाओं की प्रासंगिकता और बढ़ गयी है इसलिए हिन्दी साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में विज्ञान कथा को मान्यता दी जानी चाहिए। हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यकार इस ओर ध्यान दें।

□□□

विश्लेषण

विज्ञान प्रचार-प्रसार पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रभाव

डॉ० दिनेश मणि

सम्पादक **'विज्ञान'**

विज्ञान परिषद प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

लगभग सभी मामलों में (चाहे वे सांस्कृतिक हो या राजनीतिक/ वैज्ञानिक या आर्थिक) मीडिया व्यापक असर रखता है। यहाँ तक कि वह लोगों की सोच को बदल सकता है। चाहे कोई भी देश हो, भले ही वह अमीर हो अथवा गरीब, उत्तरी हो अथवा दक्षिणी, बड़ा हो अथवा छोटा, स्वतन्त्र और आत्म विश्वास से भरा प्रेस लोकतन्त्र का सबसे अच्छा प्रहरी है। किसी अखबार, टीवी चैनल अथवा रेडियो स्टेशन को चलाना महज एक व्यवसाय भर नहीं है। व्यवसाय से ज्यादा सत्य के प्रति वचनबद्धता और सार्वजनिक हित कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

आज के सन्दर्भ में कई चुनौतियाँ हैं, कई स्तरों, सतहों और आयामों में चुनौतियाँ हैं। चुनौती एक तकनीकी किस्म की हैं यह भी सही है कि आज तकनीकी विकास की चुनौती है। तकनीकी विकास के दो पक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण है। पहला पक्ष तो यह है कि संप्रेषण की गति तीव्रतर हो गयी है और संप्रेषण के तरीके समय की सीमा के दबाव के कारण बहुत संक्षिप्त हो गए हैं। कम समय में संदेश भेजना होता है और तैयार करना होता है। एक दबाव रहता है अपने यहाँ, भाषा संक्षिप्त रहती है, यह दबाव सबके ऊपर है और यह अच्छा दबाव है लेकिन दूसरा दबाव भी सबके ऊपर है, वह है इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का दबाव।

अब से लगभग सौ साल पहले रेडियो के साथ ही इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की शुरूआत हुई। इन सौ सालों में काफी तरक्की हुई। रेडियो के बाद माइक्रोवेव टेलीविजन और कम्प्यूटर संचार प्रौद्योगिकी के रूप में हमारे सामने आये। अब तो हमारे देश में भी इंटरनेट और इन्फार्मेशन लाइब्रेरी नेटवर्क पनपने लगे हैं। वास्तव में पिछले कुछ वर्षों में स्पेस टेक्नालॉजी/ (उपग्रहक्रांति) की वजह से बिल्कुल ग्लोबल कनेक्शन हो गया हैं इससे एक ग्लोबल चेतना का उदय भी हुआ है। इस चेतना का अर्थ यह कि हम एक पृथ्वी पर अलग-अलग तरीके से रहते हैं, तरह-तरह की भाषा बोलते हैं, सोच भी हमारी अलग है, पर फिर भी हमारे बीच कई समानताएं हैं। इस ग्लोबलाइजेशन से एक नई सद्भावना का उदय होना चाहिए था। दुनिया के झगड़ों में कमी आनी चाहिए थी। पर सब कुछ इसके विपरीत हो रहा है। अपराधों में बढ़ोत्तरी हुई है, नशीले पदार्थों का व्यापार बढ़ा है। अब एक दूसरे से अलग हैं हम, इसकी भावना कम नहीं हुई बल्कि बढ़ी है। यह एक अजीब किस्म का विरोधाभास है।

लोगों ने पचास साल तक संस्कृति/ शिक्षा का इन्तजार किया किन्तु असफलता हाथ लगी। अब अचानक इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अपसंस्कृति, अधकचरी शोध, विकृत वैज्ञानिक शिक्षा मिलने लगी है। इतना ही नहीं, संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, बच्चों को बेगाना बना रहे हैं, हमारे नियंत्रण से दूर कर रहे हैं। अमरीका में आजकल एक नई चीज देखने को मिल रही है जिससे वहाँ के लोगों को काफी चिंता हो गई है, उसको उन्होंने नाम दिया है—'एलिट्रेसी'। एलिट्रेसी से ग्रसित लोग लिखना-पढ़ना तो जानते हैं लेकिन लिखते-पढ़ते नहीं

है क्योंकि उनको जीवन के लिये जो बुनियादी सुविधायें हैं वे टीवी/ रेडियो से मिल जाती हैं। उनके सारे काम चूँकि इतने इलेक्ट्रॉनिक हो गये हैं, इतने स्वचालित हो गये हैं कि उनको लिखने की भी जरूरत नहीं पड़ती। चेक भरने जैसा साधारण सा काम भी लगभग 30 प्रतिशत अमरीकी नहीं कर पाते। हम कल्पना कर सकते हैं कि भारत में जिस दिन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया इतना प्रभावी हो गया, उस दिन यहाँ क्या स्थिति होगी?

जी-टीवी, मेट्रो तथा अन्य चैनलों के प्रोग्राम में जो भाषा प्रयोग में लाई जाती है उससे नई पीढ़ी के बच्चे 'साइंस' तो जानते हैं लेकिन 'विज्ञान' नहीं, 'पॉल्यूशन' तो जानते हैं लेकिन 'प्रदूषण' नहीं। आश्चर्य की बात तो यह है कि समूचे हिन्दी जगत ने इस पर अभी तक कोई बड़ा आन्दोलन खड़ा नहीं किया। टेलीविजन चैनलों के मालिकों की नीति यह है कि हिंसा और अपराध से भरपूर कार्यक्रम, चूँकि आम दर्शक पसन्द करते हैं (चैनल मालिकों की राय में) इसलिये उन कार्यक्रमों को उस समय दिखाया जाता है जब अधिकाधिक दर्शक टेलीविजन के सामने होते हैं। इसे भारत में **'प्राइम टाइम'** कहा जाता है। इसके लिये विज्ञापनों की दर भी ज्यादा होती है और इससे चैनल मालिकों को अच्छी आमदनी होती है। इस कारण चैनल-मालिकों को यह चिंता नहीं होती कि जो कार्यक्रम दिखाया जा रहा है, उसका सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक रूप से क्या प्रभाव पड़ने वाला है?

आज लगभग सभी चैनल, 'हॉरर', 'भूतप्रेत', 'आत्माओं' और 'अंधविश्वास' से भरपूर कार्यक्रम धड़ल्ले से दिखा रहे हैं और उन पर कोई अंकुश नहीं है। अंध विश्वास में डूबे जिस भारतीय समाज को धार्मिक आस्थाओं के नाम पर प्रचलित अंधविश्वास के जिन तथ्यों का वैज्ञानिक रूप से खंडन किया जा चुका है और लोगों को बड़ी मेहनत के बाद आधुनिक तर्कसंगत विज्ञान-सम्मत खोज पैदा की गई थी-उसे ये चैनल मालिक अपने कार्यक्रमों द्वारा पुनः स्थापित कर रहे हैं और दर्शकों में अंधविश्वास के प्रति आस्था और विश्वास जगा रहे हैं—यानि हम अठारहवीं और सोलहवीं शताब्दी की ओर लौट रहे हैं।

वास्तव में यह एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है कि आखिर विज्ञान तकनीकी के इस आधुनिक युग में मात्र अधिकाधिक धन कमाने की मानसिकता के कारण क्या हम अपना सामाजिक -दायित्व पूरी तरह से भूल चुके हैं? क्या वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के लिये हमारी कोई प्रतिबद्धता नहीं है? आइये, मिल बैठकर विचार करें और समय रहते अपने दायित्व-बोध को समझकर समाज को वैज्ञानिक अभिरुचि युक्त समाज बनाने का संकल्प लें।

□□□

"मैं यह नहीं जानता कि दुनिया को मैं कैसा दिखाई देता रहूँगा लेकिन अपनी दृष्टि में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं साधारण की अपेक्षा अधिक सुन्दर सीप अथवा अधिक चिकने स्फटिक की खोज में अपना ध्यान जब-तब हटाते हुए, समुद्र के किनारे अठखेलियाँ करता हुआ केवल एक बालक ही रहा हूँ, जबकि सत्य का महान सागर मेरे सामने अनाविष्कृत (अज्ञात) फैला हुआ था।"

-सर आइजेक न्यूटन

दृष्टिकोण

मीडिया में विज्ञान

कमलेश कुमार श्रीवास्तव

कोषाधिकारी, भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति, फैजाबाद

विज्ञान शब्द अब आम भारतीयों के लिए अंजान नहीं रहा। जबकि भारतीय साहित्यकार बहुत पहले से आज के युग को विज्ञान का युग मानने लगे थे। लेकिन शुरूआती दौर में धार्मिकता की विचारधारा से ओतप्रोत आम जनमानस ही नहीं वरन परम्परा और विकास के मकड़जाल में फंसे मनीषी भी इस शाब्दिक और वैचारिक द्वन्द से एक-दो हो रहे थे। इस संकट से कुछ हद तक उबारा हमारे मीडिया ने चाहे वो प्रिन्ट मीडिया रही हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया।

यद्यपि मीडिया ने भी इस तथ्यपरक विषय को बहुत गम्भीरता से न तो शुरू में ही लिया और न वर्तमान में ही ले रही है। लेकिन लोगों की, पाठकों की, विज्ञान के प्रति जिज्ञासा और नित हो रहे आधुनिक प्रयोगों की जानकारी के प्रति गम्भीरता को देखते हुए विज्ञान विषयक स्तम्भों/ लेखों को स्थान देना शुरू कर दिया। परन्तु यह आज भी विचारणीय विषय है कि प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में विज्ञान के स्तम्भों एवं लेखों के प्रति कितना न्याय दे रहा है।

वर्तमान की अवैज्ञानिक शिक्षा व्यवस्था और वैज्ञानिक तथ्यों को साहित्यिक जामा पहनाकर इसको शुरू में संचार माध्यमों में जिस तरह से पाठकों के समक्ष परोसा गया, उससे पाठकों / दर्शकों में विज्ञान के प्रति लगाव कम, बल्कि बिखराव ज्यादा आया। इसको मात्र वो तिल्सिमी कथा-कहानी के रूप में मान बैठे। वास्तविकता कम काल्पनिकता ज्यादा लिये हुए शुरूआती प्रयासों ने भी विज्ञान को जनमानस के करीब देर से पहुँचने में अपनी भूमिका बखूबी निभायी।

विज्ञान साहित्यकारों ने यद्यपि शुरू में इस व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने में पहल की लेकिन प्रिंटमीडिया की तरफ से कोई सकारात्मक उत्तर नहीं मिला। आज भी अखबार, पत्र-पत्रिकाओं या दूरदर्शन सहित अन्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में विज्ञान परक स्तम्भ कौन है, विवाद का विषय बना हुआ है। आज स्वास्थ्य, चिकित्सा, योग के स्तम्भों को भी इसी श्रेणी में गिना जा रहा है। यद्यपि मेरा उद्देश्य यहाँ किसी विषय के वर्गीकरण का नहीं है फिर भी विज्ञान के साहित्य, प्रयोगों, आविष्कारों, समाचारों के मूल विषय पर ध्यान न देने की प्रवृत्ति के प्रति चिंता मात्र है।

शुरू अगर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से करे तो पायेंगे कि निर्विवाद रूप से विज्ञान शुष्क विषय है और जनमानस तक पहुँचाने के लिए इसको साहित्यिक लबादा पहनाना जरूरी था और है। लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य विषय है कि साहित्यिक पुट इतना ही विषय को प्रदान किया जाय जिससे वह अपने उद्देश्यों पर स्थिर रहे। नहीं तो तथ्य, विज्ञानपरक कम, काल्पनिक ज्यादा लगने लगता है। 1988 के आसपास दूरदर्शन पर एक विज्ञान कथा धारावाहिक शुरू हुआ **'सिग्मा'**। अन्तरिक्ष की कथाओं पर आधारित इस धारावाहिक में फिक्शन इतना था कि न तो आम जन मानस ही इसे पचा पाया और न ही बच्चे। नतीजा यह हुआ कि लगभग एक दशक तक दूरदर्शन पर छिटपुट प्रयासों को अगर छोड़ दिया जाय तो, बड़ा प्रयास दुबारा नहीं हुआ।

चन्द्रकांता, श्रीकृष्ण से लेकर शक्तिमान, लेकिन वो सच था, कैप्टन व्योम, टर्निंग प्वांइट, स्पाइडर मैन, जुरासिक पार्क आदि धारावाहिकों एवं फिल्मों में विज्ञान परक तथ्यों को दिखाने का प्रयास किया जाता रहा है। लेकिन निर्माता केतन

मेहता द्वारा निर्मित विज्ञान परिकल्पना पर आधारित ारावाहिक कैप्टन व्योम, दिनकर जानी द्वारा निर्देशित एवं ुकेश खन्ना द्वारा निर्मित धारावाहिक **'शक्तिमान'** में विज्ञान ाथ्यों को कथा के माध्यम से दर्शकों तक पहुँचाने का प्रयास ाभी तक पूर्णरूपेण सफल नहीं हो पाया है। क्योंकि कैप्टन व्योम की टाइम मशीन, शक्तिमान की दुश्मनों से लड़ने की ाकत, सिर्फ बच्चों को ही स्क्रीन के सामने तक बाँध पायी ई। इसका कारण मात्र कथावस्तु की सटीक प्रस्तुति उचित ढ़ंग से न करना है।

'श्रीकृष्ण' धारावाहिक में रसायन विद्या द्वारा समयचक्र को रोककर प्रद्युम्न को बड़ा करने का जो अभियान रामानन्द सागर द्वारा दिखाया जा रहा है यह भी मात्र कोरी कल्पना है। लेकिन **'टर्निंग प्वाइंट'** की जानकारियाँ, लेकिन वो सच था, का भूत-प्रेत कुछ नहीं है उसको विज्ञान के आइने में रखकर दिखाने का प्रयास कुछ हद तक सफल हो रहा है लेकिन कितना ? यह अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में विज्ञान को जितना दर्शाया गया, उसका एक हिस्सा भी प्रिंट मीडिया ने अपने स्तम्भों में स्थान नहीं दिया। यही कारण है कि जनमानस तक विज्ञान को पहुँचाने का सरकारी प्रयास शून्य रहा है। दोष केवल अखबार नवीसों पर मढ़ने से छुट्टी नहीं मिलने वाली है बल्कि विज्ञान के साहित्यकारों को भी ऐसे लेखों को लिखना चाहिये जिससे आम जनता जानकारी ग्रहण कर सके। भाषा का मोह त्याग कर, तथ्यों को सारांश में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति विज्ञान के स्तम्भकारों को अपनानी पड़ेगी जिससे प्रिंट मीडिया भी उनका सहयोग कर सके। प्रिंट मीडिया को भी इस दिशा में और सोचने की जरूरत है। खेल, राजनीति, अर्थ, अपराध विषयक विशेषज्ञ रखने के साथ-साथ उनको विज्ञान विशेषज्ञ भी रखना पड़ेगा जिससे विज्ञान के लेखों के प्रति न्याय हो सके। साथ ही साथ सरकार को भी इस दिशा में सकारात्मक एवं रचनात्मक कदम उठाने पड़ेंगे।

❑❑❑

"मैं समझता हूँ कि स्वप्न जीवन के श्रेष्ठ अंश हैं। केवल एक अनुभूति ही नहीं वरन् इस बात का प्राग्ज्ञान (पूर्वाभास) कि मैं कल कोई नया आविष्कार करने जा रहा हूँ किसी भी वैज्ञानिक को कार्य करने के लिए प्रवृत्त करता है चाहे वह आविष्कार करे या न करे ..... किसी वस्तु को प्राप्त करने की अपेक्षा उसे पाने की उत्कट अभिलाषा जीवन की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है यह एक ऐसा संघर्ष है जो सम्मान्य है।"

-सी.बी. रमन

संचार माध्यमों में विज्ञान कथा

(संकल्पता, स्वरूप और संभावना)

जीशान हैदर जैदी

390\39A, बाग वाली मस्जिद, रूस्तम नगर, लखनऊ–226003

जगमगाते सूर्य तथा अनगिनत तारों और उनकी परिक्रमा करते ग्रहों जो बल रूपी मजबूत रस्सियों द्वारा एक दूसरे से बंधे हैं और उन ग्रहों में विद्यमान सृष्टि के प्राणी जो हमारे लिए अज्ञात हैं और ज्ञात है तो केवल पृथ्वी के प्राणी जो स्वयं अपने में अनंत रहस्य समेटे हैं और इन सबका समुच्चय यह संसार जो स्वयं अपने में किसी विज्ञान कथा का साकार रूप है और इस लम्बी विज्ञान कथा का एक तुच्छ से भी तुच्छ अंग है यह मनुष्य प्राणी जो स्वयं अपने रहस्यों का भी केवल एक छोटा सा भाग जानता है।

यह अवश्य है कि वह प्रकृति के रहस्यों को जानने के लिए लगातार प्रयत्नशील रहता है। उन रहस्योंकी व्याख्या के लिए नयी-नयी परिकल्पनाएं करता है और जब उन परिकल्पनाओं में विज्ञान का समावेश होता है तो जन्म होता है विज्ञान कथाओं का अथवा साइंस फिक्शन का।

विज्ञान कथाओं का विज्ञान की प्रगति में और इससे जुड़ी मानवीय प्रगति में कितना महत्वपूर्ण योगदान है, यह इसी से समझा जा सकता है कि कल के गल्प आज वास्तविक रूप में हमारे सामने है। जूल वर्न की कैलकुलेटर की कल्पना आज कम्प्यूटर के रूप में अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी है। वीडियो फोन, सेल्युलर फोन, सैटेलाइट, वायुयान, रिमोट कंट्रोल कल विज्ञान कथाओं का विषय होते थे, आज वास्तविक रूप में हमारे सामने हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विज्ञान कथाएं भावी विकास के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन करती हैं। अतः इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि साइंस फिक्शन साहित्य का महत्वपूर्ण अंग होता है।

किसी भी साहित्य की उन्नति के लिए, उसके प्रचार प्रसार के लिए संचार माध्यम महत्वपूर्ण होते हैं। साइंस फिक्शन भी उन्हीं देशों में अधिक लोकप्रिय हुआ है जहां संचार माध्यमों ने इसे महत्व दिया। स्टार ट्रैक, स्टार वार और जुरासिक पार्क जैसी फिल्में इसका अच्छा उदाहरण है।

बात आती है भारत में इसकी प्रगति की। यदि हम यहां के पत्र-पत्रिकाओं में देखे तो विज्ञान कथाओं की मात्रा उनमें नगण्य मिलती है। यहां तक कि विज्ञान से संबंधित पत्रिकाएं भी इसे महत्व नहीं देतीं। केवल इक्का-दुक्का पत्रिकाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं। जैसे विज्ञान प्रगति में नियमित रूप से प्रत्येक अंक में एक विज्ञान कथा प्रकाशित होती है। अंग्रेजी में साइंस रिपोर्टर भी इसी प्रकार की पत्रिका है। दूसरे प्रकार की पत्रिकाओं में यह संख्या और भी नगण्य हो जाती है। वर्षो पहले किशोरों के लिए एक पत्रिका 'पराग' निकलती थी। यह पत्रिका नियमित रूप से विज्ञान कथा अंक निकालती थी जिसमें देश-विदेश की लोकप्रिय और प्रसिद्ध विज्ञान कथाओं का समावेश होता था। अब यह पत्रिका बंद हो गयी है।

'सरिता', 'मुक्ता', 'कादम्बिनी' जैसी राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाएं कभी-कभी अपने किसी अंक में विज्ञान कथा का समावेश कर देती है। ऐसा कहा जाता है कि भारत में विज्ञान कथा लेखकों की कमी है। कुछ हद तक यह बात सही है क्योंकि विज्ञान से जुड़ा व्यक्ति आम तौर पर साहित्य लेखन से दूर रहता है। लेकिन यह बात पूर्णता सत्य नहीं है। इसी समिति में अर्थात 'भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति' में ऐसे लोग मौजूद हैं जो नियमित रूप से विज्ञान कथा लेखन

कर रहे हैं।

टी.वी. तथा फिल्म जैसे संचार माध्यमों में भी निराशाजनक दशा है। टी.वी. पर ऐसे सीरियल उंगलियों पर गिने जा सकते हैं जिन्हें साइंसफिक्शन कहा जा सके। कभी इस पर स्टार ट्रैक और कॉसमॉस जैसे सीरियल आते थे जो पूर्णतः विदेशी थे। कुछ भारतीय प्रोड्यूसरों ने भी साइंस फिक्शन बनाने की कोशिश की किन्तु ऐसी कोशिशें बहुत कामयाब नहीं हो पायी। बच्चों के लिए बनाया गया कैप्टन व्योम अधिक सफल नहीं रहा। एक अन्य बाल धारावाहिक **शक्तिमान** को कुछ हद तक साइंस फिक्शन कहा जा सकता है। किन्तु साइंस से अधिक इसमें भूत प्रेतों का दखल है।

फिल्मों की हालत और भी निराशाजनक है। वर्षों में विज्ञान कथा पर कोई फिल्म आती है जो या तो पूर्णतः विदेशी होती है या हिन्दी में डब की गयी होती है। भारत में विशेष रूप से शायद ही कभी कोई हिन्दी फिल्म बनी हो। साइंस फिक्शन फिल्म आमतौर पर सिनेमाहॉल में फ्लॉप हो जाती है। इसका कारण शायद यह भी हो सकता है कि सिनेमाहॉल के दर्शकों का एक बड़ा वर्ग अनपढ़ और विज्ञान से दूर का वास्ता रखता है। इस प्रकार की फिल्में ऐसे दर्शकों के सर पर से गुजर जाती हैं।

किन्तु इसमें केवल दर्शकों को दोष देना ठीक नहीं। क्योंकि अधिकतर साइंस फिक्शन इस प्रकार के होते हैं जो दर्शकों के माहौल से पूर्णतः अलग होते है। यह कथाएं ऐसे परिवेश की होती है जिनसे एक बड़ा दर्शक वर्ग जुड़ नहीं पाता। जो जुड़ना भी चाहता है उसे इन कथाओं की शुष्क और क्लिष्ट भाषा समझ में नहीं आती जो कि विदेशी शब्दों का रूपांतर मात्र होती है। ऐसे में किस प्रकार दर्शक उससे जुड़ सकता है। इसके अतिरिक्त अधिकतर विज्ञान कथाएं समस्या प्रधान होती है। रोमांस और मनोरंजन का पुट उसमें बहुत कम होता है। फिर किस प्रकार एक आम दर्शक जो मात्र मनोरंजन चाहता है, उससे जुड़ सकता है।

तो इस प्रकार यदि विज्ञान कथाओं में कुछ परिवर्तन लाये जाएं, उनका रूप परिवर्तित कर दिया जाए तो एक बड़ा वर्ग इनसे जुड़ सकता है। विज्ञान कथाओं में किसी जासूसी कहानी का सस्पेंस शामिल किया जा सकता है, किसी रोमांटिक नॉवेल का श्रृंगार इसे सुशोभित कर सकता है और वर्तमान सामाजिक परिवेश में इसे ढाला जा सकता है।

हम समाज की अनेक समस्याओं को वर्तमान उपकरणों की सहायता से व्यक्तिगत रूप में हल नहीं कर सकते। जैसे गरीबी, जनसंख्या, मौसम का अनियमित परिवर्तन, अपराधिक गतिविधियां, अर्थव्यवस्था की बुरी दशा। किन्तु कल्पनाओं के माध्यम से और विशेषरूप से वैज्ञानिक कल्पनाओं की सहायता से उन समस्याओं के हल हेतु सुझाव दे सकते हैं। हो सकता है कि यही कल्पनाएं मानव जाति के अथक परिश्रम और प्रगति के फलस्वरूप साकार होकर सम्पूर्ण जाति के लिए वरदान बन जाएं।

इस प्रकार की वैज्ञानिक कल्पनाएं न केवल हमें समस्याओं का हल सुझाती हैं बल्कि वर्तमान में हुए किसी आविष्कार के क्या दुष्परिणाम हो सकते है, इसके प्रति सचेत भी करती हैं साथ ही उनसे बचाव का उपाय भी बताती हैं।

भारत में विज्ञान कथाओं के अधिक लोकप्रिय न होने का एक कारण और है। वह है इस देश का ग्रामीण परिवेश। देश की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या गांवों में बसती है जहां न तो उच्च शिक्षा का प्रचलन होता है और न ही पढ़ने पढ़ाने में अधिक रूचि होती है। वहां के लोगों के मनोरंजन भिन्न प्रकार के होते हैं। उन्हें भारी भरकम किताबों को पढ़ने में रूचि नहीं होती बल्कि खेत खलिहानों में, कस्बों में लगने वाले छोटे मोटे बाजारों में टहलने में उन्हें अधिक आनंद आता है। स्पष्ट है कि ऐसे परिवेश में विज्ञान कथाएं पढ़ने की उम्मीद व्यर्थ है।

इस प्रकार के माहौल में तो पीपल के भूत, इमली की चुड़ैल, मजार का जिंन और बेचैन आत्माओं पर विश्वास करने वाले लोग ही मिलेंगे। कोई व्यक्ति बीमार होता है तो इलाज के लिए झाड़-फूंक, तंत्र-मंत्र का सहारा लिया जाता है। आज भी भारत के गांवों में सरेआम औरतों को डायन बनाकर मारा पीटा जाता है।

पढ़े-लिखे तबके की स्थिति भी बहुत अधिक सुदृढ़ नहीं है। यहां तक कि वैज्ञानिक भी वायुमंडल की शुद्धि के लिए यज्ञ करने में विश्वास रखते हैं। किसी नये कार्य का शुभारंभ सदैव नारियल फोड़कर किया जाता है।

लेकिन ऐसा माहौल संभावनाएं भी उत्पन्न करता है नयी चुनौतियां पेश करता है उन लोगों के लिए जो जनसाधारण में वैज्ञानिक जागरूकता उत्पन्न करने के लिए कटिबद्ध है। एक ऐसे माहौल में जहां अधिकतर लोग विज्ञान के प्रति उदासीन है, वैज्ञानिक पद्धति का प्रचार-प्रसार निसंदेह चुनौतीपूर्ण होता है विशेष रूप से उस समय में जब मैकाले की क्लर्क मेकिंग शिक्षा पद्धति भारतीय जनमानस में गहरे पैठ चुकी है।

भारत में विज्ञान कथाओं के साथ एक बड़ा पक्षपात किया जाता है। वह यह कि इन्हें असाहित्यिक समझा जाता है। निम्न कोटि के साहित्य की श्रेणी में रख दिया जाता है। साहित्य के अधिकतर आलोचक साइंस फिक्शन को बाल साहित्य की कोटि में रखते है, और कुछ आलोचक तो इन्हें सिरे से साहित्य मानने को तैयार ही नहीं होते और इन्हें जासूसी तथा सस्ते प्रकार की रोमांटिक कथाओं की कैटेगरी में रख देते हैं। यह साइंस फिक्शन के साथ एक बड़ा अन्याय है। क्योंकि साइंस फिक्शन भी दूसरे प्रकार के साहित्य की भाँति कल्पनाशील होता है, इसमें भी सामाजिक समस्याएं होती है, मनुष्य और उसकी भूमि से जुड़ा होता है तथा भाषाई दृष्टि से उत्कृष्टता के मानदंड को छू सकता है।

पाश्चात्य देशों में जहां साइंस फिक्शन को साहित्यिक श्रेणी में रखा गया, वहां इस विधा में उल्लेखनीय प्रगति हुई। यहां तक कि इस विधा के आगे दूसरे प्रकार के साहित्य फीके पड़ गये। इस समय हालीवुड में बनी हर दूसरी फिल्म साइंस फिक्शन होती है। साइंस फिक्शन पर उपन्यास पर उपन्यास लिखे जा रहे हैं और साहित्यकारों का एक बड़ा वर्ग इसमें सम्मिलित है।

इस प्रकार उपरोक्त बातों का अवलोकन करने के पश्चात भारत में विज्ञान कथा लेखन में अपार संभावनाएं दृष्टव्य होती हैं। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि इस प्रकार की कहानियों को साहित्य की कोटि में रखा जाए। उनको उसी प्रकार का महत्व दिया जाए जिस प्रकार साहित्य की अन्य विधाओं को महत्व दिया जाता है। संचार माध्यमों को भी इसके प्रचार-प्रसार में आगे आना चाहिए और प्रयत्न करना चाहिए ताकि देश के वैज्ञानिक इससे जुड़ने में गर्व का अनुभव कर सकें। साइंस फिक्शन तो मानव मन की कल्पना की गहराइयों को निरूपित करता है। जितना विकसित मानव मस्तिष्क होगा उतना ही उच्च कोटि का फिक्शन हमारी दृष्टि से गुजरेगा।

❑❑❑

यदि मैंने अन्य लोगों की अपेक्षा और दूर तक देखा है, तो यह इसलिए संभव हुआ कि मैं असामान्य शक्ति या योग्यता आदि गुणों से संपन्न व्यक्तियों के कंधों पर खड़ा था।"

-सर आइजेक न्यूटन

प्रसंगवश

विज्ञान के लोकप्रियकरण में वैज्ञानिक पत्रिकाओं का योगदान

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

रीडर एवं अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग,

सी०एम० पी० डिग्री कालेज, इलाहाबाद-211002

विज्ञान के लोकप्रियकरण में वैज्ञानिक पत्रिकाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस संबंध में मैं एक घटना का उल्लेख करना चाहूंगा। बात 1961की है। मैं एम० एस- सी० करने के बाद गोरखपुर विश्वविद्यालय में शोध छात्र था। प्रायः शाम को घूमते हुए वीनस टाकीज परिसर में स्थित एक बुक स्टाल पर नयी आयी पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों को देखने जाया करता था। इस बीच बुक स्टाल के युवा मालिक श्री पांडेय से परिचय हो गया था। वे मुझे 'डाक्टर साहब' सम्बोधित करते थे।

एक दिन उन्होंने एक नयी पत्रिका मेरे सामने रखते हुए कहा– 'डाक्टर साहब इस पत्रिका को देखकर मुझे बताएं कि मैं विक्रय के लिए क्या इस पत्रिका की बाद 5-7 प्रतियां मंगवाऊँ ? सहज जिज्ञासावश मैंने पत्रिका को तत्काल उलटना–पलटना प्रारंभ कर दिया। मुख पृष्ठ पर लिखा था 'विज्ञान जगत'। सम्पादक का नाम आर० डी० विद्यार्थी। सभी लेख विज्ञान विषयक। मेरी रूचि और बढ़ी। मुझे एक लेख प्रकाश संश्लेषण (फोटोसिन्थेसिस) पर दिखा। उसे पढ़ने के बाद मेरे मुख से अचानक निकला–'भाई, पांडेय जी, ऐसा लेख तो मैं भी लिख सकता हूं।' इतना सुनना था कि पांडेय जी बोले– 'डाक्टर साहब यह पत्रिका आप ले जाइए। इसे पढ़िये। लेख लिखकर प्रकाशनार्थ इस पत्रिका में भेजिए, मुझे प्रसन्नता होगी।'

फिर तो वह पत्रिका उन्होंने मुझे दे दी और मेरे बारंबार मूल्य चुकाने को यह कहकर मना कर दिया कि पत्रिका 'नमूने' की है। 'फ्री' आई है। पत्रिका का मूल्य आठ आने था। और पत्रिका इण्डियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित हुई थी। घर लाकर रात में ही मैं पूरी पत्रिका पढ़ गया। दूसरे दिन श्री आर० डी० विद्यार्थी जी को इस आशय का पत्र भी लिख दिया कि मैं लेख भेजना चाहता हूं। मुझे लौटती डाक से श्री आर० डी० विद्यार्थी जी का पत्र मिला। 'डंक मारने वाला पौधा विच्छू घास' शीर्षक से मैंने एक लेख भेज दिया। लेख आगामी अंक में छपा और पत्रिका की प्रति और 15रूपये मानदेय भी प्राप्त हुआ। बस वह दिन और आज का दिन। बाद में 'जीवन के सबसे सूक्ष्म शत्रु वायरस' और 'प्रकृति का कुशल बुनकर मकड़ी' लेख भी 'विज्ञान जगत' में प्रकाशित हुए। इस प्रकार वास्तविक रूप से विज्ञान पढ़ने लिखने में मेरी रूचि 'विज्ञान जगत' से ही जाग्रत जुई।

फिर तो शोध के साथ ही 'विज्ञान जगत' के अतिरिक्त आगरा से प्रकाशित होने वाली एक अन्य पत्रिका 'विज्ञान लोक' में भी मेरे लेख 'भारत का जादुई पौधा सर्पगंधा' और 'पादप हार्मोन प्रकाशित हुए। वैसे यह बात दूसरी है कि मेरा पहला विज्ञान विषयक लेख 'हमारे मित्र कीड़े' महात्मा गांधी इंटर कालेज गोरखपुर की पत्रिका में 1954-55में प्रकाशित हुआ था, जब मैं इंटरमीडिएट का विद्यार्थी था।

मेरी दृष्टि में विज्ञान के लोकप्रियकरण में रेडियो और दूरदर्शन से अधिक सशक्त माध्यम पत्रिकाएं हैं।

विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में हमारा भारतीय अतीत कितना गौरवशाली रहा है, मैं यहां इसकी चर्चा नहीं कर रहा हूं। हमारा वर्तमान प्रगतिशील है। आज विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में रत कर्मियों की संख्या में विश्व में हमारा तीसरा स्थान है। 1974 और 1998 में हम दो बार सफल नाभिकीय विस्फोट कर चुके हैं, हमारे रॉकेट और यान अंतरिक्ष में चक्कर लगा रहे हैं।जंगल, पहाड़ और सागर क्या धरती के

गर्भ में छिपी संपदाओं का सुराग दे रहे हैं। किन्तु यदि हम विकसित देशों से विज्ञान के क्षेत्र में अपनी तुलना करें तो अपने आप को काफी पीछे पाते हैं। प्रतिवर्ष घोषित होने वाले नोबेल पुरस्कारों की लिस्ट में हमारा नाम नहीं रहता है। ले देकर मात्र एक विशुद्ध भारतीय नाम इस श्रेणी में आता है और वह है चन्द्रशेखर वेंकट रामन का। हर गोविन्द खुराना और सुब्रहण्यम चन्द्रशेखर को नोबेल पुरस्कार' भारत में नहीं वरन विदेश में कार्य करने पर मिला है। इसका प्रमुख कारण है अभी भी जनमानस में उस प्रकार की वैज्ञानिक चेतना का अभाव है जैसा कि वर्तमान में होना चाहिए। लोकप्रिय वैज्ञानिक पत्रिकाओं की भूमिका यहीं महत्वपूर्ण हो जाती है।

भारत में पहली वैज्ञानिक पत्रिका जो प्रकाशित हुई वह 1788 में अंग्रेजी भाषा में थी। इसका नाम 'एशियाटिक रिसर्चेज' था। इसे एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया था।

भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाली प्रथम पत्रिका 'पश्चावली' बंगला में 1821 में प्रकाशित हुई। इस प्रकार विदेशी भाषा से देशी भाषा में पत्रिका प्रकाशन होने में तीन दशकों से भी अधिक समय लग गया। और बंगला से हिन्दी भाषा में प्रथम पत्रिका प्रकाशित होने में तो 9 दशकों से अधिक समय लग गया। वैसे 10 मार्च 1913 को इलाहाबाद में विज्ञान परिषद प्रयाग की स्थापना इलाहाबाद विश्वविद्यालय के 4 प्रबुद्ध अध्यापकों द्वारा डॉ. गंगा नाथ झा, मौलाना हमीदुद्दीन, प्रो० सालिगराम भार्गव और प्रो० रामदास गौड़ द्वारा हो चुकी थी, किन्तु हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने वाली पत्रिका का श्रेय आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका को जाता है जो 1913में प्रकाशित हुई।

विज्ञान परिषद प्रयाग की विधिवत मासिक पत्रिका ' विज्ञान' के प्रकाशन में लगभग दो वर्षो का समय लग गया। अप्रैल 1915में विज्ञान मासिक का प्रकाशन प्रारंभ हो गया और इसी के साथ इस शती के प्रथम दशक के बाद हिन्दी में वैज्ञानिक पत्रिका के प्रकाशन की सुदृढ़ परम्परा का प्रारंभ माना जा सकता है। यह कितना सुखद संयोग है कि उपरोक्त दोनों ही पत्रिकाएं आज भी नियमित रूप से प्रकाशित हो रही हैं और लोकोपयोगी विज्ञान साहित्य को जनमानस तक पहुंचाने का पुनीत कर्तव्य निभा रही हैं।

इसके बाद तो विज्ञान विषयक अनेक पत्रिकाओं का प्रारंभ हो गया, किन्तु अपने देश में कितनी पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं, इसका ज्ञान मात्र थोड़े से ही लोगों को रहा होगा। पत्रिकाओं की एक निर्देशिका तैयार करने का विचार सी० एस० आई० आर० वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली ने किया। इस प्रकार 1983 में तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर सी० एस० आई० आर० ने हिन्दी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रकाशन निर्देशिका 1966-1980 के प्रकाशन द्वारा हिन्दी विज्ञान साहित्य के सृजन के क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान दिया है। इसमें हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का विषयवार विवरण दिया हुआ है।

1-सामान्य विज्ञान–20
2-चिकित्सा और स्वास्थ्य–150
3-कृषि और पशु पालन–100
4-इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी–20
5-अंतरिक्ष विज्ञान–3
6-भौतिकी–4
7-रसायन शास्त्र–2
8-भूगर्भ विज्ञान और भूगोल–6
9-प्राणि विज्ञान–2
10-विविध–10

दो तीन वर्ष पूर्व श्री तुरशन पाल पाठक जी ने विज्ञान परिषद में एक पत्र भेजा था जिससे ऐसा लगा कि सी० एस० आई० आर० 1983 के बाद के प्रकाशनों की एक निर्देशिका को प्रकाशित करने का विचार रखती है, किन्तु उसकी अब क्या स्थिति है, मुझे नहीं मालूम।

यहां मैं श्री मनोज कुमार पटैरिया के अनुसंधानपरक

संदर्भ ग्रंथ हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का उल्लेख करना चाहूंगा। अब इसका द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है और हिन्दी विज्ञान साहित्य की न केवल यह पुस्तक श्रीवृद्धि करती है वरन अपने कलेवर में प्रचुर विज्ञान सामग्री समाहित करने के कारण मील का पत्थर सिद्ध होगी। इसमें लोकोपयोगी विज्ञान पत्रिकाओं के विषय में प्रामाणिक जानकारी दी हुई है।

स्वतंत्रता के बाद 1952 में ' विज्ञान' के प्रकाशन के 37 वर्षों बाद सी० एस० आई० आर० ने स्व. श्री राम चन्द्र तिवारी के सम्पादन में ' विज्ञान प्रगति' का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसकी अब एक लाख से अधिक प्रतियां छपती हैं। 1960 में विज्ञान समिति उदयपुर ने डा. कुन्दन लाल कोठारी के संपादकत्व में 'लोक विज्ञान' आरंभ की। 1961में आगरा से श्री शंकर मेहरा ने ' विज्ञान लोक' और इलाहाबाद से इंडियन प्रेस द्वारा श्री आर डी विद्यार्थी के संपादकत्व में ' विज्ञान जगत' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इन पत्रिकाओं का उल्लेख पहले किया जा चुका है। 1964में श्री सूरज प्रकाश पापा के संपादन में जयपुर से ' वैज्ञानिक बालक' निकली।

1969 में भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, मुम्बई से ' वैज्ञानिक' 1975 में नैनीताल से ' विज्ञान डाइजेस्ट', 1979 में श्री मनोज कुमार पटैरिया के संपादन में महोबा से 'ज्ञान विज्ञान', 1978 में इलाहाबाद से श्री शुकदेव प्रसाद के संपादन में 'विज्ञान भारती', 1980 में इन्हीं के संपादकत्व में 'विज्ञान वैचारिकी', 1979 में भारतीय विज्ञान संस्थान द्वारा 'विज्ञान परिचय' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। 1981 में 'विज्ञान पुरी', 'ग्राम शिल्प' और 'जूनियर साइंस डाइजेस्ट' जैसी नयी पत्रिकाएं देखने में आयी। 1982 में 'विज्ञान दूत', 'पर्यावरण दर्शन', 1983 में 'विज्ञान प्रवाह', 1985 में 'चकमक' फरवरी 1986 में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव एवं श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी के संपादन में 'विज्ञान वीथिका', इसी दौरान 'विज्ञान गरिमा सिंधु', 1985 में प्रारंभ और जनवरी 1986 से नियमित 'ब्रिटिश वैज्ञानिक' एवं 'आर्थिक समीक्षा', 1987 में जिज्ञासा प्रारंभ हुई।

दुर्भाग्यवश अनेक पत्रिकाएं अब कालकवलित हो चुकी हैं, किन्तु अनेक नयी पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है और होता रहेगा। इस प्रकार वैज्ञानिक पत्रिकाएं जन मानस में विज्ञान के प्रचार प्रसार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण फैलाने के दायित्व का निर्वहन करती रहेंगी। किन्तु अधिकांश पत्रिकाओं के काल कवलित हो जाने का कारण यह है कि अभी भी हिन्दी वैज्ञानिक पत्रिकाएं लोकप्रियता में दूसरी भाषाओं की पत्रिकाओं की तुलना में काफी पिछड़ी हुई हैं। इसका कारण पहला यह है कि आज भी उच्च स्तरीय वैज्ञानिक साहित्य पहले अंग्रेजी भाषा की पत्रिकाओं में आता है और फिर हिन्दी में काफी बाद में, दूसरा कारण है प्रतिष्ठित वैज्ञानिक, डॉक्टरों, इंजीनियरों आदि का हिन्दी में लिखने से परहेज, तीसरा कारण पाठकवर्ग का अभाव, चौथा ऐसे लोगों का विज्ञान लेखन करना जो विज्ञान समझते ही नहीं, लेखकों/सम्पादकों को समुचित मानदेय की व्यवस्था न होना आदि आदि।

मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं कि हिन्दी भाषा में आज कोई भी ऐसी पत्रिका नहीं जिसमें प्रकाशित लेखों के अनुवाद अंग्रेजी भाषा की किसी पत्रिका में छपते हों। मेरा स्वयं का लेखन अंग्रेजी वैज्ञानिक साहित्य पर आधारित रहा है। आज भी उच्च स्तरीय लोकोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य के हिन्दी में प्रकाशन की आवश्यकता बनी हुई है। मैं पुनः इस बात को बल देकर कहना चाहूंगा कि वैज्ञानिक पत्रिकाओं का विज्ञान के प्रचार-प्रसार में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकाशन के संबंध में रोड़े के रूप में आने वाली कठिनाइयों को मिल-जुल कर दूर करना होगा। लोकप्रिय वैज्ञानिक पत्रिकाओं का भविष्य उज्ज्वल है।

अंत में मैं इस संगोष्ठी के आयोजकों विशेष रूप से डॉ. अरविंद मिश्र और डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय के प्रति आभार प्रकट करता हूं जिन्होंने मुझे यहां आने का यह अवसर दिया। प्रो० शिवगोपाल मिश्र जी का मैं हृदय से कृतज्ञ हूं, जिन्होंने मुझे आज आने के लिए प्रेरित किया क्योंकि कुछ व्यस्तताओं के कारण मेरा विचार आने का नहीं था। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

□□□

व्यक्तिगत अनुभव

सफल प्रेरक प्रसंगों के माध्यम से कृषि तकनीकी प्रसारण

डा. गिरीश पांडेय
अपर निदेशक प्रसार/प्राध्यापक मृदा विज्ञान
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
नरेन्द्र नगर, कुमारगंज, फैजाबाद।

कथा के माध्यम से विज्ञान को जनमानस में लोकप्रिय बनाने हेतु अनेक प्रयास हुए हैं, लेकिन कृषि क्षेत्र में इस विधा का प्रयास प्रायः नगण्य ही है। मेरा मानना है कि यदि कृषि की महत्वपूर्ण शोध उपलब्धियों को सफल कहानियों के प्रेरक प्रसंगों के माध्यम से किसानों तक पहुंचायी जाए तो वे उसे बेहतर ढंग से अपना सकते हैं।

यूं तो सफलता एवं असफलता जीवन का एक शाश्वत क्रम है।सफलता उन्हीं की कदम चूमती है जो परिश्रम एवं सतत प्रयत्नशील होते हैं। कृषि प्रसार से जुड़े होने के नाते मेरा अनेक बेरोजगार नवयुवकों से संपर्क हुआ जो कृषि वैज्ञानिकों के प्रयास से कृषि, पशु पालन एवं बागवानी में उद्यमी प्रशिक्षण लेकर सफलता हासिल की। यहां पर कुछ बेरोजगार नवयुवकों की सफलता को प्रेरक प्रसंगों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इन दृष्टांतो को अगर प्रभावी ढंग से संचार माध्यमों द्वारा किसानों तक पहुंचाया जाए तो तकनीकी अंगीकरण में एक नया आयाम जोड़ा जा सकता है।

इन मुट्ठी भर प्रसंगों का तात्पर्य यह नहीं कि शेष ग्रामीण युवकों के प्रयासों में कमी है। हमारे समक्ष ऐसे अनेक उदाहरण है जहां प्रकृति एवं परिस्थिति ने सराहनीय प्रयत्नों को भी औसत परिणाम दिया है। निश्चय ही भविष्य में ऐसे समस्त उद्यमी अपने तकनीकी ज्ञान के बल पर उल्लेखनीय उपलब्धियां प्राप्त करेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

1-जहां चाह वहां राह:

सुभाष राय थलई पुर के एक लघु कृषक हैं।खेती ही सुभाष के जीविकोपार्जन का साधन है। वे अपनी खेती परम्परागत तरीके से करते आ रहे थे। अत्यंत परिश्रम के बाद भी उन्हें खेती में सफलता नहीं मिली, जिससे वे परेशान रहने लगे एवं परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ रहे। आखिर एक दिन निराश होकर कृषि विज्ञान केन्द्र मऊ पर आये और मेरे समक्ष खेती में वांछित लाभ न मिलने के कारण अफसोस प्रकट करने लगे। केन्द्र के वैज्ञानिकों ने उन्हें पारंपरिक खेती को छोडकर गहन खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया।

वैज्ञानिकों ने उनकी पूरे वर्ष की कार्य योजना बनवायी और उनका चयन प्रयोगशाला से खेत तक की योजना में कर लिया। वैज्ञानिकों की देखरेख में कम अवधि की धान नरेन्द्र–97 आलू कुफरी लालिमा, गेहूं मालवीय–234 तथा मूंग का प्रदर्शन कराया गया। राय ने पहले ही वर्ष में रिकार्ड उत्पादन प्राप्त किया जो गांव के लिए एक ज्वलंत उदाहरण हो गया। अब सुभाष की इच्छा शक्ति जागृत हुई एवं दूसरे वर्ष से गहन खेती के साथ-साथ उन्होंने बीज उत्पादन का भी कार्य शुरू कर दिया। बीज उत्पादन में सुभाष को काफी लाभ मिला एवं उनका बीज किसानों में अच्छे मूल्य पर हाथों हाथ बिक गया। श्री राय धान गेहूं, आलू के बीज उत्पादनसे ही 50-60 हजार प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ कमा रहे हैं। उनके

बीज उत्पादन का कार्यक्रम देखकर गांव के और 8-10 किसान बीज उत्पादन का कार्य शुरू कर दिये हैं। अब सुभाष राय खुशहाल एवं सम्पन्न हैं, अपनी सफलता पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहते हैं कि अगर चाह हो तो राह मिल सकती है।

2-जो जागत है सो पावत है:

श्री भानु प्रकाश यादव जमालपुर गांव के एक २६ वर्षीय लघु कृषक हैं। भानु ने पॉलिटेक्निक का डिप्लोमा प्राप्त कर नौकरी के लिए अनवरत प्रयास किया लेकिन उनको नौकरी नहीं मिली। परिवार की प्रतिकूल परिस्थितियां एवं सिर पर दायित्वों के बोझ से भानु अपने जीवन से निराश होकर खुदकुशी करने का भी विचार बना लिये थे। पूर्ण विश्वास के साथ एक दिन वे नौकरी की तलाश में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का सिफारिश पत्र लेकर मेरे पास आए। मैं लाचार था उनकी योग्यता के अनुसार कोई पद नहीं था। अतः साफ इंकार करना पड़ा कि मैं आपको नौकरी नहीं दे पाऊंगा। मैंने भानु की आंखों में विवशता के आंसू देखा और मेरा भी मन उस बेरोजगार युवक को देखकर द्रवित हो गया। मैंने ढांढ़स के लिए उनसे मछली पालन स्वरोजगार हेतु शुरू करने के लिए प्रेरित किया। भानु को मेरा सुझाव अच्छा लगा लेकिन सामाजिक रूढिबंधनवश यह पेशा अपनाने में लाचार थे। मैं भानु के पिता जी के पास गया एवं समझाया कि इन रूढिवादी परम्पराओं में बंधे रहकर गरीब एवं असहाय बने रहेंगे तो समाज भी आपको नहीं पूछेगा। अगर आपकी आर्थिक स्थिति मजबूत होगी तो समाज भी आपको सम्मान देगा। मेरी सलाह भानु एवं उनके परिवार पर असर लायी, अन्तोतगत्वा भानू को मछली पालन करने की इजाजत मिल गयी।

भानु ने केन्द्र से समन्वित मछली पालन पर 15 दिवसीय प्रशिक्षण लेकर बैंक से लोन लेकर मछली पालन का कार्य शुरू कर दिया। मछली पालन से पहले वर्ष में ही उन्हें अच्छा लाभ मिला। अब क्या था भानु की इच्छा शक्ति जागृत हुई उन्होंने मछली पालन के साथ-साथ, डेयरी एवं मुर्गीपालन का भी कार्य शुरू कर दिया।

अब भानु खुशहाल एवं सम्पन्न हैं। प्रत्येक वर्ष उन्हें मछली पालन, डेयरी एवं मुर्गीपालन से लगभग एक लाख रूपये की शुद्ध लाभ प्राप्त हो जाती है। भानु अपने व्यवसाय को सुव्यवस्थित करने में जुटे हैं। भानु अब बेरोजगार नवयुवकों के लिए एक अनुकरणीय व्यक्ति हो गये हैं। अब मैं जब भानु के गांव में जाता हूं तो वह मुझे तथा वैज्ञानिकों को बहुत ही आदर भाव से देखते हैं। इस कामयाबी पर गांव के लोग भानु के लिए यह मुहावरा अवश्य दुहराते हैं कि 'जो जागत है सो पावत हैं'

3-वाराह भक्त:

राना जसवंत सिंह, बी० ए० पास एक लघु कृषक हैं। राना ने नौकरी की तलाश काफी की लेकिन उन्हें नौकरी नहीं मिल पायी। एक दिन राना अपने गांव के पास ही यार्क सायर सफेद सूअर देखा। उनके मन में यार्क सायर सूअर पालन शुरू करने का विचार आया। राना के गांव में सूअर पालन मात्र अनुसूचित जातियों द्वारा ही किया जाता है। राना ने एक दिन गांव के लोगों से अपने दिल की बात रखी कि मैं सूअर पालन करना चाहता हूं। गांव के अधिकतर लोग राजपूत थे एवं बहुत ही संकीर्ण विचारधारा के थे। सभी ने राना को काफी भला-बुरा कहा एवं कहा कि अगर इस गांव में आप सुअर पालन करेंगे तो हम लोग आपका हुक्का पानी बंद कर देंगे।

राना ने किसी की बात नहीं मानी। समस्त रूढ़िवादी परम्पराओं को छोड़कर वह अपनी इच्छा शक्ति पर दृढ थे। अंततोगत्वा राना केन्द्र पर सुअर पालन का प्रशिक्षण लेने आये। साक्षात्कार में मैंने जब उनसे पूछा कि आप सुअर

पालन ही क्यों करना चाहते हैं? राना ने तपाक से उत्तर दिया इसमें अधिक आमदनी है। आज समाज जिसके पास धन है उसे ही सम्मान देता है। मैंने राना की आंखों में गजब का आत्मविश्वास देखा एवं सुअर पालन प्रशिक्षण हेतु पंजीकृत कर लिया। प्रशिक्षण के बाद राना ने बैंक से सुअर बाड़े के लिए लोन लेकर वैज्ञानिकों की देखरेख में सुअर पालन का कार्य शुरू कर दिया।

इस समय राना के पास 250-300 सुअर हैं। प्रतिवर्ष राना इस व्यवसाय से 60-70 हजार रूपये कमा लेते हैं। अब राना के लिए यार्क सायर सूअर सोने का सुअर हो गया है। आज राना जसंवत सिंह अपनी लगन एवं परिश्रम के कारण काफी संपन्न हो गये हैं एवं गांव में सम्मान के पात्र हैं। गांव में उनको लोग वाराह भक्त कहते है लेकिन इसके लिए राना कोई परवाह नहीं करते। अब राना ने सुअर पालन का कार्यक्रम आजमगढ़ में भी खोल रखा है।

उपरोक्त सफल कहानियां या प्रेरक प्रसंग हमारे प्रगतिशील कृषकों के प्रयास-शून्य से सृष्टि निर्माण का दावा तो नहीं कर सकती परन्तु सफलता के ये लघु प्रसंग अंधेरे में टिमटिमाते दीप का आभास तो करा ही सकते हैं।

□□□

" प्रतिभा में एक ऐसा बन्धन निहित है जो न केवल सृष्टि कर सकता है वरन् सम्प्रेक्षण भी कर सकता है। यह संभव नहीं है कि एक वैज्ञानिक वास्तव में केवल चिंतन की अनजानी राहों से ही गुजरता रहे। अत्यधिक भेदी आँख उसे दर्शक रूपी बादलों से घिरा हुआ पाएगी। वह औरों से लेता है, तब औरों कोदेता है। उसे चाहिए कि वह वक्त की जरूरतों की ओर ध्यान दे। उसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह अपने विचारों को अपने समकालीन व्यक्तियों की भाषा में रूपान्तरित करे। अपने विचारों को पारस्परिक प्रभाव के लिए सभी दिशाओं में फैलाना उसके लिए अनिवार्य हैं। कोई चिंतन यदि औरों के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव नहीं डाल पाता, वह व्यर्थ नष्ट हो जाता है।"

-जो.आर. फ्लैट

प्रवीण स्मृति अभियांत्रिक पुरस्कार

विविध अभियांत्रिकी विषयों पर सन 1990 के बाद हिन्दी में लिखी गयी अपुरस्कृत पुस्तकों की दो-दो प्रतियां पुरस्कार हेतु 31-7-99 तक अकादमी में सविवरण आमंत्रित हैं। यह निर्णय शोध प्रकाशन अकादमी, 5\48 वैशाली गाजियाबाद–201010 ने अपनी कार्यकारिणी की बैठक में लिया। पुरस्कार एक समारोह में अगस्त माह में वितरित किया जायेगा जिसके अन्तर्गत 5100 रूपये नगद व प्रशस्ति पत्र दिया जायेगा। अकादमी के महासचिव ने बताया कि उपर्युक्त वार्षिक पुरस्कार **संघ लोक सेवा आयोग** द्वारा वर्ष 1998 के बैच में चयनित ***आई ई एस प्रवीण कुमार शर्मा*** की स्मृति में इसी वर्ष से आरंभ किया जा रहा हैं। पुरस्कार का निर्णय लेना निर्णायक मंडल का है जो अंतिम होगा।

डा० विष्णु दत्त शर्मा

महासचिव

5\48, वैशाली गाजियाबाद–201010

दूरभाष–773073

हथौड़ा और छैनी जिस प्रकार एक मूर्तिकार की संपत्ति होती है, उसी प्रकार निश्चय ही, विवेकपूर्ण चिंतन तथा मनोयोगी साधना एक वैज्ञानिक की संपत्ति है। किन्तु दोनों ही विषयों में, वे मात्र उपकरण है, न कि कार्य की मात्रा।

-डब्ल्यू हाईजेनबर्ग

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1998

हिटेकर पुरस्कार

श्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हजार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता हैं।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1998 से दिसम्बर 1998 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1998 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च 1999 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार

'विज्ञान' में प्रकाशित रचनाओं में से वर्ष की सर्वश्रेष्ठ तीन रचनाओं को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार तथा प्रमाण-पत्र प्रदान किये जाते हैं।

लेख निम्न पते पर भेजें :

डॉ० दिनेश मणि, डी०एस०-सी०

संपादक विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भे
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 400.00 रु०, आधा पृष्ठ 200.00 रु०, चौथाई पृष्ठ 100.00 रु०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 1000.00 रु०

भेजने का पताः

डॉ० दिनेश मणि, डी०एस०-सी०
संपादक **विज्ञान**
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत